प्रवचन-क्रम

इकहत्तरवां प्रवचन

उठने में ही मनुष्यता की शुरुआत है

नत्थि रागसमो अग्गि नत्थि दोससमो कलि।
नत्थि खंधसमा दुक्खा नत्थि संति परं सुखं।। 178।।

जिधच्छा परमा रोगा संखारा परमा दुखा।
एतं ाःत्वा यथाभूतं निब्बानं परमं सुखं।। 179।।

आरोग्य परमा लाभा संतुट्ठी परमं धनं।
विक्सास परमा ाःति निब्बानं परमं सुखं।। 180।।

पविवेकं रसं पीत्वा रसं उपसमस्स च।
निद्दरो होति निप्पापो धम्मपीतिरसं पिवं।। 181।।

तस्माहिः
धीरंच पंचंच बहुस्सुतं च धोरय्हसीलं वतवंतमरियं।
तं तादिसं सप्पुरिसं सुमेधं भजेथ नक्खत्तपथं" व चंदिमा।। 182।।

श्रावस्ती में एक कुलकन्या का विवाह। मां-बाप ने भिक्षु-संघ के साथ भगवान को भी निमंत्रित किया। भगवान भिक्षु-संघ के साथ आकर आसन पर विराजे हैं। कुलकन्या भगवान के चरणों में झुकी और फिर अन्य भिक्षुओं के चरणों में। उसका होने वाला पति उसे देखकर नाना प्रकार के काम-संबंधी विचार करता हुआ रागाग्नि से जल रहा था। उसका मन काम की गहन बदलियों और धुओं से ढंका था। उसने भगवान को देखा ही नहीं। न देखा उस विशाल भिक्षुओं के संघ को। उसका मन तो वहां था ही नहीं। वह तो भविष्य में था। उसके भीतर तो सुहागरात चल रही थी। वह तो एक अंधे की भांति था।

भगवान ने उस पर करुणा की और कुछ ऐसा किया कि वह वधू को देखने में अनायास असमर्थ हो गया। जैसे वह नींद से जागा, ऐसे ही वह चौंककर खड़ा हो गया। और तब उसे भगवान दिखायी पड़े। और तब दिखायी पड़ा उसे भिक्षु-संघ। और तब दिखायी पड़ा उसे कि अब तक मुझे दिखायी नहीं पड़ रहा था। संसार का धुआं जहां नहीं है, वहीं तो सत्य के दर्शन होते हैं। वासना जहां नहीं है, वहीं तो भगवत्ता की प्रतीति होती है। उसे चौकन्ना और विस्मय में डूबा देखकर भगवान ने कहा, कुमार! रागाग्नि के समान दूसरी कोई अग्नि नहीं है। वही है नर्क, वही है निद्रा। जागो, प्रिय जागो! और जैसे शरीर उठ बैठा है, ऐसे ही तुम भी उत्तिष्ठित हो जाओ। उठो! उठने में ही मनुष्यता की शुरुआत है।

और तब उन्होंने यह गाथा कही--

नत्थि रागसमो अग्गि नत्थि दोससमो कलि।
नत्थि खंधसमा दुक्खा नत्थि संति परं सुखं।।

"राग के समान आग नहीं है। द्वेष के समान मैल नहीं है। पंचस्कंधों के समान दुख नहीं है। शांति से बढ़कर सुख नहीं है।"

पहले तो इस प्रसंग को ठीक से समझ लें। यह प्रसंग अनूठा है।

साधारणतः भारत में परंपरा रही है कि विवाह के समय किसी संन्यासी को निमंत्रित न किया जाए। हिंदू विवाह में किसी संन्यासी को निमंत्रित नहीं करते। यह बात तर्कयुक्त मालूम होती है। क्योंकि कहां संन्यास और कहां विवाह! इन दोनों का क्या मेल? संन्यासी की मौजूदगी, जो लोग विवाह में बंधने जा रहे हैं, उनके लिए बाधा भी बन सकती है। संन्यासी की उपस्थिति उनके लिए इस बात का स्मरण भी बन सकती है कि संसार व्यर्थ है। जो अभी राग के सपनों में सोने जा रहे हैं, उन्हें यह नींद है, यह आग है, यह वासना व्यर्थ और असार है, ऐसी प्रतीति देने वाले व्यक्ति के करीब ले जाना उचित नहीं है।

तो हिंदू परंपरा रही है कि संन्यासी को विवाह में न बुलाया जाए। और विवाह के बाद, जो लोग विवाह के बंधन में बंधे हैं, वे संन्यासी से आशीर्वाद भी लेने न जाएं। क्योंकि संन्यासी का आशीर्वाद अगर सच में आशीर्वाद है तो विवाह के विपरीत होगा। अगर वह कुछ कहेगा, तो विवाह के विपरीत कहेगा। उसकी आशीष जगाने की होगी, सुलाने की नहीं हो सकती। जो अभी सोने को तत्पर हुआ है, वह जागे हुए लोगों से बचे, यह बात तर्कयुक्त मालूम होती है।

लेकिन बुद्ध ने ये सारी प्रक्रियाएं तोड़ दीं। बुद्ध ने यह सारी परंपरा तोड़ दी। बुद्ध ने कहा, विवाह के क्षण ही संन्यासी को निमंत्रित करना, बुलाना। क्योंकि यह मौका है जब कच्चा मन एक ढांचे में ढल रहा है। जब कच्चा मन एक यात्रा पर निकल रहा है। इस घड़ी में जो भी संस्कार पड़ जाते हैं, गहरे होते हैं।

मनोवैज्ञानिक भी इस बात से सहमत होते हैं कि मनुष्य के जीवन में कुछ घड़ियां होती हैं जो सर्वाधिक संवेदनशील होती हैं। उन घड़ियों में जो संस्कार पड़ जाते हैं, वे गहरे अचेतन तक चले जाते हैं।

जैसे बच्चा पैदा हुआ, तब पहली घड़ी। बच्चा पैदा होकर जो देखता है, जो अनुभव करता है, पहली बार आंख खोलता है, पहली बार मां के गर्भ से निकलकर श्वास लेता है, उन दस-पंद्रह सेकेंड में जो घटता है, वह सदा के लिए उसके मन का आधार बन जाता है। उससे महत्वपूर्ण घटना फिर दुबारा कभी न घटेगी। इसलिए वे दस-पंद्रह सेकेंड अपूर्व मूल्य के हैं। और मनोवैज्ञानिक कहते हैं कि उनका जितना सदुपयोग हो सके उतना अच्छा है।

अभी तो जो हम उपयोग करते हैं वह सदुपयोग नहीं है, दुरुपयोग है। अभी तो बच्चा पैदा होता है, डाक्टर उसे पैरों से पकड़कर उलटा टांग देता है। यह यात्रा शुरू हो गयी उपद्रव की। यह बच्चे को सदमा लगता है। अभी-अभी सब सुखपूर्ण था, अब अचानक एकदम दुखपूर्ण हो गया। ऐसे तो नौ महीने गर्भ में रहने के बाद जब आंख खोलता है बच्चा, तो रोशनी तक कष्टकारी है। इसलिए मनोवैज्ञानिक कहते हैं, बहुत धीमी रोशनी होनी चाहिए। लेकिन जहां अस्पतालों में बच्चों को जन्म दिया जा रहा है, वहां बड़ी तेज रोशनी होती है। बच्चे की आंखें अभी अति कोमल हैं, गुलाब की पंखुड़ियों जैसी हैं, अभी इतनी तेज रोशनी उनके लिए सदा के लिए चोट से भर देगी, तिलमिला देगी, यह पहला अनुभव संसार का बुरा अनुभव हो जाएगा।

पश्चिम में, जहां मनोविज्ञान के नए आधार रखे जा रहे हैं, फर्क आना शुरू हुआ है। अब बच्चों को ऐसे कमरों में जन्म दिया जा रहा है जहां अत्यंत धीमी रोशनी होती है। और अत्यंत सुकोमल, रंगीन, प्रीतिकर, नीली, धीमी नीली रोशनी होती है। कि बच्चा आंख खोले तो उसे कोई चोट न लगे। फिर बच्चे को एकदम ऐसे बिस्तर पर लिटा देना जो सख्त है, खतरनाक है, अभी बच्चे की त्वचा बहुत कोमल है। तो पश्चिम में अब उसे ठीक उसके शरीर के योग्य गरम पानी में लिटाते हैं। क्योंकि मां के पेट में वह अपने शरीर के तापमान वाले गरम पानी में ही तैरता है। उसे गरम पानी में लिटाते हैं। ताकि बाहर आकर वह जगत को प्रीतिकर पाए। ऐसा पाए कि उसमें निश्चिंत हो सके, विश्रांति को पा सके।

ये जो पहले क्षण हैं, अगर सुखद हों तो यह बच्चा सुखी होगा। सुखी होगा इस अर्थ में, इसका दृष्टिकोण सुख का होगा। अगर पहली ही चोटें ऐसी पड़ गयीं तो इस बच्चे के मन में पहले ही घाव बन गए। अब यह डरा हुआ जीएगा। यह मानकर ही चलेगा कि दुश्मन हैं यहां चारों तरफ, मित्र कोई भी नहीं है। इसका दृष्टिकोण विषाक्त हो गया। इस घड़ी को वैज्ञानिक कहते हैं, ट्रामेटिक। इस समय जो पैदा हो जाता है, उसका संस्कार पूरे जीवन पीछा करेगा।

फिर दूसरी घड़ी आती है जब तुम्हारा विवाह होता है। तब फिर तुम्हारे जीवन में एक नया सूत्रपात हो रहा है। अब तक तुम अकेले थे, अब तक तुम आधे थे, अब तुम एक स्त्री से जुड़े या एक पुरुष से जुड़े, अब तुम पूरे हुए। तुम्हारी चाहत, तुम्हारा प्रेम, तुम्हारी वासना अब एक नयी यात्रा पर निकल रही है। अब तक का जीवन एक ढंग का था, अब जीवन एक दूसरे ढंग का होगा।

ये घड़ियां भी बड़ी महत्वपूर्ण हैं। इन घड़ियों को भी हम व्यर्थ गंवा देते हैं। इन घड़ियों में भी जो हम करते हैं, वह सब थोथा है। दूल्हे को घोड़े पर चढ़ा दिया है, बैंड-बाजे बजा रहे हैं। बचकाना है। इस बचकानी प्रवृत्ति से बाहर निकालने की जरूरत है। ये घड़ियां अति बहुमूल्य हैं। ये घड़ियां अत्यंत शांत हो गए पुरुषों के निकट बीतनी चाहिए। वातावरण संगीतमय हो। लेकिन धूम-धड़ाक से भरा हुआ फिल्मी संगीत ठीक नहीं। यह वातावरण संगीतमय हो, वीणा बजे, बांसुरी बजे, शहनाई बजे, पर यह संगीत ऐसा हो जो इन घड़ियों को मनुष्य के भीतर सदा के लिए प्रीतिकर बनाकर बिठा दे।

तो बुद्ध ने तो तोड़ दी पुरानी परंपरा। उन्होंने कहा कि संन्यासी आ सकता है। वे स्वयं जाते थे। अगर विवाह हो और निमंत्रित किए जाएं तो वे जाते थे। न केवल अकेले, बल्कि अपने हजारों भिक्षुओं को लेकर। ताकि वहां का सारा वातावरण बदल दें। जहां हजारों भिक्षु आ गए हों, वहां की हवा बदल जाएगी। जहां बुद्ध मौजूद हों, वहां की हवा बदल जाएगी। वहां दूल्हा और दुल्हन तो गौण हो जाएंगे। वहां बुद्ध की मौजूदगी प्रगाढ़ हो जाएगी। वह प्रकाश-स्तंभ इन छोटी सी घड़ियों का, इन बहुमूल्य घड़ियों का उपयोग कर लेगा। वह छाप गहरी पड़ जाएगी। और यह याद मन में बैठ जाएगी कि विवाह ही जीवन का अंत नहीं है। जाओ, लेकिन एक दिन इसके बाहर आना होगा। जाओ जरूर, लेकिन अनुभव से एक दिन पकोगे और इसके बाहर भी आओगे। क्योंकि लोग हैं जो बाहर आ गए हैं। बुद्ध हैं। यह बुद्ध की शांति और यह बुद्ध का आनंद भी याद रह जाएगा।

यह सुगंध पीछा करेगी। कितने ही सपनों में खोए होओ, यह सुगंध कभी-कभी तुम्हारे सपने को तोड़ देगी। और कभी-कभी जब जीवन का विषाद और जीवन का दुख तुम्हें अतिशय काटने लगेगा तो तुम आत्महत्या की नहीं सोचोगे, तुम आत्म-रूपांतरण की सोचोगे। तुम कहोगे कि ठीक है, अगर यह जीवन दुखपूर्ण है, कष्टपूर्ण है और अगर यहां रस नहीं बह रहा है, तो जीवन समाप्त नहीं हो जाता है, एक और भी जीवन है। बुद्ध जैसा जीवन है।

आधुनिक युग में जब तुम्हारे जीवन में कष्ट होता है, कठिनाई होती है, तो कोई द्वार नहीं मिलता। तब तुम्हें ऐसा लगता है, अब खतम ही कर लो अपने को, अब क्या सार है! यही रोज-रोज उठना, यही रोज-रोज काम करना, यही पत्नी, यही पति, यही झगड़े, यही कलह, यही चिंताएं, यही जिम्मेवारियां, आखिर इसमें सार क्या है? और दस साल जीएंगे तो यही-यही दोहरेगा। इससे तो बेहतर अपने को समाप्त कर लो।

दुनिया में आत्महत्या करने वालों की संख्या रोज बढ़ती जाती है। पश्चिम में बहुत बढ़ गयी है। क्योंकि पश्चिम से संन्यासी तो विदा ही हो गया, उसकी तो कहीं झलक ही नहीं मिलती। चर्च में जो पादरी है, या सिनागाग में जो रबाई है, वह भी संन्यासी नहीं है, वह भी तुम जैसा संसारी है, उसके जीवन में भी कुछ नहीं है, उसकी मौजूदगी में भी कुछ नहीं है, उसकी मौजूदगी भी किसी और जीवन की नयी शैली का इंगित नहीं देती, कोई पुकार नहीं है, कोई आह्वान नहीं है।

तो बुद्ध ने यह परंपरा तोड़ दी। बुद्ध ने कहा कि विवाह में तो अगर संन्यासी उपलब्ध हों तो जरूर बुला लेना। ताकि उस समय युवक और युवती जो विवाह में बंध रहे हैं, अभी बड़ी आशाओं से, ये आशाएं कल टूटने ही वाली हैं, क्योंकि इन आशाओं के पूरे होने का कोई उपाय नहीं है। यह जो बड़ी-बड़ी कल्पनाएं संजोकर जा रहे हैं, ये कल्पनाएं आज नहीं कल धूल-धूसरित हो जाएंगी। तब इनके सामने एक बात स्मरण में रहनी चाहिए--एक और भी जीवन की शैली है, यही जीवन सब कुछ नहीं है। तब ये बुद्ध की तरफ मुड़ सकेंगे। संन्यास की तरफ मुड़ सकेंगे।

तो यह जो छोटी सी घटना है, यह समझने जैसी है।

श्रावस्ती में एक कुलकन्या का विवाह है। मां-बाप ने भिक्षु-संघ के साथ शास्ता को भी निमंत्रित किया। भगवान भिक्षु-संघ के साथ आकर आसन पर विराजे। कुलकन्या भगवान के चरणों में झुकी और फिर अन्य भिक्षुओं के चरणों में। उसका होने वाला पति उसे देखकर नाना प्रकार के काम-संबंधी विचार करता हुआ रागाग्नि से जल रहा था।

यहीं स्त्रियों और पुरुषों में बुनियादी फर्क है। स्त्री का जो काम है, वह निष्क्रिय काम है। वह ठंडी आग है। पुरुष का जो काम है, वह सक्रिय काम है। वह प्रज्वलित अग्नि है। इसलिए स्त्री को धर्म के जगत में यात्रा करना ज्यादा सुगम पड़ता है, बजाय पुरुष के। क्योंकि पुरुष के भीतर की सारी ऊर्जा सक्रिय है, बहिर्गामी है। स्त्री के भीतर की ऊर्जा निष्क्रिय है और अंतर्गामी है।

इसलिए तुम अगर चर्च में, मंदिर में, गुरुद्वारे में स्त्रियों की संख्या ज्यादा देखो पुरुषों की बजाय, तो कुछ आश्चर्य मत मानना। वह स्वाभाविक है। बुद्ध के भिक्षु-संघ में भी चार भिक्षुओं में तीन स्त्रियां थीं, एक पुरुष। और वही अनुपात था महावीर के साधु और साध्वियों का। चार साधुओं में तीन साध्वियां, एक साधु। और मैंने बहुत गौर से देखा है, करीब-करीब यही अनुपात है, जहां तुम चार धार्मिक व्यक्ति पाओ, तीन स्त्रियां पाओगे, एक पुरुष।

फिर स्त्रियां जब साधना में उतरती हैं तो समग्ररूपेण उतर जाती हैं। पुरुष इतना समग्ररूपेण नहीं उतर पाता। पुरुष का मन बहुत दिशाओं में भागने वाला मन है। स्त्री का मन भागने वाला मन नहीं है। विश्राम स्त्री के लिए स्वाभाविक है।

तो दोनों मौजूद हैं। कन्या भी मौजूद है जिसका विवाह होना है, वर भी मौजूद है। लेकिन वर को तो बुद्ध दिखायी ही नहीं पड़े। कन्या को दिखायी पड़े। गयी, उनके चरणों में झुकी।

इसे भी ख्याल रखना, स्त्री के लिए झुकना सरल है। समर्पण सरल। पुरुष के लिए झुकना कठिन है। अति कठिन। बहुत समझ हो तो ही पुरुष झुक पाता है। जरा भी नासमझी हो तो पुरुष अकड़ा रह जाता है। टूट भला जाए, झुकना नहीं चाहता। उसमें ही समझता है कि पुरुषत्व है। स्त्री कोमल लता सी है, जरा सा हवा का झोंका और झुक जाती है। पुरुष सख्त मजबूती से खड़े वृक्षों की भांति है। तूफान भी आए तो झुकना नहीं चाहता। फिर अगर कहीं तूफान बड़ा हुआ और पुरुष को झुकना ही पड़ा, तो वे बड़े वृक्ष गिर जाते हैं, फिर उठ नहीं पाते। छोटे-छोटे पौधे जो झुक जाते हैं, तूफान के निकल जाने पर फिर उठ आते हैं। तूफान उनका कुछ नहीं बिगाड़ पाता।

स्त्री कोमल लताओं जैसी है। झुकना उसका आंतरिक अंग है। इसलिए कन्या तो जाकर बुद्ध के चरणों में झुकी। उसे बुद्ध दिखायी पड़ गए। वह क्षणभर को बुद्ध के चरणों में झुकते समय भूल ही गयी होगी कि उसका होने वाला पति भी बैठा है। फिर न केवल वह बुद्ध के चरणों में झुकी, वह भिक्षुओं के चरणों में भी झुकी। लेकिन पुरुष को दिखायी ही न पड़ा। उस युवक को बुद्ध दिखायी ही न पड़े। उसकी आंखों में तो आग छायी हुई है। वह तो उतावला हो रहा है। कब जल्दी यह रस्म-रिवाज पूरा हो। उसकी वासना तो प्रदीप्त है।

उसका होने वाला पति उसे देखकर नाना प्रकार के काम-संबंधी विचार करता हुआ रागाग्नि से जल रहा था।

उसके भीतर तो अग्नि जल रही है। लपटें। धुआं ही धुआं है। उसे कहां बुद्ध का पता! आए, बैठे, इतने भिक्षु आए, उसे कुछ दिखायी नहीं पड़ा। तुमने ख्याल किया, जब तुम किसी वासना से बहुत भरे होते हो तो तुम्हें वही दिखायी पड़ता है जो तुम्हारी वासना का बिंदु होता है। और कुछ दिखायी नहीं पड़ता।

एक आदमी ने एक दुकान से--सर्राफ की दुकान से--एकदम हीरे-जवाहरातों पर मुट्ठी बांध ली और भागा। पकड़ा गया--भरी दोपहरी, बीच बाजार! मजिस्ट्रेट भी उससे हैरान हुआ, उसने कहा कि तू कैसा पागल है, चोर हमने भी देखे, रोज ही आते हैं, मगर कोई भरी दोपहरी में! जहां ग्राहक बैठे, दुकान चल रही, लोग बैठे, रास्ता चल रहा, वहां तू एकदम घुस गया और हीरे-जवाहरात लेकर भाग गया! यह कोई ढंग है! उस चोर ने कहा, मुझे हीरे-जवाहरात के सिवाय कुछ और दिखायी ही नहीं पड़ रहा था। जैसे ही मुझे हीरे-जवाहरात दिखायी पड़े, फिर मुझे कोई नहीं दिखायी पड़ा--न दुकानदार, न ग्राहक, न रास्ता, न चलते हुए लोग।

जब वासना बहुत प्रगाढ़ हो तो तुम्हें वही दिखायी पड़ता है जो तुम्हारी वासना तुम्हें दिखाती है। शेष सब अंधेरे में हो जाता है। शेष सब पर पर्दा पड़ जाता है। उस युवक को बुद्ध दिखायी नहीं पड़े। उसने भगवान को देखा ही नहीं।

कभी-कभी भगवान तुम्हारे पास से भी गुजर जाएं और हो सकता है तुम्हें दिखायी न पड़ें। बहुत बार गुजरे ही होंगे। क्योंकि अनंत काल में ऐसा तो नहीं हो सकता कि तुम कभी बुद्धों के करीब न आए होओ। ऐसा तो नहीं हो सकता कि कभी कोई जिनत्व को उपलब्ध व्यक्ति तुम्हारे पास से न गुजरा हो। ऐसा तो नहीं हो सकता कि कभी कोई कृष्ण, कभी कोई क्राइस्ट, कोई मोहम्मद, कोई जरथुस्त्र तुम्हारे गांव से न गुजरा हो, तुम्हारे पड़ोस में न ठहरा हो। ऐसा हो ही नहीं सकता। तुम कोई नए तो नहीं हो। अति प्राचीन हो, सनातन हो। सदा-सदा से यहां रहे हो। जरूर बहुत बार ये मौके आए होंगे। लेकिन तुमने देखा नहीं, यह सच है। अब तो तुम्हें याद भी नहीं। तुम्हें पहचान भी नहीं।

आज भी तुम्हारे पास से बुद्धपुरुष गुजरें तो शायद ही तुम देख पाओ। तुम्हें वही दिखायी पड़ेगा जो तुम देख सकते हो। तुम अगर धन के दीवाने हो तो धन दिखायी पड़ेगा। तुम अगर पद के दीवाने हो, पद दिखायी

पड़ेगा। तुम्हारी आंखें बस उसी दिशा में देखती हैं जहां तुम्हारी वासना त्वरा से भागी जा रही है। शेष सब अंधेरा हो जाता है। तो हम करीब-करीब निन्यानबे प्रतिशत अंधे हैं। बस एक प्रतिशत हमें दिखायी पड़ता है। और इसीलिए अक्सर ऐसा हो जाता है, कि शुभ अवसर आते हैं और चूक जाते हैं।

इस युवक की हालत को तुम इस युवक की ही हालत मत समझना। बहुत मौकों पर तुम्हारी भी यही हालत है। ऐसा मत सोचना कि बेचारा! यह कहानी तुम्हारी है। यह आदमी की कहानी है। ये सारी कहानियां आदमी की हैं। इन कहानियों को ऐसा सोचकर मत टाल देना कि हां, किसी को ऐसा हुआ होगा। ऐसा मनुष्य को होता है। ऐसा हर मनुष्य को हो रहा है।

उसने भगवान को देखा ही नहीं।

तुमने कभी इस अनुभव से गुजरकर निरीक्षण किया है? रास्ते से तुम चले जा रहे हो और एक सुंदर स्त्री तुम्हें दिखायी पड़ जाए, फिर तुम्हें कुछ और दिखायी पड़ता है? फिर कुछ दिखायी नहीं पड़ता। फिर कौन गुजर रहा है, कौन आ रहा है, कौन जा रहा है, सब धूमिल हो जाता है। वह सुंदर रूप आंखों को बांध लेता है। तुम्हें राह पर पड़ा हीरा दिखायी पड़ जाए, फिर तुम्हें कुछ और दिखायी पड़ेगा? फिर कुछ भी दिखायी न पड़ेगा। इस अंधेपन के कारण हम बुद्धों से वंचित हो जाते हैं। और बुद्धू के बुद्धू रह जाते हैं।

उसे भगवान दिखायी ही न पड़े। न देखा उसने इस विशाल भिक्षुओं के संघ को।

चलो एक भगवान को न देखा हो, मगर ये हजारों पीत वस्त्रों में आए हुए भिक्षु! ये भी उसे दिखायी न पड़े। उसकी आंखों में कुछ और ही भरा है। उसकी आंखें भरी हैं, खाली नहीं। आंखें जब खाली होती हैं तब कुछ दिखायी पड़ता है, भरी आंखों में कुछ दिखायी नहीं पड़ता। उसे तो अपनी पत्नी ही दिखायी पड़ रही है। शायद उसे नाराजगी भी आ रही हो कि ये किस तरह के लोग आ गए कि मेरी पत्नी को इनके पैरों में झुकना पड़ रहा है। मेरी पत्नी और किसी के पैरों में झुक रही है! शायद उसे इससे अड़चन भी हुई हो। ये कौन लोग हैं! इन्होंने समझा क्या है अपने आपको! वह खुद तो उठा नहीं झुकने, उसे तो दिखायी नहीं पड़ रहा है कुछ, शायद पत्नी को झुकते देखकर उसे बेचैनी बढ़ रही हो।

ऐसा मेरे पास लोग आ जाते हैं। एक महिला मेरे पास आती है, उसके पति नाराज हैं। पति कहते हैं कि मेरे होते हुए तुझे कहीं जाने की क्या जरूरत है? तुझे जो पूछना है, मुझसे पूछ। और तुझे जो जानना है, मुझसे जान।

अब यह भी खूब अनूठी बात है। कोई पत्नी कभी अपने पति से कुछ पूछ सकती है! और पत्नी कभी मान सकती है कि पति में भी कोई अकल हो सकती है! अकल ही होती तो उसको तुमने चुना होता! अकल ही होती तो तुम उसके जाल में फंसते! अकल ही होती तो तुम पति होते! दुनिया में कोई और तुम्हें मान ले, लेकिन पत्नी तो नहीं मान सकती कि तुममें कुछ अकल है।

अब पति उससे कह रहा है कि हमसे पूछ लो। जो भी जानना है, हमसे जान लो। और वह पति को भलीभांति जानती है--पत्नी से भलीभांति और कौन पति को जानता है! वह तुम्हारी हर कमजोरी को जानती है। तुम्हारी हर सीमा को जानती है। वह तुम्हारी बटनों को दबाना जानती है। जरा सी बटन दबा दे, तुम क्रोधित हो जाते हो। जरा सी बटन दबा दे, तुम प्रभावित हो जाते हो। तुम उसके हाथ की कठपुतली हो और तुम उससे कह रहे हो कि मुझसे पूछ।

तो मैंने उनकी पत्नी को कहा कि तुम उन्हीं से पूछ क्यों नहीं लेती, तू यहां क्यों परेशान होती है--जब वह इतने उससे कहते हैं! उसने अपना माथा ठोंक लिया, उसने कहा, उनसे पूछकर क्या नरक जाना है! वह खुद तो जा ही रहे हैं, मुझको भी ले जाएंगे। और उनके पास है क्या जो मैं उनसे पूछूं?

मगर पति की तकलीफ भी समझना। पति को इस बात से अड़चन होती है कि उनकी पत्नी किसी के चरणों में झुके। इससे पतिभाव को चोट पहुंचती है। यह बात ही उनको अखरती है कि उनकी पत्नी और किसी के चरणों में झुके! उनकी पत्नी और किसी और के सामने झुके! तो पति तो पत्नियों को समझाते रहे हैं कि हम परमेश्वर हैं। अब और इसके आगे तो कहीं जाने को है नहीं, पति परमात्मा है। आगे खतम हो गयी बात। पत्नियों ने कभी सुना नहीं, यह दूसरी बात है! पति लेकिन यह समझाते रहे हैं, यह तो सच ही है।

उसे तो कठिनाई ही होने लगी होगी। ये कहां के लोग आ गए हैं? और ये लोग उसे बड़े अजीब से लगे होंगे। ये पीत वस्त्रधारी यहां क्या कर रहे हैं? इनकी यहां जरूरत क्या है? इन्हें किसने यहां बुला लिया है? लड़की के मां-बाप को बुद्ध से लगाव रहा होगा। लेकिन लड़के के मां-बाप को या लड़के को बुद्ध से कोई संबंध न रहा होगा। यह अपरिचित सी भीड़, ये अजीब से लोग! अगर थोड़े बहुत उसे समझ में भी आए होंगे कि मौजूद हैं, कहीं धुंधले में खड़े दिखायी भी पड़े होंगे, तो सिर्फ बेचैनी का कारण हुए होंगे। और पत्नी को झुकते देखकर उसकी अड़चन और बढ़ गयी होगी।

वह तो वहां था ही नहीं। वह तो भविष्य में था। उसके भीतर तो सुहागरात चल रही थी। वह तो एक अंधे की भांति था। वह तो झपटकर अपनी पत्नी को पकड़ लेना चाहता था। उसे कुछ और सूझ नहीं रहा था।

भगवान ने उस पर करुणा की।

जो इतनी अग्नि में जल रहा हो, उस पर करुणा करनी ही पड़ेगी। उस पर दया खायी। उसका दुख समझा होगा। उसका पागलपन देखा होगा।

उन्होंने कुछ ऐसा किया कि वह वधू को देखने में अनायास असमर्थ हो गया।

कथा कुछ कहती नहीं कि उन्होंने क्या किया। कुछ ऐसा किया। एक दूसरी कहानी से तुम्हें समझाऊं कि क्या किया होगा।

एक सूफी फकीर के पास एक युवक आया, चरणों में सिर रखा और कहा कि मैंने निश्चय कर लिया है, मैंने पक्का विचार कर लिया है कि आपके चरणों में समर्पण करूंगा। फकीर ने कहा, तूने कहावत सुनी है कि इसके पहले शिष्य गुरु को चुने, गुरु शिष्य को चुन लेता है? युवक ने कहा, सुनी तो है, लेकिन मुझ पर लागू नहीं होती। मैंने ही निश्चय किया है कि आपके चरणों में सिर रखूंगा। फकीर ने कहा, तूने दूसरी कहावत सुनी है कि भगवान जिसको बुलाता है वही भगवान की तरफ जाता है? उस युवक ने कहा, छोड़ो ये कहावतें, सुनीं, न सुनीं, इससे कोई मतलब नहीं है, लेकिन अपने संबंध में मैं जानता हूं कि मैंने महीनों विचार करने के बाद यह तय किया है कि समर्पण करूंगा।

उस फकीर ने कहा, तू मेरे साथ आ। झोपड़ी के बाहर उसे ले गया, पास ही खेत में एक किसान--दोपहरी है, काम से थक गया होगा, बैलों को विश्राम देना होगा, तो वृक्ष के नीचे बैठा है। उसी के पास एक कुत्ता बैठा है। फकीर ने कहा, देखता है वह किसान और कुत्ता वहां? दूर से दिखाया। और फकीर ने कहा कि अब देख! मैं इस किसान को खबर भेजता हूं कि तू तीन पत्थर इस कुत्ते को मार! ऐसा फकीर का कहना था कि किसान ने एक पत्थर उठाया और फेंका; दूसरा उठाया और फेंका; और तीसरा उठाया और फेंका; और कुत्ते को भगा दिया।

युवक ने मन में सोचा, संयोग की बात मालूम पड़ती है। लेकिन फकीर ने जोर से कहा कि नहीं, संयोग की बात नहीं है। तब तो युवक और भी चौंका। क्योंकि उसने यह कहा नहीं था प्रगट में कि संयोग की बात मालूम पड़ती है, ऐसा मन में सोचा था कि संयोग की बात मालूम पड़ती है। लेकिन फकीर ने कहा, नहीं, संयोग नहीं है। उस युवक के मन में फिर हुआ, जिद्दी रहा होगा, कि यह भी संयोग हो सकता है। फकीर ने कहा, कह रहा हूं कि नहीं, यह भी संयोग नहीं है। तब तो चौकन्ना हुआ युवक। जैसे नींद से जागा।

फकीर ने कहा, तो फिर देख! अभी यह बैठा है, तू चाहता है यह खड़ा हो जाए? उसने कहा, दिखाएं। ऐसा कहना ही था फकीर का कि वह किसान खड़ा हो गया। मगर युवक को संदेह उठा कि हो सकता है उसका विश्राम पूरा हो गया हो और वह उठने के ही करीब हो! तो फकीर ने कहा, देख, बायां हाथ ऊपर उठवाऊं कि दायां हाथ ऊपर उठवाऊं? इसका तो कोई कारण नहीं होगा? उसने कहा कि नहीं, इसका कोई कारण नहीं होगा, बायां उठवाएं। ऐसा कहना था कि उस किसान ने बायां हाथ ऊपर उठाया। अब जरा मुश्किल था। अब फकीर ने कहा, तू मेरे साथ आ।

दोनों किसान के पास गए। बूढ़ा किसान, अनुभवी किसान। फकीर ने कहा कि देखें, एक छोटा सा प्रयोग हम किए हैं, उसके संबंध में थोड़ी जानकारी चाहिए। आपने कुत्ते को पत्थर क्यों मारे? बड़ी देर से बैठा था आपके पास, आपने पत्थर न मारे, फिर अचानक पत्थर क्यों मारे? किसान ने कहा कि देखो, मैं विश्राम कर रहा था, मैंने ध्यान ही नहीं दिया था कुत्ते पर, अचानक मैंने देखा कुत्ता, तो मैंने भगाना चाहा। तो फकीर ने पूछा, अच्छा, भगाना चाहा तो एक ही पत्थर से काम हो जाता, तीन क्यों मारे? तो उस किसान ने कहा कि इसलिए ताकि कुत्ते को ठीक सिखावन लग जाए, दुबारा यहां न आए। फकीर ने पूछा, फिर आप अचानक उठकर खड़े क्यों हो गए? तो उस किसान ने कहा, मैं काफी विश्राम कर चुका था, फिर मैंने सोचा कि इतना ज्यादा विश्राम शरीर के स्वास्थ्य के लिए ठीक नहीं, तो मैं खड़ा होकर जरा व्यायाम कर लेना चाहता था। तो फिर आपने बायां हाथ ऊपर क्यों उठाया? तो उस किसान ने कहा, हद्द हो गयी, हाथ मेरे हैं, मैं बायां हाथ उठाऊं कि दायां, तुम कौन हो? मेरी मर्जी! तुम कोई अदालत हो? और मैंने कोई जुर्म किया है? और उस युवक से कहा कि देख छोकरे, यह फकीर खतरनाक मालूम होता है, इस तरह के सूफी कच्ची उमर के लोगों को उलटी-सीधी बातें पढ़ाया करते हैं। इससे सावधान रहना। यह तुझे कुछ उलटी-सीधी बातें पढ़ा रहा है।

फकीर युवक को लेकर अपने झोपड़े पर लौट आया। उसने कहा, अब तेरा क्या ख्याल है? क्योंकि वह किसान भी जिद्द करता है कि ये मेरे विचार हैं।

एक मन के संबंध में बहुत बुनियादी सत्य समझ लेना--जितने विचार तुम अपने कहते हो, उनमें शायद ही कोई तुम्हारा होता है। तुम अक्सर दूसरों के पकड़ते हो। तुम से बलशाली आदमी जब तुम्हारे करीब होता है, तत्क्षण तुम उसके विचार पकड़ लेते हो। कहने की जरूरत नहीं होती। विचारों की तरंगें प्रतिक्षण ब्राडकास्ट हो रही हैं, हर एक आदमी से हो रही हैं, जो कमजोर होता है वह बलशाली की पकड़ लेता है। जैसे पानी ऊपर से नीचे की तरफ बहता है, ऐसे बलशाली व्यक्ति से विचार कमजोर व्यक्तियों की तरफ बहते हैं।

इसलिए तो कहा है, बुरे आदमियों के पास मत बैठना। क्योंकि अक्सर ऐसा होता है, तुम्हारे तथाकथित भले आदमियों से बुरे आदमी ज्यादा बलशाली होते हैं। तुम्हारे नपुंसक भले आदमियों की बजाय अपराधी बहुत बलशाली होते हैं। इसलिए कहा कि बुरे आदमियों के पास मत बैठना। बुरे का सत्संग मत करना। वह बुरा है, लेकिन बलशाली तो है ही!

अब जिस आदमी ने दस हत्याएं की होंगी, वह कोई कम बल का आदमी नहीं है! उसने दुरुपयोग किया है बल का, यह दूसरी बात है। उसने ठीक नहीं किया बल का उपयोग, यह दूसरी बात है। लेकिन बलशाली है, इसमें तो कोई संदेह नहीं। उससे जरा सावधान! उसके पास बैठे तो उसके मस्तिष्क से चलती हुई सूक्ष्म तरंगें तुम्हारा मस्तिष्क पकड़ लेगा। और अगर तुम भी हत्या का विचार करने लगो तो कुछ आश्चर्य न होगा। हालांकि तुम यही सोचोगे कि मैं सोच रहा हूं।

इसलिए कहा, सत्संग करना। जहां कोई ज्ञान को उपलब्ध हुआ हो, उसके पास बैठना। वहां तुम्हारी यात्रा सुगम हो जाएगी। जो शुभ विचार कभी तुम्हारे भीतर तरंगें भी नहीं लिए हैं, उसकी मौजूदगी में तरंगें लेने लगेंगे। जो फूल तुम्हारे भीतर कभी खिले ही नहीं, उनकी पखुड़ियां खिलने लगेंगी। कलियां खिलने लगेंगी, फूल बनने लगेंगी। जो किरण तुम्हारे भीतर कभी उठी ही नहीं, सोयी की सोयी ही पड़ी थी, अचानक किसी के संघात में जगकर खड़ी हो जाएगी। सत्संग का अर्थ ही यही है कि किसी ऐसे बलशाली व्यक्ति के पास पहुंच जाना जो जाग गया है, ताकि उसका जागरण तुम्हें झकोरे देने लगे। ताकि उसका जागरण झंझावात बन जाए। ताकि उसका जागरण अलार्म बन जाए और तुम्हारे चारों तरफ बजने लगे। और तुम्हें सोने न दे। और तुम्हारी नींद को तोड़े। और तुम्हें सपनों से जगाए।

बुद्ध ने क्या किया होगा? कुछ खास नहीं किया होगा, सिर्फ इतना ही किया होगा, उस युवक की तरफ ध्यान दिया होगा। सिर्फ अपनी आंखें उस युवक की तरफ फेरी होंगी। जैसे तुम टार्च लिए होते हो न और किसी के चेहरे की तरफ टार्च को फेर दो, तो सारे टार्च की रोशनी उसके चेहरे पर पड़ने लगे। ऐसा बुद्ध ने अपने भीतर की टार्च को उस युवक की तरफ घुमाया होगा। रोशनी दौड़ी उस युवक की तरफ। उस रोशनी के संघात में उसके भीतर सोयी हुई प्रज्ञा जैसे चौंककर जग गयी।

जैसे वह नींद से जागा, ऐसे चौंककर खड़ा हो गया। और तब उसे भगवान दिखायी पड़े।

भगवान कब दिखायी पड़े? जब वह अपनी होने वाली पत्नी को देखने में असमर्थ हो गया। यह बात बड़ी समझने जैसी है।

तुम्हारी आंखें सीमित हैं। या तो तुम कामना देखो, या आत्मा देखो। या तो तुम काम देखो, या राम देखो। दोनों एक साथ न देख सकोगे। कभी तुमने रुपए का सिक्का हाथ में रखकर देखा? तुम दोनों पहलू एक साथ नहीं देख सकते। या तो उलटा रखो सिक्का, तो उसकी पीठ देखो, या सीधा रखो सिक्का, तो उसका मुंह देखो। लेकिन तुम दोनों पहलू एक साथ नहीं देख सकते। सिक्का तो छोटी सी चीज है, फिर भी दोनों पहलू एक साथ देखने का कोई उपाय नहीं है। एक ही देख सकते हो। ऐसा ही राम और काम। एक तरफ नजर लगी हो तो दूसरी तरफ नजर बंद हो जाती है। दूसरी तरफ नजर जाए तो इस तरफ बंद हो जाती है।

तो जैसे ही बुद्ध ने कुछ किया--कुछ किया यानी अपने प्रकाश की धारा को उस युवक की तरफ फेंका, एक सेतु बन गया प्रकाश का, नहा गया होगा वह युवक उस प्रकाश में--अचानक उसे अपनी होने वाली पत्नी दिखायी न पड़ी, कहां गयी? जो है वही थोड़े ही तुम्हें दिखायी पड़ता है। जो तुम देखना चाहते हो, वही दिखायी पड़ता है। तुमने ख्याल किया, तुम क्या देखना चाहते हो वही दिखायी पड़ता है। तुम्हारा संसार सीमित है। तुम्हारा संसार तुम्हारा चुनाव है।

वैज्ञानिक कहते हैं कि जितनी घटनाएं तुम्हारे पास घट रही हैं, उसमें से केवल दो प्रतिशत तुम देखते हो, अट्ठानबे प्रतिशत तुम देखते ही नहीं। अब समझो कि एक सुंदर युवती आती है। तुम पूरी युवती देखते हो? नहीं देखते। तुम कुछ देखते हो, कुछ छोड़ देते हो। अगर पीछे कोई तुमसे याद करने को कहे कि तुमने क्या देखा, तो

तुम शायद थोड़ा-बहुत स्मरण कर पाओगे। शायद तुमसे कोई पूछे कि उसके बाल का रंग क्या था, तो तुम शायद याद न कर पाओ। उसकी आंखों का रंग क्या था, तो शायद तुम याद न कर पाओ। लेकिन कुछ तुम याद कर पाओगे। जो तुम याद कर पाओगे वही तुमने देखा था।

तुम्हें इस बगीचे में से गुजारा जाए और बाद में तुमसे पूछा जाए, क्या देखा? तो हर आदमी अलग-अलग बातें याद करेगा। जो जिसने देखा होगा वही तो याद करेगा न! बगीचे से सब एक ही गुजरे थे। हो सकता था कोई फूलों का पारखी गुजरा हो। तो वह फूलों को देखेगा। और किसी लकड़हारे को गुजारकर ले गए, तो वह सोचेगा कि कौन-कौन से झाड़ काटकर लकड़ी बेची जा सकती है! उसकी याददाश्त उनकी ही होगी। और अगर तुम किसी चित्रकार को ले गए, तो उसने रंगों का अनूठा जमघट देखा होगा। हरे रंग में भी हजार हरे रंग देखे होंगे। एक ही हरा रंग थोड़े ही है, जरा गौर से देखो। हर वृक्ष अलग ढंग से हरा है। लेकिन कोई पेंटर, कोई चित्रकार ही अलग-अलग हरे रंग देख सकता है। उसे शायद कुछ और दिखायी ही न पड़े। अगर तुम किसी वनस्पतिशास्त्री को ले आओ, तो वह नाम ही नाम देखेगा। लैटिन और ग्रीक नाम उसको याद आएंगे। कि कौन सा वृक्ष किस जाति का है, कहां से आता है, किस देश से आता है। अगर गुलाब का पौधा वह देखेगा तो सोचेगा, ईरान से आता है।

यह तुम शायद सोचोगे ही नहीं, क्योंकि तुम्हें ईरान से क्या लेना-देना है! गुलाब का ईरान से क्या लेना-देना! लेकिन वनस्पतिशास्त्री तत्क्षण सोचेगा, ईरान से आता है। इसीलिए तो हिंदुओं के पास गुलाब के लिए कोई नाम नहीं है। गुलाब तो ईरानी नाम है। गुल आब। हिंदी में तो कोई नाम ही नहीं है गुलाब के लिए। हो भी नहीं सकता, क्योंकि यह पौधा ही हमारा नहीं है। यह पौधा ही उधार है। मगर, सबको यह बात दिखायी न पड़ेगी।

हम वही देखते हैं, जो देखने के लिए हम तैयार हैं।

जैसे ही बुद्ध की रोशनी उस युवक पर पड़ी होगी, उसकी चेतना में एक क्रांति घट गयी--क्षणभर को सही, लेकिन उस धक्के में वह घूम गया। उसका चाक पूरा घूम गया। कहां से कहां हो गया। अभी पत्नी ही दिखायी पड़ती थी, अब पत्नी दिखायी न पड़ी। और जब पत्नी न दिखायी पड़ी, तब जैसे नींद से जागा। उसे भगवान दिखायी पड़े। वह अपूर्व रूप भगवान का, वह अपूर्व ज्योति, वह दिव्यता, वह शांति! क्षणभर को बारात खो गयी होगी, विवाह खो गया होगा, मंडप खो गया होगा। सब खो गया होगा। क्षणभर को वह किसी और ही लोक में प्रविष्ट हो गया।

और तब उसे दिखायी पड़ा भिक्षु-संघ।

जब भगवान दिखायी पड़े, तो उसे दिखायी पड़े ये लोग जो उनके दीवाने हैं। तब उसे दिखायी पड़े ये लोग जिनमें भी थोड़ी-थोड़ी किरण उनकी है, भगवान की है। जिनमें थोड़ा-थोड़ा स्वाद उनका है। जब मूलस्रोत दिखायी पड़ा, तो ये दिखायी पड़े। जब सूरज दिखायी पड़ा तो ये छोटे-छोटे दीए भी दिखायी पड़े। जब सूरज ही न दिखता हो तो दीए क्या खाक दिखायी पड़ेंगे। सूरज दिखा, रोशनी पहचान में आयी, तो और भी रोशन दीए समझ में आए। तब उसे भिक्षु-संघ दिखायी पड़ा।

संसार का धुआं जहां नहीं है, वहीं तो सत्य के दर्शन होते हैं। और वासना जहां नहीं है, वहीं तो भगवत्ता के शिखर प्रगट होते हैं।

उसे चौकन्ना और विस्मय में डूबा देख भगवान ने कहा, कुमार! रागाग्नि के समान दूसरी कोई अग्नि नहीं।

यह भी खूब उपदेश हुआ किसी के विवाह पर! लेकिन बुद्धपुरुष अटपटी बातें कहते सदा पाए गए हैं। यह भी कोई बात हुई! लेकिन बुद्ध तो वही कहेंगे, जो है, जैसा है। और यह मौका सुंदर है। अभी जल रही हैं लपटें

तेज। जब तुम्हारे घर में आग लगी हो प्रखर और सब जल रहा हो, तब तुम्हें जगाना ज्यादा आसान है। जब आग बुझी-बुझी हो जाए, राख ही राख रह जाए, तब जगाना मुश्किल है।

इस घड़ी में तो आग ही आग है। सुहागरात के बाद लपटें इस तरह की न रह जाएंगी। हनीमून के बाद तो अक्सर विवाह समाप्त हो जाते हैं, बचता क्या है? खोल रह जाती, राख रह जाती, बुझे दीए रह जाते। फिर आदमी ढोता है उनको। जब आग प्रगाढ़ता से जल रही है और रोआं-रोआं उसमें जल रहा है, तब जागरण आसान है। तब चोट करनी आसान है। बुद्ध ने ठीक ही अवसर चुना है। कितना ही अटपटा लगे, लेकिन ठीक अवसर चुना है।

रागाग्नि के समान दूसरी कोई अग्नि नहीं, कुमार! वही है नर्क, वही है निद्रा। जागो, प्रिय जागो! और जैसे शरीर उठ बैठा है, वैसे ही तुम भी उठ जाओ, उत्तिष्ठित हो जाओ।

अभी शरीर चौंककर उठा है। अब ऐसे ही तुम्हारा सूक्ष्म मन भी चौंककर उठे। स्थूल और सूक्ष्म के भीतर छिपा हुआ परम सूक्ष्म भी चौंककर उठे।

उठो। उठने में ही मनुष्यता की शुरुआत है।

जो ऐसा भीतर उत्तिष्ठित नहीं हो गया है, वह मनुष्य जैसा दिखता भर है, मनुष्य है नहीं। अभी मनुष्यता की शुरुआत नहीं हुई।

और तब उन्होंने यह गाथा कही--

नत्थि रागसमो अग्गि।

"राग के समान आग नहीं।"

नत्थि दोससमो कलि।

"द्वेष के समान मैल नहीं।"

नत्थि खंधसमा दुक्खा।

"पंचस्कंधों के समान दुख नहीं।"

नत्थि संति परं सुखं।

"और शांति से बढ़कर सुख नहीं।"

तू किस सुख की बात सोच रहा है? हम देखकर कहते हैं कि वहां सुख नहीं है। हम अनुभव से गुजरकर कहते हैं, वहां सुख नहीं है। तू जिस तरफ दौड़ा जा रहा है, हम भी दौड़े और देख इन भिक्षुओं को, ये भी दौड़े हैं और देख अनंतकाल में अनंत लोग दौड़े हैं, लेकिन सभी खाली हाथ लौट आए हैं। सुख चाहता है न! लेकिन दिशा तेरी गलत है।

पंचस्कंध बुद्धों का विशिष्ट शब्द है। बुद्ध कहते हैं, मनुष्य का व्यक्तित्व बना है दो चीजों से--नाम, रूप। रूप यानी देह। नाम यानी मन। रूप यानी स्थूल, नाम यानी सूक्ष्म। देह तो एक है, स्थूल देह तो एक है, मन के चार रूप हैं। उन चार के नाम हैं--वेदना, संज्ञा, संस्कार, विज्ञान। ऐसे सब मिलाकर पांच। इन पांच से मनुष्य का व्यक्तित्व बना है। और इन पांच में ही जो जीता है, बुद्ध कहते हैं, पंचस्कंधों के समान दुख नहीं। स्वाद में जी रहे हैं, धन इकट्ठा करने में जी रहे हैं, पद में जी रहे हैं, राग में जी रहे हैं, आसक्ति में जी रहे हैं; देह को बचाने में लगे हैं कि मर न जाए, बुढ़ापा न आ जाए, साजने-संवारने में लगे हैं--इस तरह जो जी रहा है पंचस्कंधों में--या तो मन की वासनाएं हैं, पद की, महत्वाकांक्षाओं की, या शरीर की वासनाएं हैं, इन वासनाओं में जो जी रहा है, वह दुख में जीता है। अशांति में जीता है।

"और शांति से बढ़कर कोई सुख नहीं है।"

वह दुख ही दुख में जीता है, इसलिए इस तरह के जीवन की दिशा नर्क की दिशा है।

दूसरा सूत्र--

एक समय भगवान पांच सौ भिक्षुओं के साथ आलवी नगर आए। आलवी नगरवासियों ने भगवान को भोजन के लिए निमंत्रित किया। उस दिन आलवी नगर का एक निर्धन उपासक भी भगवान के आगमन को सुनकर धर्म-श्रवण के लिए मन किया। किंतु प्रातः ही उस गरीब के दो बैलों में से एक कहीं चला गया। सो उसे बैल को खोजने जाना पड़ा। बिना कुछ खाए-पीए ही दोपहर तक वह बैल को खोजता रहा। बैल के मिलते ही वह भूखा-प्यासा ही बुद्ध के दर्शन को पहुंच गया। उनके चरणों में झुककर धर्म-श्रवण के लिए आतुर हो पास ही बैठ गया।

लेकिन बुद्ध ने पहले भोजन बुलाया। उसके बहुत मना करने पर भी पहले उन्होंने जिद्द की और उसे भोजन कराया। फिर उपदेश की दो बातें कहीं। वह उन थोड़ी सी बातों को सुनकर ही स्रोतापत्ति-फल को उपलब्ध हो गया। भगवान के द्वारा किसी को भोजन कराने की यह घटना बिल्कुल नयी थी। ऐसा पहले कभी उन्होंने किया न था--और न फिर पीछे कभी किया। तो बिजली की भांति भिक्षु-संघ में चर्चा का विषय बन गयी। अंततः भिक्षुओं ने भगवान से जिज्ञासा की। तो उन्होंने कहा, भूखे पेट धर्म नहीं। भूखे पेट धर्म समझा जा सकता नहीं। भिक्षुओ, भूख के समान और कोई रोग नहीं है।

और तब उन्होंने यह गाथा कही--

जिघच्छा परमा रोगा संखारा परमा दुखा।
एतं ाꣳत्वा यथाभूतं निब्बानं परमं सुखं।।

"भूख सबसे बड़ा रोग है, संस्कार सबसे बड़े दुख हैं। ऐसा यथार्थ जो जानता है, वही जानता है कि निर्वाण सबसे बड़ा सुख है।"

इस बात को समझना।

भूख को सबसे बड़ा रोग कहा बुद्ध ने। क्यों? क्योंकि जब भूख प्रगाढ़ हो, पेट भरा न हो, तो सारी चेतना पेट के इर्द-गिर्द ही घूमती है। जब शरीर भूखा हो तो चेतना ऊंचाइयों पर उड़ ही नहीं सकती। शरीर के आसपास ही मंडराती है।

एक सत्य तुमने देखा होगा, पैर में कांटा चुभ जाए तो फिर चेतना वहीं-वहीं घूमती है न! एक दांत टूट जाए तो चेतना वहीं-वहीं घूमती है न! सिर में दर्द हो तो चेतना वहीं-वहीं घूमती है न! जहां पीड़ा हो, चेतना वहीं रुक जाती है।

इसलिए हमारे पास जो शब्द है--वेदना, वह बहुत अदभुत है। वेदना के दो अर्थ होते हैं, बोध और दुख। वेदना बना है विद से, जिससे वेद बना है। इसलिए उसका एक अर्थ होता है, बोध, ज्ञान। और वेदना का दूसरा अर्थ होता है, दुख, पीड़ा। एक ही शब्द के ये दो अर्थ और बड़े अजीब से! जिनका कोई तालमेल नहीं। लेकिन तालमेल है।

जब दुख होता है, तो वहीं सारा बोध संगृहीत हो जाता है। जहां दुख है, वहीं बोध संगृहीत हो जाता है। फिर दुख से हटना मुश्किल हो जाता है। अब जो आदमी भूखा है, उसके लिए शरीर ही शरीर दिखायी पड़ता है। कहां आत्मा की बातें! हम कहते हैं न--भूखे भजन न होहिं गुपाला। अब एक आदमी भूखा है, अगर भगवान की प्रार्थना भी करे, तो कुछ होगा नहीं। सारी प्रार्थना पर भूख छा जाएगी।

इसलिए मैं निरंतर कहता हूं कि दरिद्रता के कारण दुनिया में धर्म बढ़ नहीं पाता। केवल समृद्ध समाज ही धार्मिक हो सकते हैं। और बुद्ध के समय में, महावीर के समय में इस देश ने बड़ी ऊंचाई ली, क्योंकि देश बड़ा समृद्ध था।

तुम थोड़ा सोचो, महावीर चालीस हजार भिक्षुओं को अपने साथ लेकर घूमते थे। हर गांव की इतनी संभावना थी, क्षमता थी कि चालीस हजार भिक्षुओं को खिला सके। बुद्ध भी पचास हजार भिक्षुओं को लेकर घूमते थे। गांव-गांव की इतनी क्षमता थी कि पचास हजार भिक्षुओं को खिला सके। कभी तीन मास, चार मास वर्षा में एक जगह भी रुकते थे। तो पचास हजार भिक्षुओं को खिलाना, क्षमता की बात थी। आज तो पूरा गांव भी पांच भिक्षुओं को खिलाने में समर्थ नहीं रह गया है। संपन्न था देश, खूब समृद्ध था। सोने की चिड़िया ऐसे झूठे ही नहीं कहा जाता था! बुद्ध के समय में इस देश ने सबसे ऊंचा शिखर देखा समृद्धि का। उस समृद्धि के शिखर पर ही बुद्ध और महावीर प्रगट हुए। फिर दुबारा बुद्ध और महावीर के प्रगट होने का उपाय न हुआ।

इसलिए यह कुछ आश्चर्य की बात नहीं है कि आज अमरीका में धर्म के संबंध में प्रगाढ़ रस है। होगा ही। होना ही चाहिए। जहां समृद्धि है, जहां पेट पूरी तरह भर गया है, वहां आत्मा का खालीपन दिखायी पड़ने लगता है। इनमें सीढ़ी दर सीढ़ी संबंध है। जिस आदमी ने नींव भर ली मकान की वही तो दीवालें उठाएगा न। नींव ही नहीं भरी तो दीवाल कैसे उठेगी? और जिसने दीवाल उठा ली वह छप्पर रखेगा। दीवाल ही नहीं उठी तो छप्पर कैसे रखेगा? और छप्पर उठ गया तो फिर स्वर्ण का कलश, स्वर्ण-कलश चढ़ाएगा।

धर्म तो स्वर्ण-कलश है। धर्म तो आखिरी ऊंचाई है। उसके पार तो फिर कुछ भी नहीं है। जिसने नीचाइयों की सुविधाएं अभी नहीं जुटायीं, वह ऊंचाइयों के सपने भला देखे, लेकिन सत्य में उन्हें उपलब्ध न हो सकेगा।

इसलिए मैं निरंतर कहता हूं कि गरीब समाज धार्मिक नहीं हो सकता। यह मैं नहीं कह रहा हूं कि कोई गरीब व्यक्ति धार्मिक नहीं हो सकता। गरीब व्यक्ति चेष्टा करके अपवाद हो सकता है। लेकिन गरीब समाज धार्मिक नहीं हो सकता है। मैं यह भी नहीं कह रहा हूं कि समृद्ध समाज अनिवार्य रूप से धार्मिक हो जाएगा, लेकिन समृद्ध समाज की धार्मिक होने की संभावना है। मैं यह नहीं कह रहा हूं कि हर समृद्ध व्यक्ति धार्मिक हो जाएगा। लेकिन समृद्ध व्यक्ति की धर्म की तरफ उत्सुकता बढ़ने की ज्यादा संभावना है बजाय असमृद्ध व्यक्ति के।

हमारे भीतर तीन तल हैं--शरीर की जरूरतें हैं, फिर मन की जरूरतें हैं, फिर आत्मा की जरूरतें हैं। शरीर की जरूरतें हैं--रोटी, रोजी, कपड़ा, मकान। फिर मन की जरूरतें हैं--संगीत, साहित्य, कला। अब जिसका भूख

से भरा पेट है, वह शेक्सपियर पढ़ेगा? कैसे पढ़ेगा! कालिदास को समझेगा? कैसे समझेगा! शास्त्रीय संगीत सुन पाएगा? इधर पेट में भूख कचोटती होगी, शास्त्रीय संगीत नहीं समझ पाएगा, न सुन पाएगा। मन की जरूरतें। जब मन की जरूरतें भी भर जाती हैं, शास्त्रीय संगीत में भी अब कुछ नहीं दिखायी पड़ता, वह संगीत भी चुक गया, अब किसी और बड़े संगीत की खोज शुरू होती है, तब ध्यान। एक ऐसे संगीत की खोज शुरू होती है जहां वाद्य की भी जरूरत नहीं रह जाती। एक ऐसे संगीत की खोज शुरू होती है जो भीतर बज ही रहा है, जिसको बजाना नहीं पड़ता--अनाहत नाद--जो अपने से बज रहा है--ओंकार--तब आत्मा की जरूरतें शुरू होती हैं।

तो बुद्ध ने ठीक कहा कि "भूख सबसे बड़ा रोग है। संस्कार सबसे बड़े दुख हैं। ऐसा यथार्थ जो जानता है वही जानता है कि निर्वाण सबसे बड़ा सुख है।"

उन्होंने उस भूखे आदमी को भोजन कराया। लेकिन यह बात एक ही दफा घटी है, यह भी ख्याल रखने जैसी बात है। ऐसा बुद्ध ने बार-बार नहीं किया। क्योंकि यह भूखा आदमी सिर्फ भूखा आदमी ही नहीं था, इस भूखे आदमी के भीतर बड़ी मुमुक्षा थी। यह बड़ी प्रगाढ़ता से आकांक्षा कर रहा था परमात्मा के खोज की, सत्य के खोज की--या जो भी नाम दो। यह सिर्फ भूखा होता तो बुद्ध को इसमें कोई विशेष उत्सुकता नहीं थी। उत्सुकता इसलिए थी कि इसके भीतर एक और बड़ी भूख थी जो इस छोटी भूख के कारण दबी पड़ी थी। इसके भीतर एक बड़ी भूख का अंकुर फूट रहा था, जो नहीं फूट पा रहा था, क्योंकि यह छोटी भूख इसे खाए जा रही थी।

यह सुबह ही से बुद्ध का ही स्मरण करता घूम रहा था। खोज रहा था बैल को, स्मरण कर रहा था बुद्ध का। इतनी जल्दी थी इसे कि घर से बिना खाए-पीए निकल पड़ा था कि जल्दी-जल्दी बैल को खोजकर बुद्ध के पास पहुंच जाऊं। फिर इतनी जल्दी थी, इतनी आतुरता थी कि बैल मिल गया तो उसे किसी तरह बांध-बूंधकर खेत-खलिहान में, भागा! घर नहीं गया कि दो रोटी खा ले। भागा! कि पहले बुद्ध को सुन लूं। इसकी धर्म की प्यास निश्चित प्रगाढ़ रही होगी।

तुम तो छोटे-छोटे कारणों से चूक जाओ। कभी ध्यान नहीं करते, क्योंकि कहते हो कि आज जरा शरीर स्वस्थ नहीं है। कभी कहते हो, आज ध्यान कैसे करें, घर में मेहमान आए हैं। कभी कहते हो, आज ध्यान कैसे करें, आज जरा दफ्तर में थक गए। आज कैसे ध्यान करें, आज कैसे ध्यान करें, तुम बहाने खोजते रहते हो।

इस आदमी ने बहाना नहीं खोजा। इसके पास बहाने काफी थे--बैल खो गया, अब कहां बुद्ध के पास जाएं! बैल खोजें कि बुद्ध को खोजें! बात छोड़ देता। तुम होते तो बात ही छोड़ दिए होते। फिर बैल भी मिल गया होता तो कहता, अब दोपहरीभर थका-मांदा हूं, घर थोड़ा भोजन करूं, विश्राम करूं, फिर देख लेंगे, ऐसी जल्दी क्या है! और बुद्ध कोई भागे थोड़े ही जाते हैं!

इसकी बड़ी प्रगाढ़ आकांक्षा रही होगी कि भूखा ही आ गया। इसका कुम्हलाया हुआ चेहरा, इसका भूखा पेट, यह थका-मांदा जब बुद्ध के चरणों में झुका होगा तो उन्होंने देखा होगा--इसका शरीर ही भूखा नहीं है, इसकी आत्मा भी भूखी है। यह सच में ही... तो उन्होंने बड़ी जिद्द की कि तू पहले भोजन कर। उन्होंने खुद भोजन बुलाया। अब बुद्ध के पास कहां भोजन! किसी को दौड़ाया कि जल्दी गांव से भोजन लेकर आओ। भिक्षुओं में चर्चा की बात उठ ही गयी होगी कि यह कौन विशिष्ट आदमी आ गया, एक गंवार सा किसान है! बुद्ध इसमें क्या देख रहे हैं?

जो कभी-कभी तुम्हें नहीं दिखायी पड़ता, वह बुद्धों को दिखायी पड़ता है। क्योंकि तुम्हें तो हीरे तभी दिखायी पड़ते हैं, जब जौहरी उन्हें साफ-सुथरा करके, निखारकर, पालिश करके रख देते हैं, तब दिखायी पड़ते हैं। बुद्धों को तो हीरे तब दिखायी पड़ जाते हैं जब वे पत्थर की तरह पड़े हैं। जब उनमें कोई चमक नहीं है। यह एक अनगढ़ हीरा था। यह चमक सकता था। यह पत्थर नहीं था।

बुद्ध ने उसे भोजन कराया पहले, फिर उसे दो शब्द कहे, ज्यादा नहीं, और कथा कहती है कि उन दो शब्दों को, उन थोड़ी सी बातों को सुनकर ही वह स्रोतापत्ति-फल को उपलब्ध हो गया।

स्रोतापत्ति-फल का अर्थ होता है, जो व्यक्ति बुद्ध की धारा में प्रविष्ट हो गया। स्रोतापन्न हो गया। जो बुद्ध की चेतना में प्रविष्ट हो गया। जो नदी में उतर गया। किनारे पर खड़ा था, उसने कहा, ठीक, अब मैं आता हूं, अब चलता हूं सागर की तरफ। स्रोतापत्ति। यह बुद्ध की साधना पद्धति में सबसे महत्वपूर्ण फल है। क्योंकि फिर शेष सब इसके बाद ही होगा। जो धारा में ही नहीं उतरा है वह तो सागर कब-कैसे पहुंचेगा? उसके तो पहुंचने का कोई उपाय नहीं है।

वहां ऐसे लोग थे जो वर्षों से बुद्ध को सुन रहे थे और अभी स्रोतापत्ति-फल को उपलब्ध नहीं हुए थे। अभी किनारे ही पर खड़े सोच-विचारकर रहे थे, दुविधा में पड़े थे--करें कि न करें? जंचती भी है बात कुछ, नहीं भी जंचती है बात कुछ। इसने कुछ सोच-विचार न किया। इसने तो बुद्ध के दो शब्द सुने और इसने कहा, बस काफी है। डूब गया। स्रोतापत्ति-फल का अर्थ होता है, डूब गया, डुबकी ले ली। बुद्धमय हो गया।

भिक्षुओं ने भगवान से जिज्ञासा की कि बात क्या है? ऐसा सम्मान आपने कभी किसी को दिया नहीं। भोजन करवाने की आपने कभी किसी को चेष्टा नहीं की। अक्सर तो ऐसा होता है कि लोगों को आप समझाते हैं, उपवास करो। इस आदमी को उलटा भोजन करवाया।

उपवास का सूत्र भी आगे आता है।

तीसरा सूत्र, उसकी कथा--

सम्राट प्रसेनजित भोजन-भट्ट था। उसकी सारी आत्मा जैसे जिह्वा में थी। खाना, खाना और खाना। और तब स्वभावतः सोना, सोना और सोना। इतना भोजन कर लेता कि सदा बीमार रहता। इतना भोजन कर लेता कि सदा चिकित्सक उसके पीछे सेवा में लगे रहते। देह भी स्थूल हो गयी। देह की आभा और कांति भी खो गयी। एक मुर्दा लाश की तरह पड़ा रहता। इतना भोजन कर लेता!

बुद्ध गांव में आए तो प्रसेनजित उन्हें सुनने गया।

जाना पड़ा होगा। सारा गांव जा रहा है और गांव का राजा न जाए तो लोग क्या कहेंगे? लोग समझेंगे, यह अधार्मिक है। उन दिनों राजाओं को दिखाना पड़ता था कि वे धार्मिक हैं। नहीं तो उनकी प्रतिष्ठा चूकती थी, नुकसान होता था। अगर लोगों को पता चल जाए कि राजा अधार्मिक है, तो राजा का सम्मान कम हो जाता था। तो गया होगा। जाना पड़ा होगा।

लेकिन जाने के पहले--इतनी देर, बुद्ध को पता नहीं घंटाभर सुनना पड़े, डेढ़ घंटा सुनना पड़े, कितनी देर बुद्ध बोलें, इतनी देर वहां रहना पड़े--तो उसने डटकर भोजन कर लिया।

इतनी देर भोजन करने को मिलेगा नहीं। खूब डटकर भोजन करके गया।

राजा था, तो सामने ही बैठा बुद्ध के वचन सुनने को। और जैसे ही बैठा वैसे ही झपकी लेने लगा।

फुरसत कहां थी! न बुद्ध को सुनने आया था, न सुनने की स्थिति थी। इतना खाकर आ गया था कि डोलने लगा। और तो मस्ती में डोल रहे थे, वह नींद में डोलने लगा।

बुद्ध ने यह देखा। उन्हें उस पर बड़ी दया आयी। उसकी झपकियां देखीं और बुद्ध ने कहा, महाराज, क्या ऐसे ही जीवन गंवा देना है? जागना नहीं है? बहुत गयी, थोड़ी बची है, अब होश सम्हालो। भोजन जीवन नहीं है। इस परम अवसर को ऐसे ही मत गंवा दो। प्रसेनजित ने कहा, भंते, सब दोष भोजन का है, मानता हूं। उसके कारण ही मेरा स्वास्थ्य भी सदा खराब रहता है। तंद्रा भी बनी रहती है। प्रमाद और आलस्य भी घेरे रहता है। और इसके बाहर होने का कोई मार्ग भी नहीं दिखायी पड़ता। सब दोष भोजन का है, भगवान!

बुद्ध ने उससे कहा, पागल! दोष भोजन का कैसे हो सकता है? अपने दोष को भोजन पर टाल रहा है! भोजन जबरदस्ती तो तेरे ऊपर सवार नहीं हो जाता।

इसे ख्याल रखना। हम भी यही करते हैं। हम दोष टालते हैं।

मुल्ला नसरुद्दीन पकड़ा गया अदालत में, क्योंकि उसने एक कांस्टेबिल की पिटाई कर दी। और जब झूमता, नशे में डोलता अदालत में लाया गया, तो मजिस्ट्रेट ने कहा कि नसरुद्दीन, कितनी बार तुम्हें समझाया है, यह शराब छोड़ो। उसने कहा, हुजूर, सब दोष शराब का है, इसी शराब की वजह से यह गरीब कांस्टेबिल पिट गया है। सब दोष शराब का है! आप बिल्कुल ठीक कहते हैं।

दोष शराब का कैसे हो सकता है? लेकिन हम दोष टालते हैं। कोई आदमी दोष अपने पर नहीं लेता। और जो अपने पर ले लेता है, उसी के जीवन में क्रांति घट जाती है।

उसने बुद्ध से कहा, भगवान, भंते, सब दोष भोजन का है। इसके कारण ही सब उलझन हो रही है। इससे बाहर आने का कोई उपाय भी नहीं दिखता है।

बुद्ध ने कहा, दोष भोजन का कैसे हो सकता है? दोष बोध का है। तुम्हें पता भी है कि स्वास्थ्य खराब हो रहा है, तुम्हें पता है आलस्य आ रहा है, तुम्हें पता है जीवन व्यर्थ जा रहा है, लेकिन यह बोध तुम भोजन करते वक्त सम्हाल नहीं पाते। यह बोध भोजन कर लेने के बाद तुम्हारे पास होता है, लेकिन जब भोजन करते हो तब चूक जाता है।

तो प्रसेनजित ने पूछा, मैं क्या करूं? बुद्ध ने कहा, तुमसे शायद न भी हो सके, मैं देखता हूं तुम बहुत जड़ हो गए हो। तो प्रसेनजित के पास उसका अंगरक्षक खड़ा था। अंगरक्षक का नाम था सुदर्शन। तो बुद्ध ने कहा, सुदर्शन, तू अंगरक्षक कैसा! यह अंग तो सब खराब हुआ जा रहा है! और तू अंगरक्षक है! तू खाक सेवा कर रहा है अपने सम्राट की! तू याद रख! और जब प्रसेनजित भोजन को बैठें, तो बिल्कुल सामने खड़ा हो जा। खड़ा ही रह सामने। और याद दिलाता रह कि ध्यान रखो, स्मरण करो, बुद्ध ने क्या कहा था। तू चूकना ही मत, यह नाराज भी होगा, यह तुझे हटाएगा भी, मगर तू हटना ही मत। तू अंगरक्षक है। तू अपना काम पूरा कर। यह बात सुदर्शन को भी जमी कि अंगरक्षक तो है ही। और उसकी आंखों के सामने यह अंग सब खराब हुआ जा रहा है, यह देह नष्ट हुई जा रही है। तो वह खड़ा रहने लगा।

वह बड़ा हिम्मत का आदमी रहा होगा। क्योंकि प्रसेनजित बहुत नाराज होता जब उसे बीच में याद दिलायी जाती। जब वह ज्यादा खाने लगता, वह कहता, याद करो, याद करो, भगवान ने क्या कहा है? तो वह कहता, बंद कर बकवास! कहां के भगवान! फिर सोचेंगे। मगर वह मानता ही नहीं, वह याद दिलाए ही जाता, दिलाए ही जाता। धीरे-धीरे इसका परिणाम होना शुरू हुआ।

रसरी आवत जात है, सिल पर परत निसान

पड़ने लगा निशान।

करत करत अभ्यास के जड़मति होत सुजान

थोड़ा-थोड़ा बोध जगने लगा। नाराज भी होता था, फिर क्षमा भी मांग लेता सुदर्शन से कि नहीं, तेरी क्या भूल! फिर सुदर्शन ने कहा कि देखिए, मुझे भगवान को उत्तर देना पड़ेगा। और वहां से कई दफे खबर आ चुकी है कि सुदर्शन खबर दे! तो प्रसेनजित और भी डरा।

तीन महीने भगवान उस नगर में रुके थे। प्रसेनजित जब दुबारा आया, तो वह आदमी ही दूसरा था। उसके चेहरे पर आभा लौट आयी थी। तेजस्विता आ गयी थी। उसने भगवान का बहुत धन्यवाद किया। उसने सुदर्शन का भी बहुत धन्यवाद किया। सुदर्शन के साथ अपनी बेटी का विवाह किया। उसे आधा राज्य दे दिया।

जब दुबारा वह भगवान के पास आया था रूपांतरित होकर, अत्यंत अनुग्रह से भरा हुआ, तब भगवान ने यह गाथा कही थी--

आरोग्य परमा लाभा संतुट्ठी परमं धनं।

विक्सास परमा ा ंति निब्बानं परमं सुखं।।

"आरोग्य सबसे बड़ा लाभ है। संतोष सबसे बड़ा धन है। विश्वास सबसे बड़ा बंधु है और निर्वाण सबसे बड़ा सुख है।"

आरोग्य शब्द बड़ा अदभुत है। अंग्रेजी के हेल्थ शब्द में वह बात नहीं। आरोग्य का अर्थ है, सारे रोगों से मुक्ति। इसमें मन के रोग सम्मिलित हैं। देह के रोग सम्मिलित हैं। इसमें आत्मा के रोग सम्मिलित हैं। आरोग्य शब्द विराट है। तभी तुम कहे जा सकते हो आरोग्य को उपलब्ध हुए, जब तुम्हारी सारी उपाधियां खो जाएं। जब तुम्हारे ऊपर कोई सीमा न रह जाए।

"आरोग्य सबसे बड़ा लाभ है।"

तो बुद्ध तो बार-बार कहते हैं कि मैं तो चिकित्सक हूं, वैद्य हूं, तुम्हें आरोग्य देने आया हूं, सिद्धांत देने नहीं, दर्शनशास्त्र देने नहीं।

आरोग्य परमा लाभा... ।

परम लाभ कहा आरोग्य को। तो निश्चित ही यह शारीरिक स्वास्थ्य ही नहीं होगा। मानसिक, आध्यात्मिक सभी तलों पर जब व्यक्ति रोगों से मुक्त हो जाता है। और बड़े से बड़ा रोग है, मूर्च्छा। बड़े से बड़ा रोग है, बेहोशी।

आरोग्य परमा लाभा संतुट्ठी परमं धनं।

और जो आरोग्य को उपलब्ध हो जाता है वह संतोष को भी उपलब्ध हो जाता है। क्योंकि जहां आरोग्य है, वहां संतोष है। जहां कोई रोग न रहा, वहां कैसा असंतोष। वहां तो छोटे से पर्याप्त मिलने लगता है। थोड़ा सा भोजन और खूब तृप्ति हो जाती है। थोड़ा सा मिल जाए, बहुत मिल जाता है। क्षुद्र में विराट मिलने लगता है।

"संतोष सबसे बड़ा धन। विश्वास सबसे बड़ा बंधु। और निर्वाण सबसे बड़ा सुख।"

निर्वाण का अर्थ होता है, शून्य भाव। पहले रोग मिटते हैं। तो फिर धीरे-धीरे रोगों के सहारे जो अहंकार जीता है वह भी विसर्जित हो जाता है। सभी रोगों का केंद्र है अहंकार। जब सब रोग हट जाते हैं तो धीरे-धीरे अहंकार भी गिर जाता है। जब खंभे न रहे सम्हालने को तो अहंकार का भवन गिर जाता है। उस घड़ी जो अवस्था बनती, उसको बुद्ध निर्वाण कहते हैं। निर्वाण सबसे बड़ा सुख।

आखिरी सूत्र--

पविवेकं रसं पीत्वा रसं उपसमस्स च।

निद्दरो होति निप्पापो धम्मपीतिरसं पिवं।।

तस्माहिः

धीरंच पंचंच बहुस्सुतं च धोरय्हसीलं वतवंतमरियं।

तं तादिसं सप्पुरिसं सुमेधं भजेथ नक्खत्तपथं" व चंदिमा।।

एक दिन वैशाली में विहार करते हुए भगवान ने भिक्षुओं से कहा--भिक्षुओ, सावधान! मैं आज से चार माह बाद परिनिवृत्त हो जाऊंगा। मेरी घड़ी करीब आ रही है। मेरे विदा का क्षण निकट आ रहा है। इसलिए जो करने योग्य हो, करो। देर मत करो।

ऐसी बात सुन भिक्षुओं में बड़ा भय उत्पन्न हो गया। स्वाभाविक। भिक्षु-संघ महाविषाद में डूब गया। स्वाभाविक। जैसे अचानक अमावस हो गयी। भिक्षु रोने लगे, छाती पीटने लगे। झुंड के झुंड भिक्षुओं के इकट्ठे होने लगे और सोचने लगे और रोने लगे और कहने लगे, अब क्या होगा! अब क्या करेंगे!

लेकिन एक भिक्षु थे, तिष्यस्थविर उनका नाम था। वे न तो रोए और न किसी से कुछ बात ही करते देखे गए। उन्होंने सोचा, शास्ता चार माह के बाद परिनिवृत्त होंगे और मैं अभी तक अवीतराग हूं। तो शास्ता के रहते ही मुझे अर्हतत्व पा लेना चाहिए। और ऐसा सोच वे मौन हो गए। ध्यान में ही समस्त शक्ति उंडेलने लगे। उन्हें अचानक चुप हो गया देख भिक्षु उनसे पूछते, आवुस, आपको क्या हो गया है? क्या भगवान के जाने की बात से इतना सदमा पहुंचा? क्या आपकी वाणी खो गयी? आप रोते क्यों नहीं? आप बोलते क्यों नहीं? भिक्षु डरने भी लगे कि कहीं तिष्यस्थविर पागल तो नहीं हो गए।

आघात ऐसा था कि पागल हो सकते थे। जिनके चरणों में सारा जीवन समर्पित किया हो, उनके जाने की घड़ी आ गयी हो! जिनके सहारे अब तक जीवन की सारी आशाएं बांधी हों, उनके विदा का क्षण आ गया हो! तो स्वाभाविक था।

लेकिन, तिष्य जो चुप हुए सो चुप ही हुए। वे इसका भी जवाब न देते। वे कुछ उत्तर ही न देते। एकदम सन्नाटा हो गया।

अंततः यह बात भगवान के पास पहुंची कि क्या हुआ है तिष्यस्थविर को? अचानक उन्होंने अपने को बिल्कुल बंद कर लिया। जैसे कछुआ समेट लेता है अपने को और अपने भीतर हो जाता है, ऐसा अपने को अपने भीतर समेट लिया है। यह कहीं कोई पागलपन का लक्षण तो नहीं। आघात कहीं इतना तो गहन नहीं पड़ा कि उनकी स्मृति खो गयी है, वाणी खो गयी है?

भगवान ने तिष्यस्थविर को बुलाकर पूछा, तो तिष्य ने सब बात बतायी, अपना हृदय कहा और कहा कि आपसे आशीर्वाद मांगता हूं कि मेरा संकल्प पूरा हो। आपके जाने के पहले तिष्यस्थविर विदा हो जाना चाहिए।

... मौत की नहीं मांग कर रहे हैं वे, यह तिष्यस्थविर नाम का जो अहंकार है, यह विदा हो जाना चाहिए। ... मैं अपना प्राणपण लगा रहा हूं, आपका आशीर्वाद चाहिए। अब न बोलूंगा, न हिलूंगा, न डोलूंगा, क्योंकि सारी शक्ति इसी पर लगा देनी है चार माह! ज्यादा समय भी पास में नहीं। और आपने कहा, भिक्षुओ, सावधान हो जाओ और जो करने योग्य है, करो! तो यही मुझे करने योग्य लगा कि ये चार महीने जीवन की क्रांति के लिए लगा दूं--पूरा लगा दूं। इस पार या उस पार। लेकिन यह कहने को न रह जाए कि मैंने कुछ उठा रखा था। कि मैंने कुछ छोड़ दिया था, किया नहीं था।

बुद्ध ने तिष्य भिक्षु को आशीर्वाद दिया और भिक्षुओं से कहा, भिक्षुओ, जो मुझ पर स्नेह रखता है, उसे तिष्य के समान ही होना चाहिए। यही तो है जो मैंने कहा था कि करो, जो करने योग्य है करो, सावधान, मैं चार माह के बाद परिनिवृत्त हो जाऊंगा। रोने-धोने से क्या होगा! रो-धोकर तो जिंदगियां बिता दीं तुमने। चर्चा करने से क्या होगा! झुंड के झुंड बनाकर विचार करने से और विषाद करने से क्या होगा! तुम मुझे तो न रोक पाओगे। मेरा जाना निश्चित है। रो-रोकर तुम यह क्षण भी गंवा दोगे। आंसू नहीं काम आएंगे। नौका बना लो। तिष्यस्थविर ने ठीक ही किया है। इसने मौन की नौका बना ली। इसी मौन की नौका से कोई तिरता है। इसीलिए तो हम साधु को मुनि कहते हैं। मुनि का अर्थ होता है, जिसने मौन की नौका बना ली। तिष्यस्थविर मुनि हो गया है।

गंध-माला आदि से पूजा करने वाले मेरी पूजा नहीं करते। वह वास्तविक पूजा नहीं है। जो ध्यान के फूल मेरे चरणों में आकर चढ़ाता है, वही मेरी पूजा करता है। ऐसा बुद्ध ने कहा। धर्म के अनुसार आचरण करने वाला ही मेरी पूजा करता है, ऐसा बुद्ध ने कहा। ध्यान ही मेरे प्रति प्रेम की कसौटी है। रोओ मत, ध्याओ। रोओ नहीं, ध्याओ।

और तब उन्होंने ये गाथाएं कहीं--

पविवेकं रसं पीत्वा रसं उपसमस्स च।
निद्दरो होति निप्पापो धम्मपीतिरसं पिवं।।

"एकांत का रस पीकर तथा शांति का रस पीकर मनुष्य निडर होता है और धर्म का प्रेमरस पीकर निष्पाप होता है।"

तो, एकांत का रस पीकर--एकांत का अर्थ होता है, अपने भीतर डुबकी लो। बाहर बहुत संबंध जोड़े, दूसरे से बहुत नाते बनाए, दुख के अतिरिक्त क्या कब पाया? अब अपने से नाता जोड़ो। एक नया सेतु बनाओ--अपने और अपने बीच। अब अपने में जाओ। एकांत का अर्थ नहीं होता है, हिमालय चले जाओ। एकांत का अर्थ होता है, जो संबंधों में बहुत ज्यादा जीवन ऊर्जा लगायी है, उसे संबंधों से मुक्त करो। अपने साथ रमो। आत्मलीन बनो।

"एकांत का रस पीकर... ।"

पविवेकं रसं पीत्वा।

और बुद्ध उसको रस कह रहे हैं। प्यारा शब्द उपयोग कर रहे हैं। क्योंकि जिसने एकांत का रस पी लिया, उसने अमृत पी लिया। जिसे तुम संबंध में खोज रहे हो और कभी संबंध में पा न सकोगे, वह एकांत में पाया जाता है। वह अपने ही स्वभाव में छिपा पड़ा है। वह झरना तुम्हारा है। वह तुम्हारी ही गहराइयों में दबा पड़ा है।

"एकांत का रस पीकर तथा शांति का रस पीकर मनुष्य निडर होता है।"

अब तुम भयभीत हो रहे हो, बुद्ध ने कहा, रो रहे हो, चीख रहे हो। मेरे जाने के कारण तुम भयभीत हो रहे हो। क्योंकि तुमने मुझसे तो संबंध बनाया, अपने से संबंध नहीं बनाया। मैं जा रहा हूं तो तुम रो रहे हो। पत्नी जाएगी तो पति रोएगा। पति जाएगा तो पत्नी रोएगी, बेटा जाएगा तो बाप रोएगा, बाप जाएगा तो बेटा रोएगा। जिन्होंने दूसरों से संबंध बनाने में ही सारी ऊर्जा नियोजित की है, वे रोते ही रोते जीवन गंवाएंगे। अपने से संबंध जोड़ो।

"शांति का रस पीकर... ।"

रसं उपसमस्स च।

उस एकांत का, मौन का, शब्द शून्यता में डूबकर अपना रस पीओ, अपने को चखो। तो फिर निडर हो जाओगे। फिर कोई भय नहीं है, बुद्ध रहें कि जाएं! कौन कहां आता-जाता है! सब जहां हैं, वहीं हैं। न कोई आता, न कोई जाता, सिर्फ हमारे संबंध टूटते और बनते। तुम अगर असंग हो जाओ, तो फिर कोई जीवन में पीड़ा नहीं, दुख नहीं।

"धर्म का प्रेमरस पीकर निष्पाप हो जाओ।"

धर्म कहां है? धर्म का अर्थ होता है, स्वभाव। धर्म का अर्थ होता है, तुम्हारी नियति। तुम जो वस्तुतः हो, वही धर्म।

"इसलिएः जैसे चंद्रमा नक्षत्र-पथ का अनुसरण करता है, वैसे ही धीर, प्राज्ञ, बहुश्रुत, शीलवान, व्रतसंपन्न, आर्य तथा बुद्धिमान पुरुष का अनुगमन करना चाहिए।"

तो बुद्ध ने कहा, इस तिष्य को देखो, यह धीर है, प्राज्ञ है, बहुश्रुत है, शीलवान है, व्रतसंपन्न है, आर्य है, बुद्धिमान है, इसका अनुगमन करो। रोओ-धोओ मत।

तस्माहिः

धीरंच पंचंच बहुस्सुतं च धोरय्हसीलं वतवंतमरियं।

इसके पीछे जाओ। इससे सीखो। जो इसे हुआ है, वही तुम्हें भी होने दो। यह जो तिष्यस्थविर कर रहा है। क्या कर रहा है?

कोलाहल से काल की निद्रा नहीं टूटती,

न धक्के मारने से समय का द्वार खुलता है

रचनात्मक समाधि के व्यूह में जाओ

नीरवता और शांति को सिद्ध करो

रात, अंधकार और अकेलापन

शक्ति के असली उत्स हैं

रोशनी से बचो

और लक्ष्य को अंधेरे में विद्ध करो

बाहर बहुत रोशनी है, इसलिए हम आंखें खोले बैठे रहते हैं। बाहर बहुत रूप है, इसलिए हम आंखें खोले बैठे रहते हैं। आंख बंद करते हैं तो भीतर अंधेरा है।

रात, अंधकार और अकेलापन

शक्ति के असली उत्स हैं

रोशनी से बचो

और लक्ष्य को अंधेरे में विद्ध करो

जब कोई मौन हो जाता है, ध्यान में डूबता, तो अपने ही गहन अंधेरे में डूबता है। तुमने देखा, वृक्ष की असली ऊर्जा आती जड़ों से, जो अंधेरे में दबी हैं। शक्ति के असली उत्स, स्रोत अंधेरे में हैं। मां के गर्भ में अंधेरे में पड़ा हुआ बच्चा बढ़ता है, जीवन को पाता है। बीज भूमि में दब जाता है, अंधेरे में फूटता है। तुम थक जाते दिन में, रात के अंधेरे में सो जाते, सुबह फिर पुनरुज्जीवित होते हो--नया जीवन, नयी ऊर्जा लेकर आते हो।

जिसे अपने भीतर जाने का रहस्य समझ में आ गया, उसके जीवन में परम ऊर्जा प्रगट होने लगती है। वह एक ऐसे उत्स पर पहुंच जाता है, एक ऐसे स्रोत पर कि जितना भी खर्च करो, करो, कुछ खर्च नहीं होता। वह अविनाशी स्रोत को उपलब्ध हो जाता है।

बुद्ध ने अनेक-अनेक रूपों में लोगों को जागने की ही शिक्षा दी है। कोई ज्यादा भोजन कर रहा है, तो उसे जगाया। कोई भूखा है--तो कैसे जाग पाएगा--तो भोजन दिया। कोई रागाग्नि में डूबा है, तो उसे झकझोरा, जगाया। कोई शब्दों में, रोने-धोने में, संबंधों में डूबा है, तो उसे हिलाया।

तोड़कर पुराने आभूषण

नहीं बनाया कोई नया आभरण

नकारकर स्थापित मूल्य

नहीं रचा कोई नया प्रतिमान

केवल दी मूर्च्छा-विमुक्त दृष्टि,

सत्य को मुक्ति।

केवल दी मूर्च्छा-विमुक्त दृष्टि

बुद्ध का दान इतना ही है--मूर्च्छा-विमुक्त दृष्टि। तुम सोए-सोए न जीओ। जागकर जीओ। होश से जीओ। बुद्ध ने कोई प्रार्थना नहीं सिखायी किसी आकाश में बैठे परमात्मा के प्रति। न बुद्ध ने कहा भिखारी बनकर मांगो। न बुद्ध ने कहा याचक बनो, हाथ फैलाओ किसी परमात्मा के सामने। बुद्ध ने तो कहा, अपने भीतर जाओ और परमात्मा मिल जाएगा, तुम परमात्मा हो।

नहीं किसी याचक की प्रार्थना

कि देवता पूरी करें कामना

नहीं किसी संत्रस्त की गुहार

कि इंद्र करें रिपु का हनन

केवल नमन उनको

जो अरिहंत, जो संत,

भले ही उनका कोई धर्म कोई पंथ

मात्र समर्पण की वर्णमाला

एकमात्र मंत्र

एकमात्र मंत्र सिखाया--समर्पण की वर्णमाला। कैसे तुम अपने अंतस्तल के केंद्र पर अपनी परिधि को समर्पित कर दो। कैसे तुम व्यर्थ को सार्थक पर समर्पित कर दो। कैसे तुम बाहर को भीतर पर समर्पित कर दो।

मात्र समर्पण की वर्णमाला

एकमात्र मंत्र

और कोई मंत्र नहीं सिखाया बुद्ध ने।

नहीं किसी याचक की प्रार्थना

कि देवता पूरी करें कामना

नहीं किसी संत्रस्त की गुहार

कि इंद्र करें रिपु का हनन

केवल नमन उनको

जो अरिहंत, जो संत,

भले ही उनका कोई धर्म कोई पंथ

मात्र समर्पण की वर्णमाला

एकमात्र मंत्र

अरिहंत शब्द बौद्धों का बहुमूल्य शब्द है। उसका अर्थ होता है, जिसने अपने शत्रुओं पर विजय पा ली। और शत्रुओं का जो प्रधान है, उसको बुद्ध ने प्रमाद कहा है, मूर्च्छा। जो जाग गया, वह अरिहंत। जो जाग गया, वही संत। फिर उसका क्या धर्म और क्या पंथ, इसका कुछ हिसाब रखने की जरूरत नहीं। जहां तुम्हें कोई अरिहंत मिल जाए, कोई संत मिल जाए, उसके पीछे चलो।

"जैसे चंद्रमा नक्षत्र-पथ का अनुसरण करता है, वैसे ही धीर, प्राज्ञ, बहुश्रुत, शीलवान, व्रतसंपन्न, आर्य तथा बुद्धिमान पुरुष का अनुगमन करना चाहिए।"

जहां संत मिल जाएं, उनकी छाया में उठो-बैठो। जहां संत मिल जाएं, उनकी तरंगों में डूबो। उनका रस पीओ। उनकी धारा में बहो, स्रोतापन्न बनो।

ये छोटी-छोटी कथाएं और इन कथाओं के मध्य में आए छोटे-छोटे सूत्र तुम्हारे समग्र जीवन को रूपांतरित कर सकते हैं। लेकिन मात्र सुनने से नहीं, गुनो, करो। जैसे बुद्ध ने कहा न, कि भिक्षुओ, मैं आज से चार माह बाद परिनिवृत्त हो जाऊंगा, इसलिए जो करने योग्य है, करो। फिर बुद्ध चार माह रहें तुम्हारे साथ, कि चार साल रहें, कि चालीस साल, क्या फर्क पड़ता है। जो करने योग्य है, करो। सावधान!

आज इतना ही।

बहत्तरवां प्रवचन

आत्मबोध ही एकमात्र स्वास्थ्य

पहला प्रश्नः संसार में दुख ही दुख है या कुछ सुख भी?

पर्यायवाची है दुख का। यह प्रश्न ऐसा ही है जैसे कोई पूछे, दुख में दुख ही दुख है, या कुछ सुख भी है?

सुख की आशा है। लेकिन सुख कभी घटता नहीं। आशा दुराशा सिद्ध होती है। सुख घटेगा, ऐसा संसार आश्वासन देता है। लेकिन आश्वासन यहां कभी पूरे होते नहीं। एक आश्वासन टूटता है तो संसार दस और देता है। आश्वासन देने में संसार कृपण नहीं है। खूब दिल खोलकर आश्वासन देता है। तुम जितना मांगो, उससे हजारगुना देने की तैयारी दिखलाता है। लेकिन देता कुछ भी नहीं। जीवन ले लेता है तुमसे इन्हीं आश्वासनों के सहारे। इन्हीं आशाओं के सहारे तुम्हें दौड़ा लेता है खूब, थककर गिर जाते हो कब्र में। कब्र में गिरते-गिरते तक भी तुम्हारे आश्वासन पर भरोसे टूटते नहीं। तब तुम सोचते हो कब्र में गिरते-गिरते--बैकुंठ है, स्वर्ग है, वहां मिलेगा सुख। वह भी संसार का ही धोखा है।

सुख कहीं मिलेगा, इस भ्रांति का नाम संसार है।

सुख अभी है, यहीं है, इस बोध का नाम निर्वाण है।

सुख किसी से मिलेगा, इस भ्रांति का नाम संसार है।

सुख अपना स्वभाव है, इस जागृति का नाम मोक्ष है।

सुख के लिए कोई परिस्थिति चाहिए, कोई शर्त पूरी करनी पड़ेगी, इस आपाधापी का नाम संसार है। सुख है ही, तुम जैसे हो वैसे होने में सुख है। सुख से तुम कभी च्युत ही नहीं हुए, सुख से ही तुम निर्मित हो। सुख को मांगने में भूल है, सुख को भोगने में सुख है।

इसलिए बुद्ध कहते हैं, अहो, देखो हम कैसे सुखी! वैरियों के बीच अवैरी होकर विहरते हैं। आकांक्षियों के बीच निराकांक्षी होकर विहरते हैं। भिखारियों के बीच सम्राट होकर विहरते हैं। सुसुखं वत! यह हमारा सुखी स्वभाव तो देखो। यह हमारा महासुख देखो।

संसार में सुख नहीं है, सुख स्वयं में है। लेकिन संसार का मतलब ही यह होता है, जो स्वयं से चूक गया और दूसरे पर जिसकी नजर अटक गयी। तुम संसार शब्द का ठीक-ठीक अर्थ नहीं समझते। तुम समझते हो संसार का मतलब, ये वृक्ष, ये पहाड़, ये चांद-तारे, ये बाजार, ये दुकान, यह संसार है। तुम संसार का अर्थ नहीं समझते। तुम शाब्दिक अर्थ समझते हो। तुम उसका मनोवैज्ञानिक अर्थ नहीं समझते।

संसार का अर्थ है, किसी दूसरे में सुख, किसी और में सुख, कहीं और सुख। इस तरह की जो अज्ञान-दशा है, उसका नाम संसार है। और इस अज्ञान-दशा में जो चलता जाता, चलता जाता--संसरण करता है जो--वह संसार में जी रहा है। इस अज्ञान-दशा में संसरण करता है जो, चलता जाता है, चलता जाता है, चलता जाता है; इधर नहीं मिला उधर मिलेगा, वहां पहुंच जाता है, वहां भी नहीं मिलता, और आगे मिलेगा, ऐसी संसरण करने की प्रक्रिया का नाम संसार है।

जिस दिन तुम यह जागकर समझ लोगे--कहीं नहीं मिलता, न यहां मिलता, न वहां मिलता, कितने ही बढ़ते जाओ, कहीं नहीं मिलता; सारी आशाएं क्षितिज की भांति सिद्ध होती हैं, जमीन और आकाश कहीं मिलते

नहीं, मिलते प्रतीत होते हैं, जब ऐसा तुम्हें बोध होगा और तुम जागकर खड़े हो जाओगे--जागकर--तुम्हारा होश का दीया जलेगा, आंखें दूसरे से हट जाएंगी अपने पर पड़ेंगी, तुम्हारी ज्योति तुम्हें ज्योतिर्मय करेगी, उसी क्षण सुख है।

और वह क्षण संसार के बाहर है, क्योंकि संसरण रुक गया। वह जो दौड़ थी--दौड़ यानी संसार--वह रुक गयी। अब तुम अपने में डूब गए, तुमने अपने में डुबकी ले ली, तुम स्रोतापन्न हो गए, तुम्हें स्रोतापन्न होने का पहला फल मिला, तुम अपनी जीवनधारा में उतर गए। अब तुम भिखारी नहीं हो, अब तुम सम्राट हो गए, अब तुम कह सकते हो--अहो, देखो, सुसुखं वत! हमारा सुख देखो!

पूछते हो, "संसार में दुख ही दुख है?"

दुख का नाम संसार है। इसलिए ऐसा प्रश्न पूछ ही नहीं सकते तुम। पूछा नहीं जा सकता। मगर इसका यह अर्थ नहीं है कि सुख नहीं है। संसार में सुख नहीं है, इसका यह अर्थ नहीं कि सुख नहीं है। सुख है, संसार में सुख नहीं है। सुगंध है। कंकड़-पत्थरों में सुगंध नहीं है, इसका अर्थ यह नहीं कि सुगंध नहीं है। कंकड़-पत्थरों को नाक से लगाए बैठे रहोगे तो सुगंध न मिलेगी। सुगंध है, लेकिन फूलों को, कमल को, गुलाब को, कंकड़-पत्थरों को नहीं। कंकड़-पत्थर गंधशून्य हैं। सुगंध है, तुममें। कस्तूरी कुंडल बसै। वह तुम्हारे भीतर ही बसी है। जिसको खोजते तुम द्वार-द्वार, दरवाजे-दरवाजे भटक रहे हो, वह तुम्हारे भीतर बसी है। उसे तुम लेकर आए हो। वह तुम हो। तत्वमसि।

सुख तो है। अगर सुख हो ही न तो जीवन बिल्कुल ही अकारथ हो गया, तो जीवन बिल्कुल असार हो गया। फिर धर्म का क्या अर्थ, फिर धर्म का क्या सार? धर्म का इतना ही सार है--जहां सुख नहीं है वहां से तुम्हें उस तरफ मोड़ दे जहां सुख है। धर्म सुख की खोज है। धर्म जहां-जहां दुख है, वहां-वहां तुम्हें जगा देता; और जहां सुख है, वहां तुम्हें डुबकी लगवा देता।

और ये जो संसार के दुख हैं, ये भी तुम्हारे विरोधी नहीं हैं, ये भी सहयोगी हैं, क्योंकि इन्हीं से गुजर-गुजरकर तो अनुभव पकेगा। बार-बार चोट खा-खाकर दूसरे से, दुख पा-पाकर तो तुम जगोगे और अपने में आओगे। टकरा-टकराकर, हर बार रो-रोकर तो एक दिन तुम्हारी आंखें बंद होंगी।

जीवन दर्द का झरना है
जो भी जीते हैं
दर्द भोगते हैं
और दर्द भोगते-भोगते ही हमें मरना है
दर्द नियति की दुकान की निहाई है
दर्द भगवान के हाथ का हथौड़ा है
देवता हम पर चोटें देकर
हमें संवारता और गढ़ता है
शायद यह बात सच है कि
आदमी दर्द में विकसित होता
खूबसूरत बनता और बढ़ता है

तो दर्द एकदम व्यर्थ नहीं हैं, दुख एकदम व्यर्थ नहीं हैं। दुख है बाहर, लेकिन वही चोट निहाई बनती, हथौड़ा बन जाती, वही चोट छेनी बन जाती, वही चोट तुम्हारे भीतर से जो-जो व्यर्थ है उसे काट देती, जला देती है, वही चोट तुम्हें जगाती है।

देवता हम पर चोटें देकर

हमें संवारता और गढ़ता है

दर्द नियति के दुकान की निहाई है

दर्द भगवान के हाथ का हथौड़ा है

शायद यह बात सच है कि

आदमी दर्द में विकसित होता

खूबसूरत बनता और बढ़ता है

इसलिए जब मैं कहता हूं, संसार में दुख है, तो तुम्हें कोई संसार-विरोधी बात नहीं कह रहा हूं। तुम्हें केवल संसार का स्वभाव समझा रहा हूं। ऐसा है। और इस दर्द का भी तुम अगर थोड़ा समझपूर्वक उपयोग करो तो यही सीढ़ियां बन जाए। इसी की चोटों से तुम्हारे भीतर छिपी हुई मूर्ति प्रगट होगी। तुम्हारे भीतर छिपा चिन्मय इसी से प्रगट होगा। यही आग जलाएगी, और जलाएगी, और जलाएगी, और तुम्हारा स्वर्ण निखरकर कुंदन बनेगा।

इसलिए दर्द तो है, दुख तो है, पीड़ा तो है, मगर पीड़ा निखारती है, मांजती है, सजाती है, संवारती है। इसलिए मैं तुम्हें भगोड़ा बनने को नहीं कहता। संसार में दुख है, ऐसा सुनकर कुछ लोग भगोड़े बन जाते हैं, वे कहते हैं--छोड़ो संसार। भागे! लेकिन तुम समझे ही नहीं। भागोगे कहां? संसरण यानी संसार। भागे तो संसार। कहीं और जाने की सोची तो संसार।

मेरे पास लोग आते हैं, वे कहते हैं, सब छोड़ दें घर-द्वार, हिमालय चले जाएं। यह संसार। अब इन्हें हिमालय में सुख दिखायी पड़ता है। पहले दिखायी पड़ता था कि धन होगा तो सुख होगा, पद होगा तो सुख होगा, प्रतिष्ठा होगी तो सुख होगा। अब सोचते हैं, हिमालय में सुख है, हिमालय की गुफा में सुख है। संसार ने नया आश्वासन दे दिया, संसार ने दौड़ने का नया सूत्र दे दिया--हिमालय की तरफ दौड़ो। फिर एक गुफा में बैठे-बैठे लगेगा कि नहीं, यहां तो नहीं मिलता, थोड़े और ऊपर जाओ, थोड़े और ऊपर जाओ, मिलेगा वहां। ऐसा तुम्हारा जो संसरण चलाता रहता है, उसी का नाम, उस सूत्र का नाम संसार है। जब तुमने दौड़ना बंद कर दिया... ।

इसलिए मैं कहता हूं, भगोड़े मत बनना, भगोड़ा संन्यासी नहीं है, भगोड़ा संसारी है। तुम जहां हो, ठीक हो, वहीं ठीक हो, वहीं जागो। कहां जाना भागकर! अपने में आना है। अपने में आने के लिए भागना तो जरूरी नहीं है। अपने में आना तो सब भागना छोड़ देना जरूरी है। रुक जाओ, ठहर जाओ। दौड़कर जो मिलता है वह संसार है, रुककर जो मिलता है वह परमात्मा है।

रुको, ठहरो, धीरे-धीरे दौड़ छोड़ो। ऐसे जीने लगो जैसे कहीं जाना नहीं है, कुछ होना नहीं है, कुछ बनना नहीं है। उसी क्षण तुम पाओगे कि तुम बने-बनाए हो, तुम्हें परमात्मा ने पूरा बनाया, तुम्हें वैसा बनाया जैसा तुम होना चाहते हो। लेकिन तुमने कभी अपनी शकल ही नहीं देखी। तुम औरों की शकलों में उलझे रहे। तुमने कभी अपनी गांठ ही नहीं टटोली, तुम दूसरों की गांठें टटोलते रहे। तुमने अपने भीतर की खदान नहीं खोदी, तुम

न मालूम कहां-कहां भटके जन्मों-जन्मों में, कितनी तुमने यात्राएं कीं, लेकिन अपने घर तुम कभी आए ही नहीं। अपने घर आ जाना यानी धर्म। एस धम्मो सनंतनो। यही सनातन धर्म है।

दूसरा प्रश्नः

क्या अंग्रेजी का शब्द साल्वेशन और संस्कृत के मोक्ष, बैकुंठ और निर्वाण, सब समानार्थी हैं?

अर्थों में, अंतिम अर्थों में, हां। प्राथमिक अर्थों में, नहीं। पारमार्थिक अर्थों में, हां। व्यावहारिक अर्थों में, नहीं। व्यावहारिक अर्थों में तो फर्क है।

साल्वेशन का अर्थ होता है, किसी और के द्वारा। इसलिए ईसाई सोचते हैं, जीसस के द्वारा। स्वयं के द्वारा नहीं, किसी और के द्वारा कोई आएगा कल्याणकर्ता, कोई आएगा उद्धारक, मसीहा, उसके द्वारा मुक्ति होगी, तो साल्वेशन।

यह मोक्ष की सबसे निम्न धारणा है। क्योंकि दूसरे के द्वारा जो होगा, वह तो मोक्ष होगा कैसे? दूसरे में ही उलझे-उलझे तो संसार है, फिर भी उलझे दूसरे में ही हैं। पहले पत्नी में उलझे थे, पति में उलझे थे, बेटे में उलझे थे, अब इससे छूटे तो अब मसीहा आएगा, तो मुक्ति होगी। मुक्ति भी अपने हाथ में नहीं तो क्या खाक मुक्ति! जब मुक्ति भी दूसरे के हाथ में है, तो मुक्ति भी बंधन हो गयी। फिर मसीहा आज मुक्त कर देगा। और कल अगर मसीहा का दिल बदल गया! जो हाथ में दूसरे के है, वह तुम्हारा नहीं। वह तुम्हारी मालकियत नहीं। यह मोक्ष की सबसे निम्नतम धारणा है, कि दूसरा। यह संसार के बहुत करीब है।

इसलिए ईसाइयत बहुत ऊपर नहीं उठी। ईसाइयत का धर्म संसार के बहुत करीब है। इसलिए ईसाई पादरी-पुरोहित बिल्कुल सांसारिक है। उसमें कुछ धर्म की वैसी पारलौकिक गंध नहीं है, जैसी बौद्ध भिक्षु में दिखायी पड़ेगी, हिंदू संन्यासी में दिखायी पड़ेगी, जैन मुनि में दिखायी पड़ेगी, वैसी गंध नहीं है। कुछ चूक रहा है। उसकी साल्वेशन की जो धारणा है, मुक्ति की जो धारणा है, वह भी बासी और उधार है--दूसरा कोई करेगा। तो बैठे हैं हाथ पर हाथ धरे। और जीसस आए और गए भी और ईसाई सोचते हैं, मुक्ति हो गयी, जीसस के आने से मुक्ति हो गयी। तो अब करने को कुछ बचा ही नहीं है! इसलिए यह मुक्ति की धारणा मुक्ति में सहयोगी तो नहीं बनी, बाधा बनी। अब तो करने को कुछ है नहीं!

अब तुम समझो। ईसाइयत की धारणा यह है कि अदम के कारण पाप हुआ। तुमने पाप भी नहीं किया। हद्द हो गयी! तुम कुछ करोगे कभी कि नहीं! पाप भी अदम ने किया, तो उसका पाप तुम भोग रहे थे। फिर आए जीसस, उन्होंने पुण्य किया, अब उनका पुण्य तुम भोग रहे हो। तुम उधार ही उधार हो! नगद कुछ भी है तुम्हारे भीतर? पाप भी अपना नहीं! पुण्य भी अपना नहीं!

यह बात बहुत गहरी नहीं है। अदम का पाप हमें क्यों पापी बनाएगा? अदम ने किया होगा, अदम समझे-बूझे! इससे तो व्यक्तिगत आत्मा की हत्या ही हो गयी।

अदम कब हुआ! हुआ कि नहीं हुआ! पाप भी कोई बहुत बड़ा नहीं किया। पाप ऐसा किया जो करना ही था। ईश्वर ने कहा था कि इस बगीचे के ज्ञान के फल को मत चखना और अदम ने चखा। कोई भी आदमी जिसमें थोड़ी भी हिम्मत हो, यही करता। और फिर ज्ञान का फल! छोड़ देने जैसा भी नहीं था। अदम ने जोखिम

उठायी, उसने कहा, हो पाप हो! कारण क्या रहा होगा? अगर हम अदम के मनोविज्ञान में उतरें तो हमें समझ में आएगा।

अदम ऊब गया था, सुख ही सुख, सुख ही सुख। मिठाई ही मिठाई, मिठाई ही मिठाई, तो डायाबिटीज पैदा हो जाती है। तो अदम को डायबिटीज हो गयी होगी। सुख ही सुख था वहां, दुख तो था ही नहीं कुछ मोक्ष में, उस ईश्वर के राज्य में; सब सुख ही सुख था, पीड़ा तो कुछ थी ही नहीं। ऊब गया होगा। थक गया होगा। जितना आदमी सुख से थक जाता है उतना किसी और चीज से नहीं थकता। कुछ करने का जी होने लगा होगा। कुछ नए का स्वाद लेने का मन उठने लगा होगा।

तो उसने जोखिम उठायी। वह ऊबा हुआ था, उसने कहा कि ठीक है, ज्यादा से ज्यादा इस स्वर्ग के बाहर ही निकाल दोगे न! इस स्वर्ग में रखा भी क्या है! यह स्वर्ग एक तरह की गुलामी थी। जहां ज्ञान का फल खाने की भी आज्ञा न हो, वह स्वर्ग क्या! और क्या आज्ञा दोगे, जहां ज्ञान का फल खाने की भी आज्ञा नहीं है! तो अदम राजी हो गया, उसने ज्ञान का फल खा लिया और स्वर्ग से निकाल दिया गया। क्योंकि ईश्वर बहुत नाराज हो गया--उसकी आज्ञा का उल्लंघन हुआ।

यह ईश्वर न हुआ साधारण बाप हुआ, यह छोटी-मोटी आज्ञाओं के उल्लंघन से एकदम दीवाना हो जाता है। अगर बाप भी थोड़ा हिम्मतवर होता तो पीठ ठोंकता अदम की कि तूने ठीक किया बेटा, अब तू जवान हुआ। बाप को इनकार करके ही तो बेटा जवान होता है। जब तक बेटा बाप को इनकार नहीं करता तब तक तो दुधमुंहा रहता है--तब तक जवान होता ही नहीं, दूध के दांत टूटे ही नहीं। जब तक बाप जो कहता है, हां में हां भरता है, तब तक कहीं कोई बेटा जवान होता है! मनोविज्ञान से पूछो! मनोवैज्ञानिक कहते हैं, जब बेटा नहीं कहता है बाप को, उसी दिन बेटा जवान होता है। तो अदम ने कुछ कसूर न किया, जवान हुआ।

अदम को निकाल दिया, कसूर भी कोई बड़ा न था, सिर्फ अपनी प्रौढ़ता की घोषणा थी कि मैं अपनी जिंदगी अपने हाथ में लेना चाहता हूं। ज्ञान का फल खाने का मतलब क्या? कि अब मैं उधार नहीं जीना चाहता; तुम जानो और मैं बिना जाने जीयूं! बाप ने यही कहा था कि तुझे जानने की जरूरत क्या, मैं सब जानता हूं; तू सिर्फ मेरी मान और चल।

यही तो सभी बाप कहते हैं कि तुझे जानने की क्या जरूरत है, मैं तो सब जानता हूं, तू तो सिर्फ हमारी आज्ञा मान। लेकिन कौन बेटा ज्यादा देर तक इसके लिए राजी हो सकता है! उन बेटों को छोड़ दो जो गोबर-गणेश हैं। उनका कोई मतलब भी नहीं है, वे हैं भी नहीं।

अदम ने जो पाप किया, करना ही था। जरूरी था, पाप था ही नहीं। अदम ने हिम्मत की जवान होने की। हर बेटे को करनी पड़ती है, एक दिन हर बेटे को, हर बेटी को अपने मां-बाप को इनकार करना पड़ता है। यह होना ही है। यह होना ही चाहिए। इसी से तो रीढ़ पैदा होती है। इसको ईसाई कहते हैं, पाप हो गया। यह भी खूब पाप हुआ!

और दूसरा मजा यह कि पाप किसी ने किया--जिसका हमें कोई लेना-देना नहीं--हम सब उसका पाप भोग रहे हैं, क्योंकि हम सब उसकी संतान हैं! यह भी अजीब बात हुई! बाप पाप करे और बेटा भोगे। बाप के बाप पाप करें और बेटा भोगे। तो फिर व्यक्तिगत आत्मा का अर्थ ही न रहा। फिर व्यक्तिगत आत्मा का क्या मूल्य! फिर तुम हो, यह कहने में क्या सार! तुम हो ही नहीं।

हजारों साल पहले किसी आदमी ने कोई भूल-चूक की थी, उसका पाप तुम्हारी आत्मा पर गहरा है! तुमसे कुछ लेना-देना नहीं। जो तुमने भूल नहीं की, उसकी जिम्मेवारी तुम पर नहीं हो सकती।

यह धारणा ही बुनियादी रूप से गलत। फिर इस गलत धारणा को ठीक करने के लिए दूसरी गलत धारणा पैदा करनी पड़ी कि जब पाप दूसरे का किया आदमी भोग रहा है, तो फिर पुण्य भी दूसरे का ही किया आदमी भोगेगा।

तो सारा मजा कि कथा अदम से शुरू हुई, जीसस पर समाप्त हो गयी, हमें कुछ लेना-देना नहीं, हम सिर्फ दर्शक हैं। पाप अदम ने किया, जीसस ने क्षमा मांग ली। अदम ने आज्ञा तोड़ी थी, जीसस ने आज्ञा पूरी कर दी। अदम स्वर्ग के बाहर निकाल दिया गया था, जीसस जुलूस के साथ शोभा-यात्रा में स्वर्ग में वापस प्रविष्ट हो गए। और हम? अदम और जीसस को छोड़कर बाकी जो लोग हैं, ये? ये सिर्फ दर्शक हैं! किसी का पाप ढोते हैं, किसी का पुण्य ढोने लगते हैं! लेकिन इसका तो अर्थ हुआ कि तुम्हारे भीतर कोई आत्मा नहीं है।

इसलिए मैं साल्वेशन को मोक्ष की सबसे निम्नतम धारणा कहता हूं, क्योंकि इसमें दूसरे पर भरोसा है। मोक्ष से थोड़े ऊपर जाता है हिंदुओं का बैकुंठ। थोड़े ऊपर जाता है। बहुत ऊपर नहीं जाता।

बैकुंठ का अर्थ होता है, परमात्मा के प्रसाद से। कोई मनुष्य नहीं है माध्यम, लेकिन अभी भी दूसरा महत्वपूर्ण है, परमात्मा का प्रसाद! परमात्मा चाहेगा तो उठा लेगा, उसकी अनुकंपा होगी तो उठा लेगा। और फिर सदा परमात्मा के साथ बैकुंठ में रहेंगे, मजा भोगेंगे, सुख ही सुख होगा, स्वर्ग होगा, अप्सराएं होंगी, कल्पवृक्ष होंगे, उनके नीचे बैठकर सारी-सारी वासनाओं को तृप्त करेंगे।

यह साल्वेशन से थोड़े ऊपर जाता। कम से कम किसी मसीहा को तो बीच में नहीं लिया है। कम से कम आदमपुत्र को तो बीच में नहीं लिया है, सीधा ईश्वर है। चलो, इतना ही बहुत। यह थोड़ी ऊपर जाती धारणा। और, उसकी अनुकंपा से होगा। तो उसकी अनुकंपा अर्जित करनी होगी। उसकी अनुकंपा अर्जित करने के लिए हृदय को स्वच्छ करना होगा, प्रार्थनापूर्ण करना होगा, निर्मल करना होगा, यह भक्तों की धारणा है।

लेकिन बैकुंठ में भी परमात्मा रहेगा, हम रहेंगे, अलग-अलग। दो रहेंगे। और जहां दो हैं, वहां तक अभी बात बहुत ऊपर नहीं गयी। क्योंकि जहां बात बहुत ऊपर जाएगी वहां तो एक बचना चाहिए। जहां तक द्वंद्व है, द्वैत है, वहां तक मन का सब विकार है। क्योंकि मन ही चीजों को दो में तोड़ता है। जहां मन ही न रहा, वहां दो कैसे रहेंगे?

इसलिए तीसरी धारणा है मोक्ष की। वेदांत, जैन--इनकी धारणा और ऊंची जाती है। मोक्ष का अर्थ है, दो न रहे, एक ही बचा। हिंदू उस एक को कहते, ब्रह्म। व्यक्ति की आत्मा, मनुष्य की आत्मा उसमें समा गयी, ब्रह्म में। हम खो गए। बूंद सागर में गिर गयी और सागर हो गयी। ब्रह्म बचा, ब्रह्ममात्र। यह हिंदुओं की धारणा, वेदांत की।

जैनों की धारणा कि सागर बूंद में समा गया। परमात्मा हममें लीन हो गया। हम बचे, मैं बचा, आत्मा बची। हिंदुओं से जैनों की धारणा ऊपर जाती है। क्योंकि मैं समा गया, मैं खो गया, परमात्मा बचा, तो इसका अर्थ यह हुआ कि फिर मैं था ही नहीं, परमात्मा ही था। खो तो वही सकता है जो रहा ही न हो। मिट तो वही सकता है जो कभी रहा ही न हो, सिर्फ भास होता था जिसका। तो मनुष्य की गरिमा को चोट पहुंचती है। महावीर ने मनुष्य की गरिमा को चोट नहीं पहुंचने दी। उन्होंने कहा, मनुष्य की गरिमा को चोट जो धर्म पहुंचा दे, वह मनुष्य को गुलाम बना देगा। मनुष्य की गरिमा अपरिसीम है, आखिरी है। तो आत्मा ही परमात्मा हो जाती है। लीन नहीं होती परमात्मा में, परमात्मा बन जाती है। जैसे बूंद में सागर उतरता।

बूंद का सागर में उतरना तो साधारण सी बात है, समझ में आ जाता है। लेकिन बूंद में सागर का उतरना बड़ी असाधारण घटना है। तो सिर्फ आत्मा बचती है मोक्ष में, शुद्ध आत्मा बचती है, निर्मल ज्योति बचती है चेतना की, कोई दूसरा नहीं।

फिर निर्वाण है। निर्वाण बौद्धों की धारणा है। वह सबसे ऊपर की धारणा है। फिर उसके पार कोई धारणा कभी नहीं गयी है। निर्वाण का अर्थ है, न तो परमात्मा बचता है, न मैं बचता, कोई भी नहीं बचता--शून्य बचता है। क्योंकि बौद्ध कहते हैं, अगर परमात्मा बचा और मैं न बचा, तो दो तो न रहे, एक रहा। अगर मैं बचा, परमात्मा न बचा, तो भी दो न रहे, एक रहा। लेकिन जब तक एक है तब तक दूसरा भी किसी न किसी भांति मौजूद रहेगा। क्योंकि एक का कोई अर्थ ही नहीं होता दो के बिना। जब दो खो गए, तो एक भी खो जाना चाहिए; एक का क्या अर्थ है!

अगर हम कहते हैं--एक, तो तत्क्षण दो का ख्याल आता है। एक कहते ही दो का ख्याल आता है। क्या तुम ऐसा कर सकते हो कि कोई एक कहे और तुम्हें दो का ख्याल न आए? इसीलिए तो वेदांतियों ने एक अनूठा ढंग खोजा--वे ऐसा नहीं कहते कि परमात्मा एक है, वे कहते हैं, परमात्मा अद्वैत है, दो नहीं। सीधी बात को कि एक है, सीधा नहीं कहते, क्योंकि एक कहने से तो दो का ख्याल आता है, तत्क्षण ख्याल आता है। एक का तो कोई अर्थ ही नहीं होता दो के बिना। सोचो, अगर एक ही है, तो उसको एक भी कैसे कहोगे! दो होने चाहिए तो ही एक में कोई अर्थ हो सकता है।

तो हिंदू कहते हैं, दो नहीं है। लेकिन बौद्ध कहते हैं, चाहे तुम एक कहो, चाहे तुम दो नहीं कहो, ये कितनी ही चालाक तरकीबें निकालो, कितनी ही होशियारी करो, इससे कुछ फर्क नहीं पड़ता। अगर एक है, तो दो बचते हैं। अगर तुम कहो दो नहीं, तो भी एक की ही धारणा रह जाती। और उस निराकार दशा में न एक है, न दो है--वह संख्यातीत, संख्या के बाहर।

तो संख्यातीत तो एक ही चीज है, शून्य। शून्य मात्र संख्या के बाहर है। शून्य एक है कि दो, कि तीन, कि चार, कि पांच? शून्य तो सिर्फ शून्य है। न एक, न दो, न चार, न पांच। इसलिए शून्य के जो अर्थ लगाने हों लग जाते हैं। एक पर रख दो शून्य तो नौ के बराबर हो जाता है। दो पर रख दो शून्य तो अठारह के बराबर हो जाता है। तीन पर रख दो शून्य, सत्ताईस के बराबर हो गया! शून्य में कुछ है ही नहीं, शून्य तो बस शून्य है; शून्य तो दर्पण जैसा है--जो सामने ले आओ, उसी को झलका देता है। लाल रंग आया, दर्पण लाल हो गया। पीला रंग आया, दर्पण पीला हो गया। आदमी दिखा, दर्पण में आदमी दिखने लगा। आदमी गया, कोई न रहा, दर्पण खाली हो गया। शून्य तो दर्पण है।

तो बुद्ध ने निर्वाण शब्द चुना। बुद्ध के एक-एक शब्द बहुमूल्य हैं। उन्होंने जो श्रेष्ठतम हो सकता है, अंतिम हो सकता है, उस पर जैसी उनकी पकड़ है वैसी किसी की भी पकड़ नहीं है।

तो निर्वाण आखिरी धारणा है। कोई नहीं बचता। इससे तुम डरोगे भी। इसीलिए निर्वाण से बहुत लोग प्रभावित नहीं होते--कोई नहीं बचता! तो फिर सार क्या? तुम बचना तो चाहते हो। तुम यह चाहते हो कि आनंद तो हो, जरूर हो, लेकिन मैं भी तो रहूं, नहीं तो फिर आनंद होने का भी क्या सार है! और बुद्ध कहते हैं, तुम जब तक हो तब तक दुख रहेगा। तुम दुख। यह मैं की धारणा ही दुख है। जहां तुम नहीं रहे, वहीं आनंद है।

अब यह थोड़ा कठिन हो जाता है। हो ही जाएगा, उतनी ऊंचाई पर जब बातें पहुंचती हैं तो कठिन हो जाती हैं। तर्कातीत हो जाती हैं। बुद्धि की पकड़ में नहीं आतीं। बुद्धि के हाथ से फिसल-फिसल जाती हैं।

ये चारों शब्द अलग-अलग हैं, लेकिन मैंने कहा, व्यावहारिक अर्थों में। पारमार्थिक अर्थों में अलग-अलग नहीं हैं। चाहे कोई साल्वेशन के मार्ग से जाए, चाहे कोई बैकुंठ के मार्ग से जाए, चाहे कोई मोक्ष के, चाहे कोई निर्वाण के, अंततः निर्वाण में ही पहुंच जाएगा। क्योंकि जो आखिर तक नहीं ले जाते, उनके आगे तुम्हें मंजिल बनी रहेगी, तुम्हें लगेगा, अभी मंजिल बाकी है, थोड़ा और चलना जरूरी है। निर्वाण के आगे कुछ शेष नहीं रह जाता। शून्य के आगे क्या शेष है?

इसलिए ध्यान में तो निर्वाण रखना, हां, चलने की तो अपनी-अपनी मजबूरी है। अगर तुम्हें निर्वाण अभी पकड़ में ही न आता हो तो साल्वेशन से चलो, कोई हर्जा नहीं। वहीं से सोचो। कुछ तो किया। संसार से थोड़े तो हटे। एक कदम सही, थोड़ा धर्म का विचार तो जन्मा, थोड़ी धर्म की लहर तो उठी। चलो, वहीं से सही। यही सोचकर चलो कि क्राइस्ट मुक्ति देंगे, चलो, मुक्ति का भाव तो उठा। मुक्त होना चाहिए, यह प्यास तो उठी।

फिर यह प्यास धीरे-धीरे बढ़ेगी, तो तुम्हें लगेगा कि साल्वेशन की धारणा काम नहीं करती। तब शायद बैकुंठ की धारणा तुम्हारे पकड़ में आ जाए। तो फिर बैकुंठ की धारणा से चलना। एक दिन तुम्हें यह समझ में आएगा कि बैकुंठ भी ठीक, लेकिन यह भी संसार का ही विस्तार मालूम होता है; थोड़ा सूक्ष्म, लेकिन है संसार का ही विस्तार। वही सुख, थोड़ी बड़ी मात्रा में। वही स्त्रियां, थोड़ी ज्यादा सुंदर। वही वासनाएं, लेकिन कल्पवृक्ष के कारण पूरी होने लगीं अब। पहले मेहनत करके पूरी होती थीं, अब मुफ्त में पूरी होने लगीं, लेकिन बात वही की वही है। तो फिर तुम सोचोगे मोक्ष की बात कि अब तो सब छोड़कर ध्यान में डूब जाएं।

फिर एक घड़ी आएगी जब तुम पाओगे--जब ध्यान के आखिरी शिखर पर पहुंचोगे तब तुम पाओगे--सब तो गया, यह मैं का जो भाव बच गया, यही कांटे की तरह चुभ रहा है अब। उस दिन तुम यह कांटा भी छोड़ दोगे और निर्वाण घटित हो जाएगा।

इसलिए तुम जहां हो वहीं से चल पड़ो, कोई चिंता नहीं। पहुंचना तो निर्वाण है। निर्वाण तक नहीं पहुंचे तो पहुंचे ही नहीं। तो ध्यान में तो निर्वाण रखना, लेकिन अगर वह मंजिल बहुत दूर की मालूम पड़े और उतने दूर का शिखर तुम्हें दिखायी ही न पड़े, तो फिर जो तुम्हें दिखायी पड़े अभी उसको व्यावहारिक लक्ष्य बना लेना। जो पास की पहाड़ी हो उस पर चढ़ना शुरू कर देना। लेकिन ख्याल में रहे कि एक दिन गौरीशंकर पर चढ़ना है, उससे कम में राजी नहीं होना है।

तीसरा प्रश्नः

ऐसा कहा जाता है कि हम स्त्रियों के नब्बे प्रतिशत रोग मासिक धर्म की गड़बड़ी के कारण होते हैं और उन रोगों से मुक्त होने के लिए हम नाना प्रकार की औषधियों का उपयोग करती हैं, पर फिर भी स्वस्थ नहीं हो पातीं। आप परम वैद्य हैं, आप हमारे कष्टों और दुखों को भलीभांति जानते हैं, कृपा करके हमें मार्गदर्शन दें, हमें धर्म में गतिमान करें।

बातें समझ लेने जैसी हैं।

पहली बात, यह बात सच है कि मासिक धर्म के कारण स्त्रियों को बहुत सी अड़चनें होती हैं, बहुत से रोग होते हैं। लेकिन दूसरी बात भी ख्याल रखना, कि मासिक धर्म के कारण स्त्रियों को कुछ सुविधाएं हैं जो पुरुष को नहीं हैं। क्योंकि इस जगत में कांटे अकेले नहीं आते, फूलों के साथ आते हैं। न फूल अकेले आते हैं, फूल भी कांटों के साथ आते हैं। यहां हर कड़वाहट में कोई मिठास छिपी होती है।

तो यह बात सच है कि मासिक धर्म के कारण स्त्रियों को बहुत सी तकलीफें होती हैं। दूसरी बात भी इतनी ही सच है--जो ख्याल में नहीं है--कि मासिक धर्म के कारण स्त्रियों को कुछ सुविधाएं हैं जो पुरुष को नहीं हैं। जैसे समझो, मासिक धर्म के चार दिन, पांच दिन स्त्रियों के लिए बड़ी नकारात्मक दशा के दिन हैं। सारा चित्त निषेध से भर जाता है। रुग्ण हो जाता है, क्रोध से भर जाता है, विषाद से भर जाता है, जीवन बोझिल मालूम होता है। जैसे एक छोटी सी मौत घटने लगी। ऐसी तकलीफ पुरुष को नहीं आती। लेकिन तुम्हें पता नहीं, ये चार दिन में जो नकारात्मकता पैदा हो जाती है, वह बह भी जाती है चार दिन में और बाकी जो महीना है वह ज्यादा प्रफुल्लता का होता है। वैसी प्रफुल्लता पुरुष की नहीं होती। उसकी नकारात्मकता निकलने में तीस ही दिन लगते हैं। थोड़ी-थोड़ी निकलती है, इकट्ठी नहीं निकलती। स्त्रियों का रोग इकट्ठा चार दिन में निकल जाता है। क्योंकि अंततः तो दोनों के रोग एक जैसे हैं, निकलना तो पड़ेगा ही।

तो स्त्री चार दिन में थोक रूप से परेशान हो लेती है, पुरुष तीस दिन फुटकर रूप से परेशान रहता है। इसलिए पुरुष की पीड़ा कभी उतनी प्रगाढ़ नहीं दिखती जितनी स्त्री की दिखती है। लेकिन पुरुष की प्रफुल्लता भी उतनी प्रगाढ़ नहीं दिखती जितनी स्त्री की दिखती है। स्त्री की कोमलता, स्त्री का सौंदर्य, उसी मासिक धर्म के कारण है। वह जो मासिक धर्म सारे विषाद को, सारे जहर को बहा देता है, तो बाकी शेष महीने में स्त्री हल्की हो जाती है। पुरुष पूरे महीने उसी बेचैनी में रहता है। धीरे-धीरे करके उसकी बेचैनी निकलती है।

तो एक बात तो ख्याल रखना, अगर बेचैनी की पूरी मात्रा ख्याल में लो तो स्त्री-पुरुष में कोई भेद नहीं है, बेचैनी की मात्रा तो बराबर है। जैसे समझ लो कि सौ का आंकड़ा है, तो चार दिन में स्त्री सौ का आंकड़ा निकाल लेती है, और पुरुष को निकालने में तीस दिन लगते हैं। स्वभावतः रोज की मात्रा पुरुष पर कम पड़ती है, स्त्री की चार दिन में मात्रा बहुत हो जाती है। एक बात।

दूसरा पहलू बहुत कम देखा गया है। स्त्रियां भी नहीं देखतीं कि दूसरा पहलू भी छिपा है। स्त्रियों का जो गीत है, स्त्रियों का जो सौंदर्य है, स्त्रियों की जो कोमलता है, स्त्रियों का जो प्रसाद है, वह कहां से आ रहा है? वह चार दिन में जो निकल गया जहर, तो फिर से एकदम हल्कापन हो गया, बोझ उतर गया। अगर यह दूसरी बात भी ख्याल में रहे, तो चार दिन का बोझ बहुत बोझ नहीं मालूम पड़ेगा। उसका लाभ भी ध्यान में रखना जरूरी है, एक बात।

दूसरी बात, मासिक धर्म के कारण उतनी गड़बड़ी नहीं हो रही है, जितनी गड़बड़ी होती है स्त्रियों के शरीर-तादात्म्य के कारण। स्त्रियां अपने को बहुत शरीर मानती हैं, इतना पुरुष नहीं मानता। पुरुष अपने को मन के साथ तादात्म्य करता है। स्त्री अपने को शरीर के साथ तादात्म्य करती है।

इसलिए स्त्री की उत्सुकता शरीर में होती है, दर्पण के सामने खड़ी है घंटों! पुरुष को समझ में ही नहीं आता कि दर्पण के सामने अपनी ही सूरत घंटों देखने का क्या प्रयोजन है! घंटों वस्त्र सम्हाल रही है। ऐसा कोई मौका ही नहीं होता जब कि स्त्री समय पर कहीं पहुंच जाए, क्योंकि वह उसका बार-बार मन बदल जाता है कि दूसरी साड़ी पहन लूं, कि इस तरह कर लूं, कि उस तरह के बाल सजा लूं। पति हार्न बजा रहा है नीचे और वह तैयार ही नहीं हो पाती। हर तैयारी कम मालूम पड़ती है। स्त्री का शरीर-बोध बहुत प्रगाढ़ है।

मनुष्य के भीतर तीन तत्व हैं--आत्मा, मन और शरीर। पुरुष का रोग मन से जुड़ा है, स्त्री का रोग शरीर से जुड़ा है। इसलिए पुरुष के झगड़े और ढंग के होते हैं। पुरुष का झगड़ा होता है सिद्धांत का, शास्त्र का, हिंदू का, मुसलमान का, राजनीति का; इस विचार का, उस विचार का, हम इस विचार को मानते, तुम उस विचार को मानते। स्त्री को समझ में नहीं आता कि क्या बकवास कर रहे हो! अरे, कुरान मानो कि बाइबिल मानो, कुछ भी

मानो, रखा क्या है, सब बराबर है। असली सवाल तो शरीर है--सुंदर कौन है? कीमती साड़ी किसने पहनी है? बहुमूल्य हीरे-जवाहरात किसके पास हैं? यह बात सोचने जैसी है।

स्त्री इसमें बेचैन नहीं होती, जब एक दूसरी स्त्री उसके सामने से निकलती है, तो वह यह नहीं देखती कि यह हिंदू है कि मुसलमान है कि ईसाई है कि पारसी है, वह देखती है यह कि अच्छा, तो यह साड़ी इसने खरीद ली! तो ये गहने इसने बना लिए! तो मैं पिछड़ गयी! स्त्रियों की चर्चाएं सुनते हो? बैठकर जब वे चर्चाएं करती हैं तो वे इसी तरह की चर्चाएं हैं, बहुत शरीर से जुड़ी हैं, शरीर से बंधी हैं।

तो इस कारण अड़चन आती है। क्योंकि मासिक धर्म में शरीर बड़ी पीड़ा से गुजरता है और स्त्रियों का बहुत जोर शरीर से है कि हम शरीर हैं, इसलिए अड़चन होती है। अड़चन असली में मासिक धर्म के कारण नहीं हो रही है, शरीर के साथ जुड़े होने के कारण हो रही है।

तो अड़चन से बाहर होना हो तो धीरे-धीरे शरीर से अपना जोड़ कम करना चाहिए। यह बोध धीरे-धीरे लाना चाहिए कि मैं शरीर नहीं हूं। यह औषधि। खासकर मासिक धर्म के चार दिनों में तो निरंतर यह चिंतन और भाव करना चाहिए कि मैं शरीर नहीं हूं। बाकी समय भी यह चिंतन चलना चाहिए, यह भाव चलना चाहिए। यह भाव जितना घना होकर भीतर बैठ जाएगा कि मैं शरीर नहीं हूं--और इस भाव को घना करने के लिए जो-जो जरूरी हो, वह भी करना चाहिए।

इसलिए तो मैं कहता हूं, तुमने संन्यास ले लिया तो मैं कहता हूं, बस अब गैरिक वस्त्र पहनो, और बाकी सब रंग समाप्त हुए। अब इनका चिंतन न करना पड़ेगा, अब विचार न करना पड़ेगा। संन्यासी स्त्री का फायदा देखते हैं, जल्दी तैयार हो जाती है। कुछ तैयार होने को ज्यादा है नहीं। वह एक ही रंग है, रंगों में कोई चुनाव नहीं करना है, बहुत साड़ियां नहीं हैं।

स्त्रियां मेरे पास संन्यास लेने आती हैं, पुरुष लेने आते हैं, उनके रुकने के कारण अलग होते हैं। एक स्त्री ने कहा कि कैसे संन्यास लूं, तीन सौ साड़ियां हैं, इनका क्या होगा? किसी पुरुष ने अब तक मुझसे नहीं कहा कि इतने कपड़े हैं, इनका क्या होगा? उसका कारण दूसरा होता है। वह कुछ और कारण बताता है। लेकिन स्त्री का कारण सीधा-साफ है कि उसके पास तीन सौ साड़ियां हैं, ये सब बेकार चली जाएंगी अगर संन्यास ले लिया तो। फिर इनका क्या होगा? स्त्रियां मुझसे पूछती हैं, संन्यास लेने के बाद गहने इत्यादि पहन सकते कि नहीं?

तो जिन-जिन बातों से शरीर का तादात्म्य बढ़ता है--वस्त्र हैं, गहने हैं, सजावट है--उनको धीरे-धीरे विसर्जित कर दो। और तुम पाओगे कि मासिक धर्म का जितना प्रभाव था, वह उसी मात्रा में कम होने लगा जिस मात्रा में शरीर से जोड़ हटने लगा। शरीर के साथ अपने को थोड़ा शिथिल करो। शरीर के साथ जोड़कर अपने को मत देखो। शरीर से अपने को भिन्न देखो। और ऐसा कोई अवसर मत चूको जब शरीर से भिन्न देखने का मौका मिले, जरूर देख लो। दर्पण के सामने भी खड़े होकर यही ख्याल करो कि यह शरीर मैं नहीं हूं। तो कोई हर्जा नहीं, तीन घंटे दर्पण के सामने खड़े होना है तो खड़े रहो, मगर यही ख्याल करो कि यह शरीर मैं नहीं हूं। इस ख्याल की गहराई के बढ़ने के साथ ही साथ मासिक धर्म की पीड़ा एकदम कम होती चली जाएगी।

और तब तुम चकित होकर पाओगी कि जैसे-जैसे मासिक धर्म की पीड़ा कम हो गयी है, वैसे-वैसे मासिक धर्म का जो लाभ है, वह तुम्हें दिखायी पड़ना शुरू हो जाएगा। कि चार दिन में निपट गए, यह अच्छा ही है। यह समझदारी ही है। जल्दी निपट गए। माना कि आग तेज थी, मगर जल्दी निपट गए। बाकी दिन जो बचते हैं, वे ज्यादा सुख-शांति के हैं।

मासिक धर्म की बात कुछ नयी नहीं है। धर्म शास्त्रों में बड़ा विचार हुआ है। बुद्ध-महावीर को भी विचार करना पड़ा है। क्योंकि यह प्रश्न प्राचीन है। यह सदा से है। कोई आज की ही स्त्री शरीर से नहीं जुड़ गयी है, सदा से जुड़ी रही है। स्त्री का रोग है शरीर, पुरुष का रोग है मन। और चाहे तुम शरीर से जुड़े रहो, चाहे मन से, दोनों हालत में तुम आत्मा से चूकते हो। मन से जुड़े हो तो भी आत्मा से चूक जाओगे, शरीर से जुड़े हो तो भी आत्मा से चूक जाओगे।

पुरुष को छोड़ना है मन के साथ अपना लगाव, स्त्री को छोड़ना है तन के साथ अपना लगाव। दोनों को बराबर मेहनत करनी है। तन के साथ लगाव छोड़ने में उतनी ही मेहनत है जितनी मन के साथ लगाव छोड़ने में है। और दोनों से लगाव छूट जाने पर जो शेष रह जाता है, अ-लगाव की जो दशा, असंग दशा, वहीं आत्मबोध है। वही आत्मबोध स्वास्थ्य है।

पूछा है तुमने कि "स्वस्थ होने की कोई औषधि?"

स्वस्थ होने की एक ही औषधि है, इस बात की प्रतीति कि मैं आत्मा हूं--न शरीर, न मन। मन के रोग हैं, शरीर के रोग हैं।

तुम जानकर चकित होओगे, स्त्रियां कम पागल होती हैं पुरुषों की बजाय, संख्या पुरुषों की दुगुनी है। पुरुष दोगुने ज्यादा पागल होते हैं। क्यों? क्योंकि स्त्रियों का पागलपन थोक मात्रा में निकल जाता है, पुरुषों का पागलपन अटका रह जाता है। फिर स्त्रियां कम पागल होती हैं, क्योंकि उनका लगाव तन से है, तन थोड़े ही पागल होता है। पुरुष पागल होते हैं, क्योंकि उनका लगाव मन से है, मन पागल होता है। ज्यादा पुरुष आत्महत्याएं करते हैं--दुगुने पुरुष।

यह तुम्हें थोड़ी हैरानी होगी। क्योंकि आमतौर से तुम स्त्रियों को ज्यादा धमकी देते पाओगे आत्महत्या की। करतीं नहीं, धमकी देती हैं, उनकी धमकी की बहुत चिंता मत लेना। और अगर करती भी हैं तो इतने इंतजाम से करने की कोशिश करती हैं कि बचा ली जाएं। अगर नींद की गोली भी खाएंगी तो पांच-छह-सात से ज्यादा नहीं खातीं। वह सिर्फ धमकी है। दस स्त्रियां चेष्टा करती हैं आत्महत्या की, नौ बच जाती हैं। दस पुरुष चेष्टा करते हैं, पांच बच पाते हैं। पुरुष की चेष्टा, वह हिम्मत से घुस ही जाता है अंदर एकदम, फिर वह सोचता ही नहीं कि यह अब क्या करना है! वह बिल्कुल पागल हो जाता है।

दुगुने पुरुष आत्महत्या से मरते हैं, दुगुने पुरुष पागल होते हैं। और इस सबके मूल में मासिक धर्म का सहारा है स्त्री को। चार दिन में उसका सारा पागलपन निकल जाता है--रो लेती, धो लेती, पीड़ा में तड़फ लेती, सब तरह के विषाद से भर जाती, फिर हल्की हो जाती।

स्त्री का तन कष्ट पाता है, पुरुष का मन कष्ट पाता है। और कष्ट तो जारी रहेगा, जब तक आत्मा से जोड़ न हो जाए। फिर पुरुष का कष्ट हो, स्त्री का कष्ट हो, इससे कुछ फर्क नहीं पड़ता--बराबर हैं दोनों।

तो जैसे-जैसे तुम तन और मन से अपने को तोड़ते चलो, वैसे-वैसे स्वस्थ होते चलो। आत्मा में डूब जाना ही स्वस्थ होने का उपाय है।

चौथा प्रश्नः

आपके मौलिक विचारों से मैं बहुत प्रभावित हूं।

तो प्रश्न न हुआ, प्रशंसा हुई। और प्रशंसा की कोई जरूरत नहीं है।

प्रश्न हों तो पूछें, प्रशंसा हो तो मन में रख लें। उससे सार भी क्या? उसकी बात करने से होगा भी क्या?

तो पहली तो बात, कुछ ऐसी ही बात पूछें जो तुम्हारे लाभ की हो, जो तुम्हारे जीवन में कल्याणकारी हो, मंगलदायी हो।

दूसरी बात, मौलिक विचार होते ही कहां! हो कैसे सकते हैं! इस जगत में कुछ भी मौलिक हो कैसे सकता है! कितने-कितने अनंत लोग हो चुके। कितने-कितने अनंतकाल से मनुष्य ने सोचा है, विचारा है। क्या तुम सोचते हो, एकाध ऐसा विचार रह गया हो जो किसी मनुष्य ने न सोचा हो पहले? असंभव है।

लेकिन, सोचे गए विचार बार-बार खो जाते हैं। जब तुम उन्हें दुबारा सोचते हो तो ऐसा लगता है, वे मौलिक हैं। भूल जाते हैं, स्मृतियां खो जाती हैं। अब हमारे पास वेद तो है, वेद पांच हजार साल पुराना है, लेकिन पांच हजार साल पहले भी लोग सोच रहे थे, उसकी हमारे पास कोई संगृहीत किताब नहीं रह गयी। कुछ ऐसा थोड़े ही है कि वेद के पहले लोग सोच ही नहीं रहे थे, कि बिना सोचे बैठे थे--अगर बिना सोचे बैठे होते तो सब बुद्ध हो गए होते--सोच रहे थे, विचार रहे थे, खोज रहे थे। उन्होंने भी खूब सोचा होगा।

फिर यह भी ख्याल रखना कि बहुत थोड़े से लोग जो सोचते हैं उसे लिखते हैं। सोचते तो सभी लोग हैं, लिखते बहुत थोड़े से लोग हैं। जो लिखा हुआ है, उसमें से भी सब बचता नहीं, समय की धार में खो जाता है। फिर जो बचता है, समय के अनुसार रोज-रोज भाषा बदल जाती है, वह हमारी पकड़ में भी नहीं आता है। फिर जब दुबारा कोई आदमी आधुनिक भाषा में उसी बात को कहता है, हमें लगता है, नयी है, मौलिक है। मौलिक कुछ हो ही नहीं सकता, चांद-सूरज के तले सब पुराना है। नया क्या होगा! सब सनातन है।

लेकिन हमेशा ऐसा होता है। जब तुमने किसी स्त्री के प्रेम में पहली दफा प्रेम का अनुभव किया, तो तुमने भी सोचा होगा, ऐसा प्रेम पहले कभी नहीं हुआ, मौलिक है। लेकिन क्या तुम सोचते हो, यह तुम सोच रहे हो? हर प्रेमी यही सोचता है।

अगर गुलाब से भी पूछो कि उस पर जो फूल खिला है गुलाब का, तो वह भी कहेगा--ऐसा पहले कभी नहीं हुआ। उसको पता भी कहां है और गुलाबों में जो फूल खिले, और गुलाबों का पता कहां है! अनंत काल में अनंत गुलाबों पर फूल खिलते रहे हैं, उसको पता क्या है!

तो पहली तो बात, मौलिक हो भी क्या सकता है! मौलिक कुछ भी नहीं हो सकता! इसीलिए तो बुद्ध कहते हैंः एस धम्मो सनंतनो, यह सनातन धर्म है। बुद्ध कहते हैं, यह मैं कह रहा हूं, ऐसा मत सोचना; सदा से कहा गया है, यही कहा गया है, और सदा यही कहा जाएगा। यह सनातन है।

मैं माध्यम हूं

मौलिक विचार नहीं

खिले हुए फूल ही

नए वृंदों पर दुबारा खिलते हैं

आकाश पूरी तरह छाना जा चुका है

जो कुछ जानने योग्य था

पहले ही जाना जा चुका है

जिन प्रश्नों के उत्तर पहले नहीं मिले

उनका मिलना आज भी मुहाल है

चिंतकों का यह हाल है
कि वे पुराने प्रश्नों को
नए ढंग से सजाते हैं
और उन्हें ही उत्तर समझकर
भीतर से फूल जाते हैं
मगर यह उत्तर नहीं
प्रश्नों का हाहाकार है
जो सत्य पहले अगोचर था,
वह आज भी तर्कों के पार है

तो विचार तो मौलिक होते ही नहीं, हो ही नहीं सकते। मौलिक होने का उपाय ही नहीं है, क्योंकि जो विचार की तर्कसरणी है, वह भी उधार है। जो शब्द हैं, भाषा है, वह भी उधार है। विचार तो मौलिक नहीं हो सकते। फिर मौलिक क्या हो सकता है? शून्य का अनुभव। वही मौलिक है।

लेकिन मौलिक का तुम यह अर्थ मत लेना कि पहले नहीं हुआ, मौलिक का तुम और अर्थ लेना--मूल का, मौलिक, मूल से, जड़ों से। मौलिक का यह अर्थ मत लेना कि नया। मौलिक का यह अर्थ लेना कि जो तुम्हें हुआ है शून्य में, समाधि में, वह जड़ का अनुभव है, मूल का अनुभव है, उत्स का अनुभव है, स्रोत का अनुभव है। ऐसा नहीं कि पहले किसी को नहीं हुआ। बहुत बुद्ध हुए हैं, बहुत बुद्ध होंगे, बहुत बुद्ध होते रहे हैं, सभी उसी मूल पर पहुंचते हैं। मूल पर पहुंचते हैं तो मौलिक।

तो मैं जो तुमसे कह रहा हूं, वह मौलिक इस अर्थ में है कि मूल से कह रहा हूं। लेकिन नया है, इस अर्थ में मौलिक मत समझना।

और फिर तुम कहते हो कि "मैं आपके मौलिक विचारों से बहुत प्रभावित हूं।"

प्र्भावित होना कोई अच्छी बात नहीं। प्रभावित होना खतरनाक भी हो सकता है। मेरे विचारों से प्रभावित मत होओ। क्योंकि विचारों से प्रभावित होकर तुम करोगे क्या? विचारों का संग्रह कर लोगे, थोड़े ज्ञानी हो जाओगे, थोड़ी जानकारी जुटा लोगे। विचारों से प्रभावित होने में कोई सार नहीं है।

ज्यादा अच्छा होगा, तुम मुझसे प्रभावित होओ, मेरे विचारों से नहीं। तुम मेरी दशा से प्रभावित होओ, मेरे विचारों से नहीं। विचारों से तो तुम इतना ही इशारा लो कि जहां से ये विचार आ रहे हैं, उस दशा में मैं भी पहुंच जाऊं। विचारों को संगृहीत करने मत लग जाना। नहीं तो तुमने सागर के किनारे मोती छोड़कर शंख और सीपी बीन लिए। सागर की गहराई में डुबकी लगाओ।

मुझसे प्रभावित होने का मतलब है, जहां मैं हूं, वहां पहुंचने की चेष्टा में संलग्न हो जाओ। ये दोनों बातों में फर्क है। अगर तुम मेरे विचारों से प्रभावित हुए तो तुम विचारों को सम्हालने लगोगे, तिजोड़ी में बंद करने लगोगे, स्मृति में बिठाने लगोगे, उनको दोहराने लगोगे, दूसरों को बताने लगोगे। वह बहुत काम का नहीं है। उससे तुम पंडित हो जाओगे, प्रज्ञावान न हो सकोगे। उससे तुम विद्वान हो जाओगे, लेकिन तुम्हारे भीतर का वेद सोया का सोया पड़ा रह जाएगा। उससे तुम ज्यादा बुद्धिमान प्रतीत होने लगोगे, लेकिन वस्तुतः बुद्धिमान हो न जाओगे। तुम्हारी चेतना पर और थोड़ी धूल की पर्तें जम जाएंगी। तुम्हारा दर्पण और भी ढंक जाएगा। मैं यहां तुम्हारे दर्पण को ढांकने के लिए नहीं, उघाड़ने को हूं।

तो मेरे विचारों को तो तुम छोड़ो। मेरे विचारों का इंगित कहां है, किस तरफ है--निर्विचार की तरफ है--तो निर्विचार में उतरो।

इसको ख्याल में लेना, यह महत्वपूर्ण है।

जब मैं तुम से बोल रहा हूं तो तुम दो बातें कर सकते हो। तुम मेरे विचार पकड़ सकते हो। तो तुम चूक गए, तो तुम मुझसे चूक गए, तो तुम असली से चूक गए। तो तुमने गुठलियां बीन लीं और आम नहीं चूसे। तो तुम आम की गिनती करने लगे और आम नहीं चूसे। मैं तुमसे कहता हूं, आम चूस लो, गुठलियां बीनने से कुछ सार नहीं है। और आम गिनने में तो कुछ भी मतलब नहीं है।

बुद्ध बार-बार कहते थे कि एक गांव में एक आदमी था। वह अपने घर के सामने बैठा रहता, रोज सुबह गांव की सब गाएं-भैंसें गांव के बाहर जातीं, नदी के पार जातीं, फिर सांझ को लौटतीं घर, वह रोज गिनती करता रहता--कितनी गाय-भैंसें गयीं, कितनी आयीं? कभी-कभी चिंतित भी हो जाता कि दो सौ गयी थीं और एक सौ निन्यानबे लौटीं, एक कहां गयी!

बुद्ध कहते, वह आदमी पागल था। उसको कुछ लेना-देना नहीं, उसकी एक गाय नहीं, एक भैंस नहीं! मगर वह बैठा इसमें बड़ा उलझन में पड़ा रहता। और बुद्ध कहते, ऐसे ही वे लोग हैं जो दूसरों के विचार बैठ-बैठकर गिनती करते रहते हैं।

बुद्ध कहते थे कि मेरे विचार मत पकड़ना। अप्प दीपो भव। अपने दीए बनो। मेरा इशारा पकड़ो।

तो जब मैं तुमसे कहता हूं, मुझसे प्रभावित होओ, तो मैं यह कह रहा हूं कि मैं जहां खड़ा हूं, वहां से तुम भी खड़े होकर देखना शुरू करो। जो आकाश मुझे दिखायी पड़ रहा है, वह तुम्हें भी दिखायी पड़ सकता है। आकाश के संबंध में मेरे द्वारा कही गयी बातों को मत पकड़ लेना, उनसे मत प्रभावित हो जाना। क्योंकि मैं कितनी ही आकाश की स्तुति में गीत गाऊं, मेरी स्तुति आकाश नहीं है। और मैं कितना ही उस स्वाद की चर्चा करूं, मेरे शब्द तुम्हें उस स्वाद को न दे सकेंगे, वह स्वाद तुम्हें लेना पड़ेगा। मैं कितने ही जलस्रोतों के गीत गुनगुनाऊं, तुम्हारी प्यास न बुझेगी। तुम्हें जलस्रोत तक चलना पड़ेगा। और यह मैं जोर देकर कहना चाहता हूं, क्योंकि बहुत लोग विचारों से ही प्रभावित होकर समाप्त हो जाते हैं। ऐसी भूल तुम मत करना।

पांचवां प्रश्नः... चौथे से था.ेडा मिलता-जुलता है, इसलिए उसी के साथ समझ लेना उचित है...

कल के सूत्र में भगवान बुद्ध ने कहाः जैसे चंद्रमा नक्षत्र-पथ का अनुसरण करता है, वैसे ही धीर, प्राज्ञ, बहुश्रुत, शीलवान, व्रतसंपन्न, आर्य तथा बुद्धिमान पुरुष का अनुगमन करना चाहिए। और उनका ही यह प्रसिद्ध वचन भी हैः आत्म दीपो भव। क्या दोनों वक्तव्य परस्पर विरोधी नहीं हैं?

भी नहीं।

दो शब्द समझो--अनुगमन और अनुकरण।

अनुकरण के लिए नहीं कह रहे हैं बुद्ध, अनुगमन के लिए कह रहे हैं। अनुकरण का अर्थ होता है, जैसे बुद्ध उठते हैं, वैसे तुम उठो; जैसे बुद्ध बैठते हैं, वैसे तुम बैठो; जो बुद्ध खाते हैं, वह तुम खाओ; जो बुद्ध पीते हैं, वह तुम पीओ; यह अनुकरण। यह थोथा। इससे तुम बुद्ध जैसे दिखायी पड़ने लगोगे, लेकिन रहोगे बुद्धू के बुद्धू। नाटक हो जाएगा, हाथ सार न आएगा।

बुद्ध जैसे कपड़े पहन लो, बुद्ध जैसे चलने लगो, इसमें कोई बड़ी अड़चन तो नहीं है। थोड़ा सा अभ्यास चाहिए, ठीक बुद्ध जैसे बोलने लगो, बुद्ध जिन शब्दों का प्रयोग करते हैं, तुम भी करो, यह सब किया जा सकता है। यही लोग करते रहे सदियों से। यह अनुकरण, यह नकल। तुम कार्बन कापी हो गए। अप्प दीपो भव तुम न हो सके। तुम अपने दीए खुद न बन सके। तुमने बुद्ध के दीए का एक चित्र बना लिया, चित्र को छाती से लगाकर चलने लगे।

दीए के चित्र से रोशनी नहीं होती, ख्याल रखना। अंधेरा जब पड़ेगा तब तड़फोगे, क्योंकि वह दीए का चित्र रोशनी नहीं करेगा। अनुकरण थोथा है, ऊपर-ऊपर है। सतही है।

अनुसरण बड़ी और बात है। अनुसरण का अर्थ है, बुद्ध को गौर से देखो, बुद्ध के भीतर गहरे झांको, बुद्ध को खिड़की बना लो, उनके भीतर गहरे झांको, जहां उनका दीया जल रहा है, वह कैसे जला है? दीए का चित्र मत बनाओ, वह दीया कैसे जला है बुद्ध के भीतर? ऊपर-ऊपर की बातों को मत दोहराओ। कैसे बुद्ध चलते हैं, क्या फर्क पड़ता है।

ऐसा अक्सर होता है, यहां हो जाता है। मेरे पास जो लोग काफी दिन रहते हैं, वे ठीक वैसे ही उठने-बैठने-चलने लगेंगे। वे सोचते हैं कि कोई बहुत भारी बात हो रही है। कभी-कभी जानकर भी करते हैं, कभी-कभी अनजाने भी होता है। ऐसा भी नहीं कि वे जानकर ही करते हों, बहुत दिन पास रहेंगे तो संक्रामक हो जाते हैं। बात पकड़ ली ऊपर-ऊपर से, चलने लगे, उठने लगे, उसी ढंग से बात करने लगे जैसा मैं बोलता हूं--बोलते समय जैसा मेरा हाथ कुछ इशारे करता है, तो वे भी इशारे करने लगे। वे सोचते हैं कि यह तो बात हो गयी!

हाथ में कुछ भी नहीं है, हाथ के इशारे में कुछ भी नहीं है। इसको तुम सीख लो, तो भी कुछ न होगा। कहीं भीतर, जहां से यह इशारा आ रहा है, उस स्रोत को पकड़ो। अनुसरण का अर्थ है, बुद्ध का बुद्धत्व जहां से पैदा हो रहा है, जहां से ये किरणें आ रही हैं, उस मूलस्रोत में तुम भी उतरो। कैसे बुद्ध को यह दशा उत्पन्न हुई है, कैसे! उस उपचार से तुम भी गुजरो। वही समाधि, वही ध्यान। ऊपर का आचरण नहीं, अंतस बुद्ध का तुम्हारे भीतर भी निर्मित हो।

यही मैंने तुमसे कहा कि मेरे शब्दों से प्रभावित मत होओ, मुझसे। और जब मैं कह रहा हूं, मुझसे, तो ख्याल रखना, अनुकरण करने को नहीं कह रहा हूं, अनुसरण। समझो क्या हुआ है, तो तुम्हें कैसे होगा? फिर एक-एक कदम उस दिशा में उठाओ। तुम्हारे भीतर का दीया जल जाए, ठीक जैसा बुद्ध के भीतर जला है, तो अनुसरण। और तुमने एक तस्वीर बना ली कागज पर और तस्वीर छाती से लगाकर रख ली, तो अनुकरण।

विरोध दोनों बातों में नहीं है। जब बुद्ध कहते हैं, अनुगमन करो, और कहते हैं, आत्म दीपो भव, अपने दीए खुद हो जाओ, तो इनमें कोई विरोध नहीं है। यही तो मार्ग है आत्मदीप को जलाने का कि किसी जले हुए दीप की जीवन-व्यवस्था को समझ लो, उसकी जीवन-शैली को समझ लो। कैसे उसका दीया जला है, कैसे दो पत्थरों को टकराकर उसने अग्नि पैदा की है, कैसे भीतर के तेल को जन्माया है, कैसे ज्योति जलायी है, कैसी बाती बनायी है, उसको ठीक से समझ लो उसकी प्रक्रिया को, उसके विज्ञान को पूरा समझ लो। वह विज्ञान तुम्हारे पकड़ में आ जाए, वह सूत्र तुम्हारे पकड़ में आ जाए, तो अनुसरण।

उस सूत्र की तो तुम चिंता ही न करो... यहां हो जाता है, अभी रामप्रिया को हो गया है--एक इटालियन साधिका है। भली है, सीधी है, जानकर भी नहीं हुआ है, अजाने हो गया है, अचेतन में हो गया है। अब वह कहती है कि जो मैं खाता हूं वही वह खाएगी। अगर मैं कमरे में रहता हूं दिनभर तो वह भी कमरे से बाहर नहीं निकलती अब।

मैंने उसे बुलाकर कहा कि पागल, ऐसे न होगा। ऐसे तू पागल हो जाएगी। क्योंकि तू कमरे में तो बैठी रहेगी, लेकिन तेरा मन थोड़े ही इससे बदल जाएगा। तेरा मन तो घूमेगा, वह पागलपन जो थोड़ा बाहर निकलकर निकल जाता था वह निकल न पाएगा, तू पगला जाएगी--वह पगला रही है, मगर सुनती नहीं। वह सोचती है कि जैसा मैं करता हूं, ठीक वही उसे करना है। वही भोजन लेना है, उसी वक्त सोना है, उसी वक्त उठना है, उतनी ही देर कमरे में रहना है, न किसी से मिलना है न जुलना है, वह पागल हो जाएगी। उसे खींचने की कोशिश में लगा हूं कि वह बाहर निकले, क्योंकि इससे कुछ भी सार नहीं है।

यह हुआ अनुकरण। यह अनुसरण न हुआ। भीतर जाओ--कमरे में जाने से न होगा, भीतर जाने से होगा। जरूर एक दिन तुम्हारे भोजन में भी अंतर आएगा, क्योंकि जब तुम्हारी चित्तदशा बदलेगी तो तुम वही भोजन न कर सकोगे जो तुम कल तक करते रहे थे। कल तक अगर तुम मुर्गियां फटकारते रहे, तो नहीं फटकार सकोगे उतनी आसानी से, मुश्किल हो जाएगा। शराब पीते रहे, तो पीना मुश्किल हो जाएगी। यह बात सच है। तुम्हारा भोजन भी बदलेगा। लेकिन भोजन बदलने से तुम्हारी चेतना न बदलेगी। चेतना बदलने से भोजन बदलेगा। और जिस दिन तुम शांत हो जाओ, फिर तुम्हारी मर्जी, कमरे में बैठना तो, बाहर बैठना तो, जहां बैठोगे अकेले ही रहोगे, कोई फर्क न पड़ेगा। तुम्हारे एकांत को फिर कोई भी न छीन सकेगा। लेकिन कमरे में बैठने से एकांत पैदा न हो जाएगा। उलटे मत चलो। उलटे चलना आसान मालूम पड़ता है, इसलिए अधिक लोग उलटे चलने लगते हैं।

महावीर को ज्ञान हुआ, उनका दीया जला, उनका सूरज ऊगा, तो स्वभावतः लोगों को लगा कि हमको कैसे हो यह? कैसे हम ऐसा करें? महावीर नग्न खड़े थे तो वे भी नग्न खड़े हो गए। उन्होंने सोचा कि नग्नपन से होता है, दिगंबर हो गए।

अब कोई नंगे होने से था.ेडे ही महावीर का ज्ञान होता है! हां, महावीर का ज्ञान अगर हो जाए, फिर तुम्हारी मर्जी, तुम्हें नंगा होना पसंद पड़े तो नंगा हो जाना। क्योंकि बहुत महावीर हुए हैं इस जगत में, सभी नंगे नहीं हुए। उसी समय बुद्ध मौजूद थे, वे नंगे नहीं हुए। यह तो तुम्हारी मौज है। यह तो फिर तुम्हारी सुविधा-असुविधा की बात है, फिर तुम जानना।

लेकिन नग्न होने से तुम्हें ज्ञान उत्पन्न हो जाएगा, यह तो बड़ी ओछी बात हो गयी। ज्ञान इतना सस्ता तो नहीं है कि तुम नग्न खड़े हो गए तो ज्ञान उत्पन्न हो जाए! तो कितने नागा-साधु घूमते हैं मुल्क में! कुंभ के मेले में तुम जाकर उनके दर्शन कर लेते हो, उनमें तुम्हें महावीर जैसा कुछ भी न दिखायी पड़ेगा। लंपट सब तरह के। उनके जीवन में कोई ज्योति नहीं। तुम उनके चेहरों पर किसी तरह की शांति, आनंद का भाव न पाओगे। क्रोध, हिंसा, सब पाओगे। उन नागाओं के जो आश्रम हैं, वे अखाड़े कहलाते हैं। अखाड़े! यह कोई पहलवानी कर रहे हो! मारपीट में कुशल हैं वे। दंगा-फसाद में कुशल हैं। हर छोटी-मोटी बात पर जान देने और लेने को तैयार हैं!

नग्न होने से तो कुछ न होगा। इसीलिए तो कबीर ने कहा है कि अगर नग्न रहने से होता तो सभी पशु-पक्षी कभी के जिनत्व को उपलब्ध हो जाते। पशु-पक्षी तो नंगे ही घूम रहे हैं। उन्होंने तो कपड़े पहले ही से नहीं पहने हैं। नहीं, तो कपड़े के छोड़ने से कुछ नहीं हो जाएगा।

लेकिन मैं यह नहीं कह रहा हूं--कि हो जाए तो शायद तुम्हारे कपड़े छूट जाएं, वह अलग बात है। वह तो फिर तुम्हारी घटना से क्या ठीक-ठीक तालमेल खाएगा, वह फिर होता रहेगा।

महावीर शाकाहारी, तो लोगों ने सोचा, हम भी शाकाहारी हो जाएं, तो हमारा भी बोध ऐसे ही हो जाएगा। तो जैनी आज ढाई हजार साल से शाकाहारी हैं। ढाई हजार साल के शाकाहार में भी क्या हुआ है? कुछ

भी नहीं हुआ। एक जैन में और एक अजैन में क्या फर्क है? वैसा ही क्रोध उठता, वैसी ही वासना उठती, वैसी ही ईर्ष्या, वैसी ही हिंसा, वैसी ही घृणा, क्या हुआ है? ऊपर की बातें पकड़ना सुगम हो जाता है। यह बिल्कुल आसान है कि पानी छानकर पी लो, रात भोजन मत करो, इसमें क्या अड़चन है।

जरूर, महावीर रात भोजन नहीं करते थे, क्योंकि भीतर जो रोशनी उनके पैदा हुई थी, उस रोशनी में उन्हें यह उचित नहीं मालूम पड़ा कि रात भोजन किया जाए, उचित नहीं मालूम पड़ा कि पानी बिना छानकर पीया जाए, उचित नहीं मालूम पड़ा कि शाक-सब्जी के अतिरिक्त और कुछ भोजन किया जाए। उस चैतन्य दशा को तुम भी पाओ, फिर ये सारी चीजें तुम्हारे भीतर हो जाएं तो शुभ। लेकिन उलटे मत चलो।

बाहर से भीतर नहीं, भीतर से बाहर। बाहर को बदलकर भीतर को नहीं बदला जा सकता, लेकिन भीतर का केंद्र बदल जाए तो परिधि अपने आप बदल जाती है।

छठवां प्रश्नः

बुद्धत्व के अंतिम चरण में क्या मौन अनिवार्य घटना है, कृपा करके कहें।

में तो नहीं, अंतिम से एक चरण पूर्व मौन अनिवार्य है। अंतिम में तो फिर बोलना होगा। बुद्ध बोले, चालीस साल। हां, एक चरण पूर्व, मंदिर में प्रवेश के एक चरण पूर्व, एक सीढ़ी पहले मौन अनिवार्य है। जो मौन हुआ, वही मंदिर में प्रविष्ट होता है।

लेकिन जो मंदिर में प्रविष्ट हो गया, उसे फिर दौड़-दौड़ गांव-गांव, नगर-नगर, हृदय-हृदय को जाकर दस्तक देनी पड़ती है कि मैं जाग गया, तुम भी जाग सकते हो। फिर उसे बोलना पड़ता, कहना पड़ता। जैसे मौन अनिवार्य है मंदिर में प्रवेश के पूर्व, वैसे ही जब मौन में उपलब्ध हो गयी आत्मा, मौन में जान लिया स्वयं को, तो अभिव्यक्ति भी अनिवार्य है।

सभी ज्ञान को पहुंचे व्यक्ति मौन को उपलब्ध होकर ही पहुंचते हैं। लेकिन सभी ज्ञान को उपलब्ध व्यक्ति अभिव्यक्ति नहीं करते। इससे दुनिया की बड़ी हानि होती है। अगर सभी ज्ञान को उपलब्ध व्यक्ति, जो उन्होंने जाना है, उसे कहने की चेष्टा करें--यह जानते हुए भी कि कहना बहुत मुश्किल है, और कह भी दो तो समझने को कौन तैयार है, समझना और भी मुश्किल है। यह जानते हुए भी दीवालों से चर्चा करने के लिए जो बुद्धपुरुष आए, उनकी करुणा महान है। यह जानते हुए कि जो जाना है उसे कहना मुश्किल, फिर किसी तरह बांध-बूंधकर कह भी दो, सम्हाल-सम्हूलकर किसी तरह कह भी दो, तो जो सुन रहा है, उसका समझना मुश्किल। फिर भी सौ से कहो तो शायद कभी कोई एक समझ लेता है, सौ बार कहो तो शायद कभी कोई एक बार समझ लेता है, इसलिए कहे जाओ।

इसलिए बुद्ध बयालीस साल तक सतत बोलते रहे। सुबह, दोपहर, सांझ। सारा बौद्ध वचनों का संकलन किया जाता है तो भरोसा नहीं आता कि एक आदमी इतना बोला होगा! लेकिन यह घटना घटी मौन से। मौन से ही यह परम मुखरता घटी। पहले तो शून्य घटता है, शून्य में अनुभव होता है, फिर अनुभव शब्द बनकर बिखरना चाहता है, बंटना चाहता है। जो बुद्धत्व को उपलब्ध व्यक्ति अभिव्यक्ति देता है, वही सदगुरु हो जाता है।

बहुत से लोग अर्हत हो जाते हैं। उन्होंने पा लिया सत्य को, फिर गुपचुप मारकर बैठ जाते हैं, चुप हो जाते हैं। कबीर ने कहा न--हीरा पायो गांठ गठियायो, वाको बार-बार क्यूं खोले। अब हीरा मिल गया, जल्दी से गांठ बांधकर चुप्पी साधकर बैठ गए, अब उसको बार-बार क्या खोलना है! ठीक है, यह बात भी ठीक है, किसी को ऐसा लगता है तो वह ऐसा करेगा।

लेकिन बुद्धपुरुष उसे बार-बार खोलते हैं--सुबह खोलते, दोपहर खोलते, सांझ खोलते, जो आया उसी को खोलकर बताते, हीरा पायो, उसको गांठ नहीं गठिया लेते, कहते हैं कि देख भई, यह हीरा मिल गया; तुझे भी मिल सकता है। हालांकि यह हीरा ऐसा है कि कोई किसी को दे नहीं सकता, नहीं तो बुद्धपुरुष इसको दे भी दें। यह हीरा ऐसा है कि इसका हस्तांतरण नहीं हो सकता। यह अगर बुद्धपुरुष दे भी दें तो तुम्हारे हाथ में जाकर कोयला हो जाएगा।

तुम्हें पता है? कोयला और हीरा एक ही तरह के रासायनिक द्रव्यों से बनते हैं। कोयले और हीरे में कोई रासायनिक भेद नहीं है। कोयला ही लाखों साल तक जमीन के दबाव के नीचे पड़ा-पड़ा हीरा हो जाता है--कोयला ही। आज नहीं कल वैज्ञानिक विधि खोज लेंगे कोयले पर इतना दबाव डालने की कि जो बात लाखों साल में घटती है, वह क्षणभर में दबाव के भीतर हो जाए, तो कोयला हीरा हो जाएगा। और अगर हीरे पर से जो लाखों साल में दबाव पड़ा है, उसे निकालने का कोई उपाय हो, तो तत्क्षण हीरा कोयला हो जाएगा। तो कोयला और हीरा अलग-अलग नहीं हैं।

बुद्धपुरुषों ने जन्मों-जन्मों में जो खोजा है, जो दबाव डाला है कोयले पर, उसके कारण वह हीरा हो गया है। वह हीरा उनके हाथ में ही हीरा है। जैसे ही तुम्हारे हाथ में गया, दबाव निकल जाता है--तुम्हारा तो कोई दबाव है नहीं--वह कोयला हो जाता है। इसलिए इस हीरे को दिया तो जा नहीं सकता, लेकिन दिखाया तो जा सकता है; तुम्हें बताया तो जा सकता है कि ऐसा होता है, यह है, देख लो, यह तुम्हारे भीतर भी हो सकता है! एक दिन मेरे भीतर भी नहीं था, मैं भी कोयले को ही ढोता रहा, लेकिन फिर यह अपूर्व घटना घटी, यह चमत्कार हुआ, यह तुम्हारे भीतर भी हो सकता है। जैसे मेरे भीतर हुआ, वह विधि मैं तुमसे कह देता हूं।

तो सदगुरु तो उस गांठ को खोलता रहेगा। कबीर ने दूसरे अर्थ में कहा है। उन्होंने कहा है साधक के लिए, शुरू-शुरू में ऐसा नहीं करना चाहिए। कबीर का मतलब यह है कि जब शुरू-शुरू में ध्यान लगना शुरू हो, तो जल्दी-जल्दी खोल-खोलकर गांठ मत दिखाना, नहीं तो उड़ जाए पक्षी। शुरू-शुरू में मत करना जल्दी बताने की। होता है मन बताने का, कि कह दें किसी को कि ऐसा हुआ।

तुमने कभी ख्याल किया? जो लोग ध्यान कर रहे हैं ठीक से, उनको कई बार अनुभव में आएगा, खूब रस आ रहा था ध्यान में और तुमने किसी से कहा और फिर दूसरे दिन रस नहीं आता--पक्षी उड़ गया। कहने में ही भूल हो गयी। तुमने कहकर जो मजा ले लिया, उससे अहंकार थोड़ा मजबूत हो गया। तुमने किसी को कहा कि ध्यान में गजब का अनुभव हुआ, कि कुंडलिनी जगी, कि रोशनी उठी, कि तीसरी आंख खुलती हुई मालूम पड़ी!

तुम जब कह रहे थे, तब तुम्हें ख्याल भी नहीं था, तुम तो सिर्फ आंदोलित थे, आनंदित थे। तुमने कह दिया, पत्नी को कह दिया, पति को कह दिया, मित्र को कह दिया, सोचा भी नहीं था, लेकिन कहते-कहते तुम्हारे भीतर अहंकार निर्मित हो गया। तुम्हें एक अकड़ आ गयी कि देखो, एक हम एक तुम! कहां पड़े कूड़े-कचरे में! अभी तक संसार में ही उलझे हो! ऐसा तुमने कहा भी न हो ऊपर से, लेकिन ऐसी एक लहर भीतर दौड़ गयी कि अभी तक पड़े हो गंदगी में! एक हम देखो, एक तुम! जरा हमारी तरफ देखो! एक पवित्रता का भाव आ गया कि हम कुछ संत हो गए।

बस, उसी भाव में गड़बड़ हो गयी। दूसरे दिन ध्यान करने बैठोगे, न कुंडलिनी जगती, न रोशनी आती है, न तीसरी आंख का कोई पता चलता है, तुम बड़े हैरान होते हो कि बात क्या हो गयी! बहुत कोशिश करते हो, चेष्टा करते हो और छूट-छूट जाती है बात। कबीर ने उनके लिए कहा है--हीरा पायो गांठ गठियायो, वाको बार-बार क्यूं खोले।

लेकिन जब हीरा पक गया--हीरा पक गया इसका अर्थ होता है, जब अहंकार के पैदा होने की कोई संभावना ही न रही। कि अब सारी दुनिया आ जाए और इस हीरे को देख ले तो भी तुम्हारे भीतर कोई अस्मिता निर्मित नहीं होती; क्योंकि तुम जानते हो कि यह हीरा सबके भीतर पड़ा है, यह कोई विशिष्टता की बात नहीं है।

बुद्ध ने कहा है, जिस दिन मैं ज्ञान को उपलब्ध हुआ, मेरे लिए सारा संसार ज्ञान को उपलब्ध हो गया। यह बड़ी अनूठी बात कही है। इसे मैं अपने अनुभव से गवाही भी देता हूं कि यह बात सच है। यह मैं भी तुमसे कहता हूं कि जिस दिन मैंने जाना, उस दिन मैंने यह भी जान लिया कि सब जान चुके। क्योंकि जिस दिन पाया जाता है, उस दिन पता चलता है, सबके भीतर यह हीरा पड़ा है। तुम्हें पता न हो, यह दूसरी बात, लेकिन हीरा तो पड़ा ही है। तुम्हें न दिखता हो, मुझे तो दिखता है। जिसे अपना हीरा दिख गया, उसे सबके भीतर के हीरे दिखायी पड़ गए। जिसकी आंखें रोशनी देखने में समर्थ हो गयीं, उसकी आंखें सबकी रोशनी देखने में समर्थ हो गयीं।

बुद्ध का यह वचन महत्वपूर्ण है कि जिस दिन मैं ज्ञान को उपलब्ध हुआ, मेरे लिए सारा जगत ज्ञान को उपलब्ध हो गया। उस दिन के बाद कोई अज्ञानी है ही नहीं।

तो फिर बुद्ध समझाते क्या हैं? बुद्ध को कोई पूछता है कि अगर ऐसा है कि आप अब जानते हैं कि सभी ज्ञानी हो गए, तो आप समझाते क्या हैं? तो बुद्ध कहते हैं, यही समझाता हूं कि लोग अपने को अज्ञानी माने बैठे हैं, मैं उनको यही समझाता हूं कि अज्ञानी तुम नहीं हो, ज्ञानी हो। मुझे कुछ समझाने को नहीं बचा है, मेरे लिए तो बात साफ हो गयी कि सब ज्ञानी हैं। मगर वे जो ज्ञानी हैं, वे अपने को अज्ञानी माने बैठे हैं। उनकी मान्यता तोड़नी है।

लेकिन जब परम अवस्था घटती है, तब भी कुछ लोग गांठ बांधे रहे जाते हैं। उनसे भी कुछ कहा नहीं जा सकता। इसलिए सारे धर्मों ने दो भेद किए हैं। जैनों ने भेद किया है, एक को वे कहते हैं--केवली जिन। जिसने जान लिया, जिनत्व को उपलब्ध हो गया, समाधि को परिपूर्ण पा लिया, लेकिन चुप्पी साधकर रह गया, फिर कुछ बोला नहीं। उसको कहते हैं--केवली जिन। वह केवलत्व को उपलब्ध हो गया, बस, गया शून्य में, महाशून्य में चला गया।

दूसरे को कहते हैं--तीर्थंकर। तीर्थंकर का अर्थ है, जो खुद पाया और फिर दूसरों के लिए घाट बनाने लगा कि यहां से तुम भी उतरो। तीर्थ यानी घाट। यह भवसागर, इस पर घाट बनाने लगा। और कहा कि यहां से तुम भी अपनी नाव छोड़ो। हम तो पहुंच गए बिना घाट के--लेकिन बिना घाट के नाव छोड़ना सदा खतरनाक होता है--हम तो बिना घाट के भी तर गए किसी तरह, लेकिन अब तुम्हारे लिए सीढ़ियां डालकर, ठीक से पाटकर घाट बना देते हैं, अब तुम अपनी नाव को यहां से ले जाओ। तो इसको कहते हैं तीर्थंकर, जो दूसरों के लिए घाट बनाता।

बौद्धों ने भी दो शब्द उपयोग किए हैं। एक को कहते--अर्हत। अर्हत का अर्थ होता है, जिसने पा लिया, जिसके सारे शत्रु समाप्त हो गए--अरिहंत, या अर्हत। अपने शत्रुओं को जीत चुका और फिर चुप्पी मारकर बैठ गया।

दूसरे को कहते हैं--बोधिसत्व। जो ज्ञान को पा लिया और अब बांटने निकल पड़ा। अब वह कहता है, जो मिला है वह बांट भी दूं। अपनी बात तो पूरी हो गयी, जो जानना था जान लिया, लेकिन बहुत हैं अभी जिनको इसका कुछ पता नहीं है, उनको जगाने चल पड़ा।

दोनों बातें महत्वपूर्ण हैं, जब शुरू-शुरू में ध्यान की किरण उतरे तो कबीर की सुनना; वह साधक के लिए बात है। और जब किरण उतर जाए, सूरज ऊग जाए, फिर कबीर की बात मत सुनना; फिर तो जहां कोई मिल जाए, माने चाहे न माने, चाहे देखे चाहे न देखे, तुम पट से अपनी गांठ खोलकर उसको हीरा तो दिखा ही देना! वह चाहे इंकार करे, चाहे वह लाख चिल्लाए कि क्षमा करो, मुझे नहीं देखना, कि मैं फिर देखूंगा, अभी मेरा समय नहीं है, अभी मैं बाजार जा रहा हूं, मेरी पत्नी बीमार है, तुम कहना कि कोई फिकर नहीं, मगर देख तो लो, फिर मिलना हो न मिलना हो! मगर तुम्हें याद रह जाएगी कि हीरा होता है, हीरा घटता है। और मुझ जैसे साधारण आदमी को घट गया, तुम्हें भी घट सकता है।

आखिरी प्रश्नः... बहुत से प्रश्न पूछे हैं इन मित्र ने। सार में मैंने दो प्रश्न बना लिए हैं। एक तो पूछा है...

आप विश्वविद्यालय में आचार्य थे तब आनंदित और प्रतिष्ठित थे कि अब?

तो मैं तब भी था, आनंदित अब भी हूं, प्रतिष्ठित तब भी नहीं था और अब भी नहीं हूं। प्रतिष्ठा मेरे भाग्य में नहीं।

मगर आनंद मिल गया हो तो कौन फिकर करता है प्रतिष्ठा की! प्रतिष्ठा तो वही खोजते हैं, जिन्हें आनंद न मिला हो। प्रतिष्ठा का मतलब होता है कि हमें भीतर तो कुछ नहीं मिला, तो चलो बाहर के लोग ही कुछ प्रतिष्ठा दे दें, उससे ही शायद थोड़ा सा लगे कि कुछ पा लिया है। प्रतिष्ठा का अर्थ होता है, दूसरे हमें था.ेड़ा भर दें, हम तो खाली हैं। दूसरे कहें, आप सुंदर; दूसरे कहें, आप शुभ; दूसरे कहें, आप शिव; दूसरे कहें, आप साधु--दूसरे कह दें; हम तो भीतर खाली हैं। अगर दूसरे न कहेंगे, तो हमारे भीतर तो कुछ भी नहीं है। प्रतिष्ठा का मतलब होता है, उधार, कोई कह दे।

तो प्रतिष्ठित तो मैं तब भी नहीं था, अब भी नहीं हूं। प्रतिष्ठा मेरा भाग्य भी नहीं और प्रतिष्ठा में मुझे रस भी नहीं। जिसमें रस था वह तब भी था, अब भी है।

हां, अगर तुम पूछते हो, शायद तुम्हारा मतलब यही हो कि कुछ फर्क पड़ा कि नहीं? फर्क पड़ा है। आप महात्माओं से सत्संग तब नहीं होता था, अब करना पड़ता है! बस इतना ही फर्क पड़ा है, और तो कोई खास फर्क नहीं पड़ा।

दूसरा पूछा हैः

आपने ऐसा क्या किया जिससे कि आप भगवान हो गए?

से कोई भगवान थोड़े ही होता है, भगवान होना हमारा स्वभाव है। जब तुम करना-धरना छोड़कर अपने भीतर देखते हो, पाते हो-- भगवान हम हैं! इसका करने से कोई संबंध नहीं। तुम शायद सोचते होगे, कितने उपवास किए, कितनी दंड-बैठक लगायी, कितना शीर्षासन किया, कितना आसन-व्यायाम किया, कितना भजन-कीर्तन किया--तुम शायद इस तरह का कुछ पूछ रहे हो कि किया क्या, जिससे आप भगवान हो गए?

करने ही से तुम चूक रहे हो। कर-करके चूक रहे हो। क्योंकि भगवान होना हमारा होना है, इसके लिए कुछ करने की जरूरत नहीं, भगवान तुम हो। लाख तुम उपाय करो तो भी तुम कुछ और हो न सकोगे। हर उपाय असफल जाएगा। इसीलिए तो जीवन में तुम रो रहे हो, क्योंकि हर उपाय असफल जा रहा है। कुछ भी करते हो, सफल होता नहीं। हो ही नहीं सकता। क्योंकि जो तुम हो, उसे जब जानोगे तभी तृप्ति होगी। और तुम कुछ भी होने की कोशिश करते रहो, कुछ भी कभी तुम हो न पाओगे। सिर्फ समय जाएगा, जीवन व्यतीत होगा, व्यर्थ श्रम होगा, परिणाम कभी हाथ न लगेगा। तुम रेत से तेल निचोड़ रहे हो।

तो तुम पूछते हो, "आपने ऐसा क्या किया?"

तुम्हारी धारणा ऐसी है कि कुछ उलटा-सीधा करो, तो आदमी भगवान होता है। फिर तुम समझे ही नहीं। भगवान तो स्वभाव की घोषणा है। न कुछ करते-करते, न कुछ करते-करते जब तुम्हारी सारी जीवन चेतना सब तरह के संसरण से, संसार से छूट जाती है, दौड़ से छूट जाती है, भीतर रमे रह गए, ठगे खड़े रह गए, जरा भी कल्पना नहीं उठती कि यह करें, जरा भी भाव नहीं उठता कि यह हो जाएं, जरा भी दौड़ की लहर नहीं उठती कि वहां पहुंच जाएं--यहां और अभी जब तुम शांत विश्राम में पड़े रह गए--उसी घड़ी प्रगट हो जाती है बात, तुम्हारी भगवत्ता प्रगट हो जाती है। भगवान तुम्हारे भीतर पड़ा है, तुम्हारी झोली में पड़ा है।

इसलिए यह बात तो पूछो ही मत कि क्या करके। ऐसा पूछो कि आपने क्या-क्या करना छोड़ा जिससे भगवान हो गए, तो बात अर्थ की होगी। होने की आकांक्षा छोड़ी, होने के विचार छोड़े, अंग्रेजी में जिसको कहते हैं--बिकमिंग, यह हो जाऊं, वह हो जाऊं, ऐसी सारी धारणा छोड़ी। जो हूं, ठीक हूं। जो हूं, उससे राजी हूं। जो हूं, जैसा हूं, यही परम नियति है, यही मेरा स्वभाव है। इस होने में रमा, कुछ और होने की आकांक्षा न रही, उसी क्षण, उसी क्षण, तत्क्षण प्रगट हो जाती है भगवत्ता। तुम अचानक पाते हो, तुम्हारे हृदय-कमल पर भगवान विराजमान हैं। और ऐसा नहीं कि तुमसे अलग विराजमान हैं, तुम ही हो, अहं ब्रह्मास्मि।

आज इतना ही।

तिहत्तरवां प्रवचन

आदमी अकेला है

अयोगे युंजमत्तानं योगस्मिंच अयोजयं।
अत्थं हित्वा पियग्गाही पिहेतत्तानुयोगिनं।। 183।।

मा पियेहि समागिंछ अप्पियेहि कुदाचनं।
पियानं अदस्सनं दुक्खं अप्पियानंच दस्सनं।। 184।।

तस्मा पियं न कयिराथ पियापायो हि पापको।
गंथा तेसं न विज्जन्ति येसं नत्थि पियाप्पियं।। 185।।

पियतो जायते सोको पियतो जायते भयं।
पियतो विप्पमुत्तस्स नत्थि सोको कुतो भयं।। 186।।

तण्हाय जायते सोको तण्हाय जायते भयं।
तण्हाय विप्पमुत्तस्स नत्थि सोको कुतो भयं।। 187।।

छंदजातो अनक्खातो मनसा च फुटो सिया।
कामेसु च अप्पटिवद्धचित्तो उद्धसोतो ति बुच्चति।। 188।।

शाम है दर्द है हम हैं और तनहाई
जिंदगी टूटा हुआ क्रम है और तनहाई
कहने को लोग हैं खुशियां हैं तमन्नाएं हैं
न कोई दोस्त न हमदम है और तनहाई
कोई आता है आ रहा है आएगा शायद
खूबसूरत ये हमें भ्रम है और तनहाई
उनके मिलते ही बिछुड़ने की कोई बात करो
रात है घिरता हुआ तम है और तनहाई
क्या करें किसको पुकारें और कहां जाएं हम
आंख हर एक यहां नम है और तनहाई

आदमी अकेला है। और इस अकेलेपन के कारण दो यात्राओं पर आदमी जा सकता है। एक यात्रा है समाज की और एक यात्रा है संन्यास की। दोनों पैदा होते हैं अकेलेपन से, तनहाई से। अकेला आदमी या तो अपने को

भुलाने के लिए दूसरों का साथ खोजे, भीड़ खोजे, संबंध खोजे, संग खोजे, नाता-रिश्ता खोजे--पत्नी में, पति में, बच्चों में, मित्रों में, परिवार में अपने को डुबा ले, भूल जाए कि मैं अकेला हूं, तो समाज की यात्रा शुरू हुई।

लेकिन ऐसे कोई कभी भूल नहीं पाता। बार-बार तनहाई उभर-उभरकर निकलती रहती है। जगह-जगह से छेद हो जाते हैं और जगह-जगह से दिखायी पड़ता है वह सत्य, जिसे हमने झुठलाने की कोशिश की है। लाख पत्नी हो, पति हो, मित्र हों, प्रियजन हों, फिर भी तुम होते तो अकेले ही हो। अकेलेपन को इतने जल्दी मिटा देने का कोई उपाय नहीं। इतने सस्ते में अकेलापन जाता होता तो आदमी सुखी हो गया होता। नहीं जाता है। अक्सर तो ऐसा होता है कि भीड़ तुम्हें और भी अकेला कर जाती है। भीड़ और अकेलेपन को उभार-उभारकर बताने लगती है। जितना तुम भुलाने की चेष्टा करते हो, उतनी और याद आती है।

तो एक तो समाज, संग-साथ, इनके द्वारा आदमी अपने को भुलाने की कोशिश करता है। और दूसरा, संन्यास। संन्यास का अर्थ है, अकेलेपन को किसी के संग-साथ में भुलाना नहीं है, बल्कि अकेलेपन को जानना है कि क्या है। अकेलेपन में उतरना है, सीढ़ियां लगानी हैं। पहचानना है अपने को कि मैं कौन हूं जो अकेला है। और पहचानना है कि यह क्या है जो अकेलापन है।

जो आदमी इस अकेलेपन को पहचानने चलता है, एक दिन पाता है, यह अकेलापन कैवल्य है। यह अकेला होना हमारा स्वभाव है। और इस अकेले होने में कोई पीड़ा नहीं है, कोई दुख नहीं है। यह अकेला होना आनंद है। यह अकेला होना हमारी स्वतंत्रता है, मुक्ति है, मोक्ष है।

तो समाज और संन्यास, दोनों पैदा होते हैं एक ही तथ्य से। और वह तथ्य है--तनहाई, अकेलापन, एकाकीपन। अगर भुलाने की कोशिश की तो भीड़ में खो जाओगे। और अपने से दूर और दूर निकलते जाओगे। और जितने दूर निकलोगे उतनी पीड़ा बढ़ जाएगी, क्योंकि अपने से दूर जाना ही पीड़ा है। अगर संन्यास में उतरे, अपने एकांत को ध्यान बनाया; एकांत एकांत है, अकेलापन नहीं; एकांत का सौंदर्य है, एकांत में कोई पीड़ा नहीं, ऐसी तुमने व्याख्या बदली और तुम धीरे-धीरे अपने रस में डूबे, अपने होने में डूबे, तुमने अपने में मजा लिया... ।

दूसरे में मजा लेना समाज। मिलता कभी नहीं, लगता है मिलेगा, मिलेगा--

कोई आता है आ रहा है आएगा शायद

खूबसूरत ये हमें भ्रम है और तनहाई

कोई कभी आता नहीं। द्वार खोले तुम बैठे रहते हो, कोई कभी आता नहीं। आएगा शायद, इस आशा में आंखें थक जाती हैं, फूटी हो जाती हैं। इस आशा में जीवन चुक जाता है, मौत आ जाती है और कोई नहीं आता। और इस आशा में वह परम अवसर चूक जाता है जिसमें तुम अपने भीतर जा सकते थे।

ख्याल करो, अगर तुम्हें अपने साथ आनंद नहीं मिल रहा है तो किसके साथ आनंद मिल सकेगा! अगर अपने साथ भी तुम मौज में नहीं हो सकते तो किसके साथ मौज में हो सकोगे! और दूसरा जो तुमसे संबंध बनाने आएगा, वह भी इसीलिए संबंध बनाने आया है, कि वह भी अकेलेपन से घबड़ा रहा है। वह भी अकेले में आनंदित नहीं है, तुम भी अकेले में आनंदित नहीं हो। दो दुखी आदमी अपने-अपने से घबड़ाकर एक-दूसरे में डूबने की कोशिश कर रहे हैं, दुख दुगुना हो जाएगा। दुगुना नहीं अनेक गुना हो जाएगा--गुणनफल हो जाएगा। दो दुखी आदमी जुड़कर कैसे सुख पैदा कर सकते हैं! दो दुख मिलकर सुख बनते हैं, ऐसा तुमने कहां पढ़ा? किस गणित में पढ़ा? तुमने गणित ही गलत पढ़ लिया है। मगर यह हमारे जीवन का गणित है, ऐसे ही हम सोचते हैं।

तुम अकेले हो तो सोचते हो, विवाह कर लो। फिर भी दुख। तो सोचते हो, एक बेटा पैदा हो जाए। फिर भी दुख। तो सोचते हो, एक बहू बेटे को मिल जाए। फिर भी दुख। सोचते हो, अब बेटे को बेटा पैदा हो जाए। ऐसे चलता है। दुख घटता नहीं, बढ़ता है। क्योंकि ये जितने लोग बढ़ते जा रहे हैं, ये सब अकेले में दुखी हैं।

संन्यास का अर्थ होता है, अगर आनंद घट सकता है तो अपने में घट सकता है, और कहीं भी नहीं घटेगा। ये आज के सूत्र इस संबंध में हैं।

पहला सूत्र, सूत्र के पूर्व वह कथा, जहां बुद्ध ने यह सूत्र कहा--

एक युवक बुद्ध से दीक्षा लेकर संन्यस्त होना चाहता था। युवक था अभी, बहुत कच्ची उम्र का था। जीवन अभी जाना नहीं था। लेकिन घर से ऊब गया था, मां-बाप से ऊब गया था--इकलौता बेटा था। मां-बाप की मौजूदगी धीरे-धीरे उबाने वाली हो गयी थी। और मां-बाप का बड़ा मोह था युवक पर, ऐसा मोह था कि उसे छोड़ते ही नहीं थे। एक ही कमरे में सोते थे तीनों। एक ही साथ खाना खाते थे। एक ही साथ कहीं जाते तो जाते थे।

थक गया होगा, घबड़ा गया होगा। संन्यास में उसे कुछ रस नहीं था, लेकिन ये मां-बाप से किसी तरह पिंड छूट जाए। और कोई उपाय नहीं दिखता था। तो वह बुद्ध के संघ में दीक्षित होने की उसने आकांक्षा प्रगट की। मां-बाप तो रोने लगे, चिल्लाने-चीखने लगे। यह तो बात ही, उन्होंने कहा, मत उठाना। उनका मोह उससे भारी था।

लेकिन जितना उनका मोह, उतना ही वह भागा-भागा रहने लगा। जितने जोर से तुम किसी को पकड़ोगे, उतना ही वह तुमसे भागने लगेगा। आखिर एक रात वह चुपचाप घर से भाग गया। दूर कहीं जहां बुद्ध विहार करते थे, उसने जाकर दीक्षा भी ले ली, भिक्षु हो गया। बाप ने बड़ी खोजबीन की, सब जगह खोजा, फिर उसे याद आया कि वह भिक्षु होने की कभी-कभी बात करता था कि संन्यस्त हो जाऊंगा, तो वह बुद्ध की तलाश में गया। मिल गया बेटा वहां। बाप ने तो बहुत रोना-धोना किया, छाती पीटी, कपड़े फाड़ डाले, लोटा जमीन पर। लेकिन बेटा, जितना बाप रोया-चिल्लाया, उतना ही मजबूती से जिद्द बांध लिया कि मैं यहां से जाऊंगा नहीं।

आखिर कोई और उपाय न देखकर बाप भी भिक्षु हो गया। बेटे को छोड़ तो सकता नहीं था, तो उसने भी संन्यास ले लिया। फिर उसकी पत्नी और बेटे की मां, वह कुछ दिन तक तो राह देखी, बाप घर लौटा नहीं, तो वह उसकी तलाश में निकली। उसे भी ख्याल आया कि बेटा कभी-कभी कहता था भिक्षु हो जाऊंगा, कहीं भिक्षु न हो गया हो। वह वहां पहुंची तो वह देखकर चकित रह गयी--बेटा ही भिक्षु नहीं हो गया है, बाप भी भिक्षु हो गया है! वह बहुत रोयी-पीटी, चिल्लायी, लोटी, बड़ा शोरगुल मचाया, बड़ी भीड़ जमा कर ली। बाप तो जाने को राजी था, लेकिन वह बेटा कहे कि मैं जा नहीं सकता। आखिर कोई और उपाय न था तो मां भी दीक्षित हो गयी। वे तीनों संन्यासी हो गए।

अब यह संन्यास बड़ा अजीब हुआ। बेटे को संन्यास में कोई रस न था, घर में विरस था। बाप को तो संन्यास से कुछ लेना-देना ही नहीं था, वह बेटे का साथ नहीं छोड़ सकता था। और स्वभावतः पत्नी कहां जाए! तो वह भी संन्यस्त हो गयी थी।

वे तीनों साथ ही साथ बने रहते। वे साथ ही साथ डोलते, साथ ही साथ बैठते, साथ ही साथ भिक्षा मांगने को जाते, साथ ही साथ बैठकर गपशप मारते। उनका संन्यास और न संन्यास तो सब बराबर था। न ध्यान, न धर्म, न साधना, न कोई सिद्धि, इससे उन्हें कुछ लेना-देना नहीं था। बुद्ध के वचन भी सुनने न जाते।

बुद्ध को सुनने हजारों मीलों से लोग आते, वे वहीं बुद्ध के पास थे और बुद्ध के वचन सुनने न जाते--उन्हें लेना-देना क्या था।

भिक्षु और भिक्षुणियां उनसे परेशान होने लगे। यह कुछ अजीब सा ही जमघट हो गया इन तीन का! इन्होंने तो एक परिवार बना लिया वहां। आखिर बात बुद्ध तक पहुंची। बुद्ध ने उन्हें बुलाया और उनसे पूछा... देखा बुद्ध ने, सारी बात साफ हो गयी। बेटा सिर्फ भागने के लिए संन्यास ले लिया, घर में स्वतंत्रता न थी।

सभी बेटे स्वतंत्रता चाहते हैं। किसी भी भांति स्वतंत्रता चाहिए। तो संन्यास ले लिया था कि इस भांति मुक्त हो जाएगा।

बाप और मां सिर्फ बेटे के पास ही बने रहें, यह साथ कभी छूटे न, इस मोह में संन्यस्त हो गए। बुद्ध ने उनसे पूछा कि यह क्या कर रहे हो! यह कैसा संन्यास! संन्यास का अर्थ ही होता है, अपने अकेलेपन में रस, दूसरे में रस का त्याग।

अब इस बात को समझना। दूसरे में रस के त्याग का अर्थ होता है, दूसरे में विरसता का भी त्याग। जब तक तुम्हारा दूसरे में रस है, या विरस; जब तक तुम्हारा दूसरे में लगाव है, या दुराव; जब तक दूसरे में मोह है, या दूसरे में क्रोध; तब तक तुम दूसरे से बंधे हो।

इसलिए तुम्हारे बहुत से संन्यासी जो घरों को छोड़कर भाग गए हैं, वस्तुतः संन्यस्त नहीं हो पाए हैं। घरों से छोड़कर भाग गए होंगे, संन्यास नहीं घटित हुआ है। उनका विरस हो गया है। घर से वे परेशान हो गए हैं। पत्नी से परेशान, बच्चों से परेशान, क्रोध में चले गए हैं, किसी बोध में नहीं।

अगर बोध में गए हों तो जाने की जरूरत क्या है? क्रोध में ही आदमी भागता है, या भय में भागता है। बोध में तो भागने की जरूरत नहीं, बोध में तो थिर हो जाता है। बोध में तो जहां है वहीं ज्योतिर्मय हो जाता है। बोध में तो जहां है वहीं चिन्मय की वर्षा हो जाती है। बोध में फिर क्या पहाड़ और क्या बाजार, क्या घर और क्या मंदिर, सब बराबर है।

भगोड़ों में रस तो नहीं है, विरस है। पर विरस भी तो रस का ही रूप है। जैसे दूध फट गया, ऐसा विरस है--रस फट गया--लेकिन है दूध का ही रूपांतरण। जैसे कोई चीज रखी-रखी बासी होकर खट्टी हो गयी। मगर है तो उसी का रूपांतरण।

इसलिए संन्यास को तुम त्याग मत समझना। संन्यास न तो भोग है और न त्याग है। फिर संन्यास क्या है? संन्यास इस बात का बोध है कि न तो दूसरे से कुछ मिला है, न मिल सकता है। नाराजगी का भी कोई कारण नहीं। क्योंकि नाराजगी का तो अर्थ ही यह होता है कि अभी भी यह बात मन में बनी है कि मिल सकता था और नहीं मिला। नाराजगी का क्या अर्थ होता है? तुम अगर अपनी पत्नी पर नाराज हो तो तुम यह कह रहे हो कि यह गलत पत्नी मिल गयी है, अगर ठीक पत्नी मिलती तो हम सुखी हो जाते। तुम अगर बेटे से नाराज हो, तो तुम यह कह रहे हो कि कहां का बेटा घर में पैदा हो गया है, कुपुत्र पैदा हो गया है, सुपुत्र होता तो हृदय में बड़ी शांति हो जाती, बड़ा आनंद हो जाता। तुम वस्तुतः सत्य को देख नहीं पाए कि दूसरे में सुख होता ही नहीं--सुपुत्र में भी नहीं होता, कुपुत्र में तो होता ही नहीं। कुरूप में तो होता ही नहीं, सुरूप में भी नहीं होता। दूसरे में सुख होता ही नहीं--बुरी स्त्री में तो होता ही नहीं, भली स्त्री में भी नहीं होता। असाधु में तो होता ही नहीं, साधु में भी नहीं होता, सुख दूसरे में होता ही नहीं। यह दूसरे से सुख के भाव का सब भांति से मुक्त हो जाना संन्यास है।

युवक घर से भागा, क्योंकि वह मां-बाप से परेशान हो गया था। उनका मोह करीब-करीब कारागृह बन गया था। अकेला कहीं जा न सके। कोई राग-रंग में अकेला सम्मिलित न हो सके, वह बाप और मां पीछे ही लगे रहें। यह जरा अति हो गयी। इस अति से वह भागा। लेकिन संन्यासी तो नहीं था। और मां-बाप को तो कोई प्रयोजन ही न था, इतना भी प्रयोजन नहीं था। उनको तो मोह था। उनको तो ख्याल था कि बेटे के कारण सब हो जाएगा। जो चाहिए वह हो जाएगा। बस बेटे में जैसे परमात्मा मिल गया, सब मिल गया था। इसके पार उनकी आंखें ही न उठी थीं। वे जमीन पर रेंगते हुए चल रहे थे। जमीन पर आंखें गड़ाए हुए चल रहे थे।

और ध्यान रखना, जो जमीन पर आंखें गड़ाए चलेगा, उसे अगर आकाश के तारे न दिखायी पड़ें तो तारों का कोई कसूर नहीं है। तारे तो हैं। तुम्हारे लिए भी उतने हैं जितने कि बुद्ध और महावीर और कृष्ण और कबीर के लिए हैं। मगर तुम आंखें ही जमीन पर गड़ाए रखोगे तो तारों का कोई कसूर नहीं है। आंखें ऊपर उठेंगी तो ही तारे दिखायी पड़ेंगे।

बुद्ध ने उनसे पूछा कि यह मामला क्या है, यह कैसा संन्यास! यह तो संन्यास की शुरुआत ही गलत हो गयी मालूम होती है। तो बाप ने कहा, असली बात यह है--संन्यास से हमें कुछ लेना-देना नहीं। मैं और मेरी पत्नी बेटे के साथ रहना चाहते हैं और बेटा भागता है, भगोड़ा है, बचना चाहता है, खराब होना चाहता है; बुरे संग में पड़ जाएगा, बिगड़ जाएगा, तो हम इसे बचाने के लिए इसके पीछे रहते हैं। और यह बुरे संग में पड़ना चाहता है। बूढ़े बाप ने कहा कि आप तो जानते ही हैं, जवानी कैसी होती है! यह कहीं बिगड़ न जाए इसलिए हम पीछे लगे हैं। और यह बिगड़ने के लिए आतुर है, तो यह भागता है। न इसे संन्यास से कुछ लेना-देना है, न हमें कुछ लेना-देना है। हम तीनों एक साथ ही रहें, इसलिए हमने संन्यास ले लिया है। हम अलग-अलग नहीं रह सकते।

तब भगवान ने कहा, प्रिय का अदर्शन और अप्रिय का दर्शन दुखकर है, इसलिए किसी को प्रिय या अप्रिय नहीं करना चाहिए। और दुख का मूल यही है कि दूसरे से मिलेगा। दूसरे से आशा, दूसरे से संभावना सारे दुख का मूल है। फिर नहीं मिलता तो क्रोध आता है, फिर नहीं मिलता तो क्षोभ पैदा होता है। जहां मोह है, वहां मोहभंग पर क्षोभ पैदा होता है।

तब बुद्ध ने ये पहली तीन गाथाएं कहीं। ये गाथाएं अपूर्व हैं--

अयोगे युंजमत्तानं योगस्मिंच अयोजयं।
अत्थं हित्वा पियग्गाही पिहेतत्तानुयोगिनं।।

"अयोग्य कर्म में लगा हुआ, योग्य कर्म में न लगने वाला तथा श्रेय को छोड़कर प्रिय को ग्रहण करने वाला मनुष्य, आत्मानुयोगी पुरुष की स्पृहा करे।"

पहली गाथा। बुद्ध कहते हैं, जो अयोग्य कर्म में लगा है और योग्य कर्म में नहीं लगा है। स्वभावतः जब तुम्हारी ऊर्जा अयोग्य में लगी होगी तो योग्य में कैसे लगेगी? अयोग्य से छूटेगी तो योग्य में लगेगी। गलत दिशा में जाता आदमी एक ही साथ ठीक दिशा में तो नहीं जा सकता। जो गलत दिशा में जा रहा है, वह ठीक दिशा में तो नहीं जा सकता। और जिसे ठीक दिशा में जाना है, उसे गलत दिशा में जाना बंद करना होगा।

"अयोग्य कर्म में लगा हुआ, योग्य कर्म में न लगने वाला तथा श्रेय को छोड़कर प्रिय को ग्रहण करने वाला मनुष्य, आत्मानुयोगी पुरुष की स्पृहा करे।"

ये दो बातें श्रेय और प्रेय समझने की हैं।

प्रेय का अर्थ होता है, जो प्रिय है मुझे उसे पा लूं। लेकिन अभी तुम अंधेरे में खड़े हो, तुम्हें जो प्रिय भी लगता है, वह भी तुम्हारे अंधेरे की ही उपज है। अभी तुम रुग्ण हो, तुम्हें जो प्रिय भी लगता है, वह भी तुम्हारे रोग का ही हिस्सा है। अभी तुम अंधे हो, वह जो तुम्हें प्रिय भी लगता है, वह तुम्हारे अंधेपन से ही पैदा हो रहा है। इसलिए प्रेय में अगर लग गए, प्रिय में अगर लग गए, तो भटकते ही चले जाओगे। पहले श्रेय को साधो।

श्रेय का अर्थ होता है, स्वयं को रूपांतरित करो। जिस आदमी की आंखें जमीन पर गड़ी हैं, वह अगर चुनाव भी कर ले कि कौन सी चीज प्रिय है, तो भी चीज तो जमीन की ही रहेगी। चलो, कंकड़-पत्थर नहीं बीनेगा तो हीरे-जवाहरात बीन लेगा। लेकिन हीरे-जवाहरात भी वस्तुतः तो कंकड़-पत्थर हैं। हीरे-जवाहरात तो हमने उन्हें बना दिया। अगर आदमी न हो तो कौन हीरा है और कौन पत्थर है! आदमी के कारण कुछ पत्थर हीरे हो गए हैं। मगर आदमी हट जाए तो सब पत्थर हैं, हीरा भी पत्थर है, पत्थर भी पत्थर हैं। उनमें कोई फर्क न रहेगा। हीरों को पता ही नहीं है कि वे हीरे हैं। और पता हो जाए तो आदमी पर वे बहुत हंसें, क्योंकि वे जानते हैं कि पत्थर ही हैं। आदमी ने भेद कर लिया है, यह प्रिय है, उसको ऊंचा बना लिया है।

लेकिन इस तरह अगर प्रेय का कोई चुनाव करता रहे जमीन पर आंख गड़ाए, तो चांद-तारों को कभी भी न पा सकेगा। श्रेय का अर्थ होता है, पहले आंखें उठाओ, पहले अपने को उठाओ। श्रेय का अर्थ होता है, पहले शुभ बनो। श्रेय का अर्थ होता है, पहले सत्व में उठो। श्रेय का अर्थ होता है, पहले शिवत्व में जागो। श्रेय का अर्थ होता है, पहले थोड़ी दिव्यता का अनुभव करो--फिर प्रिय को चुनना।

जो आदमी श्रेय को चुन लेता है वह प्रेय को पा ही लेता है। क्योंकि श्रेय की आखिरी अवस्था में सिर्फ परमात्मा के अतिरिक्त और कोई प्रेय नहीं रह जाता। श्रेय की ऊंचाई पर सिवाय आत्मानुभव के और कोई चीज प्रिय नहीं रह जाती।

तो अभी जो प्रिय को खोजेगा वह भटकता चला जाएगा। अब यह मजे की बात समझना। अभी जो प्रिय को खोजेगा वह प्रिय को तो पाएगा ही नहीं और श्रेय को भी चूक जाएगा। क्योंकि प्रिय तो एक ही है, वह तुम्हारे अंतरतम में बसा है, वह तुम्हारे हृदय का मालिक है, वह प्रियतम तुम्हारे भीतर बैठा है। और तुम बाहर टटोल रहे हो। कभी इस चीज को प्रेय मान लेते हो, कभी उस चीज को प्र्ेय मान लेते हो--कहते हो कभी, बड़ा मकान; कहते हो कभी, बड़ा हीरा; कभी कहते हो, बड़ी दुकान, बड़ी कार--कुछ करते रहते, खोजते रहते। कहीं भी पाते नहीं हो प्रिय को। जो मिल जाता है वही व्यर्थ हो जाता है।

क्या तुम्हारे जीवन का अनुभव भी यही नहीं है? जो मिल जाता है वही व्यर्थ हो जाता है। जब तक नहीं मिला, तब तक सार्थक मालूम होता है। बड़े से बड़े महल में भी पहुंचकर भी कितने दिन तक महल सुख देता है? दो-चार दिन पा लेने की तरंग रहती है, अकड़ रहती है कि मिल गया। दो-चार दिन के बाद तुम भूल जाते हो। जो महलों में रहते हैं कोई चौबीस घंटे महल को याद रखते हैं! महल झोपड़े जैसे ही भूल जाते हैं। और बड़े महलों के सपने उठने लगते हैं। सब महल छोटे हो जाते हैं। जो है, वही व्यर्थ हो जाता है।

तो श्रेय का अर्थ होता है, पहले स्वयं को जगाओ। तुम जाग गए तो ही तुम श्रेय को खोज सकोगे। तुम सोए-सोए टटोलते रहे तो तुम गलत को ही पकड़ते रहोगे। तुम ही गलत हो, तो तुम ठीक को कैसे खोजोगे? श्रेय की तलाश करने वाला श्रेय को तो पा ही लेता है और अचानक एक दिन पाता है, प्रेय मुफ्त में मिल गया। श्रेय की छाया की तरह मिल गया।

तो बुद्ध कहते हैं, श्रेय को छोड़कर प्रिय को ग्रहण करने वाला मनुष्य उस व्यक्ति के साथ स्पृहा करे, उस व्यक्ति के साथ स्पर्धा करे, जो आत्मानुयोगी है, जो अपने भीतर जा रहा है, आत्मा की तलाश कर रहा है।

उन तीनों को बुद्ध ने यह वचन कहा कि तुम थोड़ा सोचो, क्या कर रहे हो? ऐसे कहीं प्रिय मिला है! ऐसे तो जीवन गंवा दोगे। बेटे से थोड़े ही प्रिय मिल जाएगा, न पत्नी से मिल जाएगा, न पिता से मिलेगा, संबंधों से कोई प्रिय मिलता नहीं। संबंधों से तो तुम सिर्फ इतनी बात को छिपाते हो कि तुम अकेले हो, बस। अकेले नहीं हो।

तुमने ख्याल किया, अकेले रह जाते हो घर में, कैसी घबड़ाहट, भांय-भांय मालूम होने लगती है! अकेले रहते ही से कुछ घबड़ाहट, कुछ भय पकड़ता है! कोई असुरक्षा! अब कोई भी नहीं है, संगी-साथी नहीं है। और जिनको तुम संगी-साथी कहते हो, वे भी क्या हैं! उनके होने से भी क्या हो गया है? कुछ भी नहीं हो गया है। मगर एक बात बनी रहती है कि शोरगुल बना रहता है, भीड़-भाड़ बनी रहती है। भीड़-भाड़ और शोरगुल में तुम अपने को भूले रहते हो। दिनभर की आपाधापी, रात आकर गिर जाते बिस्तर पर थके-मांदे, सुबह उठकर फिर चल पड़ते हो। ऐसे भूले रहते हो। ऐसे याद नहीं आता कि क्या गंवा रहे हो। ऐसे ख्याल में नहीं आता कि क्या खो रहे हो। यह सारी दौड़-धूप एक तरह की शराब है, जो तुम्हें अपने से वंचित रखती है।

बुद्ध ने कहा, इस बात को ख्याल में लो, श्रेय को पकड़ो, प्रेय को छोड़ो। और अगर तुमसे अभी यह न हो सके तो कम से कम जिन्होंने प्रेय को छोड़ दिया है और श्रेय की यात्रा पर निकले हैं, उनसे स्पृहा तो करो। यहां इतने भिक्षु हैं, बुद्ध ने कहा होगा, जो श्रेय की यात्रा पर निकले हैं, इनकी शांति तो देखो! मुझे तो देखो, बुद्ध ने कहा होगा। सुसुखं वत! जरा मेरे सुख को देखो। मेरी तरफ आंखें उठाओ, यह मेरे आनंद का जो शिखर खड़ा हुआ है, इस पर जरा आंखें गड़ाओ। यहां मेरे पास रहकर, इतने भिक्षुओं से घिरे रहकर, इतने लोग ध्यान कर रहे, इतने लोग समाधि में उतर रहे, इतने लोग समाधि को प्राप्त हो गए, इस अपूर्व वातावरण में भी तुम तीनों बैठकर एक-दूसरे को पकड़े हुए हो! फालतू की बातों में लगे हो! यहां इतना श्रेय घटित हो रहा है, ऐसी श्रेय की तरंगें उठ रही हैं, लहरें उठ रही हैं, इन पर सवार हो जाओ। यह इतनी बड़ी नौका श्रेय की तरफ जा रही है, इसमें बैठने का तुम्हारा मन नहीं करता? और इस नौका में जो बैठे हैं, उन्हें देखकर तुम्हारे मन में स्पृहा पैदा नहीं होती?

ख्याल रखना, दो शब्द--स्पृहा और ईर्ष्या। ईर्ष्या सांसारिक स्पृहा है और स्पृहा सांसारिक से पार, वह जो परमात्म है, परमार्थ है, अध्यात्म है, उसमें दूसरों को मिल रहा है, मुझे नहीं मिल रहा! कम से कम इस बात की चोट तो होने दो। दूसरे जग रहे हैं, मैं अभी तक सोया हूं, कम से कम इस बात की पीड़ा तो चुभने दो, कांटा तो लगने दो। यहां इतने संन्यासियों के बीच भी तुम अपने घर में ही बने हुए हो! तुम वहां से आए ही नहीं! यह मां-बाप और बेटा, बस, यह तुम तीनों ने अपना एक अड्डा बना लिया है! थोड़ा जागकर देखो। चलो संयोगवशात ही यह मौका मिल गया है। न बेटे को संन्यास में रस था, न तुम्हें संन्यास में रस है। संयोगवशात तुम यहां आ गए हो, लेकिन फिर भी लाभ तो ले सकते हो। संयोगवशात ही कोई बगीचे में आ जाए, तो भी फूलों के सौंदर्य का आनंद तो ले ही सकता है। शायद दुबारा फिर आकांक्षा करके आए, अभीप्सा करके आए।

ऐसा घटता है। यहां किसी का बेटा संन्यस्त हो गया है... ।

अभी हुआ, एक युवती जर्मनी से आयी, संन्यस्त हो गयी, उसके घर के लोग परेशान थे। एक तो संन्यास उनकी समझ में ही न आए कि बात क्या है? पश्चिम में यह शब्द तो बहुत उलझन भरा है। यह हुआ क्या! बाप भागा हुआ आया। चार दिन यहां अपनी बेटी को समझाता-बुझाता रहा, लेकिन बेटी जाने को राजी न हुई। तो फिर वह बेटी को लेकर मेरे पास आया। सोचा शायद मैं समझा दूंगा। दो-चार दिन उसने मेरी बातें भी सुनीं, फिर सांझ के दर्शन में आया। तो दूसरों से जो मैं बातें कर रहा था वह उसने सुना, फिर तो यह बात उसे पूछने

जैसी ही न लगी। यह बात ही उसे न जंची कि अब वह पूछे कि इस लड़की को वापस ले जाना है। वह कहने लगा कि मैं फिर आऊंगा। संन्यास ने मेरे मन को भी लुभा लिया है, आया तो मैं अपनी लड़की को लेने था, लेकिन मैं खुद पकड़ा गया हूं। ध्यान में डुबकी मैं भी लगाना चाहूंगा। अभी तो मुझे लौटना पड़ेगा, इसकी मां परेशान हो रही है, यह कालेज से भाग आयी है, परीक्षा करीब आ रही है, कालेज के अधिकारी परेशान हो रहे हैं, अभी तो मैं जाऊं।

तो मैंने उस युवती को कहा कि तू भी वापस जा, घर के लोग सब शांत हो जाएंगे, सौभाग्यशाली है तू कि तुझे ऐसा पिता मिला, तू जा!

युवती साथ चली गयी, लेकिन पिता का हृदय यहां छूट गया है। युवती तो लौट ही आएगी, पिता भी लौट आएगा। संयोग से ही आना हुआ, कोई कारण न था आने का। शायद अगर उसकी बेटी भागकर न आयी होती तो पिता कभी आता ही नहीं, लेकिन स्पृहा पैदा हो गयी। यहां देखा लोगों को नाचते, तो उसने मुझसे पूछा कि मैं तो कभी नाचा नहीं! लोगों को प्रसन्न देखा, तो उसने पूछा कि इतने प्रसन्न लोग हो सकते हैं, यह मुझे भरोसा नहीं!

संयोग से आया हुआ आदमी भी कभी-कभी नाव में सवार हो जाता है, समझदारी हो तो। और कभी-कभी ऐसा होता है कि समझदारी न हो, तो तुम चेष्टा करके आए हो तो भी चूक जाओगे।

वैसे लोग भी आ जाते हैं। संन्यास ही लेने आते हैं, लेकिन फिर कोई छोटी-मोटी बात अड़चन बन जाती है। उतनी सी अड़चन से लौट जाते हैं। आदमी पर निर्भर है। आदमी की गुणवत्ता पर निर्भर है।

शुभ होना तो शुभ है ही, कम से कम शुभ की स्पृहा तो करो। अगर आज शुभ नहीं हो सकते तो इतना तो सोचो, इतना सपना तो संजोओ, इतना सपना तो देखो कि कभी शुभ हो सकूं। और जिनको शुभ घटित हुआ है, उनके साथ थोड़ा सा ख्याल तो करो कि यह भी हो सकता है; और जो इन्हें हुआ है, वह मुझे भी हो सकता है।

मा पियेहि समागिंछ अप्पियेहि कुदाचनं।

पियानं अदस्सनं दुक्खं अप्पियानंच दस्सनं।।

"प्रियों का संग न करे", बुद्ध ने कहा, "न कभी अप्रियों का ही संग करे। प्रियों का न देखना दुखद है, और अप्रियों का देखना दुखद है।"

बुद्ध ने कहा, दुख के दो कारण हैं। प्रिय से मिलन न हो तो दुख होता है, अप्रिय से मिलन हो जाए तो दुख होता है। प्रिय छूट जाए तो दुख हो जाता है, अप्रिय मिल जाए तो दुख हो जाता है। लेकिन दुख का मूल कारण तो यही है कि तुमने प्रेम का संबंध बनाया। दोनों प्रेम के संबंध हैं--प्रिय का और अप्रिय का। और कभी-कभी ऐसा होता है कि दोनों बातें एक के साथ ही घट जाएंगी।

तुमने कभी देखा है, बचपन का बिछुड़ा हुआ मित्र वापस आ गया है मिलने, बड़े तुम खुश हुए, गले से लगा लिया, उठा लिया। एक दिन खुशी रही, वह घर टिक ही गया बोरिया-बिस्तर जमाकर, दूसरे दिन जरा बेचैनी होने लगी, तीसरे दिन पत्नी नाराज होने लगी कि हटाओ भी, यह कहां के आदमी को बिठा रखा है, चौथे दिन बच्चे भी परेशान होने लगे, पांचवें दिन तुम भी प्रार्थना करने लगे भगवान से कि अब इन सज्जन को विदा करो। अगर महीने दो महीने यह मित्र रुक जाए और फिर तुम सफल हो जाओ इसको विदा करवाने में, तो तुम जितने प्रसन्न होओगे, उतने प्रसन्न तुम इसके मिलने पर भी नहीं हुए थे। यह वही का वही है; कुछ फर्क नहीं पड़ा

है, तुम वही के वही हो, यह मित्र भी वही का वही है, लेकिन क्या हो गया! एक ही संबंध प्रेम का अप्रेम का भी बन जाता है।

प्रेम और अप्रेम एक ही सिक्के के दो पहलू हैं। और बुद्ध कहते हैं, दोनों से दुख मिलता है। प्रिय बिछुड़े तो दुख होता है--और बिछुड़ना तो होगा ही, क्योंकि यहां मौत सबको अलग कर देगी। जन्म के पहले हम सब अलग थे। जन्म ने इकट्ठा कर दिया, मौत अलग कर देगी। नदी-नाव संयोग। राह पर चलते यात्री मिल गए हैं। तीर्थयात्रा को गए थे, राह पर बातचीत हो गयी, मिल गए, संबंध बन गया, फिर बिछुड़ जाएंगे। सांझ को पक्षी एक वृक्ष पर आकर बैठ गए हैं, मिलन हो गया है, रातभर साथ रहेगा डेरा, सुबह फिर उड़ जाएंगे। जन्म ने मिला दिया है, मृत्यु फिर विदा कर देगी। तो विदा तो होना ही होगा आज नहीं कल।

फिर और बहुत से कारण हैं जिन्होंने मिला दिया है। कोई स्त्री सुंदर है, उसके सौंदर्य के कारण तुम प्रेम में पड़ गए हो, लेकिन सौंदर्य टिकता थोड़े ही है। थोड़े दिनों बाद सौंदर्य तिरोहित हो जाएगा।

मुल्ला नसरुद्दीन की पत्नी उससे पूछ रही थी कि क्या मैं बूढ़ी हो जाऊंगी तब भी तुम मुझे प्रेम करोगे? मुल्ला पहले तो अखबार पढ़ रहा था, तो उसने ठीक से सुना नहीं, उसने टालने को कहा, हां-हां, जरूर, क्यों नहीं! तब उसे ख्याल आया कि वह क्या कह रहा है। तो उसने पूछा कि तुम अपनी मां जैसी तो नहीं लगने लगोगी? अन्यथा मैं पहले ही से कहे देता हूं कि फिर मुझसे न हो सकेगा प्रेम इत्यादि।

कभी तुम किसी बात से, किसी कारण से किसी के प्रेम में पड़ गए। वह कारण हट जाएगा, फिर? फिर क्या करोगे? और कारण न भी हटे, तो भी जो चीज तुम्हें प्रीतिकर मालूम पड़ती है जब दूर होती है, पास आने पर, मिल जाने पर उतनी प्रीतिकर मालूम होगी? अपनी पत्नी किसी को सुंदर मालूम होती? अपना पति किसी को सुंदर मालूम होता? सौंदर्य दूर से मालूम होता है। सौंदर्य जो उपलब्ध नहीं है, उसमें मालूम होता है। सौंदर्य का अधिकतम प्रभाव तो जितना कठिन हो पाना, उसमें होता है। जितना सरल हो जाए, उतना ही सौंदर्य समाप्त हो जाता है। अगर कोई स्त्री बहुत दुर्लभ हो कि मिल ही न सके, तो उसका सौंदर्य सदा बना रहेगा। मिल गयी कि सौंदर्य समाप्त हो गया। करोगे क्या? कितनी ही सुंदर नाक हो और कितनी ही सुंदर आंख हो, करोगे क्या? दो-चार दिन में सब भूल जाओगे।

जो चीज कारण कर निर्भर है, वह टूटेगी। तो यहां प्रिय का मिलन भी होगा, प्रिय का बिछुड़ना भी होगा, यहां प्रेम की घटना भी घटेगी और फिर प्रेम खट्टा होकर अप्रेम भी बनेगा। इसलिए प्रेम सब तरह से दुख देता है। प्रेम रहे तो दुख देता है, फिर प्रेम छूट जाए तो दुख देता है। फिर अप्रिय मिल जाए तो कठिनाई हो जाती है। तो बुद्ध कहते हैं--

मा पियेहि समागिंछ अप्पियेहि कुदाचनं।

"प्रियों का संग न करे, न कभी अप्रियों का संग करे।"

इसका क्या अर्थ हुआ? क्या किसी का संग ही न करोगे? प्रियों का देखना दुखद, अप्रियों का देखना दुखद, तो क्या फिर किसी के साथ ही कभी खड़े न होओगे? तो बौद्ध भिक्षु भी तो एक-दूसरे के साथ थे! खुद बुद्ध भी तो हजारों भिक्षुओं के साथ थे!

नहीं, बुद्ध के कहने का इतना ही तात्पर्य है कि बीच में प्रेम के संबंध खड़े मत करना। साथ रहो, संबंध के सेतु मत जोड़ो। तुम अलग, दूसरा अलग। तुम अपने एकांत में शिखर, वह अपने एकांत में शिखर। एकांत पर

हमला मत करो, एकांत पर हावी मत होओ, एक-दूसरे के एकांत को नष्ट मत करो। एक-दूसरे के मालिक मत बनो और न एक-दूसरे को अपना मालिक बनाओ। मुक्त रहो। साथ रहो तो भी संग न बनाओ। यही मेरी देशना है।

इसलिए मैं तुमसे यह भी नहीं कहता कि घर भी छोड़ो। मैं कहता हूं, घर छोड़कर भी कहां जाओगे, आश्रम में रहोगे तो आश्रम घर बन जाएगा। घर से भागने का उपाय क्या है, कहीं तो रहोगे! वहीं घर बन जाएगा। जहां रहोगे, उसका नाम घर है। पत्नी को छोड़कर भाग जाओगे, बेटे को छोड़कर भाग जाओगे, किसी के साथ तो रहोगे! उसी से संबंध बन जाएंगे लगाव के।

नहीं, इसलिए भागने का कोई सवाल नहीं है। दो व्यक्तियों के बीच में जो संबंध का सेतु होता है, कड़ी होती है, वह भर गिरा दो। पत्नी के ही साथ रहो, लेकिन अब पति होकर नहीं। पति का भाव जाने दो। बेटे के साथ रहो, लेकिन बाप होकर नहीं। बाप का भाव जाने दो। वह तो सिर्फ भाव ही हैं। पानी के बबूले हैं और कुछ भी नहीं। फूंक मारे से उड़ जाते हैं। जरा से बोध की चोट से टूट जाते हैं। इंद्रधनुषों जैसे हैं--दिखायी पड़ते हैं बहुत रंगीन, पास जाओ तो हाथ में कुछ भी नहीं आता। इन बबूलों को गिर जाने दो। रहो साथ, मगर संग न बनाओ।

साथ रहो और अगर संग न बने, तो न फिर दुख होता है प्रिय के मिलन से, बिछुड़ने से, न अप्रिय के मिलन से, न अप्रिय के बिछुड़ने से। फिर तुम सभी स्थितियों को स्वीकार करने में कुशल हो जाते हो। प्रिय आए तो ठीक, अप्रिय आए तो ठीक। तुम हर हालत में राजी होते हो। तुम्हारी कोई आकांक्षा नहीं होती कि ऐसा ही हो तभी मैं सुखी होऊंगा। और जब तुम्हारी ऐसी कोई शर्त नहीं होती, तब तुम्हारे सुख का क्या कहना! तब तुम्हारा सुख महासुख हो जाता है। तब सभी कारणों के पार, सभी शर्तों के पार तुम सुखी होते हो, सुख तुम्हारा स्वभाव हो जाता है।

स्वामी रामतीर्थ सदा कहा करते थे, यूनान के बहुत बड़े वैज्ञानिक आर्किमिडीज ने कहा था कि यदि मुझे कोई स्थिर आधार, खड़े होने को कोई स्थल मिल जाए, तो मैं दुनिया को हिला सकता हूं। आर्किमिडीज कहता था कि अगर मुझे कुछ ऐसा एक छोटा सा बिंदु भी मिल जाए जो स्थिर है, स्थिर बिंदु, जो हिलता नहीं, तो मैं उस पर खड़े होकर सारी दुनिया को हिला सकता हूं। किंतु वह बेचारा ऐसा स्थिर बिंदु न पा सका, क्योंकि संसार में ऐसा कोई स्थिर बिंदु है ही नहीं। स्थिर बिंदु तुम्हारे भीतर है, बाहर नहीं, वह है तुम्हारी आत्मा। उसे पकड़ो और सारा संसार तुम चलाने लगोगे। अभी तो संसार तुम्हें चलाता है। अभी तो तुम परिस्थितियों के दास हो। अभी तो जरा सी बात बाहर घटती है और तुम कंप जाते हो। अभी तो कोई भी चीज तुम्हें सुखी और दुखी कर जाती है। अभी तुम अपने मालिक नहीं हो।

तो स्वामी रामतीर्थ कहते थे और ठीक कहते थे कि अगर तुम बाहर कोई ऐसा स्थिर बिंदु खोजने चले हो तो कहीं भी न मिलेगा। ऐसी खोज का नाम ही संसार है--बाहर कोई स्थिर बिंदु मिल जाए जिसमें सुरक्षा हो, जहां मैं विश्राम कर सकूं।

नहीं, ऐसा कोई स्थिर बिंदु है ही नहीं बाहर। लेकिन भीतर एक स्थिर बिंदु है, जहां तुम परम विश्राम को उपलब्ध हो सकते हो। और जहां पहुंच गए व्यक्ति को कोई डिगा नहीं सकता। और जहां पहुंचा हुआ व्यक्ति चाहे, तो उसके इशारे से सारी दुनिया कंपती है।

वास्तव में कर्ता भी तुम्हीं हो

और कर्म भी तुम्हीं

तुम्हीं आत्मा हो

और तुम्हीं नाममात्र अनात्मा हो

तुम्हीं सुंदर गुलाब हो

और प्रेमी बुलबुल भी तुम्हीं हो।

तुम फूल हो

और भौंरा भी तुम

हर एक चीज तुम हो--

भूत और प्रेत

देवता और देवदूत

पापी और महात्मा

सब तुम्हीं हो।

यह है संन्यास का मार्ग। इस बात को जानना कि मेरा संसार मेरे भीतर है, यह है संन्यास का मार्ग। इस बात को जानना कि मेरा सुख मेरे बाहर है, यह है संसार का मार्ग। अपना केंद्र अपने से बाहर मत बनाओ, ऐसा करने से तुम गिर पड़ोगे। अपना पूर्ण विश्वास अपने में जगाओ, अपने केंद्र में बने रहो, फिर तुम्हें कोई भी चीज हिला न सकेगी।

जब बुद्ध कह रहे हैं कि संग-साथ में बहुत अपने को न डुबाए, वे इतना ही कह रहे हैं कि अपने केंद्र तुम स्वयं बनो।

तीसरा सूत्र--

तस्मा पियं न कयिराथ पियापायो हि पापको।

गंथा तेसं न विज्जन्ति येसं नत्थि पियाप्पियं।।

"इसलिए किसी को अपना प्रिय न बनाओ। प्रिय से वियोग दुखद होता है। और जिनके प्रिय और अप्रिय नहीं होते, वे निर्ग्रंथ होते हैं।"

यह निर्ग्ं्रथ की परिभाषा समझो। जैन महावीर को निर्ग्ं्रथ कहते हैं। निर्ग्ं्रथ बड़ा अनूठा शब्द है। ऐसे तो सीधा-साफ-सुथरा है। निर्ग्ं्रथ का अर्थ होता है, जिसकी कोई ग्रंथि नहीं, जिसकी कोई गांठ नहीं। हम कहते हैं न, दो आदमियों का विवाह हो गया, कहते हैं--गांठ बंध गयी, ग्रंथि पड़ गयी। सात चक्कर लगाकर सात गांठें डाल देते हैं। खोलना ही मुश्किल कर देते हैं। निर्ग्रंथ का अर्थ होता है, जिसकी अब कोई गांठ नहीं, कोई ग्रंथि नहीं, जो कहीं बंधा नहीं है, जो अपने में है। जिसका होना अपने में है, जिसका होना बाहर नहीं है।

तुमने बच्चों की कहानियां पढ़ी होंगी। बच्चों की कहानियों में आता है कि कोई राजा था, उसके प्राण एक तोते में बंद थे। तो राजा को मारो तो नहीं मरता था, जब तक कि तुम तोते की गर्दन न मरोड़ो। तोते की गर्दन मरोड़ो, राजा फौरन मर जाता है। ये कहानियां एकदम कहानियां नहीं हैं, ये बड़ी महत्वपूर्ण हैं। ऐसी हमारी हालत है। किसी के प्राण तिजोड़ी में बंद हैं। तोते इत्यादि तो पुराने पड़ गए, तिजोड़ी! किसी के प्राण कुर्सी में बंद हैं। तोतों-मोतों का कौन भरोसा करे, उड़ जाएं, कुछ झंझट हो जाए, कुर्सी! और उस पर बैठे हैं, तो कोई ले जा

भी नहीं सकता कुर्सी। और जोर से उसको पकड़े हैं। मगर कुर्सी तोड़ दो कि प्राण निकल जाते हैं। ऐसा लगता है, किसी के भी प्राण अपने भीतर नहीं हैं।

जिसके प्राण अपने भीतर हैं, वह निर्ग्रंथ है। और जिनके प्राण अपने से बाहर हैं, वे सग्रंथ, उनकी गांठें हैं। तुम्हारी पत्नी मर जाए तो तुम मरने की सोचने लगते हो। तुम्हारा बेटा मर जाए तो तुम मरने की सोचने लगते हो। तुम्हारा दिवाला निकल जाए तो तुम मरने की सोचने लगते हो। छोटी-मोटी बात हो जाती है तो तुम मरने की सोचने लगते हो। तुम्हारे प्राण छोटी-छोटी चीजों में पड़े हैं। जहां कोई चीज गड़बड़ हुई बाहर कि तुमने तत्क्षण सोचा कि मर ही जाऊं।

मनोवैज्ञानिक कहते हैं, ऐसा आदमी खोजना मुश्किल है जिसने जीवन में कम से कम दस बार आत्महत्या का विचार न किया हो। और विचार करना करने के ही बराबर है। क्योंकि जो विचार में हो गया वह हो गया। तुमने बाहर किया या नहीं, यह बहुत महत्वपूर्ण नहीं है। अदालत तुम्हें नहीं पकड़ सकती, लेकिन परमात्मा की अगर कोई अदालत है तो वहां तो तुम पकड़े गए। पुलिस तुम्हें नहीं पकड़ सकती, तुम अगर बैठे अपने मन में आत्महत्या का विचार कर रहे, तुम्हें कोई नहीं पकड़ सकता। जब तक कि तुम करने का उपाय न करो। लेकिन विचार करने में तुम परमात्मा के सामने तो दोषी हो ही गए। तुम अपने सामने तो दोषी हो ही गए।

तुमने अपने जीवन की बड़ी सस्ती कीमत आंकी। दिवाला निकल गया, दुकान खराब हो गयी, तुम मरने की सोचने लगे! तो तुम्हारे जीवन का इतना ही मूल्य था, जितना तुम्हारी दुकान का मूल्य था! तो तुमने जीवन की बड़ी कम कीमत आंकी। तो तुम दुकान के लिए जीते थे! तो दुकान तुम्हारे लिए नहीं थी, तुम दुकान के लिए थे! यह तो परमात्मा का जो यह विराट दान है, इसका तुमने बहुत अपमान किया। इसको कहते हैं, ग्रंथि।

निर्ग्रंथ का अर्थ होता है, जिसकी कहीं कोई गांठ नहीं। तुमने देखा, महावीर नग्न हो गए। निर्ग्रंथ का एक अर्थ नग्न होना भी होता है। क्योंकि जिसकी कोई गांठ ही नहीं है, उसके पास छिपाने को कुछ नहीं है, यह उसका मतलब होता है। गांठें ही हम छिपाते हैं। किसी को पता न चल जाए गांठ कहां है! नहीं तो लोग गांठ पर चोट करने लगेंगे।

एक छोटे बच्चे को अस्पताल में लाया गया, उसके हाथ में चोट लग गयी थी। उसके हाथ पर पट्टी बांधने के पहले, डाक्टर जब उसके हाथ को ठीक करके पट्टी बांधने लगा तो उसने कहा, रुकिए, दूसरे हाथ पर पट्टी बांधिए। डाक्टर ने कहा, तू पागल हुआ है! यह पट्टी तो इसलिए बांध रहे हैं कि स्कूल में कोई बच्चा वगैरह तुझे कोई दुखा न दे। उसने कहा, इसीलिए तो मैं कह रहा हूं, आप स्कूल के बच्चों को नहीं जानते। आप इस हाथ में बांधिए जिसमें चोट नहीं है, क्योंकि जिस हाथ में पट्टी है, वे दुखाएंगे ही। उनको अगर पता चल गया कि चोट है, तो आप स्कूल के बच्चों को जानते ही नहीं!

यह दुनिया ऐसी है। यहां अगर लोगों को पता चल गया, कहां तुम्हारी गांठ है, लोग उसी-उसी पर चोट करेंगे। तो लोग अपनी गांठों को छिपाते हैं। छिपाना पड़ता है। अपनी गांठ की बात ही नहीं करते लोग। किसी को पता नहीं चलना चाहिए। नहीं तो ये दुष्ट चारों तरफ लोग हैं, ये मजा लेंगे। ये बार-बार तुम्हारी बटन दबाने लगेंगे, और तुम्हारी गांठ दुखेगी, इनको बहुत आनंद आएगा। सताने में लोगों का रस है।

मेरे गांव में एक आदमी को लोग सीताराम कहकर चिढ़ाते थे! बस सीताराम कोई कह दे कि वह एकदम बिगड़ जाएं, डंडा उठा लें, पत्थर मारने लगें। वह कृष्ण-भक्त थे। और सीताराम के बिल्कुल विरोधी थे।

यह जब लोगों को पता चल गया तो उनका गांव में निकलना ही मुश्किल! उनको मैं देखूं कि वह अपने घर से निकलकर नदी तक स्नान करने गए हैं, फासला मुश्किल से दो मिनिट का है, उसमें उनको कभी घंटा लग

जाए। नदी में नहा रहे हैं और बीच में कोई ने चिल्ला दिया कि सीताराम, कि वह बाहर निकल आएं, उनको नहाना-वहाना फिर तो खतम हो गयी बात!

मैंने एक दिन उनको कहा कि ऐसे तो तुम बड़ी मुश्किल में पड़ जाओगे। तो उन्होंने कहा, क्या करूं, मुश्किल में तो मैं हूं ही! आपके पास कोई रास्ता है? मैंने कहा, ऐसा करो कि तुम खुद ही सीताराम कहने लगो। उन्होंने कहा, इससे क्या होगा? मैंने कहा, तुम सात दिन मेरा प्रयोग करके देखो। जो कोई दिखायी पड़े कहो, सीताराम! कोई सीताराम कहे तो तुम और जोर से कहो, सीताराम! और कहो, ठीक बेटा, और जोर से कहो सीताराम। उन्होंने कहा, इससे होगा क्या? मैंने कहा, तुम सात दिन करके देखो।

सात दिन में गांव सन्नाटा हो गया। कोई उनसे सीताराम न कहे। सार क्या रहा! गांठ ही हाथ के बाहर हो गयी। वह जो गांठ थी, वह यह थी कि वह सीताराम में चिढ़ते थे। सीताराम में उन पर चोट लगती थी। जब यह खुद ही आदमी सीताराम कहने लगा तो अब क्या सार है!

वह मेरे पास आए और बोले कि बात गजब की है, काम कर गयी। अब तो मैं निकलता हूं तलाश में। मुझे भी मजा आने लगा है कि कोई कह दे सीताराम, मगर कोई कहता ही नहीं। जो लोग पहले चिढ़ाते थे वे ऐसा आंख बचाकर निकल जाते हैं, गली-कूचे में से निकल जाते हैं। नदी पर मैं नहाता रहता हूं, कोई नहीं कहता सीताराम!

जैसे ही लोगों को तुम्हारी गांठ पता चल जाए, लोग सताने लगते हैं। वही-वही करने लगते हैं।

महावीर नग्न हो गए, इसका अर्थ इतना ही है कि जब कोई गांठ न रही, तो अब छिपाने को कुछ न रहा। निर्ग्रंथ हो गए। छोटे बच्चे की भांति खड़े हो गए।

गंथा तेसं न विज्जन्ति... ।

जो न प्रेम के संबंध बनाता, न अप्रेम के; न मित्र बनाता, न शत्रु, उसकी सारी ग्रंथियां गल जाती हैं।

अब तुम समझो।

जीसस कहते हैं, शत्रु को भी मित्र मानो। बात ऊंची कहते हैं। मगर इतनी ऊंची नहीं है जितनी बुद्ध की बात है। क्यों? क्योंकि जीसस कहते हैं, शत्रु को भी मित्र मानो। लेकिन अगर तुम अभी मित्रता मानते हो, तो शत्रुता से छूट न सकोगे। क्योंकि मित्रता का अर्थ ही क्या होता है? मित्रता अर्थहीन है, अगर शत्रुता न हो। अगर कोई आदमी कहे कि सभी मेरे मित्र हैं, तो इसका मतलब यह हुआ कि कोई मित्र नहीं है। मित्रता का अर्थ ही तब होता है जब कोई शत्रु भी हो। अगर तुम कहते हो, सभी मेरे मित्र हैं, तो कोई मित्र नहीं है। अगर तुम कहते हो, मैं सभी को प्रेम करता हूं, तो इसका साफ मतलब हुआ, तुम किसी को प्रेम नहीं करते। क्योंकि प्रेम का मतलब होता है, चुनाव।

अगर कोई स्त्री तुमसे पूछे कि क्या आप मुझे प्रेम करते हो? तुम कहो कि जरूर करता हूं, क्योंकि मैं तो सभी को प्रेम करता हूं, तो वह स्त्री तुमसे प्रसन्न न होगी। वह कहेगी, रास्ता पकड़ो! सभी को प्रेम करने वाले आदमी से क्या लेना-देना! तुम कुछ ऐसी बात कहो कि तुम्हीं को प्रेम करता हूं और तुम्हीं को प्रेम करूंगा और सदा तुम्हीं को किया। जन्म-जन्म से तुम्हीं को खोज रहा था और अब जन्म-जन्म तक तुम्हारे साथ ही रहूंगा। यह संबंध शाश्वत है, अब यह कभी छूटेगा नहीं। हमको एक-दूसरे को भगवान ने एक-दूसरे के लिए ही बनाया है। तब स्त्री प्रसन्न होगी। तब लगता है कि तुमने विशिष्टता दी।

अगर तुम कहो, सभी मित्र हैं, तो तुम्हारे मित्र नाराज हो जाएंगे--शत्रुओं की तो छोड़ो--मित्र कहने लगेंगे, तो फिर मतलब ही क्या हुआ।

जीसस कहते हैं, शत्रुओं को मित्र बना लो। बुद्ध कहते हैं, शत्रु और मित्र दोनों साथ-साथ हैं। जब तक तुम शत्रु मानते हो, तभी तक मित्र हैं। जब तक तुम मित्र मानते हो, तब तक शत्रु भी रहेंगे। दोनों को जाने दो। यह संबंध ही विदा करो। यह संबंध ही ठीक नहीं। इस संबंध से गांठें बनती हैं, गांठें दुख देती हैं।

यह है--ये गांठें, और गांठों के ऊपर गांठें--हमारे दुख की व्याकरण।

क्या पढ़ें दर्द की व्याकरण

जिंदगी है कटा अवतरण

रूप का, आयु का, सांस का

आज होता न एकीकरण

मोह किससे कहां तक चले

बंध न पाते नयन से चरण

सत्य की बात कैसे कहें

आवरण ही यहां आवरण

जो भटकते रहे उम्र भर

आंकते हैं वही आचरण

रेत है, शंख है, आदमी

धुंध के बीच खोयी किरण

क्या पढ़ें दर्द की व्याकरण

जिंदगी है कटा अवतरण

यहां अगर तुम जिंदगी को गौर से देखो तो तुम दर्द का व्याकरण समझ जाओगे कि क्या है गांठें बनाना। और हम गांठें बनाने में बड़े कुशल हैं। हम बड़ी जल्दी गांठें बनाते हैं। हमारी एक ही कुशलता है कि हम गांठें निर्मित कर लेते हैं, जल्दी से निर्मित कर लेते हैं। और फिर तकलीफ पाते हैं, फिर पीड़ा पाते हैं। ऐसे धीरे-धीरे हमारे पूरे प्राण गांठों से भर जाते हैं। जगह-जगह पीड़ा होने लगती है, जगह-जगह दर्द होने लगता है।

धर्म का अर्थ है, धीरे-धीरे गांठों का विसर्जन; और एक ऐसी निर्ग्ं्रथ दशा, जहां तुम हो अपने में मस्त, जहां तुम हो अपने में पर्याप्त। जहां अगर सारी दुनिया इसी क्षण विदा हो जाए तो भी तुम्हारी मस्ती में कणभर अंतर न पड़ेगा। तुम्हारी मस्ती ऐसी की ऐसी रहेगी। तो तुम्हारी मस्ती लोगों से मुक्त हो गयी, तो तुम्हारी मस्ती तुम्हारी अपनी है, तुम्हारी संपदा है, अब इसे कोई छीन नहीं सकता है। जो छीना जा सके, उसे संपदा मानना ही मत। वह विपदा है। जो छीनी न जा सके, वही संपत्ति है, शेष सब विपत्ति है।

दूसरा सूत्र, उसके पहले की कथा--

एक श्रावक का बेटा मर गया। वह बहुत दुखी हुआ।

श्रावक कहते हैं सुनने वाले को, बुद्ध को सुनता था। अगर सुना होता तो दुखी होना नहीं था, तो कानों से ही सुना होगा, हृदय से नहीं सुना था। नाममात्र को श्रावक था, वस्तुतः श्रावक होता तो यह बात नहीं होनी थी।

जब बुद्ध को पता चला कि उस श्रावक का बेटा मर गया और वह बहुत दुखी है, तो बुद्ध ने कहा, अरे, तो फिर उसने सुना नहीं! फिर कैसा श्रावक! श्रावक का फिर अर्थ क्या हुआ! वर्षों सुना और जरा भी गुना नहीं! तो आज बेटे ने मरकर सब कलई खोल दी, सब उघाड़ा कर दिया!

उसका दुख कुछ ऐसा था कि सारे गांव में चर्चा का विषय बन गया। नित्यप्रति वह श्मशान जाता। बेटा मर गया, जला भी आया, मगर रोज जाता उस जगह जहां बेटे को जलाया। वहां बैठकर रोता। जो बेटा अब नहीं है, उससे बातें करता। वह करीब-करीब विक्षिप्त हो गया। उसने बुद्ध को सुनने आना भी बंद कर दिया--उसे होश ही न रहा। बेटे के शोक ने ऐसा घेरा, बेटे के शोक के बादल ऐसे उसके चारों तरफ घिर गए, कि बुद्ध उसे अब दिखायी भी कहां पड़ें। भिक्षु रास्ते पर मिलते तो वह नमस्कार भी न करता।

बुद्ध के पास खबरें आने लगीं कि वह विक्षिप्त होता जा रहा है। तो बुद्ध एक दिन उसके घर गए।

भगवान ने उससे उसके शोक का कारण पूछा--उपासक, क्यूं शोक कर रहे हो? वह बोला, भंते, पुत्र की मृत्यु से दुखी हो रहा हूं।

जैसे श्रावक शब्द का अर्थ होता है, जो सुनता है, वैसे उपासक का अर्थ होता है, जो गुरु के पास बैठता है। उप-आसन, जो पास में आसन लगाता है। मगर पास में आसन लगाने से भी कुछ नहीं होता। अगर गुरु की तरंगों में तरंगित न हुए तो पास कितना ही आसन लगा लो, शरीर ही पास होगा, आत्मा तो दूर की दूर रह जाएगी। कितना ही सुनो, अगर कानों पर चोट पड़ती रही और तुम सुनते रहे--क्योंकि तुम बहरे नहीं हो, इसलिए सुनोगे तो ही--लेकिन बात तो भीतर गयी कि नहीं, इस पर ही सब निर्भर करेगा।

तो न तो वह उपासक था, न वह श्रावक था। फिर भी वर्षों तक बुद्ध के पास आया था तो उनकी करुणा उन्हें खींच ले गयी।

उससे पूछा, क्यूं शोक कर रहे हो? तो उसने कहा, भंते, पुत्र की मृत्यु से दुखी हो रहा हूं, क्या आपको पता नहीं चला? क्या आपने सुना नहीं कि मेरा बेटा मर गया है--एकमात्र, इकलौता बेटा, मेरे बुढ़ापे की वही तो लकड़ी था। मेरे बुढ़ापे की वही तो आंख था। मेरे बुढ़ापे का वही तो सहारा था, और वह तत्क्षण छाती पीट-पीटकर रोने लगा।

बुद्ध ने उससे कहा, मरणधर्मा ही मरा है। जो मरता है वही मरा है। जो नहीं मरता वह नहीं मरा है।

जो मरता ही--आज नहीं कल, कल नहीं परसों--वही मरा है। कुछ अनहोना नहीं हो गया है। तो तूने नष्ट होने वाले से राग बांध लिया था। अमृत को खोज, बुद्ध ने कहा। फिर से गौर से देख, बेटे के भीतर जो मरणधर्मा था वही मरा है। तो मरणधर्मा तो मरेगा ही। जो अमरणधर्मा था, जो अमृत था, जो नहीं मरता है, जो शाश्वत है, सनातन है, तूने उससे जरा भी पहचान न की। और तू भी मरेगा। तो जल्दी कर, अपने भीतर ही पहचान कर ले, नहीं तो कहीं तू भी यह न सोचते रहना कि तू देह है, शरीर है, मन है--नहीं तो फिर तड़फेगा। इस अवसर को चूक मत। इस मौके को ध्यान का एक उपाय बना ले। अपने को पहचानने की कोशिश कर, तेरे भीतर भी वह है जो कभी नहीं मरता है। उसको पहचानते ही तू बेटे के भीतर भी जो कभी नहीं मरता उसको पहचान लेगा। और दुख के पार होने का एक ही उपाय है कि मृत्यु के पार हमें कुछ दिखायी पड़ जाए, अन्यथा हम दुख से कभी मुक्त नहीं हो सकते हैं।

फिर बुद्ध ने कहा, नष्ट हो जाने वाला ही नष्ट हुआ, मरने वाला ही मरा। उपासक, किसी को प्रिय बनाओगे तो शोक और भय उत्पन्न होता ही है। अशोक होना है, तो प्रिय न बनाओ, अप्रिय न बनाओ। राग के संबंध न जोड़ो। जीवन को बोध में लगाओ, राग में नहीं। जागने में लगाओ, निद्रा और तंद्रा में नहीं।

ऐसी परिस्थिति में बुद्ध ने ये सूत्र कहे--

पियतो जायते सोको पियतो जायते भयं।
पियतो विप्पमुत्तस्स नत्थि सोको कुतो भयं।।

"प्रिय से शोक उत्पन्न होता है, प्रिय से भय उत्पन्न होता है। प्रिय से मुक्त पुरुष को शोक नहीं है, फिर भय कहां?"

तण्हाय जायते सोको तण्हाय जायते भयं।
तण्हाय विप्पमुत्तस्स नत्थि सोको कुतो भयं।।

"तृष्णा से शोक उत्पन्न होता है, तृष्णा से भय उत्पन्न होता है। तृष्णा से मुक्त हुए पुरुष को शोक नहीं है, फिर भय कहां?"

जीवन में दुख और भय एक साथ जुड़े हैं। जिस चीज से हमें भय उत्पन्न होता है, उसी से हमें शोक उत्पन्न होता है। जैसे मृत्यु हमें भयभीत करती है, तो मृत्यु से ही हमें शोक उत्पन्न होता है। और जब तक मृत्यु हमें भयभीत करती है, तब तक मृत्यु से शोक उत्पन्न होता रहेगा। आज बेटा मरा है, कल बेटी मरेगी, परसों पत्नी मरेगी, नरसों तुम भी मरोगे, और हर बार दुख घना होगा, दुख घना होगा; रोज-रोज दुख घना होता जाता है।

छोटे बच्चे जीवन में कुछ और क्या कर पाते हैं! सिर्फ दुख की पर्तें इकट्ठी करते चले जाते हैं और बूढ़े होते जाते हैं। जैसे-जैसे दुख पर पर्तें जमती जाती हैं वैसे-वैसे आदमी बूढ़ा होता जाता है। कोरे कागज की तरह आते हैं छोटे बच्चे और फिर लकीरों पर लकीरें दुख की लिखी जाती हैं। हमारा जीवन दुख की एक कथा है।

हम यह दुख कैसे लिखते हैं? सारे दुखों के मूल में मृत्यु है। जहां भी हमें मृत्यु का भय लगता है, वहीं समझ लेना कि अभी हम दुख की सीमा के भीतर हैं। जिस दिन तुम यह जान लोगे कि तुम्हारे भीतर कुछ है जो मृत्यु नहीं मिटा सकेगी, चिता नहीं जला सकेगी; जिसे शस्त्र छेद नहीं पाते--कृष्ण ने कहा हैः नैनं छिंदंति शस्त्राणि, नैनं दहति पावकः। और जिसे अग्नि नहीं जलाती, और जिसे शस्त्र नहीं छेदते हैं, जब तक तुम उसे न जान लोगे, तब तक भय। और जब तक भय, तब तक शोक।

तो बुद्ध ने कहा, खोज अमृत को। और अमृत की खोज में जाना हो तो प्रेय से हटो, श्रेय की तलाश करो।

"प्रिय से शोक उत्पन्न होता है।"

बुद्ध यह कह रहे हैं कि बेटे की मृत्यु के कारण ही तू दुखी नहीं है, तूने उसे बेटा माना इसलिए दुखी है।

इस बात को समझना।

मैंने सुना है, एक घर में आग लगी। घर का मालिक रोने लगा, चिल्लाने लगा, छाती पीटने लगा। जीवनभर की कमाई जली जाती थी, भयंकर लपटें थीं, बुझने का कोई उपाय न था। तभी एक आदमी भागा आया, उसने कहा, तुम व्यर्थ रो रहे हो, कल सांझ मैंने तुम्हारे बेटे को बात करते सुना, मकान उसने बेच दिया है। वह आदमी बोला, सच! उसके आधे बहते आंसू सूख गए। मकान अब भी जल रहा है! मगर अब अपना नहीं है, तो बात खतम हो गयी।

लेकिन तभी बेटा भागा हुआ आया, उसने कहा कि बात ही चली थी, बयाना भी नहीं हुआ है, सौदा तो टूट ही गया समझो। फिर बाप रोने लगा। अभी भी मकान वही का वही है, लेकिन अब फिर अपना हो गया है।

जैसे ही कोई चीज मेरी होती है वैसे ही पीड़ा, और जैसे ही मेरी नहीं रही, बात समाप्त हो गयी। तुम्हारा बेटा मर जाए तो तुम दुखी हो रहे हो, मृत्यु के कारण नहीं, मेरा था। तुम बेटे को जलाकर घर लौटो और घर तुम्हें कुछ ऐसे कागज-पत्तर मिल जाएं जिनसे पता चले कि तुम्हारी पत्नी ने तुमसे धोखा किया था, यह बेटा तुम्हारा था ही नहीं। बस, सब मामला खतम। न केवल मामला खतम, तुम पत्नी को मारने को उतारू हो जाओ। यह बेटे की मौत तो एक तरफ, यह तो बात ही, तुम तो सोचने लगो--अच्छा ही हुआ, यह झंझट मिटी। मेरा-तेरा शोक का जन्मदाता है।

तो बुद्ध ने कहा, "प्रिय से शोक उत्पन्न होता है, प्रिय से भय उत्पन्न होता है। प्रिय से मुक्त पुरुष को शोक नहीं, फिर भय कहां?"

एक-दूसरे के पीछे चलती हैं चीजें। मेरा की गांठ बांध ली प्रेय की तलाश में, फिर कहीं गांठ खुल न जाए तो भय पैदा होता है। फिर कहीं गांठ खुल जाए तो दुख पैदा होता है। एक-दूसरे के पीछे चीजें चलती हैं। तुम एक कदम गलत दिशा में उठाओ, तो दूसरा कदम अपने आप उठ जाता है।

मैंने सुना है, एक धर्मात्मा यहूदी गृहस्थ का नियम था कि हर शुक्रवार को शाम को वे किसी भिक्षुक को शब्बाथ बिताने के लिए अपने घर लाते थे। एक बार जब वे सज्जन अपने मुहल्ले के सिनागाग से एक भिक्षुक को लेकर घर की ओर चले, तो उन्होंने देखा कि भिक्षुक के पीछे-पीछे एक और फटेहाल आदमी भी चला आ रहा है, और उसके पीछे एक और फटेहाल आदमी चला आ रहा है। उस गृहस्थ ने उस आदमी के बारे में पूछा तो भिक्षु ने कहा, महाशय, वह मेरा दामाद है। और मैं उसका पालन-पोषण करता हूं। खुद भिखारी हैं! वह उनके दामाद आ रहे हैं पीछे। और उन्होंने कहा, उनके पीछे कौन चले आ रहे हैं? वह बोला कि मेरे दामाद का बेटा है। उसके पालन-पोषण का जिम्मा उसके ऊपर है।

ऐसी कतारें बनती हैं। तुम एक को बुलाकर लाए तो तुम एक को बुलाकर नहीं लाए, एक के पीछे दूसरा आता होगा! दूसरे के पीछे तीसरा आता होगा। तुमने एक को बुलाने के लिए द्वार खोला कि तुमने सारे संसार को बुला लिया। तुमने एक कदम उठाया गलत दिशा में कि हजार कदम उठ गए।

तो बुद्ध कहते हैं, प्रिय मत बनाना, तो फिर भय भी न होगा, शोक भी न होगा; और अगर प्रिय न बनाया तो जो ऊर्जा प्रेय की दिशा में जाती थी, वह श्रेय की दिशा में जाएगी और तुम जो अमृत के पार है, उसका अनुभव कर सकोगे। अमृत का स्वाद तुम्हारे कंठ में आ जाए, फिर कैसा भय, फिर कैसा शोक!

"तृष्णा से शोक उत्पन्न होता है, तृष्णा से भय उत्पन्न होता है। तृष्णा से मुक्त पुरुष को शोक नहीं है, फिर भय कहां?"

सिर चढ़ी धूल है
शायद तुम्हें मालूम न हो
एक हसीं भूल है
शायद तुम्हें मालूम न हो
फूल खिलते हैं जो
पत्थर की हथेली पर अलभ्य
हम वही फूल हैं

शायद तुम्हें मालूम न हो

तुम तो सागर हो

बरसती हैं घटाएं तुम पर

तृष्णा लघुकूल है

शायद तुम्हें मालूम न हो

कश्तियां तट की अब

उद्दाम तरंगों के बीच

शीर्ष मस्तूल हैं

शायद तुम्हें मालूम न हो

फूल की शक्ल-से ये

छद्म सुदर्शन चेहरे

विष-बुझे शूल हैं

शायद तुम्हें मालूम न हो

देह मंदिर है

तपोवन है मेरा अंतस्तल

आर्य हम मूल हैं

शायद तुम्हें मालूम न हो

हमें मालूम भी नहीं है कि क्या हो रहा है, क्या चल रहा है। जहां हमें सौंदर्य दिखायी पड़ता है, वहां आखिर में हम विष-बुझे तीर ही पाते हैं। जहां धन दिखायी पड़ता है, वहां कुछ हाथ नहीं लगता, आखिर में राख हाथ लगती है। क्या हो रहा है? कैसा जीवन चल रहा है? कहां जा रहे हैं? जिसको हम ताज समझकर सिर पर रखे हैं, वह सब धूल सिद्ध होती है। और हमारे भीतर छिपा बैठा है हमारा श्रेष्ठ रूप--

देह मंदिर है

तपोवन है मेरा अंतस्तल

आर्य हम मूल हैं

शायद तुम्हें मालूम न हो

और भीतर, हमारे भीतर वह श्रेष्ठ, चैतन्य, आर्य--आर्य का मतलब हिंदू नहीं--आर्य का मतलब हमारे भीतर जो श्रेष्ठता है। हम अनार्य बने बैठे हैं। प्रेय को खोजा तो अनार्य बन जाते हो, श्रेय को खोजा तो आर्य बन जाते हो।

आखिरी सूत्र, उसके पहले की घटना--

भगवान के जेतवन में विहरते समय एक अनागामी स्थविर मरकर शुद्धावास ब्रह्मलोक में उत्पन्न हुए। मरते समय जब उनके शिष्यों ने पूछा, क्या भंते, कुछ विशेषता प्राप्त हुई है? तब निर्मलचित्त स्थविर ने यह सोचकर कि यह भी क्या कोई उपलब्धि है या विशेषता है, चुप्पी ही साधे रखी। उनकी मृत्यु के पश्चात उनके शिष्य रोते हुए भगवान के पास जाकर उनकी गति पूछे। भगवान ने कहा, भिक्षुओ, रोओ मत, वह मरकर

शुद्धावास में उत्पन्न हुआ है। भिक्षुओ, देखते हो, तुम्हारा उपाध्याय कामों से रहित चित्त वाला हो गया है, जाओ खुशी मनाओ।

तब शिष्यों ने कहा, पर उन्होंने मरते समय चुप्पी क्यों साधे रखी? हमने तो पूछा था, उन्होंने बताया क्यों नहीं? भगवान ने कहा, इसीलिए भिक्षुओ, इसीलिए, क्योंकि निर्मल चित्त को उपलब्धि का भाव नहीं होता।

और तब उन्होंने यह गाथा कही।

यह घटना महत्वपूर्ण है। अनागामी का अर्थ होता है बौद्ध परिभाषा में, जो दुबारा न आएगा, अब फिर न आएगा, जिसका आगमन समाप्त हुआ। यह परम उपलब्धि है। संसार में फिर न आने का अर्थ है, पक गए। संसार से जो सीखना था सीख लिया है और संसार में जो होना था हो गए, अब दुबारा आने की कोई जरूरत न रही। अनागामी आखिरी फल है। स्रोतापत्ति पहला फल है। ध्यान की धारा में उतरना, पहला कदम। अनागामी हो जाना, तो सागर में गिर गयी सरिता, मिलन हो गया सत्य से। अनागामी होकर कोई मरे तो यह परम घटना है, यह परम उपलब्धि है।

भगवान के जेतवन में विहार करते समय एक अनागामी स्थविर, एक वृद्ध भिक्षु मरकर शुद्धावास ब्रह्मलोक में उत्पन्न हुए।

ब्रह्म के साथ जो एक हो गया, वही ब्रह्मलोक। और जहां शुद्धि परम हो गयी, जहां कुछ भी अशुद्ध न रहा, वही शुद्धावास है।

मरते समय उनके शिष्यों ने पूछा, क्या भंते, कुछ विशेषता प्राप्त हुई है?

अब बुद्ध के शिष्यों में जैसे-जैसे शिष्य वृद्ध हो जाते थे, योग्य हो जाते थे, समाधिस्थ हो जाते थे, तो बुद्ध उनको भेजते थे दूर-दूर औरों तक संदेश पहुंचाने को। तो बुद्ध के जीते ही बुद्ध के बहुत से शिष्यों के भी शिष्य थे, क्योंकि ये वृद्ध समाधिस्थ पुरुष दूर-दूर जाकर बुद्ध की खबर ले जाते, अनेक लोग इनसे दीक्षित होते। ये उपाध्याय कहलाते थे। ये बुद्ध की तरफ इशारा करते थे। ये शिक्षण देते थे कि कैसे बुद्ध में लीन हो जाओ। लेकिन ये बीच का सेतु बनते थे।

तो यह जो स्थविर वृद्ध भिक्षु की मृत्यु हुई, उनके शिष्यों ने उनसे जाकर पूछा, भंते, कुछ विशेषता प्राप्त हुई है? आप तो जा रहे हैं, हमें बता तो जाएं कम से कम कि कौन सी घटना घटी है आपके जीवन में। अतंर्तम में इस समय क्या घट रहा है? आप क्या पाकर जा रहे हैं? आपकी क्या संपदा है? आप क्या होंगे? कहां पैदा होंगे? पैदा होंगे कि नहीं पैदा होंगे? लौटेंगे अब कि नहीं लौटेंगे? हमें कुछ कह जाएं।

बात बड़ी मीठी है। निर्मलचित्त स्थविर ने यह सोचकर कि यह भी क्या कोई उपलब्धि है या विशेषता है, चुप्पी ही साधे रखी।

उपलब्धि तो अहंकार की ही भाषा है। जब तुम कहते हो, यह मैंने पा लिया, तो पाने से भी मैं ही मजबूत होता है। परम उपलब्धि का तो दावा नहीं किया जा सकता, क्योंकि जब तक दावेदार है, तब तक परम उपलब्धि नहीं हो सकती। मैं जब तक है, तब तक तुम कैसे दावा करोगे? और मैं ही दावेदार है।

तो दावा तो हो ही नहीं सकता परम उपलब्धि का। परम उपलब्धि के संबंध में तो चुप रह जाने के सिवाय कोई उपाय नहीं है। चुप्पी कोई समझ ले तो समझ ले, न समझे तो उसकी वह जाने।

इस वृद्ध स्थविर को साफ दिखायी पड़ रहा है कि अब लौटूंगा नहीं, यह परमदशा आ गयी है--अब तुम यह मत सोचना कि इसका पता कैसे चलेगा? जब परमदशा आती है तो पता चलेगा ही। जैसे अंधेरी रात में

एकदम उजेला हो जाए तो पता नहीं चलेगा! सिर में दर्द होता है तो पता चलता है, दर्द चला जाता है तो पता चलता है। जीवनभर पीड़ा रही किसी न किसी तरह की, सारी पीड़ा चली गयी, सब तिरोहित हो गयी, एकदम परम आनंद की वर्षा होने लगी भीतर, तो पता नहीं चलेगा? अंधेरा था जन्मों-जन्मों का, सब कट गया, आखिरी पर्तें बची थीं वे भी टूट गयीं, आखिरी पर्दा भी उठ गया, तो इस स्थविर को साफ दिखायी पड़ रहा है कि क्या हो गया। लेकिन सोचा कि यह भी क्या कोई उपलब्धि है!

दो कारणों से यह उपलब्धि नहीं है। पहली तो बात, उपलब्धि है अहंकार की भाषा। मैंने पा लिया, यह बात ही उस परम के संबंध में नहीं कही जा सकती। दूसरी बात, यह उपलब्धि नहीं कही जा सकती, क्योंकि यह हमारा स्वभाव है। यह हमने पा लिया, ऐसा थोड़े ही, यह तो सदा से था ही, हम भूल गए थे, बस स्मरण किया है। इसलिए भी इसको उपलब्धि नहीं कह सकते।

जब बुद्ध को ज्ञान हुआ और किसी ने पूछा, क्या पाया? तो बुद्ध ने कहा, पाया कुछ भी नहीं, जो मिला ही था उसे जाना; जो था ही, जो सदा से था, हमने आंख न डाली थी अपने खजाने पर, बस इतनी ही भूल थी, खजाना तो था ही; इसलिए पाया, ऐसा कहना ठीक नहीं, प्रत्यभिज्ञा हुई, पहचान हुई, पहचाना, जाना। इसलिए भी इस परमस्थिति को उपलब्धि नहीं कहा जा सकता।

तो वृद्ध स्थविर चुप ही रह गए। कुछ बोलना ठीक न लगा। कहें कि अनागामी हो गया हूं, अब नहीं आऊंगा, तो यह भी आने का एक उपाय हो जाएगा। क्योंकि फिर थोड़ा मैं अभी शेष रह गया। कहें कि बहुत कुछ पा लिया, पा लिया जो पाना था, तो भी अज्ञान की ही घोषणा होगी।

उपनिषद कहते हैं, जो कहे मैंने जान लिया, जानना कि नहीं जानता है। सुकरात ने कहा है कि जब मैंने जाना तो जाना कि मैं कुछ भी नहीं जानता हूं।

तो यह वृद्ध स्थविर चुप रह गया। लेकिन चुप्पी को तो बहुत कम लोग समझ सकते हैं। शब्दों को ही कम लोग समझ पाते हैं, चुप्पी को तो कौन समझेगा! कहो-कहो तब नहीं सुन पाते हैं, तो बिना कही बात तो कौन सुनेगा! भिक्षु तो बड़े उदास हो गए। और गुरु ऐसे ही मर रहा है खाली हाथ, कुछ भी नहीं बता रहा है कि कुछ मिला कि नहीं मिला, चित्त में बड़ी तकलीफ भी हुई होगी। मौत की तो तकलीफ हुई ही हुई--गुरु मर रहा है--साथ में यह भी तकलीफ हुई होगी कि ऐसे आदमी के शिष्य होकर हमको क्या होगा? यह तो मर गए और बिना कुछ पाए मर गए और हम इनके पीछे भटक रहे हैं। हम व्यर्थ ही परेशान हो रहे हैं।

तो वे बुद्ध के पास गए। उनका रोना दो कारणों से था। एक तो गुरु मर गया। लेकिन उससे भी बड़ा कारण यह था कि हम भी किसके चक्कर में पड़े रहे! कुछ इसको मिला ही नहीं था!

भगवान ने कहा, भिक्षुओ, रोओ मत, तुम्हारा गुरु शुद्धावास में उत्पन्न हुआ है। परमशुद्धि में जागा है। भिक्षुओ, देखते हो, तुम्हारा उपाध्याय कामों से रहित चित्त वाला हो गया है, अब उसकी कोई कामना नहीं बची है, इसलिए लौटेगा नहीं।

कामना लौटा लाती है। कामना बार-बार खींच लेती है। कामना नीचे उतारती है। कामना ही अधोगमन है।

तुम्हारा गुरु ऊर्ध्वगामी हो गया है।

वह मुक्त हो गया पृथ्वी से। अब पृथ्वी में कोई कशिश उसे खींचने वाली नहीं बची। अब वह उठता ही जाएगा शुद्धावास में।

जैनों के पास इसके लिए प्रतीक है, जैसे कि कोई लकड़ी के टुकड़े को मिट्टी से खूब लीप-पोतकर पानी में डाल दे, तो मिट्टी के वजन के कारण लकड़ी का टुकड़ा डूब जाएगा। फिर पानी की धार आती रहेगी, जाती रहेगी, मिट्टी गलती रहेगी, बहती रहेगी। एक घड़ी आएगी कि सारी मिट्टी बह जाएगी, फिर लकड़ी का टुकड़ा उठेगा, पानी की सतह पर आकर तैर जाएगा। ऐसा जैन कहते हैं, सिद्ध पुरुष संसार की सतह पर उठ जाते हैं, लोक की आखिरी सीमा पर पहुंच जाते हैं जहां अलोक शुरू होता है। उसी स्थिति को बौद्ध भाषा में कहते हैं--शुद्धावास, ब्रह्मलोक।

मनुष्य के पार हो गए, परमात्मा हो गए, अब लौटने का कोई कारण न रहा। मिट्टी की पकड़ न रही। जब तक तुम समझते हो मैं देह हूं, तब तक मिट्टी की तुम पर पकड़ है, तब तक तुम मिट्टी ही हो। जिस दिन तुमने समझा कि मैं देह नहीं हूं, उसी दिन मिट्टी की पकड़ छूटी। और धीरे-धीरे मिट्टी बह जाती है, तुम शुद्ध हो जाते हो। तुम्हारी चेतना ऊर्ध्वगामी हो जाती है। ऊपर उठने लगती है।

जाओ, खुशी मनाओ, तुम्हारा उपाध्याय कामना से मुक्त हो गया है, अनागामी हो गया है, बुद्ध ने कहा। तब शिष्यों ने कहा, पर उन्होंने मरते समय चुप्पी क्यों साधे रखी? हमें बताया क्यों नहीं?

उन्होंने तो बताया, चुप्पी से ही बताया। कुछ बातें चुप्पी से ही कही जाती हैं। कुछ बातें कहो तो खराब हो जाती हैं। कुछ बातें बिना कहे ही कही जाती हैं। मगर उसके लिए तो बड़ा संवेदनशील बोध चाहिए उसे समझने को, उस मौन को समझने को। उस इशारे को पहचानने के लिए तो बड़ी ध्यान की दशा चाहिए।

बुद्ध ने कहा, इसीलिए भिक्षुओ, इसीलिए, क्योंकि निर्मलचित्त को उपलब्धि का भाव नहीं होता है।

जहां उपलब्धि है, वहां उपलब्धि का भाव नहीं है। जहां परमात्मा से मिलन हुआ, वहां मिलन हो गया है, ऐसी बात भी व्यर्थ हो जाती है। जहां जान लिया, वहां क्या कहो कि जान लिया है! कहने में कुछ सार न रहा। शब्द तो वहीं तक हैं, वहीं तक कह पाते हैं, जहां तक शब्दों की सीमा है।

शब्द तो सत्य को कभी नहीं कह पाते हैं। ज्यादा से ज्यादा सत्य के संबंध में कुछ तुतलाते हैं, कह नहीं पाते। जैसे छोटे बच्चे तुतलाते हैं। कुछ कहना चाहते हैं, लेकिन तुतलाते हैं। मां को समझना पड़ता है कि क्या मतलब है उनका, मतलब लगाना पड़ता है। ऐसे ही शब्द हैं, सत्य के संबंध में तुतलाते हैं, कुछ कह नहीं पाते।

बुद्ध ने कहा, इसीलिए भिक्षुओ, इसीलिए, क्योंकि जो उपलब्ध हो गया, उसे उपलब्धि का भाव नहीं होता है। वहां कोई बचा ही नहीं जिसको उपलब्धि का भाव हो। नहीं कोई बचा, इसी को तो शुद्ध अवस्था कहते हैं। जहां कोई मैं नहीं रहा, वहीं तो परम शुद्धि है। और तब उन्होंने यह अपूर्व सूत्र कहा--

छंदजातो अनक्खातो मनसा च फुटो सिया।
कामेसु च अप्पटिवद्धचित्तो उद्धसोतो ति बुच्चति।।

"अनख्यात में जिसका रस है, जिसके मन ने उस रस को छू लिया है--या उस रस ने जिसके मन को छू लिया है--और कामभोगों में जिसका चित्त अब बंधा नहीं है, वह ऊर्ध्वस्रोता कहा जाता है।"

तुम्हारा गुरु ऊर्ध्वस्रोता हो गया। समझो।

छंदजातो अनक्खातो... ।

यह बड़ा प्यारा शब्द है। जो नहीं कहा जा सकता--अनख्यात है, जिसको कहने के लिए भाषा बनी नहीं है, जिसको कहने का कोई उपाय ही नहीं है, अनख्यात, अनिर्वचनीय--अनक्खातो छंदजातो; जिसे, जो नहीं कहा जा सकता, उसमें रस आ गया है। कोई उसे परमात्मा कहता है, कोई उसे निर्वाण कहता है, कोई उसे आत्मा कहता है, पर ये सब शब्द कामचलाऊ हैं। न तो वह परमात्मा शब्द में समाता है, न आत्मा शब्द में समाता है, न निर्वाण में, न मोक्ष में, सब शब्द छोटे पड़ जाते हैं। क्योंकि शब्दों की सीमा है, वह असीम है, विराट है। शब्द तो छोटे-छोटे आंगन हैं, वह तो पूरा आकाश है।

छंदजातो अनक्खातो... ।

जिसे उस अव्याख्य में छंद हो गया, रस हो गया, जिसका हृदय तरंगित होने लगा, लयबद्ध हो गया जो उस अनख्यात से, जो उस अनिर्वचनीय के साथ संगीत में बंध गया, छंदोबद्ध हो गया।

छंदजातो अनक्खातो मनसा च फुटो सिया।

और जिसके मन में उस रस की वर्षा हो गयी, उस रस ने जिसके मन को डुबा दिया, जो स्नान कर लिया उसमें, ऐसा व्यक्ति स्वभावतः कामभोगों से मुक्त हो जाता है। क्योंकि परमभोग जब हो जाए तो क्षुद्र भोगों की कौन कामना करता है। जिसे परमात्मा का भोग मिल गया, वह फिर क्या चाहेगा और किसी भोग को! फिर सब भोग फीके पड़ गए। छोड़ने नहीं पड़ते हैं, छूट जाते हैं। व्यर्थ होने के कारण छूट जाते हैं। जिसको सार हाथ में आ गया, फिर वह असार को नहीं पकड़ता।

ऐसा व्यक्ति बुद्ध कहते हैं, ऊर्ध्वस्रोता कहा जाता है।

कामेसु च अप्पटिवद्धचित्तो... ।

जो सदा से बंधा था चित्त कामवासनाओं में, वे सारे बंधन गिर गए। जंजीरें टूट गयीं, बेड़ियां टूट गयीं। वह चित्त मुक्त हो गया, वह चित्त मुक्त होकर ऊपर उठने लगा।

कामेसु च अप्पटिवद्धचित्तो उद्धसोतो ति बुच्चति।।

ऐसे चैतन्य को ऊर्ध्वगामी, ऊर्ध्वस्रोता कहा जाता है। हम सब जब तक कामना से बंधे हैं, अधोगामी, नीचे की तरफ जाने वाले।

देखा तुमने, पानी नीचे की तरफ जाता है, वह है अधोगामी। जहां खड्डा हो उसी की तलाश करता है। ऊंचाई से हटता है, ऊंचाई में उसे रस नहीं। पहाड़ पर गिरेगा तो पहाड़ पर नहीं रुकेगा, भागेगा एकदम नीचे की तरफ। नदी-झरने बन जाएगा और भागेगा, खाई-खड्डु खोजेगा। छोटे-मोटे खाई-खड्डों से भी उसका मन नहीं भरता, भागता ही रहेगा जब तक कि समुद्र का खड्डा न मिल जाए--बड़ा खड्डा न मिल जाए। बड़े से बड़े खड्डु में जाकर रुकेगा।

लेकिन यही पानी जब सूर्य के उत्ताप से तपता है, वाष्प बनता है, भाप बनता है, ऊपर की तरफ उठने लगता है, आकाश की तरफ, बादलों की तरफ, ऊर्ध्वगामी हो जाता है। वही पानी भाप बनकर ऊर्ध्वगामी हो जाता है। पानी वही है। पानी बनकर अधोगामी हो जाता है।

तो चैतन्य की दो दशाएं हैं। जिसको हम चित्त कहते हैं, वह पानी है। और जिसको हम आत्मा कहते हैं, वह भाप है। ये चैतन्य की दो दशाएं हैं। जिसको हम मन कहते हैं, चित्त कहते हैं, वह पानी है--वह नीचे की तरफ जाता है, वह अधोगामी है। और जिसको हम आत्मा कहते हैं, वह यही पानी है जो तपश्चर्या से, तप से भाप बन गया, वाष्पीभूत हो गया, उड़ने लगा ऊपर की तरफ, पंख मिल गए जिसे--तो ऊर्ध्वगामी।

नीचे चलो तो संसार है, ऊपर चलो तो परमात्मा है।

छंदजातो अनक्खातो... ।

इस अव्याख्य में जिसको रस आ गया, जो नाचने लगा मग्न होकर, वह फिर नहीं लौटता। जो मयूर हो गया, फिर नहीं लौटता।

खिड़की से उड़ आयी गंध
साथ लिए रस-भीगे छंद
भीत टंगे पुष्पों के चित्र
बिखराते लगते मकरंद
किसी नयी कविता की पंक्ति
अधरों पर हो उठी अधीर
परस गयी फागुनी समीर

जैसे फागुन आता है न, फूल खिल जाते हैं न, गंध तैरती, ऐसा ही एक भीतर का फागुन भी है। खुले खिड़की भीतर की।

खिड़की से उड़ आयी गंध
साथ लिए रस-भीगे छंद
भीत टंगे पुष्पों के चित्र
बिखराते लगते मकरंद
किसी नयी कविता की पंक्ति
अधरों पर हो उठी अधीर
परस गयी फागुनी समीर
टेसू लहके पुरवा मारे
रंग भरी पिचकारी
ढोल-मृदंग मजीरे चढ़ते
स्वर की नयी अटारी
एक बरस के बाद आज
मन सुगना बहका रे

एक बरस के बाद आज

फिर फागुन महका रे

यह तो बाहर के फागुन का गीत है--

एक बरस के बाद आज

फिर फागुन महका रे

एक बरस के बाद आज

मन सुगना बहका रे

यह तो बाहर की बात है, भीतर की बात तो ऐसी है कि--

बरस-बरस के बाद

जन्म-जन्म के बाद

आज मन सुगना बहका रे

बरस-बरस के बाद

जन्म-जन्म के बाद

आज फिर फागुन महका रे

छंदजातो अनक्खातो... ।

जिसको उस अव्याख्य में, निर्वाण में छंद आ गया, रस आ गया, जो मगन हो गया, मस्त हो गया, जो नाच उठा, जो गीत-गीत हो गया, जो भूल ही गया अहंकार को, बात ही गयी, मैं का भाव ही न रहा, वही नाचता हुआ चैतन्य, वही भीतर की मदिरा से मस्त चैतन्य ऊर्ध्वस्रोता हो जाता है।

आज इतना ही।

चौहत्तरवां प्रवचन

जगत का अपरतम संबंधः गुरु-शिष्य के बीच

पहला प्रश्नः संतों की वाणी सुनने या पढ़ने से मन या मस्तिष्क का तनाव दूर होता है। असंतों के कलाम की यह विशेषता नहीं होती। कृपया बताएं कि इसका कारण क्या है?

पूछा है फारूख खां ने।

पहली बात, संतों की वाणी सिर्फ वाणी नहीं है। वाणी ही हो तो खोल ही है, भीतर कुछ सार नहीं; शब्द ही हैं, भीतर कुछ सार नहीं। संतों की वाणी वाणी से कुछ ज्यादा है। वाणी तो केवल सहारा है उसे देने का, जो और किसी ढंग से दिया नहीं जा सकता। वाणी तो वाहन है। शब्दों पर चढ़ाकर, शब्दों के घोड़ों पर चढ़ाकर जो भेजा जा रहा है, वह शब्द से बहुत पार है। उसकी ही वर्षा जब हो जाती है हृदय पर तो शांति मिलेगी, सुख मिलेगा, संतोष मिलेगा।

असंतों की वाणी कोरी है, खाली है। जैसे मरा हुआ आदमी, लाश पड़ी है। और यही आदमी जीवित था कल तक। शरीर अब भी वैसा ही है, लेकिन शरीर के भीतर से कोई चीज उड़ गयी। अब तो पिंजड़ा पड़ा रह गया है, पक्षी उड़ गया। असंतों की वाणी ऐसी है जैसे मरा हुआ आदमी। शब्द की देह तो है, लेकिन अनुभव की आत्मा नहीं है। तो असंतों की वाणी से सुगंध तो मिलनी कठिन है, दुर्गंध ही मिलेगी। संतों की वाणी से संतोष मिलेगा, क्योंकि संतोष सत्य की छाया है।

यह तो बात ठीक। लेकिन एक बात याद रखना, जिनकी वाणी से संतोष मिल जाए, जरूरी नहीं कि वे संत ही हों। और जिनकी वाणी से तुम्हें संतोष न मिले, जरूरी नहीं कि वे असंत ही हों।

जहां तक संतों की तरफ से संबंध है, संतों की वाणी से संतोष मिलना चाहिए। जहां तक असंतों का संबंध है, असंतों की वाणी से संतोष नहीं मिलना चाहिए। लेकिन जो मिलता है, उसमें अकेला संत थोड़े ही भागीदार है, तुम भी भागीदार हो। वर्षा होती हो और घड़ा उलटा रखा हो तो गैर-भरा रह जाएगा। तो संत की भी वाणी से हो सकता है संतोष न मिले, अगर तुम उसे ग्रहण ही न करो; अगर तुम उसे भीतर ही न जाने दो; या तुम्हारे पूर्व-पक्षपात, तुम्हारी पहले की बनायी धारणाएं रुकावट बन जाएं।

तो ऐसा समझो कि जरूरी नहीं है कि संत की वाणी से संतोष मिले ही, तुम लोगे तो ही मिलेगा। और दूसरी बात भी संभव है, असंत की वाणी से भी संतोष मिल जाए, अगर तुमने लेने की ही जिद्द कर रखी है। तो जहां कुछ भी नहीं है वहां भी तुम कुछ देख लोगे। क्योंकि इस लेन-देन में दो व्यक्ति सम्मिलित हैं, एक देने वाला और एक लेने वाला, इसलिए लेन-देन की यह घटना दोनों पर निर्भर होगी।

जैसे, अगर कोई जैन किसी सूफी फकीर की वाणी पढ़े, उसे संतोष नहीं मिलेगा। क्योंकि वह यह मान ही नहीं सकता कि मांसाहारी और ज्ञान को उपलब्ध हो जाए। यह बात ही संभव नहीं है। सूफी संत की तो छोड़ दो, एक जैन मुनि ने मुझसे कहा कि आप रामकृष्ण परमहंसदेव का उल्लेख करते हैं, आपको पता है, वे मछली खाते थे? तो मछली खाने वाला आदमी कैसे संत हो सकता है! अब इन जैन मुनि को रामकृष्ण की वाणी से संतोष नहीं मिलेगा। इससे यह मत समझ लेना कि जहां से संतोष नहीं मिलता वहां संत नहीं है।

बौद्धों को जैनों की वाणी में संतोष नहीं है। हिंदुओं को मुसलमानों की वाणी में संतोष नहीं है। मुसलमानों को ईसाइयों की वाणी में संतोष नहीं है। तो इसका क्या अर्थ हुआ है? इसका अर्थ हुआ कि संतत्व की भी तुम्हारी धारणा है। उस धारणा के अनुकूल संत पड़ता हो तो तुम संतोष लोगे। उसके अनुकूल न पड़ता हो तो तुम्हें जरा भी संतोष न मिलेगा। फिर कभी यह भी हो सकता है कि असंत तुम्हारी धारणा के अनुकूल पड़ता हो।

मैंने सुना है, मुल्ला नसरुद्दीन भूखा-प्यासा एक गांव में आया। गांव में एक भी मुसलमान नहीं था। गांव शाकाहारियों का था और गांव का जो साधुपुरुष था, उसने सारा जीवन शाकाहार की ही सेवा में लगाया था। बस मांसाहार के ही विपरीत उसका सारा जीवन समर्पित था।

मुल्ला उसकी सभा में गया। तो वह समझा रहा था कि मांसाहार बुरा है। पशु-पक्षियों में भी आत्मा है। मुल्ला बीच में खड़ा हो गया, उसने कहा, आप बिल्कुल ठीक कहते हैं, एक बार एक मछली ने ही मेरे प्राण बचाए थे। साधु तो बहुत प्रसन्न हुआ, उसने कहा, आओ भाई, आओ! यह तो बड़ा प्रमाण मिला कि एक मुसलमान भी तैयार है गवाही देने को। उन्होंने उसे पास बिठाया, उसके भोजन का भी इंतजाम करवाया और कहा कि तुम यहीं रहो, कहीं और जाने की जरूरत नहीं; यह प्रमाण हो गया। और रोज साधु जब समझाता लोगों को, वह कहता कि पूछो, इस मुसलमान भाई से पूछो, एक मछली ने ही इसके प्राण बचाए; मछलियों में भी आत्मा है। उनको खाओ मत।

दो-चार दिन के ही बाद एक दिन सांझ को दोनों साथ बैठे थे, वह फकीर साधु कहने लगा मुल्ला नसरुद्दीन को कि तुम तो करीब-करीब मेरे गुरु हो। यद्यपि मैंने जीवनभर शाकाहार की सेवा की, मांसाहार का विरोध किया, लेकिन अभी तक किसी पशु-पक्षी ने ऐसा प्रमाण मुझे नहीं दिया जैसा तुम्हें दिया। तुम तो करीब-करीब मेरे गुरु हो। अब विस्तार में मुझे कहो कि बात क्या थी, कैसे बचाए तुम्हारे प्राण?

मुल्ला ने कहा, आप विस्तार न पूछें तो अच्छा। सब ठीक चल रहा है, विस्तार की क्या जरूरत है? पर साधु जिद्द करने लगा कि नहीं, बताना ही पड़ेगा। साधु ने तो पैर पकड़ लिए कि गुरुदेव, बताना ही पड़ेगा। तो मुल्ला ने कहा, अब नहीं मानते तो ठीक है, लेकिन हमें जाना पड़ेगा। साधु ने कहा, बात क्या है? इतना रहस्य क्यों बना रहे हो? मुल्ला ने कहा, बात यह है कि मैं बहुत भूखा था, और मछली को खाने से ही मेरे प्राण बचे। उसी रात--सुबह भी नहीं--उसी रात मुल्ला निकाला गया।

अभी तक इसकी वाणी में बड़ा संतोष मिल रहा था, अब इसकी वाणी में कोई संतोष न रहा।

तो तुम पूछते हो कि "संतों की वाणी सुनने या पढ़ने से मन या मस्तिष्क का तनाव दूर होता है।"

सभी संतों की? तब तो तुम संत हो जाओगे। तब तो तुम्हारे संत होने में फिर कोई बाधा न रही। या किन्हीं-किन्हीं संतों की? पूछने वाले मित्र मुसलमान हैं। तो तुमने और किन्हीं संतों की वाणी भी पढ़ी है, जिनके विचार इस्लाम से अन्य हों? उनसे संतोष न मिलेगा।

और इन्हीं मित्र ने दूसरा प्रश्न पूछा है, उससे जो मैं कह रहा हूं वह साफ हो जाएगा। इन्होंने पूछा है--

किसी व्यक्ति को भगवान की उपाधि देना या किसी को इस उपाधि का स्वीकार करना क्या उचित है? फिरआन का सबसे बड़ा अपराध यही तो था कि उसने अपने को खुदा होने का दावा कर रखा था।

अब इन मित्र ने इजिप्त के फिरआन का उल्लेख किया, लेकिन अलहिल्लाज मंसूर को छोड़ दिया। सच है यह बात कि इजिप्त के सम्राट फिरआन ने घोषणा कर रखी थी कि मैं खुदा हूं। यह उसका अपराध था। लेकिन

अपराध इसलिए नहीं था कि उसने घोषणा की थी कि मैं खुदा हूं, अपराध का कारण दूसरा था। अपराध का कारण यह था कि वह कहता था, मेरे सिवाय खुदा और कोई नहीं। मैं खुदा हूं, मेरे सिवाय और कोई खुदा नहीं।

यही बात तो मंसूर ने भी कही थी, जिनको मुसलमानों ने सूली दी। और मैं समझता हूं कि फारूख खां भी राजी होंगे कि सूली ठीक दी। मंसूर ने भी यही कहा था कि मैं खुदा हूं। लेकिन बड़ा फर्क था उसके कहने में। उसके कहने का मतलब था कि मैं खुदा हूं, क्योंकि सभी खुदा हैं, खुदा के अतिरिक्त और कुछ है ही नहीं।

मंसूर ने जो कहा वह संत की वाणी थी और फिरआन ने जो कहा वह संत की वाणी नहीं थी, यद्यपि वक्तव्य दोनों के एक जैसे हैं। दोनों ने यही कहा था, मैं खुदा हूं। लेकिन फिरआन कहता था, मेरे अलावा कोई और खुदा नहीं। और मंसूर ने कहा कि मैं करूं भी क्या, खुदा होना ही पड़ेगा, उसके सिवा होने का कोई उपाय नहीं, क्योंकि खुदा ही है। लेकिन मुसलमानों ने फिरआन को भी अपराधी साबित किया और मंसूर को भी सूली लगा दी।

अब अगर मुसलमानों को उपनिषद के ऋषि मिल जाते जिन्होंने कहा, अहं ब्रह्मास्मि, क्या करते तुम उनके साथ? फांसी लगाते न! सूली लगाते। संत तो तुम्हें वे मालूम नहीं पड़ सकते थे। जो कहता है मैं ब्रह्म हूं, वह कैसे संत हो सकता है!

मुसलमान नाराज हैं जीसस पर, क्योंकि जीसस ने दावा किया कि मैं ईश्वर का बेटा हूं। यह भी कोई दावा है! हमारे मुल्क में लोग हैं, जो कहते हैं, हम ईश्वर हैं। बेटे का भी क्या दावा करना! मगर मुसलमान इससे नाराज हैं कि ईसा ने दावा किया कि मैं ईश्वर का बेटा हूं। नहीं, यह बात ठीक नहीं। तो तुम बुद्ध को क्या कहोगे? महावीर को क्या कहोगे? कृष्ण को और राम को क्या कहोगे? ये सब तो अपराधी हो गए। ये तो संत न रहे।

तो मैं कहना चाहूंगा कि तुम्हारा ही दूसरा प्रश्न सबूत देता है कि संत का तुम्हारे मन में क्या अर्थ है। एक धारणा होगी। संत ऐसा होना चाहिए। धारणा तुम्हारी है, उस धारणा में बैठ जाएगा तो संत, नहीं बैठा तो असंत हो जाएगा। और कौन संत तुम्हारी छोटी-मोटी धारणाओं में बैठ सकता है? जो बैठ जाए वह संत ही क्या खाक! जो तुम्हारी खिड़की में बैठ जाए, तुम्हारे ढांचे के अनुकूल पड़ जाए, वह कोई संत! नकल होगा। संत की नकल ढांचों में बैठ जाती है। तुम बड़ा संतोष भी ले लोगे। तुम्हें संतोष इसलिए नहीं मिल रहा है कि संत की वाणी में कुछ सार है, तुम्हें संतोष इसलिए मिल रहा है कि तुम्हारा अहंकार तृप्त हो रहा है कि देखो, मेरी धारणा संत की कितनी सही है। यह प्रमाण मिल गया। यह आदमी प्रमाण है मेरे संतत्व की धारणा का। तुम अपनी ही धारणा के चरणों में सिर झुका रहे हो।

मैं एक घर में मेहमान था, एक जैन घर में। एक बूढ़े सज्जन मुझे मिलने आए, उम्र होगी कोई अस्सी साल की। कोई चालीस साल से त्यागी का जीवन ही बिताते थे, यद्यपि घर में ही थे। लेकिन न दुकान जाते, न घर-द्वार की बात करते, ज्यादातर सामायिक, ध्यान, उपवास, इसमें ही समय लगाते थे। मैं गांव में आया हूं तो मुझे मिलने आए--अपने घर के बाहर भी नहीं जाते थे। उनके साथ दस-पांच लोगों का गिरोह भी आया यह देखने कि वह कभी अपने घर के बाहर जाते नहीं, किस के दर्शन को जा रहे हैं? उन्होंने मेरी एक किताब पढ़ी थी--साधना पथ--और उससे वे बहुत प्रभावित थे। वे आकर मेरे चरणों में झुके और उन्होंने कहा कि आप तो मेरे लिए तीर्थंकर हैं। आपने जो किताब लिख दी, उससे मुझे जो मिला है, वह किसी चीज से नहीं मिला। मेरा सारा जीवन उसने बदल डाला है।

ऐसे उनसे बातें हो रही थीं, तभी घर की गृहिणी ने आकर मुझे कहा कि अब आप भोजन कर लें, सांझ हो गयी है। तो मैंने उनसे कहा कि यह वृद्ध सज्जन आए हैं, अभी बीच में बाधा न डालो, थोड़ी देर बाद भोजन कर लूंगा। वे वृद्ध सज्जन तो बहुत चौंके, उन्होंने कहा, क्या? सूरज ढला जा रहा है, सूरज ढलने के बाद भोजन करेंगे! मैंने कहा, आप इतनी दूर से चलकर आए, बूढ़े हैं, आपके पास बैठना ज्यादा आनंदपूर्ण है, भोजन तो घड़ीभर बाद हो जाएगा। उन्होंने कहा, आप समझे नहीं। वह उठकर खड़े हो गए। उन्होंने कहा, जिस आदमी को अभी यही पता नहीं कि रात्रि-भोजन पाप है, उसको और क्या पता हो सकता है!

आए थे तो मेरे चरण छुए थे, जाते वक्त मुझे उपदेश देकर गए कि कम से कम इतना तो करो कि रात्रि-भोजन छोड़ दो। अब मैं निश्चित जानता हूं, घर जाकर उन्होंने किताब जला दी होगी या फेंक दी होगी। किसी को दी होगी, यह भी मैं नहीं मान सकता। क्योंकि ऐसे भ्रष्ट आदमी की किताब किसी को देकर क्या भ्रष्ट करना है! आए थे तो मैं तीर्थंकर था। तीर्थंकर के गिरने में देर कितनी लगती है! तुम तीर्थंकर को इतनी स्वतंत्रता भी तो नहीं दे सकते कि वह सूरज ढलने के बाद भोजन कर ले। तुम्हारा तीर्थंकर तुम्हारा गुलाम, तुम्हारा संत तुम्हारा गुलाम।

तो गुलाम ही तुम्हारे संत हो सकते हैं। जो अपने मालिक हैं, शायद उनसे तो तुम्हें संतोष नहीं मिलेगा। जो अपने मालिक हैं, वे तो तुम्हें झकझोर देंगे। वे तो आएंगे एक तूफान की तरह, एक आंधी की तरह और तुम्हें उखाड़ देंगे, तुम्हारी सारी धारणाओं को उखाड़ देंगे। वे तो आएंगे एक झंझावात की तरह और तुम्हारे बनाए हुए सारे भवनों को गिरा देंगे, तुम्हारा सारा तत्वज्ञान धूल-धूसरित हो जाएगा। असली संत के करीब तो पहले तुम्हारी धारणाएं टूटेंगी। और अगर धारणाएं टूटने में तुम घबड़ाए न, परेशान न हुए--असली संत पहले तो तुम्हें मारेगा, अगर तुम मरने से न डरे, तो जरूर संतोष आएगा। और संतोष ऐसा कि फिर जाने वाला नहीं।

लेकिन एक ऐसा भी संतोष है जो तुम मान लेते हो। तुम जहां भी अपनी धारणा के अनुकूल किसी को देखते हो, तुम्हें संतोष मिलता है। क्या संतोष मिलता है? कि मेरी धारणा ठीक है। देखो, यह आदमी सबूत है। अगर अपनी धारणा का मैं सबूत नहीं हूं, तो कम से कम यह आदमी सबूत है।

इसलिए तुम पूछते हो कि "किसी व्यक्ति को भगवान की उपाधि देना!"

तुम्हारे प्रश्न में भी तुम्हारी धारणा छिपी है। भगवान कोई उपाधि नहीं है। भगवान कोई ऐसा नहीं है कि किसी को पद्मभूषण बना दिया, कि भारतरत्न बना दिया। भगवान कोई उपाधि नहीं है कि किसी विश्वविद्यालय की डिग्री है। और भगवान बनाना किसी के हाथ में नहीं है, भगवान होना हमारा स्वभाव है। यह उपाधि नहीं है। उपाधि तो बीमारी का नाम है। उपाधि के तो दो अर्थ होते हैं--डिग्री और बीमारी भी। भगवान कोई उपाधि नहीं है। भगवान तो अपने स्वभाव को पहचान लेना है। जब तुम अपने भीतर झांकते हो और पहचान लेते हो, कौन वहां विराजमान है, तब तुम पाओगे कि भगवान हो।

भगवत्ता हमारा सामान्य धर्म है। जैसे आग का धर्म जलाना, ऐसा आदमी का धर्म भगवान। और जब आदमी में तुम्हें भगवान दिखेगा, तो धीरे-धीरे तुम्हारी आंख और गहरी जाएगी, पशु-पक्षियों में भी दिखेगा। फिर और आंख गहरी जाएगी और पौधों में भी दिखेगा, फिर और आंख गहरी जाएगी और चट्टानों में भी दिखेगा। और जिस दिन तुम्हें सब जगह दिखायी पड़ना शुरू हो जाए, कोई ऐसी जगह न रहे जहां भगवान न हो, तभी जानना कि तुम घर वापस लौटे।

नानक मक्का गए तो सो गए रात पैर करके पवित्र मंदिर की तरफ। पुरोहित नाराज हुए। उन्होंने आकर कहा कि तुम्हें पैर पवित्र मंदिर की तरफ करके सोते लाज नहीं आती और लोग कहते हैं तुम संत हो! यह क्या

संत हुए तुम! तुम्हें इतना भी पता नहीं है कि कहां पैर करने! तो कथा बड़ी प्यारी है, कथा कहती है कि नानक ने कहा, मेरे पैर उस जगह कर दो जहां भगवान न हो। तब जरा मुश्किल हो गयी होगी! पुजारियों ने, कहते हैं, जहां भी नानक के पैर किए, पाया कि काबा उसी तरफ घूम गया। ऐसा काबा घूमा हो, ऐसा मैं नहीं मानता। लेकिन कहानी बड़ी अर्थपूर्ण है। काबा घूमा हो, इसकी कोई जरूरत भी नहीं है। काबा के घूमने की जरूरत नहीं है, क्योंकि काबा सब तरफ है ही। इतना ही अर्थ है कहानी में--कहां करोगे पैर? जहां पैर करोगे, वहीं भगवान है। सब ओर भगवान है।

तो पहली तो बात तुम पूछते हो, "किसी व्यक्ति को भगवान की उपाधि देना।"

उपाधि दी तो बात गलत हो गयी, यह उपाधि नहीं है। और कोई किसी को दे नहीं सकता। तुम जब अपने स्रोत में उतरते हो, तो यह तुम्हारा अनुभव है।

"या किसी का इस उपाधि को स्वीकार करना।"

यह उपाधि ही नहीं है, स्वीकार-अस्वीकार का सवाल नहीं है। जब तुम जानोगे और पाओगे कि ऐसा है, तो फिर करोगे क्या! यही तो अलहिल्लाज मंसूर के साथ हुआ। जिस दिन मंसूर को बोध हुआ, उसने घोषणा कर दी--अनलहक। मैं परमात्मा हूं, मैं सत्य हूं, मैं ब्रह्म हूं।

जिन गुरु के पास मंसूर रहता था, गुरु ने कहा, भीतर रख, भीतर रख, यह बात बाहर मत निकाल। सूफी यह सदा से जानते रहे हैं, मगर मुसलमानों के डर से कहते नहीं। गुरु ने कहा कि रख, भीतर रख, मुझे भी पता है, अब तुझे भी पता हो गया है, मगर बाहर मत कह, नहीं तो झंझट खड़ी होगी। झंझट खड़ी हुई। मंसूर ने कहा, जो भीतर है उसको बाहर क्यों न बहने दें? रुकावट कैसे डालूं? और फिर मैं थोड़े ही कहता हूं, एक भावदशा आती है जब मेरे भीतर यह गुंजार उठता है, अनलहक। मेरे भीतर यह घोषणा उठती है कि मैं भगवान हूं। गुरु ने तो उसको विदा कर दिया। उन्होंने कहा, अगर यह घोषणा ही करनी है, तो तू कहीं और जा! कोई और गुरु चुन ले। किसी और गुरुकुल में रुक जा। यहां हम झंझट नहीं लेना चाहते।

दूसरे गुरु के पास भी यही हुआ, तीसरे गुरु के पास भी यही हुआ। चौथे गुरु के पास गुरु ने कहा कि हम तेरी तकलीफ समझते हैं, जब होती है यह घटना तो कभी-कभी ऐसा होता है, आदमी अपने वश में नहीं रह जाता, उदघोषणा होने लगती है, मगर इसे रोकना पड़ेगा, अन्यथा झंझट आएगी। तू इसे रोक, नहीं तो मैं तुझसे कहता हूं, तू फांसी पर चढ़ेगा। कहते हैं, मंसूर ने कहा, मैं उसी दिन फांसी पर चढूंगा जिस दिन तुम अपना यह सूफी अंगरखा उतार दोगे। उसके पहले नहीं चढूंगा। और कहानी कहती है कि दोनों की भविष्यवाणियां सच सिद्ध हुईं।

खलीफा ने खबर भेजी गुरु के पास कि तुम्हारे आश्रम में एक आदमी है, जो कहता है मैं ईश्वर हूं, उसे निकाल बाहर कर दो, वह अपराध कर रहा है। लेकिन गुरु ने कोई ख्याल न दिया, बात चुपचाप रखे रहा। दुबारा खबर भेजी गयी, तीसरी बार खबर भेजी गयी। जब सातवीं बार खबर आयी तो साथ में पुलिस के आदमी भी आए, नंगी तलवारें भी आयीं। और उन्होंने कहा, अब तुम्हें दस्तखत करके देना होगा कि यह आदमी अपराधी है, और इसको फांसी लगेगी।

गुरु ने सोचा कि सूफी के कपड़े पहने हुए कैसे दस्तखत करूं, क्योंकि सूफी सभी जानते हैं इस बात को भीतर कि यह बात सच है, इसलिए अपना अंगरखा उतारकर फेंक दिया। उन सिपाहियों ने कहा, यह अंगरखा क्यों फेंक रहे हो? उन्होंने कहा, सूफी रहते हुए इस तरह की बात पर मैं दस्तखत नहीं कर सकता, यह अंगरखा मुझे उतार देने दो। और ठीक ही कहा था मंसूर ने कि यह अंगरखा तुम छोड़ोगे, उसी दिन मुझे फांसी लगेगी।

अंगरखा उतारकर रख दिया और मौलवी के कपड़े पहन लिए। फिर दस्तखत कर दिए कि ठीक है, यह आदमी अपराधी है और इसको जो भी सजा उचित हो दी जाए। तब मंसूर को सूली लगी।

सूफी छिपाए रखे, क्योंकि मुसलमान देशों में सूफियों को प्रगट होने का उपाय नहीं था। इस देश में कोई अड़चन नहीं रही। इस देश में सूफी प्रगट होकर बोले हैं। जहां सूफी भी प्रगट होकर न बोल सकें, वहां धर्म का क्या उदभाव होगा! जहां उनको भी छिपाकर रखना पड़े। जहां सत्य की आखिरी ऊंचाई चोरों की भांति छिपाकर रखनी पड़े, वैसा देश धार्मिक नहीं हो सकता।

इस देश की दूसरी परंपरा है। इस देश में बड़ा मुक्त वातावरण रहा है। इस देश में जो तुम्हारे भीतर हो, उसकी उदघोषणा की आज्ञा है। जो तुम्हारे भीतर हो, कौन है दूसरा जो तुम्हें रोके! जो तुम्हारे भीतर हो उसकी उदघोषणा होने दो। अगर परमात्मा ने यही चुना है तुम्हारे भीतर कि घोषणा करे--अनलहक, अहं ब्रह्मास्मि, तो करने दो घोषणा।

यह कोई उपाधि नहीं है। कोई किसी दूसरे को देता-लेता नहीं, न कोई स्वीकार करता है, अस्वीकार करता है। यह तो तुम्हारे अंतर्तम का दीया जब जलता है, तब तुम जानते हो कि ऐसा है। यह तो तथ्य का अनुभव है। यह तो सत्य की प्रतीति है, यह तो साक्षात्कार है।

लेकिन तुम्हारी अड़चन मैं जानता हूं, मुसलमान परंपरा में पले हो, उसी ढंग से सोचा है। इसीलिए तुमने यह तो कहा कि फिरआन का सबसे बड़ा अपराध यही था कि उसने अपने को खुदा होने का दावा किया, लेकिन तुम भी चालाकी कर गए, प्रश्न पूछने में भी! फिरआन को घसीटकर लाए--पुराना, नाम भी लोग भूल गए फिरआन का, पांच हजार साल पुराना, इजिप्त का बादशाह, उसको घसीटकर लाए--ज्यादा जिंदा नाम, ज्यादा जिंदा आदमी अलहिल्लाज मंसूर के संबंध में क्या ख्याल है, फारूख खां! मंसूर को क्यों छोड़ दिया? तुम भी डरे होओगे कि इस सूफी को बीच में लाना ठीक नहीं है।

लेकिन तुम्हें बड़ी अड़चन होगी। अगर तुम बुद्ध को मिल जाओगे तो तुम बुद्ध को संत न मान सकोगे। अगर महावीर को मिल जाओगे तो तुम संत न मान सकोगे। राम को मिल जाओगे, कृष्ण को मिल जाओगे तो तुम संत न मान सकोगे, क्योंकि ये तो अपराधी हैं। इनकी वाणी से तुम्हें संतोष कैसे मिलेगा?

इसलिए मैं तुमसे कहता हूं, संतों की वाणी में जरूर अमृत है, सुधा है, लेकिन तुम जाने दोगे अपने प्राणों तक तभी न! और तुम तभी जाने दे सकते हो जब तुम्हारे द्वार-दरवाजे खुले हों, तुम्हारे मन पर कोई धारणाओं का जाल न हो, तुम्हारे मन पर कोई पूर्व-पक्षपात न हों, पूर्वाग्रह न हों, तब जरूर संतों की वाणी में बड़ा सार है। उनका एक शब्द भी चेता सकता है। उनका एक इशारा जगा सकता है।

मगर, अगर तुम असहयोग करो, तो संत भी सिर ठोंक-ठोंककर मर जाएं तो भी तुम्हारी नींद को नहीं तोड़ सकते। कितने तो संत हुए, तुम सोए हो तो सोए ही हो। कितने तो संत हुए सदियों-सदियों में, तुम जहां हो वहीं के वहीं हो, तुम वहां से हटते नहीं। फूल खिलते हैं, विदा हो जाते हैं, पत्थर अपनी जगह पड़े हैं, पड़े ही रहते हैं। वे फूलों की सुनते नहीं। न सुनने के पीछे कारण हैं। कारण यही है कि तुम्हारे कान पहले से भरे हुए हैं।

अगर तुमने मुसलमान की तरह सोचा, तो तुमने सोचा ही नहीं। अगर हिंदू की तरह सोचा, तो सोचा ही नहीं। अगर जैन की तरह सोचा, तो सोचा ही नहीं। सोचने वाला आदमी पहले तो ये सब लिबास उतारकर रख देता है; भूल ही जाता है कि मैं कौन हूं। अभी पता ही नहीं है कि मैं कौन हूं, तो ये ऊपर-ऊपर की बातें! किसी घर में पैदा हो गए वह मुसलमान था, हिंदू था, ईसाई था, यह तो सब संयोग की बात है। उस घर में पैदा हो

गए, उस घर के लोगों को जो मालूम था उन्होंने तुम्हें सिखा दिया। न उन्हें मालूम था, न तुम्हें मालूम है; उनके मां-बाप उन्हें सिखा गए थे, न उन्हें मालूम था। ऐसी सिखावन चलती जाती है, संस्कार चलते जाते हैं।

बुद्ध का वचन है कि संस्कार में दुख है। ये संस्कार हैं, हिंदू होना, मुसलमान होना, जैन होना, ईसाई होना संस्कार हैं। कंडीशनिंग। मां-बाप तुम्हारे सिर में भरना शुरू कर देते हैं कि तुम मुसलमान हो, कुरान तुम्हारी किताब है, मोहम्मद तुम्हारा पैगंबर है; कि तुम हिंदू हो, कि वेद तुम्हारी किताब है; कि तुम ईसाई हो, कि बाइबिल तुम्हारी किताब है; ऐसा मां-बाप भरना शुरू कर देते हैं--छोटा बच्चा, कोमल चित्त, ये सारी बातें इकट्ठी होती चली जाती हैं। सोच-विचार पैदा होने के पहले ही मन पर खूब संस्कार और जमघट जम जाता है, भीड़ पैदा हो जाती है। फिर जीवनभर आदमी उन्हीं संस्कारों से देखता है।

तो तुमसे मैं कहूंगा--

रंग ऐसा भरो
न रंग नफरत का हो
न रंग मजहब का हो
रंग ऐसा भरो
जिसके छींटों में बस
प्यार ही प्यार हो
दूरियां सब मिटें
पास इतने मिलें
एक छाया बने
तन से तन भी मिले
मन से मन भी मिले
पांव ऐसे धरो
रंग ऐसा भरो
जिसकी आहट में भी
प्यार ही प्यार हो
सबकी आंखों में हो
सबकी सांसों में हो
सबकी साधों में हो
एक ही बस गगन
एक ही बस लगन
डोर ऐसी गहो
जिसकी गांठों में बस
प्यार ही प्यार हो
रंग ऐसा भरो
न रंग नफरत का हो
न रंग मजहब का हो

रंग ऐसा भरो
जिसके छींटों में बस
प्यार ही प्यार हो

तो तुम देख पाओगे, सत्य क्या है। संत का अर्थ होता है, जहां सत्य अवतरित हुआ है। संत का अर्थ होता है, जहां सत्य ने देह धरी। संत का अर्थ होता है, जिस देह में सत्य सिंहासन पर विराजमान हुआ। अगर तुम निष्पक्ष मन, कोरे मन, शून्य मन संत के पास जाओगे, परम संतोष होगा। और संतोष ऐसा कि फिर मिटेगा नहीं। संतोष धारणा का नहीं, मान लिया ऐसा नहीं, सांत्वना जैसा नहीं, संतोष अनुभव का, सुख के अनुभव का। और वैसा संतोष तुम्हें भी संत बनाने लगेगा। रंगे जाने लगोगे। उस रंग में डूबने लगोगे।

यहां ऐसे ही रंग को भरने की कोशिश चल रही है, ऐसे ही रंग को रंगने की कोशिश चल रही है।

पानी से धुल जाएं
ऐसे भी रंग क्या,
एक उमर रंग जाए
ऐसा रंग डालो।
जैसा था बचपन में
जैसा था यौवन में
माटी का रंग अभी वैसा ही है,
पलकों के आसपास
मंडराते दर्द कई
सपनों का रंग अभी वैसा ही है,
थोड़े से हिस्से को
रंगने से क्या होगा,
एक शहर रंग जाए
ऐसा रंग डालो।
पानी से धुल जाएं
ऐसे भी रंग क्या,
एक उमर रंग जाए
ऐसा रंग डालो।
रंगों के अंदर भी
रंग हुआ करते हैं
रंगों के भीतर जाकर के देखो,
बिंबों के अंदर भी
सांस हुआ करते हैं
दर्पण के भीतर जाकर के देखो,
वासंती देहों को
रंगना है कायरता,

पतझर भी रंग जाए

ऐसा रंग डालो।

पानी से धुल जाएं

ऐसे भी रंग क्या,

एक उमर रंग जाए

ऐसा रंग डालो।

संत का अर्थ है, सत्य को उंडेल दे तुममें। संत का अर्थ है, जो उसे हुआ है उसमें रंग दे तुम्हें। संत का अर्थ है, रंगरेज। संत का अर्थ है, तुम्हें एक डुबकी लगवा दे उसमें, जो अभी तुम्हारे सामर्थ्य के बाहर है। संत का अर्थ है, जो उसने देखा है, अपनी आंखों के पीछे तुम्हें खड़ा करके थोड़ा अपनी आंखें उधार दे दे, कहे कि जरा मेरी आंखों से देख लो। जो मुझे दिखता है, वह देख लो। संत का अर्थ है कि थोड़ी देर को अपना हृदय तुम्हें दे दे। और अगर तुम राजी हो तो यह घट जाता है, इसमें देर नहीं लगती। यहां घट रहा है। तुम अगर राजी हो तो कभी भी, किसी भी क्षण, जहां राजीपन पूरा होता है, अचानक तुम्हारे हृदय की जगह मेरा हृदय धड़केगा, तुम मेरी आंख से देखने लगोगे। और तब सब चीजें और ही हो जाती हैं। तब सब कुछ और ही ढंग से दिखायी पड़ने लगता है।

संत को तुमने जानना सीखा, देखना सीखा, जब तुम्हें हिंदू का संत हो, कि मुसलमान का, कि ईसाई का, कि बौद्ध का, सभी का संत पहचान में आने लगे, तब तुम समझे कि संत क्या है। और तब जो संतोष मिलेगा, वह संक्रांति है, वह तुम्हें रूपांतरित कर जाएगी, वह तुम्हें नया कर जाएगी, वह तुम्हें द्विज बना देगी, एक नया जन्म देगी।

निश्चित ही यह बात असंतों की वाणी में कैसे हो सकती है! वाणी खाली, कोरी, वहां कुछ प्राण कहां। पिंजड़ा है, पक्षी तो नहीं। तो पिंजड़ों को लिए तुम चलते रहो। लेकिन बहुत बार ऐसा होता है कि लोग पिंजड़ों को लिए ही चलते रहते हैं और मानकर चलते हैं कि पक्षी है। होना चाहिए, क्योंकि बाप ने कहा, क्योंकि बाप के बाप ने कहा। होना चाहिए, क्योंकि भीड़ कहती है, समाज कहता है, मौलवी कहता है, पंडित कहता है, होना चाहिए। अपनी तरफ से नहीं देखते कि है या नहीं। डरते भी हो कि कहीं ऐसा न हो कि न हो, इसलिए देखते ही नहीं। अपने पिंजड़े को खूब ढांककर रखते हो कि कहीं दिखायी न पड़ जाए।

तुम्हें भी कभी-कभी शक तो आता होगा कि है या नहीं, लेकिन यह शक तुम टिकने नहीं देते। तुम कहते हो, शक तो अच्छी बात नहीं। होना चाहिए ही। कोई माता-पिता झूठ तो न बोलेंगे। पंडित-पुरोहित झूठ तो न बोलेंगे। समाज-परिवार झूठ तो न बोलेगा। ये सब लोगों को झूठ बोलने में क्या रखा है! ये क्यों झूठ बोलेंगे सब! होना ही चाहिए। तो तुम कभी उठाकर देखते भी नहीं पर्दा कि पीछे कोई है कि तुम खाली मंदिर की पूजा कर रहे हो?

तुम्हारे सौ संतों में से निन्यानबे खाली मंदिर हैं, जिनके भीतर कुछ भी नहीं है। लेकिन उनकी पूजा चल रही है। अक्सर तो ऐसा होता है कि जिनके भीतर कुछ है, उनकी पूजा बहुत मुश्किल हो जाती है। क्योंकि जिनके भीतर कुछ है, वे तुम्हारी धारणाएं तोड़ देते हैं। जिनके भीतर कुछ है, वे तुम्हारे गुलाम थोड़े ही हैं। वे तुम्हारी लीक पर थोड़े ही चलते हैं। जिनमें कुछ नहीं है, वे ही लीक पर चलते हैं। उधार वही होता है जिसके पास अपनी नगद संपदा नहीं। उधारी ऊपर-ऊपर से ठीक लगती हो, भीतर-भीतर अर्थहीन होती है।

मैंने सुना, एक बड़े धनपति यहूदी के घर के सामने--यहूदी बैठा है अपने महल में--उसके दरवाजे पर, लोहे के सींकचों का बना दरवाजा है, एक फकीर, एक गरीब आदमी अपनी पीठ खुजला रहा है। दरवाजे के

सींकचों से अपनी पीठ खुजला रहा है। उस अमीर को बड़ी दया आयी। उसने फकीर को भीतर बुलाया, अपने नौकरों को आज्ञा दी कि इसे खूब स्नान करवाओ, खूब धो-धोकर मालिश करो इसकी। उसको खूब धुलवाया गया, खूब स्नान करवाया गया। ऐसे साबुन जो उसने कभी देखे भी न थे, पानी के फव्वारे के नीचे बिठाया गया, ठंडे-गरम पानी में नहलाया गया, इत्र-फुलेल, तेल से उसकी मालिश की गयी, अच्छे कपड़े पहनाए गए। और जब वह आया तो उसे भोजन करवाया गया और कुछ रुपयों को भी उस धनपति ने उसे दिया और कहा कि जाओ!

यह बात तो गांवभर में फैल गयी। दो आदमियों ने सोचा, यह तो बड़े गजब की बात है। वे दोनों भी आकर दरवाजे पर खड़े होकर पीठ खुजलाने लगे। धनपति ने देखा, उसने अपने आदमी भेजे और कहा कि दोनों को जंजीरें डालकर मेरे सामने ले आओ। उन दोनों को जंजीरें डालकर ले आया गया, वे दोनों चिल्लाने लगे कि बात क्या है, क्योंकि अभी-अभी तो व्यवहार कुछ और किया गया था! हमारे हाथों में जंजीरें क्यों डाली जा रही हैं? वे घसीटकर लाए गए और उस धनपति ने कहा कि यहां से भाग जाओ और कभी दुबारा यहां मत आना। क्योंकि वह अकेला था और अब उसकी पीठ में खुजान उठी थी तो वह खुजा भी नहीं सकता था, तुम तो दो हो, एक-दूसरे की पीठ क्यों नहीं खुजला लेते? तुम्हें इतनी तो अकल होनी चाहिए। अब भाग जाओ, और कभी दुबारा इस तरफ मत आना।

अक्सर ऐसा होता है। महावीर को ज्ञान हुआ, वे नग्न खड़े हो गए। बहुतों को लगा कि नग्न खड़े होने से ज्ञान हो जाता है, तो बहुत अभी तक दरवाजों पर पीठ खुजला रहे हैं, वे नग्न खड़े हो गए हैं। नग्न खड़े होने से ही जैन--दिगंबर जैन, दूसरा कोई नहीं, श्वेतांबर जैन भी नहीं--दिगंबर जैन पूजता है, क्योंकि वह मानता है, नग्नता संत का लक्षण है। महावीर नग्न हुए थे, तो उसने संत की परिभाषा कर ली। जैसे महावीर पर संत की परिभाषा चुक जाती है!

संत की परिभाषा चुकती ही नहीं। और संत कभी दो एक जैसे हुए नहीं और होंगे भी नहीं। क्योंकि जब कोई व्यक्ति संतत्व के शिखर को उपलब्ध होता है तो अद्वितीय हो जाता है--अकेला, बेजोड़। उस जैसा फिर कभी दुबारा दूसरा आदमी नहीं होगा। इसका यह अर्थ नहीं कि कोई संत न होगा, संत होंगे, लेकिन फिर अपने जैसे होंगे। सब संत अनूठे होते हैं। बस एक संत एक बार एक जैसा होता है, दुबारा फिर नहीं होता है।

तो हजारों लोग नग्न होकर खड़े हैं। उनमें कुछ भी नहीं है। लेकिन दिगंबर उनको पूजेगा, क्योंकि उसके संतत्व की परिभाषा में नग्नता जुड़ गयी। इसलिए दिगंबर जैन किसी और को नहीं पूज सकता जो कपड़े पहने हो। क्योंकि कपड़े पहने हुए तो संत हो ही नहीं सकता। दिगंबर जैन के सामने तुम मोहम्मद को खड़ा करो, वह कहेगा कि हजरत, अभी भी कपड़े पहने हुए हो! अभी तक कपड़े पहने हुए, तो ज्ञान हुआ ही नहीं! क्योंकि महावीर को जब ज्ञान हुआ तो कपड़े छोड़ गए। आप अभी तक कपड़े पहने हुए हैं! यह बात जैन को नहीं जंचेगी। वह मोहम्मद को तो मान ही नहीं सकता।

मेरी एक किताब एक जैन मुनि को भेंट की गयी। जिन मित्र ने भेंट की, उन्होंने मुझे आकर बताया कि बड़ी अजीब बात हो गयी। उन्होंने किताब पलटकर देखी, उन्होंने कहा और तो सब ठीक है, इसमें मोहम्मद का नाम कैसे आया? किताब फेंक दी। किताब महावीर पर थी, किताब फेंक दी, क्योंकि उसमें मोहम्मद का नाम कैसे आया। कहां महावीर और कहां मोहम्मद! उनको यह बर्दाश्त के बाहर हो गया कि मोहम्मद का नाम महावीर के साथ आए। और मेरी तो आदत खराब है, मैं तो जोड़ ही देता हूं!

उनको यह बात बिल्कुल जंची नहीं। मोहम्मद सांसारिक आदमी, गृहस्थ! अब अगर तुम जैनी के हिसाब से सोचो तो लगेगा भी--कितनी पत्नियां मोहम्मद की? दिगंबर जैन तो महावीर की एक पत्नी थी, उसको भी इनकार करते हैं। महावीर की सच में एक पत्नी थी और एक लड़की भी हुई और दामाद भी था, ये ऐतिहासिक तथ्य हैं, लेकिन दिगंबर जैन अपनी किताबों में लिखते हैं कि उन्होंने कभी विवाह नहीं किया। क्योंकि यह बात ही उनको अखरती है कि महावीर और विवाह करें! हालांकि अज्ञान की अवस्था में कर लें तो हर्ज क्या है! फिर ज्ञानी तो बाद में हुए। मगर वे मानते हैं कि यह तो हो ही नहीं सकता। महावीर तो अज्ञान की अवस्था में भी इतनी ऊंचाई पर थे कि वह विवाह तो कर ही नहीं सकते हैं। इसलिए हुए विवाह को भी इनकार कर दिया है। लड़की पैदा हुई, यह तो मान ही नहीं सकते हैं। क्योंकि लड़की पैदा हुई तो उसका मतलब हुआ, उन्होंने संभोग किया होगा। महावीर और संभोग करें! जरा सोचो! यह बात जंचती नहीं। तो दिगंबर जैन ने यह बात ही जड़ से काट दी कि विवाह ही नहीं किया। न रहा बांस न बजेगी बांसुरी।

अब इधर मोहम्मद हैं, नौ विवाह किए! यह बात जरा जंचती नहीं। लेकिन मोहम्मद की तरफ से सोचो, मोहम्मद को सीधा सोचो, तो मोहम्मद ने नौ विवाह किए और इस किसी विवाह में कोई कामवासना नहीं है। अरब देश लड़ाके देश थे। आदमी तो लड़ते और कट जाते, और स्त्रियों की संख्या बढ़ती चली गयी; पुरुष कम होते चले गए। जिस समाज में पुरुषों की संख्या कम हो जाए और स्त्रियों की संख्या ज्यादा हो जाए, उस समाज में बड़ा व्यभिचार फैल जाता है। फैल ही जाएगा। क्योंकि इतनी स्त्रियां कामातुर होकर भटकने लगेंगी। और पुरुष तो कामातुर हैं ही, अब स्त्रियां इतनी उपलब्ध हो जाएंगी तो उपद्रव होने वाला है।

तो मोहम्मद ने नियम बनाया कि हर मुसलमान कम से कम चार विवाह करे। अब यह किसी दूसरे को, जिस देश में कभी स्त्री-पुरुषों की संख्या में इतना बड़ा अंतर नहीं पड़ा, यह बात बेहूदी लगेगी। लेकिन उस ऐतिहासिक क्षण में यह बात बड़ी सार्थक थी। इन चार विवाह ने मुसलमान देशों की नैतिकता बचा ली, नहीं तो ये डूब जाते। ये नष्ट हो जाते। खुद मोहम्मद ने नौ विवाह किए। ठीक ही है, अगर शिष्यों से चार विवाह करवाने हों, तो गुरु को नौ करने पड़ें। यह बात बिल्कुल तर्कयुक्त है, यह सीधी गणित की है। मोहम्मद दो कदम आगे गए, तब तो कहीं तुम चलोगे थोड़ा-बहुत, नहीं तो तुम चलोगे ही नहीं।

आदमी एक ही पत्नी से काफी परेशान रहता है, चार पत्नियां तुम सोचते हो कोई छोटी-मोटी साधना है! मैं तुमसे कहता हूं कि ब्रह्मचारी की साधना उतनी कठिन नहीं है, जितनी चार पत्नियों वालों की साधना कठिन है।

मुल्ला नसरुद्दीन एक चोरी में पकड़ा गया। मजिस्ट्रेट ने उससे कहा कि तू भला आदमी है और पहली दफे चोरी में पकड़ा गया है, तू खुद ही बोल दे क्या सजा। मुल्ला ने कहा, जो भी देना हो सजा दे दें, एक ही सजा मत देना, दो विवाह करने की सजा मत देना। तो मजिस्ट्रेट बोला कि यह भी कोई सजा होती है, दो विवाह करने की, बात क्या है? तू इसको, सार को खोलकर कह। उसने कहा, बात यह है कि मैं पकड़ाता ही नहीं, इस आदमी की दो औरतें हैं, दो बजे रात इसके घर में घुसा, उधर मारपीट हो रही थी। एक औरत इसको ऊपर की तरफ खींच रही थी, वह ऊपर रहती है; और एक औरत इसको नीचे की तरफ खींच रही थी, वह नीचे रहती है। एक इसकी टांगें पकड़े थी, एक इसके हाथ पकड़े थी। यह सीढ़ियों पर अटका था। इसकी यह घबड़ाहट देखकर और घर की यह हालत देखकर मैं छिपकर बैठ गया एक कोने में कि यह अब निपट जाए, तो या तो मैं कुछ चोरी करूं या निकल भागूं। मगर यह निपटा ही नहीं, सुबह हो गयी। मैं घर से निकल न सका, क्योंकि वही

सीढ़ियां उतरने का एकमात्र रास्ता था। इसलिए मैं पकड़ा गया। इसलिए मैं प्रार्थना करता हूं, जो सजा देनी हो दे देना, मगर दो औरतों से विवाह करने की सजा मत देना।

तुम सोचते हो कि ब्रह्मचर्य ही साधना है। तो तुम गलती सोचते हो। चार स्त्रियों के साथ विवाह करना भी साधना ही है। बड़ी साधना हो सकती है। और मोहम्मद का विवाह तुम सोचते हो... मोहम्मद ने एक विवाह किया, पहला विवाह, तो अपने से दुगुनी उम्र की स्त्री से किया। पहले विवाह में तो जो स्त्री थी, वह करीब-करीब बूढ़ी हो रही थी और मोहम्मद अभी जवान थे, उससे विवाह किया।

कोई पुरुष अपने से बड़ी उम्र की स्त्री से विवाह करना पसंद नहीं करता। बड़ी उम्र की तो तुम छोड़ दो, तुमसे अगर एक इंच ऊंची औरत हो, तो भी तुम उससे विवाह करना पसंद नहीं करते। अपने से किसी भी स्थिति में बड़ी स्त्री से कोई विवाह करना नहीं पसंद करता। तुमसे ज्यादा पढ़ी-लिखी हो, तुम पसंद नहीं करते। तुमसे ज्यादा अनुभवी हो, तो पसंद नहीं करते। उम्र ज्यादा हो, तो पसंद नहीं करते।

क्योंकि कम उम्र की स्त्री ही काफी कब्जा जमा लेती है, बड़ी उम्र का तो कहना ही क्या है! पांच-सात साल पीछे की स्त्री तुम्हें धकेल देती है, तुम्हारी सब समझदारी रखी रह जाती है। तो अगर बड़ी उम्र की स्त्री भी ज्यादा अनुभवी हुई, ज्यादा पढ़ी-लिखी हुई, तो अड़चन आएगी, बहुत अड़चन आ जाएगी। यद्यपि वैज्ञानिक हिसाब से ज्यादा उम्र की स्त्री से ही विवाह होना चाहिए।

मैं कहता हूं, वैज्ञानिक हिसाब से। क्योंकि सारे संसार के आंकड़े यह बात कहते हैं कि स्त्रियां पुरुषों से ज्यादा जीती हैं। पांच साल से सात साल ज्यादा। तो अगर तुम पचहत्तर साल जीओगे तो तुम्हारी पत्नी अस्सी या बयासी साल जीएगी। अब तुम पांच-सात साल छोटी उम्र की स्त्री से विवाह करोगे, तो तुम्हारे मरने में, तुम्हारी पत्नी के मरने में दस साल का फासला होगा। तुम दस साल के लिए उसे विधवा छोड़ जाओगे। यह अवैज्ञानिक है।

अगर विज्ञान की बात समझो तो तुम्हें अपने से पांच-सात साल उम्र बड़ी स्त्री से विवाह करना चाहिए, ताकि तुम दोनों करीब-करीब संसार से विदा होओ। पचहत्तर साल के तुम होओगे, अस्सी की वह हो जाएगी, दोनों करीब-करीब मरोगे। ज्यादा दुख नहीं होगा, न तुम अकेले छूटोगे, न वह अकेली छूटेगी।

मोहम्मद ने बड़ी हिम्मत की कि अपने से बड़ी उम्र की स्त्री से विवाह कर लिया। मोहम्मद की परिस्थिति अलग, मोहम्मद के सोचने के ढंग अलग, मोहम्मद की बात अलग। फिर मोहम्मद जिन लोगों से बोल रहे थे, वे लोग बिल्कुल ही खानाबदोश, एकदम गैर-पढ़े-लिखे लोग। उनको तो छुड़ाना था अभी मूर्ति से, अभी तो उनका सबसे बड़ा उपद्रव यही था कि वे मूर्तियों की पूजा में लगे थे। और एक-दो मूर्ति की नहीं, तीन सौ पैंसठ मूर्तियां बना रखी थीं काबा में। एक दिन के लिए एक मूर्ति। हर दिन नयी मूर्ति की पूजा चल रही थी। अभी तो वे बहुत नीचे धर्म में पड़े थे, उनको मूर्ति से किसी तरह छुटकारा दिलाना था। अभी उनसे यह घोषणा करनी कि अहं ब्रह्मास्मि, वह बात ही पागलपन की होती। यह तो वे समझ ही नहीं पाते, यह तो पाठ बहुत आगे का है।

यह तो भारत में संभव हो सका, क्योंकि इस पाठ के लिए काफी लंबी परंपरा चाहिए, हजारों साल की परंपरा चाहिए। यह तो धर्म के विश्वविद्यालय की आखिरी कक्षा है, जहां घोषणा की जा सकती है--अहं ब्रह्मास्मि, और लोग समझेंगे और नाराज न हो जाएंगे।

तो अलग परिस्थितियां, अलग व्यक्तित्व, अलग ढंग। जैन राजी नहीं होगा कि मोहम्मद ज्ञान को उपलब्ध हुए। और मुसलमान राजी नहीं होंगे कि यह महावीर ज्ञान को उपलब्ध हुए। ये नंगे खड़े हो गए! यह बात तो

जंचती नहीं, यह तो ठीक नहीं है, यह तो अशिष्ट है। यह तो असामाजिक है। कोई किसी दूसरे के संत से तो राजी नहीं होता, क्योंकि तुम्हारे संत की एक निश्चित धारणा है।

मैं तुमसे कहना चाहता हूं, सब धारणा छोड़कर तुम शून्य भाव से, शांत भाव से, मौन भाव से देखो, तो तुम चकित हो जाओगे--मोहम्मद भी उसी महिमा को उपलब्ध हुए जिसको महावीर; बुद्ध भी उसी को उपलब्ध हुए जिसको क्राइस्ट। ये अलग ढंग हैं। अलग ढंग होने ही चाहिए। और एक व्यक्ति एक ही बार होता है, दुबारा दोहराया नहीं जाता है।

परमात्मा इस संसार में किसी को दोहराता नहीं। आदमियों की तो छोड़ दो, तुम एक कंकड़ उठा लो और सारी पृथ्वी खोज डालो, तो भी वैसा ही दूसरा कंकड़ न पा सकोगे। एक पत्ता तोड़ लो इस बगीचे का और सारे जंगल खोज डालो, ठीक वैसा ही दूसरा पत्ता न पा सकोगे। परमात्मा कार्बन कापी बनाता ही नहीं। परमात्मा मूल बनाता है, मौलिक, प्रत्येक वस्तु नयी और अद्वितीय।

तो जब छोटी-छोटी चीजों के संबंध में यह सच है, तो क्राइस्ट, या मोहम्मद, या महावीर, या बुद्ध जैसे व्यक्ति तो परम, आखिरी हैं। ये तो अद्वितीय हैं। इन जैसा दूसरा कोई होता नहीं, नकल में पड़ना मत। किसी जैसे बनने की कोशिश करना मत। तुम तुम ही बन सको तो ही तुम परमात्मा को उपलब्ध हो सकोगे। और जब तुम अपनी परिपूर्णता में स्वयं हो जाते हो, तब तुम्हारे भीतर एक नाद उठने लगता है, वह नाद है--अहं ब्रह्मास्मि, अनलहक।

फिरआन गलत कहता था। क्योंकि उसने यह कहा कि मैं परमात्मा हूं, और कोई नहीं। और मंसूर ने ठीक कहा कि मैं परमात्मा हूं, क्योंकि सिर्फ परमात्मा है। और तो कोई है ही नहीं, परमात्मा ही है। पत्थर भी परमात्मा है। तो मैं भी परमात्मा हूं।

इन दोनों वक्तव्यों की समानता के साथ-साथ इनके भीतर छिपा हुआ भेद भी ठीक से देख लेना।

तीसरा प्रश्नः किसी बुद्धपुरुष के वचनों के मार्मिक अर्थ को समझ पाना क्या ध्यान को उपलब्ध हुए बिना संभव है? क्या तत्वज्ञान और ध्यान की स्थिति के बीच कोई गहरा नाता है? इस विषय पर प्रकाश डालने का अनुग्रह करें।

किसी बुद्धपुरुष के वचनों को पूरा-पूरा समझना हो, तब तो ध्यान के बिना कोई उपाय नहीं है। लेकिन थोड़ी-थोड़ी झलक मिल सकती है ध्यान के बिना भी। थोड़ी-थोड़ी भनक पड़ सकती है बिना ध्यान के भी। और अगर यह भनक न पड़ती होती तो फिर तुम चलोगे ही कैसे! तब तो तुम कहोगे, जब ध्यान होगा तब समझ में आएगा, और जब तक समझ में नहीं आया तब तक चलें कैसे? और जब तक चलोगे नहीं तब तक ध्यान कैसे होगा! तब तो तुम एक बड़े चक्कर में पड़ जाओगे, एक दुष्चक्र में पड़ जाओगे।

तो दो बातें ख्याल रखना। न तो यही बात सच होती है कि जो बुद्धपुरुष कहते हैं, वह तुमने सिर्फ सुन लिया बुद्धि से और समझ में आ जाएगा। नहीं, अगर इतने से ही समझ में आ जाए तो फिर ध्यान की कोई जरूरत ही न रहेगी। और न ही दूसरी बात सच है कि जब ध्यान होगा तभी समझ में आएगा। क्योंकि अगर ध्यान होगा तभी समझ में आएगा, तब तो तुम ध्यान भी कैसे करोगे? क्योंकि बुद्धपुरुषों में कुछ रस आने लगे तभी तो ध्यान में लगोगे न! तो बुद्धपुरुषों की वाणी सुनते समय पूरी तो समझ में नहीं आती--कभी नहीं आती--

पूरी तो तभी समझ में आएगी जब तुम भी बुद्धपुरुष हो जाओगे। जब तुम भी उन जैसे हो जाओगे तभी पूरा अनुभव होगा। लेकिन अभी थोड़ी भनक तो पड़ सकती है।

जब छोटा बच्चा चलना शुरू करता है तो अभी दौड़ नहीं सकता, यह बात सच है, लड़खड़ा तो सकता है! और अगर तुम कहो कि अभी लड़खड़ा भी नहीं सकता, तब तो फिर कभी चल ही न सकेगा। छोटा बच्चा जब पहले कदम उठाता है, तो देखा कैसा डरा-डरा, सहारे की आकांक्षा रखता है, मां हाथ पकड़ ले, मां का हाथ पकड़कर हिम्मत करके दो कदम चल लेता है। छोटे बच्चे के पास पैर तो हैं, उसके शरीर को सम्हालने योग्य काफी पैर हैं--तुम्हारे बराबर पैर नहीं, तो तुम्हारे बराबर शरीर भी नहीं है, लेकिन अनुपात ठीक उतना ही है जितना तुम्हारा। तुम्हारे बड़े शरीर को सम्हालने के लिए बड़े पैर हैं, उसके छोटे शरीर को सम्हालने के लिए छोटे पैर हैं। लेकिन उसके शरीर को सम्हालने के लिए पर्याप्त पैर हैं। मगर अभी अनुभव नहीं है, उसे यह भरोसा नहीं है कि मैं खड़ा हो सकूंगा; उसे यह आत्मविश्वास नहीं। तो मां का हाथ पकड़कर चल लेता है।

गुरु का हाथ पकड़कर चलने का इतना ही अर्थ होता है कि जहां तुम अभी नहीं चले हो--यद्यपि चल सकते हो, लेकिन तुमने कभी प्रयास नहीं किया है--तो कोई जो चल चुका है, कोई जो चल रहा है, तुम उसका हाथ पकड़ लेते हो। फिर धीरे-धीरे मां अपना हाथ छुड़ाने लगती है, फिर अंगुली ही पकड़ा रखती है, फिर धीरे-धीरे अंगुली भी खींच लेती है। एक दिन बच्चा पाता है कि अरे, वह तो खुद ही खड़ा होकर चल सकता है! जब पहली दफे बच्चे चलते हैं, तो तुमने देखा, वे रुकते ही नहीं, वे बैठते ही नहीं। तुम लाख उपाय करो कि अब तू थक गया है, अब तू बैठ जा, मगर वे चक्कर मार रहे हैं! इतना आनंद उनको अनुभव होता है कि एक अपूर्व घटना हाथ लग गयी, कि मैं भी चल सकता हूं!

ऐसी ही घटना ध्यान के मार्ग पर भी घटती है। बुद्धपुरुषों की वाणी पहले तो सिर्फ झलक देगी, जरा सी देर के लिए बिजली कौंध जाएगी, एक किरण उतर जाएगी। मगर किरण तुम्हें प्यास से भर जाएगी, और तुम्हें यह आश्वासन मिलने लगेगा--हो सकता है, ऐसा भी हो सकता है। इस व्यक्ति को हुआ है, तो मुझे क्यों नहीं हो सकता? मुझ जैसे ही व्यक्ति को तो हुआ है।

आखिर बुद्ध के हड्डी-मांस-मज्जा तुम्हारे जैसे ही हैं, कुछ भेद तो नहीं। तुम्हारे जैसे आंख-कान-नाक, तुम जैसे भूख लगती तो भोजन करते, और तुम जैसे रात थककर सो भी जाते, तुम जैसे ही जवान हुए, तुम जैसे ही बूढ़े हुए, तुम जैसे ही एक दिन मर भी गए, तो बुद्धपुरुष ठीक तुम जैसे हैं। बीमार भी होते हैं, रुग्ण भी होते हैं, स्वस्थ भी होते हैं। बूढ़े हो गए तो बाल भी सफेद हो गए, बूढ़े हो गए तो हाथ-पैर भी कंपने लगे, यह सब तुम जैसा ही है। लेकिन तुम जैसे इस मनुष्य में भी कुछ घटा है, जो तुममें लगता है अभी नहीं घटा। इससे हिम्मत बंधती है कि अगर मेरे जैसे व्यक्ति में यह हो सका है, तो शायद मुझमें भी हो सके। शायद मैं भी एक संभावना अपने भीतर लिए चल रहा हूं, एक बीज, जिसको ठीक भूमि नहीं मिली। शायद मैं भी अपने भीतर एक संभावना लिए चल रहा हूं, जिस पर मैंने कभी प्रयोग नहीं किया और वास्तविक बनाने की चेष्टा नहीं की।

किसी गायक को गीत गाते देखकर तुम्हें याद आ जाती है अपने कंठ की कि कंठ तो मेरे पास भी है। और किसी नर्तक को नाचते देखकर तुम्हें याद आ जाती है अपने पैरों की कि पैर तो मेरे पास भी हैं, चाहूं तो नाच तो मैं भी सकता हूं। किसी चित्रकार को चित्र बनाते देखकर तुम्हें भी याद आ जाती है कि चाहूं तो चित्र मैं भी बना सकता हूं। ऐसे ही किसी बुद्ध को देखकर तुम्हें याद आ जाती है कि चाहूं तो बुद्धत्व मैं भी पा सकता हूं। बस यही चाह--यह समझ नहीं है पूरी--प्यास शुरू हुई।

उजाला-सा बिखर जाता है।

चाहे जैसा भी हो हर वक्त गुजर जाता है

बात रह जाती है पर ढेर बिखर जाता है

गम में वैशाख के सूरज की तपन होती है

ऐसे मौसम में समंदर भी उतर जाता है

रोज दिनभर तो अंधेरों में सफर करते हैं

शाम होते ही उजाला-सा बिखर जाता है

टूट जाता है हर एक तसलसुल यारो

कोई लमहा कभी ऐसा भी गुजर जाता है

कोई उम्मीद किरण बनके चमक उठती है

दिल से कुछ देर को हर बोझ उतर जाता है

उजाला-सा बिखर जाता है।

कोई उम्मीद किरण बनके चमक उठती है

बुद्धपुरुषों के पास, तीर्थंकरों के पास, सदगुरुओं के पास, परमहंसों के पास, सूफियों के पास--

कोई उम्मीद किरण बनके चमक उठती है

दिल से कुछ देर को हर बोझ उतर जाता है

कुछ देर को ही, क्षणभर को ही सही, कोई पूरा सूरज नहीं ऊगता, लेकिन एक किरण कौंध जाती है। लेकिन उस किरण में तुम्हें अपना भविष्य दिखायी पड़ जाता है कि यह हो सकता है।

टूट जाता है हर एक तसलसुल यारो

कोई लमहा कभी ऐसा भी गुजर जाता है

कोई लमहा, एक क्षणभर को, एक पलभर को आंख खुल जाती है, फिर बंद हो जाती है, लेकिन वह एक पल जीवन को बदल देने वाला पल सिद्ध होता है।

पूछते हो, "किसी बुद्धपुरुष के वचनों के मार्मिक अर्थ को समझ पाना क्या ध्यान को उपलब्ध हुए बिना संभव है?"

हां भी और नहीं भी। हां इस अर्थ में कि झलक मिलती है, एक किरण सी उतरती है। एक उमंग जग जाती है, एक प्यास उठने लगती है, एक अज्ञात खिंचाव पैदा हो जाता है, इसलिए हां। और नहीं इसलिए कि सुनकर ही कहीं पूरी बात थोड़े ही हो जाती है। चलना पड़ेगा, उठना पड़ेगा, बदलना पड़ेगा, बहुत कूड़ा-करकट है वह जला देना पड़ेगा। आग से गुजरना होगा, ताकि सोना निखर जाए।

बुद्धपुरुषों की बात सुनकर यात्रा शुरू होती है, मंजिल नहीं आ जाती। मंजिल तो आएगी तभी जब ध्यान पूरा होगा। और जब ध्यान पूरा होगा, तभी पूरी बात भी समझ में आएगी। क्योंकि पूरी बात समझने का एक ही अर्थ हो सकता है कि जो उनका अनुभव था, वह मेरा भी अनुभव हो गया। जब अनुभव एक जैसे हो जाते हैं, तभी बात समझ में आती है।

चौथा प्रश्नः ओशो, जिस दिन मैं पा लूंगा उस दिन कैसे आपको धन्यवाद दूंगा?

अब अभी से व्यर्थ की फिकर में मत पड़ो। जब पा लेने जैसी अपूर्व घटना घट जाएगी तो धन्यवाद भी खोज ही लोगे। यह तो छोटी सी बात रही! उतनी बड़ी बात हो जाएगी तो क्या तुम सोचते हो धन्यवाद देने का कोई ढंग न खोज पाओगे? भगवान को खोज लोगे और धन्यवाद देने का ढंग न खोज पाओगे?

हो ही जाएगा। तुम इसकी फिकर मत करो। और अभी से कोई अभ्यास थोड़े ही करना है कि धन्यवाद का अभ्यास करोगे। अभ्यास करोगे तो झूठा होगा। और झूठा अभ्यास अगर रहा, तो उस मौके पर भी शायद झूठे अभ्यास से ही धन्यवाद दोगे। उस धन्यवाद को तो कम से कम स्वस्फूर्त रहने दो, उसकी तो तैयारी मत करो। उसका तो रिहर्सल मत करो।

मुल्ला नसरुद्दीन एक दिन रेलयात्रा से वापस लौटा तो मुझसे कहने लगा कि रास्ते में एक टिकिट चेकर उसे बड़े अजीब ढंग से घूर रहा था। तो मैंने पूछा, अजीब ढंग से, क्या मतलब तुम्हारा, नसरुद्दीन? तो उसने कहा कि यानी वह ऐसे घूर रहा था जैसे मेरे पास टिकिट हो ही नहीं। तो मैंने पूछा, फिर तुमने क्या किया, नसरुद्दीन? तो उसने कहा, मैं क्या करता, मैं भी उसे ऐसे घूरने लगा जैसे सचमुच मेरे पास टिकिट हो।

अब ऐसे अभ्यास चल रहे हैं। टिकिट चेकर तुम्हें घूर रहा है कि जैसे तुम्हारे पास टिकिट न हो। तुम ऐसे घूर रहे हो जैसे तुम्हारे पास टिकिट हो।

झूठे अभ्यासों में मत पड़ो। यह बात पूछो ही मत। धन्यवाद निकलेगा उस अनुभव से सद्यःस्नात, अभी-अभी नहाया हुआ, ताजा, जैसे कोंपल फूटती नयी, जैसे सुबह सूरज ऊगता नया, ऐसा धन्यवाद ऊगेगा। और उस धन्यवाद की बात ही कुछ और है।

झेन फकीरों में, झेन परंपरा में इस तरह के विचार चलते हैं। हर शिष्य अपने ढंग से धन्यवाद देता है जब ज्ञान को उपलब्ध होता है। कभी-कभी तो बड़ी अजीब घटनाएं घट जाती हैं।

एक युवक बोकोजू अपने गुरु के पास वर्षों रहा, ध्यान की, समाधि की तलाश में। और जब भी वह कुछ खबर लेकर जाता कि बड़ा अनुभव हुआ है कि गुरु उसको एक चांटा रसीद कर देता। यह पहले तो बहुत चौंकता था, फिर समझने लगा। औरों से पूछा, बुजुर्गों से पूछा, जो पहले से ऐसे गुरु के चांटे खाते रहे थे उनसे पूछा, उन्होंने कहा कि उसकी बड़ी कृपा है, वह मारता ही तब है जब उसकी कृपा होती है किसी पर, नहीं तो वह मारता ही नहीं। फिजूल पर तो वह खर्चा ही क्यों करे, एक चांटा भी क्यों खर्च करे! तुम पर उसकी बड़ी कृपा है। और वह मारता इसलिए है कि तुम जो भी ले जाते हो, वह अभी सच नहीं है, काल्पनिक है।

कभी वह पहुंच जाता कि बड़े प्रकाश का अनुभव हुआ गुरुदेव, और एक चांटा! कि कुंडलिनी जग गयी गुरुदेव, और एक चांटा! कि चक्र खुलने लगे, और एक चांटा! वह जो भी अनुभव ले जाता और चांटा खाता।

तब तो उसे भी समझ में आने लगा कि बात तो सब, यह सब तो काल्पनिक जाल ही है। जहां तक किसी चीज का अनुभव हो रहा है, वहां तक अनुभव हो ही नहीं रहा है। क्योंकि जो भी अनुभव हो रहा है, वह तुमसे अलग है। कुंडलिनी जगी, तो तुम तो देखने वाले हो, तुम तो कुंडलिनी नहीं हो। वह जो देख रहा है भीतर कि कुंडलिनी जग रही है, वह तो कुंडलिनी नहीं हो सकता न! कुंडलिनी तो विषय हो गयी। जिसने देखा कि भीतर तीसरी आंख खुलने लगी, वह तो तीसरी आंख से भी उतना ही दूर हो गया जितना इन दो आंखों से दूर है। वह तीसरी आंख भी अलग हो गयी। जिसने देखा कि भीतर कमल खिलने लगा, वह देखने वाला तो कमल नहीं हो सकता न! वह देखने वाला तो पार और पार और पार... उसका तो पता तब चलता है, जब न कमल खुलते, न प्रकाश होता, न कुंडलिनी जगती, न चक्र घूमते, कुछ भी नहीं होता है, सन्नाटा छा जाता है। अनुभव में कुछ आता ही नहीं, सिर्फ वही बच जाता है साक्षी, उस शून्य का साक्षी रह जाता है।

ऐसा कहते हैं, बीस साल तक बोकोजू ने चांटे खाए। और आखिरी बार जब वह आया, तो पता है कैसे उसने धन्यवाद दिया! आकर एक चांटा अपने गुरु को जड़ दिया। गुरु खूब हंसा। कहते हैं, गुरु लोटा, प्रसन्नता में लोटा। उसने कहा, तो हो गया आज!

तो धन्यवाद कैसा होगा, कहना मुश्किल है। यह ठीक धन्यवाद था, बीस साल चांटे खाने के बाद आज कुछ कहने को था भी नहीं। झेन परंपरा अनूठी है। फकीरों की सारी परंपराएं अनूठी हैं।

मैं एक झेन फकीर के संस्मरण पढ़ रहा था। वह फकीर अमरीका गया हुआ था और वहां एक हिंदू संन्यासी से निमंत्रण मिला कि मुझे मिलने आओ। पढ़कर मुझे ऐसा लगा कि हिंदू संन्यासी और कोई नहीं, बाबा मुक्तानंद होने चाहिए। नाम उसने नहीं लिखा है, लेकिन हुलिया और ढंग जो वर्णन किया है, वह मुक्तानंद का है। और यह भी लिखा है कि वह अंग्रेजी नहीं बोलते हैं।

मुक्तानंद ने बुलाया होगा। निमंत्रण दिया फकीर को आने को, वह फकीर आया। तो मुक्तानंद बैठे एक ऊंचे सिंहासन पर, और उसके नीचे एक आसनी बिछा दी फकीर के लिए।

मुझे लगा कि मुक्तानंद ही होने चाहिए, क्योंकि मेरे साथ भी उन्होंने यही किया। मुझे भी बहुत निमंत्रण दे-देकर बुलाया। और जब मैं गया तो वह एक आसन पर बैठे और एक आसनी नीचे रख दी उन्होंने बैठने के लिए।

फकीर बैठ गया। मुक्तानंद ने कुछ मिठाई फकीर को भेंट की। तो फकीर के साथ एक शिष्य आया था, उसने कहा कि नहीं, वह मिठाई नहीं लेंगे, उन्हें डायबिटीज है। तो मुक्तानंद ने कहा कि डायबिटीज! तो तीन मील सुबह पैदल चलो, आसन-व्यायाम करो, तो ठीक हो जाएगी।

अब यह बिल्कुल अंधेपन का सबूत है। क्योंकि आदमी जो सामने बैठा है वह परमदशा में है। उसको यह बताना कि तीन मील पैदल चलो, आसन-व्यायाम करो, योगासन सीख लो--मूढ़ता का लक्षण है।

वह फकीर हंसा, उसने कहा, डायबिटीज बड़ी प्यारी है। भगवान की देन है।

यह सब अनुवाद किया जा रहा है। एक मुक्तानंद की शिष्या अनुवाद कर रही है। मुक्तानंद हिंदी में बोल रहे हैं, अंग्रेजी में अनुवाद किया जा रहा है। और वह जो फकीर अंग्रेजी में बोल रहा है, वह हिंदी में अनुवाद किया जा रहा है।

तब मुक्तानंद ने कहा, कोई जिज्ञासा? अब एक तो उसको बुलाया खुद, और अब उससे पूछते हैं, जिज्ञासा? कुछ पूछो। कोई प्रश्न वगैरह हों तो वह हल कर दें। तो उस फकीर ने झेन ढंग से कहा कि ईश्वर है या नहीं? अगर कहा, है, तो एक तमाचा मारूंगा, और अगर कहा, नहीं है, तो भी एक तमाचा मारूंगा, बोलो? वह जो अनुवाद कर रही थी महिला, वह तो बहुत घबड़ा गयी कि यह कोई बातचीत है। कि अगर कहा, है, तो एक तमाचा मारूंगा, अगर कहा, नहीं है, तो भी एक तमाचा मारूंगा, बोलो।

तो वह महिला तो थोड़ी घबड़ायी कि इसका अनुवाद करना कि नहीं! और उसने भी चौंककर देखा कि यह बात क्या है? और उस फकीर ने कहा, अनुवाद कर, नहीं तो तू नाहक पिटेगी। तो घबड़ाकर उसने अनुवाद कर दिया। जब यह अनुवाद मुक्तानंद ने सुना तो वह तो बहुत घबड़ा गए कि यह कौन सी तत्वचर्चा है? तो उन्होंने कहा, आप कोई दार्शनिक नहीं मालूम होते, यह कौन सी तत्वचर्चा है?

मगर यह तत्वचर्चा है। झेन फकीर यह कह रहा है कि हां कहो तो गलत, न कहो तो गलत। क्योंकि हां कहो तो द्वैत आ गया, न कहो तो द्वैत आ गया। दोनों हालत में चांटा मारूंगा। अगर हां कहा तो चांटा मारूंगा, न कहा तो चांटा मारूंगा। वह यह कह रहा है कि दोनों हालत में तुमने गलती की। क्योंकि परमात्मा के संबंध में

न तो हां कहा जा सकता है, न न कहा जा सकता है। चुप्पी ही, मौन ही एकमात्र सही उत्तर है। लेकिन इससे तो बात बिगड़ गयी। यह चांटा मारने की बात तो कुछ जंची नहीं। तो झेन फकीर ने लिखा है अपनी डायरी में कि बाबा ने जल्दी से घड़ी देखी और कहा कि मुझे दूसरी जगह जाना है। बस सत्संग समाप्त हो गया!

हर परंपरा के अपने ढंग होते हैं। लेकिन परंपरागत ढंग सीख लेने से कुछ सार नहीं है। तिब्बत में जब ज्ञान हो जाए तो एक ढंग होता गुरु को धन्यवाद देने का, लेकिन अगर ढंग सीख रखा परंपरा से तो ढंग ही झूठा है। यह काम थोड़े ही आएगा।

तो तुम यह तो पूछो ही मत कि कैसे धन्यवाद दोगे। तुम तो इसकी ही फिकर करो, धन्यवाद की क्या फिकर है, न भी दिया तो चलेगा!

पूछा है, स्वामी स्वरूप सरस्वती ने। और मैं तुमसे कहे देता हूं, धन्यवाद दिया तो एक चांटा मारूंगा और नहीं दिया तो भी मारूंगा। धन्यवाद की तो फिकर छोड़ो, परमात्मा को पा लेने का सवाल है। उसको पा लिया तो धन्यवाद हो गया। तुम आओगे और धन्यवाद हो जाएगा, तुम बैठोगे और धन्यवाद हो जाएगा। तुम न आए तो भी धन्यवाद आ जाएगा। तुमने कहा कि नहीं कहा, फिर अर्थहीन है। तुम्हारा होना कह देगा।

जब गुरु देखता है कि किसी शिष्य को हो गया, तो क्या तुम सोचते हो तुम बताओगे तब उसे पता चलेगा? तब तो गुरु ही नहीं है। तुम्हारे बताने से पता चला तो फिर क्या खाक गुरु है! सच तो यह है कि जब तुम्हें होगा, तुम्हारे होने के पहले, तुम्हें पता चलने के पहले गुरु को पता चल जाएगा कि हो रहा है।

रिंझाई के संबंध में ऐसी कहानी है कि जब उसे ज्ञान हुआ तो रात के दो बजे थे। बैठा था ध्यान में, अचानक सब द्वार-दरवाजे खुल गए। कर रहा था मेहनत कोई बारह वर्षों से। जब द्वार-दरवाजे खुल गए दो बजे रात, तो उसके मन में ख्याल आया कि जाऊं और अपने गुरु के चरणों में सिर रखूं। लेकिन दो बजे रात, उनको जगाना नींद से तो ठीक नहीं है। जब उसने ऐसा सोचा तो हैरान हुआ, कोई दरवाजे पर दस्तक दे रहा है। दरवाजा खोला तो गुरु सामने खड़े हैं।

गुरु ने कहा, तो अरे नासमझ, तू क्या सोचता था कि तुझे ज्ञान होगा और हम सोए होंगे! इतनी बड़ी घटना घट रही हो--जब तेरे साथ साथ जोड़ दिया तो सब तरह जुड़ गए--तुझे इतनी बड़ी घटना घट रही हो और हम सो सकते हैं! और क्या तू सोचता है तुझे पहले पता चलेगा, फिर हमें पता चलेगा?

तुम चकित होओगे जानकर कि पश्चिम में बहुत से प्रयोग चल रहे हैं--मां और बच्चों के बीच में कोई एक अज्ञात सूत्र रहता है। जैसे जब बच्चा पैदा होता है मां के पेट से तो जुड़ा रहता है, बच्चे की नाभि मां के पेट से भौतिक रूप से जुड़ी रहती है, डाक्टर उसे काटता है। लेकिन एक और कोई स्वर्णसूत्र है जो जुड़ा ही रहता है, जिसको काटा नहीं जा सकता। इस पर बहुत प्रयोग चले हैं, विशेषकर सोवियत रूस में बहुत प्रयोग हुए हैं और बड़ी हैरानी के परिणाम आए हैं।

वे प्रयोग ये हैं कि अगर बच्चे और मां में बहुत लगाव हो, तो तुम हजारों मील दूर ले जाकर बच्चे को सताओ, मां को अनुभव होने लगता है कि बच्चा सताया जा रहा है, उसे कुछ तकलीफ शुरू हो जाती है। वह बेचैन होने लगती है।

फिर आदमी तो बहुत विकृत हो गया है, इसलिए पशुओं पर प्रयोग किए गए। एक बिल्ली को ऊपर छा.ेड दिया गया घाट पर और उसके छोटे बच्चे को एक पनडुब्बी में समुद्र की गहरी सतह में ले जाया गया--मीलभर नीचे। और यह जो ऊपर बिल्ली छोड़ी गयी है, इस पर सब यंत्र लगाकर रखा गया है कि इसके मन की दशा का पता चलता रहे, कब यह परेशान होती है, बेचैन होती है--छोटी सी भी बेचैनी। और जैसे ही उस बच्चे

को नीचे सताया गया, उसकी गर्दन मरोड़ी गयी कि वह एकदम परेशान होने लगी। एक मील का फासला है, पानी की अतल गहराई में बच्चा है! जैसे ही उसकी गर्दन छोड़ी गयी, वह फिर ठीक हो गयी। फिर गर्दन दबायी गयी, वह फिर परेशान हो गयी। फिर तो इस पर बहुत प्रयोग किए गए हैं और यह अनुभव में आया कि जहां प्रेम है, वहां एक स्वर्णसूत्र जोड़े रखता है।

तो यह तो मां और बच्चे की बात है, तुम गुरु और शिष्य की बात तो पूछो ही मत। क्योंकि यह प्रेम तो कुछ भी नहीं है उस प्रेम के मुकाबले। यह तो शरीर का ही प्रेम है। गुरु और शिष्य के बीच तो एक आत्मिक नाता है, आत्मा का एक संबंध है।

जिस दिन तुम्हें ज्ञान होगा, तुम सोचते हो तुम्हें पहले पता चलेगा? तो तुमने गलत ही सोचा। तुम्हारे गुरु को तुमसे पहले पता चल जाएगा। और यह भी हो सकता है कि तुम्हें धन्यवाद देने का गुरु मौका न दे, तुम्हें तुम्हारे धन्यवाद देने के पहले धन्यवाद दे।

इस चिंता में पड़ो मत। असली चिंता दूसरी ही है कि कैसे उसे पा लो। धन्यवाद गैर-धन्यवाद तो शिष्टाचार-उपचार की बातें हैं।

पांचवां प्रश्नः कभी आप कहते हैं, अकेलापन स्वभाव है; कभी आप कहते हैं, स्वतंत्रता स्वभाव है; कभी आप कहते हैं, प्रेम स्वभाव है; कभी आप कहते हैं, आनंद स्वभाव है। कृपा करके समझाएं।

मैं जो भी कहता हूं वह एक ही है, बहुत ढंग से कहता हूं। समझो!

जब मैं कहता हूं, अकेलापन स्वभाव है, तो मैं कह रहा हूं, यह मार्ग ध्यान का। अकेलापन यानी ध्यान। अकेले रह गए। असंबंधित। असंग। कोई दूसरे की धारणा न रखी। पर को भूल गए, परमात्मा को भी भूल गए, क्योंकि वह भी पर, वह भी दूसरा; अकेले रह गए, बिल्कुल एकांत में रह गए। जैन, बौद्ध इस तरह चलते हैं। अकेले रह गए। इसलिए उनके मोक्ष का नाम कैवल्य है। बिल्कुल अकेले रह गए। केवल चेतना मात्र बची। अकेलापन स्वभाव है।

जो अकेला हो गया, तो दूसरी बात उसमें से निकलेगी--स्वतंत्रता स्वभाव है। जब तुम अकेले रह गए तो तुम स्वतंत्र हो गए। अब तुम्हें कोई परतंत्रता न रही, क्योंकि कोई पर ही न रहा। दूसरे पर निर्भरता न रही। तुम मुक्त हो गए, तुम स्वतंत्र हो गए। तुम्हारा अपना स्वछंद तुम्हें उपलब्ध हो गया। तुम अपना गीत गुनगुनाने लगे। अब तुम उधार गीत नहीं गाते, अब तुम दूसरे की छाया की तरह नहीं डोलते, अब तुम किसी के पीछे नहीं चलते, अब तुम अपने भीतर से, अपने केंद्र से अपने जीवन का रस बहाने लगे। तो स्वतंत्र हुए।

फिर तीसरी बात मैं कहता हूं, प्रेम स्वभाव है। जो स्वतंत्र हो गया और अकेला हो गया, वही प्रेम देने में सफल हो पाता है। क्योंकि उसी के पास प्रेम देने को होता है। तुम तो प्रेम दोगे कैसे? तुम तो मांग रहे हो, दोगे कैसे? तुम तो चाहते हो, कोई तुम्हें दे दे, तुम्हारे पास ही होता तो तुम मांगते क्यों? तुम्हारे पास नहीं है, इसीलिए तो मांगते हो। हम वही तो मांगते हैं जो हमारे पास नहीं है।

और जो स्वतंत्र हो गया, एकांत में डूब गया, अपनी मस्ती में खो गया, उसके पास प्रेम होगा। वह प्रेम बांटेगा। लेकिन उसका प्रेम तुम्हारे जैसा प्रेम नहीं होगा, वह देगा--बेशर्त। वह किसी को भी देगा, वह यह भी नहीं कहेगा, किसको दूं, किसको न दूं; उसकी कोई सीमा न होगी। वह बांटेगा, वह उलीचेगा, जैसे एकांत में खिला हुआ फूल अपनी सुगंध को हवाओं में बिखेर देता है--किसी को मिल जाए, ठीक, न मिले, ठीक। किसी के

प्रयोजन से नहीं बिखेरता। सुगंध में किसी का पता नहीं लिखा होता कि फलाने के घर जाना है, कि मेरी प्रेयसी वहां रहती है, सुगंध, वहां जाना। कि मेरा प्रिय वहां रहता है, वहां जाना। बिखेर देता है, जिसको मिल जाए। फूल खिल गया, अब उसको क्या प्रयोजन।

जो व्यक्ति स्वतंत्र हो गया, उसका प्रेम खिल जाता है, उसका फूल खिल जाता है। और जिसका फूल खिल जाता है--चौथी बात--आनंद स्वभाव है। जिसका फूल खिल गया, वह आनंदित है। बिना भीतर के फूल के खिले, कब कोई आनंदित हुआ है?

तो जब मैं कहता हूं, अकेलापन स्वभाव है, स्वतंत्रता स्वभाव है, प्रेम स्वभाव है, आनंद स्वभाव है, तो मैं एक मार्ग की बात कर रहा हूं, वह मार्ग है--ध्यान का मार्ग। उसमें अकेलापन पहले आता, फिर स्वतंत्रता आती, फिर प्रेम आता, फिर आनंद आता।

दूसरा मार्ग है भक्ति का मार्ग। भक्ति के मार्ग में प्रेम पहले आता है, प्रेम स्वभाव है। परमात्मा के प्रति इतने अनन्य प्रेम से भर जाना है कि तुम्हारा मैं-भाव समाप्त हो जाए, तुम्हारा मैं समर्पित हो जाए। और जिसके जीवन में प्रेम आ गया, परमात्मा के प्रति ऐसा समर्पण आ गया, ऐसी प्रार्थना आ गयी कि अपने अहंकार को उसने सब भांति समर्पित कर दिया, उसके जीवन में अनिवार्यरूपेण आनंद आ जाएगा। जो रहा ही नहीं, मैं ही न बचा, वहां दुख कहां?

अहंकार दुख है। अहंकार दुख की तरह सालता है, शूल है, जहर है। जहां अहंकार गिर गया भक्त का, वहीं आनंद आ गया। और जहां आनंद आ जाता है, वहां दूसरे की कोई जरूरत नहीं रही।

दूसरे की जरूरत तो दुख में रहती है। तुम जब दुखी होते हो तब तुम दूसरे को तलाशते हो, कोई मिल जाए तो दुख बंटा ले। दूसरे की जरूरत ही दुख में पड़ती है। जब तुम आनंदित हो, तब क्या दूसरे की जरूरत है!

तो जो व्यक्ति प्रेम को उपलब्ध हुआ, आनंद को उपलब्ध हुआ, वह अकेलेपन को उपलब्ध हो जाता है। उसको कोई जरूरत नहीं दूसरे की। और जो अकेला है, वही स्वतंत्र है, वही स्वच्छंद है।

तो यह दूसरा सूत्र भक्ति का--प्रेम स्वभाव है। प्रेम से पैदा होता आनंद। आनंद स्वभाव है, आनंद से पैदा होता एकाकीपन, अकेलापन, एकांत, तो अकेलापन स्वभाव है। और अकेलापन यानी स्वतंत्रता, स्वच्छंदता।

किसी भी मार्ग से चलो। दो ही मार्ग हैं। या तो शुद्धरूप से अकेले बचो, तो तुम पहुंच जाओगे। या अपने को बिल्कुल गंवा दो, खो दो, तो तुम पहुंच जाओगे। या तो मिट जाओ, तो पहुंच जाओगे, शून्य हो जाओ, तो पहुंच जाओगे। या पूर्ण हो जाओ, तो पहुंच जाओगे।

जैन और बौद्ध चलते हैं ध्यान से--अकेले हो गए। मैं को शुद्ध करते हैं, शुद्ध करते हैं, परिपूर्णता पर लाते हैं। हिंदू, मुसलमान, ईसाई चलते हैं प्रेम से--अपने को समर्पित करते हैं। समर्पण में अहंकार धीरे-धीरे खो जाता है, रेखा भी नहीं बचती। जिस दिन अहंकार खो जाता है, उसी दिन परमात्मा प्रगट हो जाता है।

छठवां प्रश्नः लाओत्सू जब अपना देश छोड़कर जा रहे थे, तब देश के राजा ने उन्हें कहलाया कि आपने जो कुछ प्राप्त किया है, उसकी चुंगी चुकाए बिना आप नहीं जा सकते। उसी प्रकार परमात्मा ने आपको भी मोक्ष के द्वार पर रोककर रखा है कि जब तक आप संबोधि का दान औरों को नहीं देते, तब तक आप भी मोक्ष-महल में प्रवेश नहीं कर सकेंगे, यह संदेहरहित बात है, प्रभु!

पूछा है बोधिधर्म ने।

संदेह तो थोड़ा रहा होगा, नहीं तो पूछते नहीं। संदेहरहित बात में पूछना क्या? थोड़ा संदेह होगा। उसी संदेह के कारण यह भी कहा है कि संदेहरहित बात है, नहीं तो यह भी न कहते।

बात प्यारी है। बात महत्वपूर्ण है। लेकिन थोड़ा सा फर्क है। लाओत्सू को रोका था देश के राजा ने, क्योंकि वह बिना एक पंक्ति लिखे अपने अनुभव की, भागा जा रहा था, हिमालय में जा रहा था। उसने चुन रखा था कि जाकर हिमालय में ही कब्र बने--इससे सुंदर जगह मरने को और हो भी क्या सकती है! तो चीन छोड़कर जा रहा था, दक्षिण की तरफ भाग रहा था, उसको राजा ने रुकवा लिया।

राजा भी बड़ा समझदार रहा होगा, इतने समझदार राजा मुश्किल से होते हैं। राजा और समझदार, जरा यह बात साथ-साथ घटती नहीं। समझदार राजा रहा होगा, उसने खबर भेजी, पुलिस के आदमी दौड़ाए, घोड़े दौड़ाए और उसको ठीक सीमा पर रुकवा लिया, चुंगी चौकी पर, जहां से बाहर जाने के लिए आखिरी दरवाजा था। और रुकवाकर उसने कहा कि जब तक तुम लिख न जाओगे जो तुमने जाना है--उसने जिंदगीभर लिखा नहीं, और जब भी लोगों ने पूछा, टाल दिया; और जब भी बहुत लोगों ने कहा तो उसने इतना ही कहा कि सत्य कहा नहीं जा सकता।

लेकिन राजा ने कहा, अब तुम छोड़कर ही जा रहे हो देश, तो अब बिना कहे न जा सकोगे--लिख दो, जो भी जाना है, फिर जा सकते हो। अगर नहीं लिखा तो बाहर न निकलने दूंगा।

उसे जाना तो जरूर था, मजबूरी में वह चुंगी चौकी पर ही तीन दिन रुका और उसने अपनी अदभुत किताब ताओ तेह किंग लिखी। तीन दिन में लिखी थी, छोटे से सूत्र हैं। जल्दी से उसने लिख-लिखाकर दे दिया।

पहला ही सूत्र उसने लिखा कि सत्य कहा नहीं जा सकता और जो कहा जा सकता है, वह सत्य नहीं होगा; इस बात को ध्यान में रखकर आगे कहता हूं। तो उसने पहले ही साफ कर दिया मामला। उसने चुंगी चुका दी। मजबूरी थी इसलिए चुकानी पड़ी--वह भाग गया, फिर निकल गया।

तुम कहते हो कि "जैसा लाओत्सू को उस देश के राजा ने चुंगी चुकाए बिना नहीं जाने दिया, उसी प्रकार परमात्मा ने आपको भी मोक्ष के द्वार पर रोककर रखा है।"

यहां जरा बात उलटी है। परमात्मा ने मुझे रोककर नहीं रखा है, परमात्मा को मैं रोककर रखा हूं कि जरा, दरवाजा अभी मत खोलना। जहां तक चुकाने का सवाल है, मैंने मूलधन भी चुका दिया है, ब्याज भी, चक्रवृद्धि ब्याज भी चुका दिया है। जितना लिया था उससे बहुत ज्यादा चुका दिया है। इसलिए परमात्मा मुझे रोके, यह तो सवाल ही नहीं है, मैं ही रोककर बैठा हूं कि जरा और, थोड़ा और, और थोड़ा बांट दूं।

मेरे जाने की नाव तो आकर किनारे लगी खड़ी है, मैं ही समझा-बुझाकर रोक रहा हूं माझी को कि जरा और, ये थोड़े लोग और आ गए हैं, इनको थोड़ा और समझा लूं।

आखिरी प्रश्नः ओशो, आपने चमचे और चमचागीरी जैसे साधारण शब्दों का उपयोग किया, इससे मेरा मन बहुत दुखी हुआ। ऐसा आपने क्यों किया?

पहली तो बात, तुम शब्दों में भी शूद्र और ब्राह्मण बनाए बैठे हो! आदमियों में भी वर्ण बनाए, शब्दों में भी बना लिए! तो चमचागीरी या चमचा तुम्हें लगता होगा शूद्र शब्द हैं, इनका उपयोग नहीं होना चाहिए।

मेरे लिए कोई शूद्र नहीं है, कोई ब्राह्मण नहीं है। रही बात शब्दों की, तो शब्द का अर्थ ही होता है, जो अभिव्यंजक हो। जितना अभिव्यंजक हो। अब चमचे से ज्यादा अभिव्यंजक शब्द खोज सकते हो? इस बात को

किसी और शब्द से कह सकते हो? इससे ज्यादा ठीक मौजूं शब्द इस बात को कहने के लिए दूसरा नहीं है। इसलिए शब्द सार्थक है। और तुम सोचते हो नया है, तो तुम गलती करते हो। आदमी जितना पुराना है उतना ही पुराना है। कभी कुछ और कहा होगा, कभी कुछ और कहा होगा, लेकिन चमचागीरी पुराना शास्त्र है। वेद से भी ज्यादा पुराना।

अगर तुम वेद में भी खोजोगे तो तुम्हें चमचागीरी मिलेगी। इंद्र की प्रशंसा चल रही है, स्तुति चल रही है! वह भी भय के कारण, घबड़ाहट के कारण, लोभ के कारण, कि करोगे प्रशंसा तो तुम्हें कुछ मिल जाएगा, स्तुति चल रही है। स्तुति पुराना शब्द है, अब उसने अर्थ खो दिया।

जब शब्द कोई प्रचलित होता है, लोक-व्यवहार में होता है, तब उसमें प्राण होते हैं। अब चमचागीरी शब्द के लिए बस दूसरा ही एक शब्द है जो उसके करीब आता है, हालांकि उतने करीब नहीं आता, वह है मक्खनबाजी। लगा रहे हैं मक्खन।

तो पहली तो बात यह कि मेरे लिए साधारण-असाधारण कुछ भी नहीं है। शब्दों में क्या साधारण-असाधारण! या तो सभी शब्द साधारण हैं, क्योंकि उसको तो किसी शब्द में कहा नहीं जा सकता। सत्य तो किसी शब्द में नहीं आता है, इसलिए सभी शब्द साधारण हैं। या फिर सभी शब्द असाधारण हैं, क्योंकि जो भी कहा जा सकता है, वह सभी शब्दों में कहा जा सकता है। जो शब्द भी बोलते हैं, जिन शब्दों में भी वाणी है, वे सभी असाधारण हैं। मगर वर्गीकरण नहीं करूंगा। अच्छे और बुरे, ऐसे शब्द नहीं हैं। अच्छे और बुरे तुम्हारी धारणा में हैं।

तुम्हें तकलीफ हुई होगी, यह मैं मानता हूं। तुम्हें लगा होगा कि जिस व्यक्ति को तुम भगवान कहो, उसने चमचे जैसा शब्द का उपयोग कर लिया! तो तुम अपने भगवान की धारणा को थोड़ा बदलो। तुम्हारे भगवान की धारणा रक्तहीन है, मुर्दा है। तुम अपने भगवान की धारणा में थोड़ा रक्त डालो, थोड़ा जीवन डालो। तुम्हारे भगवान की धारणा शाब्दिक है, कोरी है, प्रज्वलित नहीं है; उसे प्रज्वलित करो; बुझी-बुझी है, आग नहीं है उसमें, तो तुम घबड़ा जाते हो, जरा सा ही एक छोटा सा शब्द और तुम घबड़ा गए!

और फिर तुम्हारे भीतर एक गहरी आकांक्षा छिपी रहती है कि अगर मौका मिल जाए, तो तुम मुझसे बदला ले लो। बदला इस बात का कि मैं तुम्हें रोज सलाह देता हूं, तुम्हें मौका मिल जाए तो तुम मुझे सलाह देने का मौका नहीं चूकते। कोई मौका मिल जाए जिसमें तुम्हें मेरी भूल-चूक मिल जाए, तो तुम जल्दी से बताना चाहते हो।

इस बात को बहुत ज्यादा ध्यान में रखने की जरूरत है कि शिष्य को भी शिष्य होने में बड़ी अड़चन रहती है। बनता है शिष्य, मजबूरी में, बनना तो गुरु चाहता है।

सुना है, एक सूफी फकीर के पास एक आदमी आया और उस आदमी ने कहा कि परमात्मा को पाना है। तो सूफी फकीर ने कहा, शिष्य बनना पड़ेगा। तो उसने कहा, शिष्य बनने में क्या-क्या कर्तव्य हैं? क्या-क्या करना होगा? तो फकीर ने कहा कि तीन साल तक तो पूछना ही मत, झाडू लगाना, बुहारी लगाना, गाएं चरा लाना, घोड़ों की देखभाल करना, भोजन बनाना, कपड़े धोना, इस तरह के काम हैं। फिर तीन साल के बाद जो ठीक होगा, हम बताएंगे। तो उसने कहा, यह तो मामला जरा लंबा दिखायी पड़ता है--तीन साल यही करना है! तो और गुरु का क्या कर्तव्य है? शिष्य का तो यह कर्तव्य है, गुरु का क्या कर्तव्य है? तो गुरु ने कहा, गुरु का कर्तव्य है बैठे रहना मस्ती से। लोगों से कहना, यह करो, वह करो, ऐसा करो, इसको वहां भेजो, इसको वहां भेजो। तो उसने कहा, फिर ऐसा करें, मुझे गुरु ही बना दें। यह काम ज्यादा रुचता है।

तो मैं तुम्हारी तकलीफ समझता हूं कि तुम्हारे मन में भी गुरु बनने का भाव तो छिपा बैठा है। और कभी-कभी मैं ऐसी बातें कहता हूं। मैं जानना चाहता हूं, किस-किस के भीतर गुरु-भाव छिपा बैठा है?

"मन को दुख हुआ।"

मन को दुख होने का कारण यह है कि तुम्हारी अपेक्षाएं पूरी न हों तो मन को दुख हो जाता है--तुम जैसी अपेक्षा रखते हो। और एक बात तुम खूब समझ लो कि मैं तुम्हारी कोई अपेक्षा कभी पूरी नहीं करूंगा। क्योंकि यहां मैं तुम्हारी अपेक्षा पूरी करने में उत्सुक ही नहीं हूं। तुम्हें पूरा कर सकता हूं, लेकिन तुम्हारी अपेक्षा पूरी नहीं कर सकता हूं। और तुम्हें पूरा कर सकता हूं, इसीलिए कि तुम्हारी अपेक्षा पूरी नहीं करूंगा। अगर तुम्हारी अपेक्षाएं पूरी करने लगूं, तो तुम अधूरे रह जाओगे।

अब तुम चुन लो। तुम्हारी अपेक्षाएं तो मुझे तोड़नी होंगी, जगह-जगह से तोड़नी होंगी। तुम्हारी धारणाएं तो सब तरफ से उखाड़ देनी होंगी। तुम्हें तो मुझे धीरे-धीरे उस जगह ले आना है, जब तुम्हारे भीतर कोई धारणा नहीं, कोई अपेक्षा नहीं--निर्धारणा। उस घड़ी में ही क्रांति घटेगी, दीया जलेगा।

लेकिन इन छोटी-मोटी बातों पर हिसाब लगाकर बैठे हो!

मैंने सुना, एक साधु आटा मांगने एक घर के सामने रुका। सास मंदिर गयी थी, घर में बहू थी, उसने कहा, महाराज, आगे जाओ। बड़ी तेज-तर्रार औरत मालूम होती थी। साधु फिर कुछ बोला नहीं, और ज्यादा फजीहत करानी ठीक भी न थी, वह वापस लौट गया।

जब वह वापस लौट रहा था तो मंदिर से लौटती हुई सास रास्ते में मिली। सास ने पूछा, क्यों बाबा, मेरे घर गए थे क्या? साधु के हां कहने पर उसने पूछा, तो फिर बहू ने क्या कहा? साधु ने कहा कि बहू ने कहा कि बाबा, महाराज, आगे जाओ, कहीं और जाओ। बड़ी तेज-तर्रार औरत!

सास एकदम गुस्से में आ गयी, उसने कहा, वह कौन होती है मना करने वाली? मेरे रहते वह है कौन मना करने वाली? घर का मालिक कौन है? तुम चलो मेरे साथ, मैं अभी उसे ठीक करती हूं।

साधु बड़ा प्रसन्न हुआ, सोचा कि जब बुलाकर ले जा रही है तो कुछ देगी। दोनों जब घर पहुंच गए, तो सास ने गुस्से में बहू से पूछा, बहू, तुमने महाराज को आटा देने से मना किया था? मेरे रहते तू कौन है मना करने वाली? माफी मांग साधु महाराज से।

बहू ने माफी मांगी, साधु तो बड़ा खुश हुआ। और जब बहू माफी मांग चुकी, तो सास ने कहा, महाराज, जाओ, अब मैं कहती हूं! कहीं आगे जाओ!

औपचारिकता पूरी कर दी। अब मैं कहती हूं, अब कहीं और आगे जाओ। बहू कौन है कहने वाली!

औपचारिकता पर उलझे हो अगर तुम मेरे पास, तो तुम्हारी दशा दयनीय है। औपचारिकताएं छोड़ो। यहां कोई शिष्टाचारों के नियम पूरे नहीं किए जा रहे हैं, यहां किसी क्रांति की तैयारी हो रही है। बड़ा झंझावात है। उसमें बहुत कुछ उखड़ जाना है। तुम्हारे सब नियम-धर्म उखड़ जाने हैं।

फिर अगर देखने की क्षमता हो, तो हर चीज में कुछ अर्थ दिखायी पड़ेगा और देखने की क्षमता न हो तो बड़े-बड़े शब्दों में भी कुछ नहीं है।

तुम्हारे विचार के लिए यह बटरिंग-व्रत कथा तुमसे कहता हूं--

मंगलम इमीजिएट बासे,
मंगलम बटरिंग-व्रताय।

मंगलम चमचाय चम्पी,
मंगलम फल प्राप्ताय।।

अथ चमचाय उवाचः

जेहिके स्रवनहिं मात्र से कटहिं कलेस-विकार
तिहि बटरिंग-व्रत की कथा सुनहिं क्लर्क नर-नारि,
हंसा भूखे मर रहे, कौवों के हैं ठाठ
हरिश्चंद्र की हो गयी आज खड़ी फिर खाट,
एक पंक्ति में दे रहा बटरिंग-व्रत का सार
मक्खन मालिश के बिना है यह व्रत बेकार,
जो भी तेरा है आफीसर उसके पांव पकड़ ले प्यारे!
उसकी पत्नी के चरणों को उनके साथ जकड़ ले प्यारे!
आते हुए सलाम मार दे
जाते हुए सलाम मार दे
बिछा पलंग पर चद्दर-दरियां
पहुंचा सब्जी की टोकरियां
त्यौहारों पर भेज मिठाई
उपहारों की कर सप्लाई
कुछ ही दिन ऐसा करने से तुझे तरक्की मिल जाएगी,
तेरी किस्मत की यह खिड़की खुलते-खुलते खुल जाएगी,
बटरिंग की महिमा अनंत, मोसों लिखी न जाए,
सुख भोगे इहलोक नर, अंत बास-पद पाय।
बटरिंग-व्रत की कथा को विरचत कवि "बेचैन",
पढ़ें-सुनें जे क्लर्कजन चैन करें दिन-रैन।
इति श्री क्लर्को खंडे बटरिंग-व्रत कथायाम अंतिमोऽध्यायः।
श्री हरे नमः।
आज इतना ही।

पचहत्तरवां प्रवचन

तुम तुम हो

कोधं जहे विप्पजहेय्य मानं सां ंजनं सब्बमतिक्कमेय्य।
तं नामरूपस्मि असज्जमानं अकिंचनं नानुपातन्ति दुक्खा।। 189।।

यो वे उप्पतितं कोधं रथं भन्तं" व धारये।
तमहं सारथिं बूरमि रस्मिग्गाहो इतरो जनो।। 190।।

अक्कोधेन जिने कोधं असाधुं साधुना जिने।
जिने कदरियं दानेन सच्चेन अलिकवादिनं।। 191।।

सच्चं भणे न कुज्झेय्य दज्जाप्पस्मिम्पि याचितो।
एतेह तीहि ठानेहि गच्छे देवान सन्तिके।। 192।।

सदा जागरमानानं अहोरत्तानुसिक्खिनं।
निब्बानं अधिमुत्तानं अत्थं गच्छन्ति आसवा।। 193।।

पोराणमेतं अतुल! नेतं अज्जनामिव।
निन्दन्ति तुण्हीमासीनं निन्दन्ति बहुभाणिनं।
मितभाणिनम्पि निन्दन्ति नत्थि लोके अनिन्दितो।। 194।।

एक बार भगवान कपिलवस्तु गए। उनके शिष्यों में एक स्थविर अनिरुद्ध की बहन रोहिणी वहां रहती थी। उसके परिवार के सभी लोग स्थविर अनिरुद्ध को मिलने आए, लेकिन रोहिणी नहीं आयी। अनिरुद्ध चिंतित हुए। उन्होंने बहन को बुलवाया। वह आयी भी तो मुंह ढंककर आयी। स्थविर अनिरुद्ध तो बड़े चिंतित हुए। उन्होंने उससे पूछा कि पहले तो तू आयी नहीं, अब आयी भी है तो मुंह ढंककर आयी है, इसका कारण क्या है? रोहिणी ने कहा, मेरा चेहरा अनायास विकृत हो गया है। सारे चेहरे पर फफोले हो गए हैं। मैं छवि रोग से पीड़ित हूं। इसीलिए पहले आयी नहीं, लज्जावश। आपने बुलाया तो आयी हूं, लेकिन मुंह ढंककर आयी हूं। यह मुंह दिखाने योग्य नहीं रहा।

स्थविर अनिरुद्ध ने उससे कहा, छोड़ इसकी फिकर। भगवान का आगमन हुआ है, उनके दस हजार भिक्षु गांव में हैं, उनके ठहरने के लिए एक विशाल भवन बनवाना है, तू उस भवन को बनाने में लग जा।

रोहिणी के पास इतने रुपए थे भी नहीं। लेकिन उसने अपने सारे जवाहरात, अपने सब गहने बेच दिए और भिक्षुओं के निवास के लिए भवन बनवाने में लग गयी। भवन बनाने का काम ऐसा था कि भूल ही गयी

अपने रोग को, और आश्चर्य की घटना घटी कि निवास बनवाते-बनवाते ही निन्यानबे प्रतिशत रोग अनायास ठीक हो गया। लेकिन वह अभी भी भगवान के दर्शन को नहीं आयी थी।

तब भगवान ने उसे बुलवाया और पूछा, क्यों नहीं आयी? उसने कहा, भंते, मेरे शरीर में छवि रोग उत्पन्न हो गया था, उसी से लज्जित होकर नहीं आयी। अब स्थविर अनिरुद्ध की दवा से निन्यानबे प्रतिशत तो ठीक हो गया है, लेकिन एक प्रतिशत अभी भी बाकी है। यह कुरूप चेहरा आपको कैसे दिखाऊं? इसलिए बचती थी। आपने बुलाया तो आयी हूं, क्षमा करें।

भगवान ने पुनः पूछा, जानती हो यह किस कारण हुआ? नहीं भंते, वह बोली। भगवान ने कहा, रोहिणी, तेरे क्रोध के कारण। यह अत्यंत क्रोध का फल है। और इसीलिए, देख कि करुणा से अपने आप दूर हो चला है। और क्रोध तो अहंकार का परिणाम है। तुझे अपने रूप का बड़ा अभिमान था। उस अहंकार पर पड़ी चोट के कारण ही क्रोध होता था। भिक्षुओं के लिए भवन बनाने में तू भूल गयी अपने को। तेरा अहंभाव विस्मृत हो गया। तू ऐसी संलग्न हो गयी इस करुणा के कृत्य में कि अहंकार को खड़े होने की, बचने की जगह न रही। इसलिए देख, रोग अपने आप दूर हो चला है। लेकिन पूरा दूर नहीं हुआ, क्योंकि अहंकार तेरा छूटा तो, लेकिन बोधपूर्वक नहीं छूटा है। इसलिए एक प्रतिशत रोग बचा है। करुणा तो तूने की, लेकिन करुणा जान-बूझकर नहीं की। मूर्च्छा में की है; भाई ने कहा है, इसलिए की है। तेरे भीतर से सहजस्फूर्त नहीं है। इसलिए एक प्रतिशत बच रहा है। जाग! जो अभी तू करुणा कर रही है, होश से कर! और जो अहंकार अभी तूने ऐसा काम में भूलकर भुला दिया है, उसे जानकर ही त्याग दे! और कहते हैं, इस बात को सुनते-सुनते ही रोहिणी का सारा रोग चला गया। तब भगवान ने ये गाथाएं कहीं।

आज की पहली चार गाथाएं रोहिणी को कही गयी थीं।

पहले तो इस कहानी को ठीक से समझ लें। यह अपूर्व है। इसमें पड़ा हुआ मनोविज्ञान गहरा है। मनस्विद जो अब खोज पा रहे हैं, वे सारे सूत्र इसमें मौजूद हैं।

पहली बात, आधुनिक मनोविज्ञान कहता है कि मनुष्य का मन उसकी बीमारियों का नब्बे प्रतिशत कारण है। नब्बे प्रतिशत बीमारियों के आधार में मन है। इसलिए इलाज से बीमारियां बदल जाती हैं, ठीक नहीं होतीं। एक बीमारी हुई, इलाज कर लिया, दवाओं ने उस बीमारी को रोक दिया, दूसरी तरफ से बीमारी बहने लगी। क्योंकि मन तो वही है, मन तो बदला नहीं, मन की तो कोई चिकित्सा हुई नहीं।

समझो यह रोहिणी किसी डाक्टर के हाथ में पड़ गयी होती--यह तो भला हुआ कि बुद्ध जैसे डाक्टर के हाथ में पड़ गयी--यह किसी डाक्टर के हाथ में पड़ती? तो डाक्टर क्या करता, इसकी चमड़ी का इलाज करता। चमड़ी में रोग था नहीं, चमड़ी में केवल परिणाम था। रोग मन में था। मन का रोग चमड़ी पर फफोले होकर निकल रहा था।

तो कोई चिकित्सक इसके चेहरे के फफोले ठीक कर देता, यह भी हो सकता था प्लास्टिक सर्जरी कर देता, इसके सारे चेहरे की चमड़ी बदल देता, तो यह रोग कहीं और से प्रगट होता। हाथों में छाजन हो जाती, कि पैरों में लकवा लग जाता, कि आंखें अंधी हो जातीं, कि कान बहरे हो जाते, यह रोग किसी और दरवाजे को खोज लेता। रोग तो मिटता नहीं, तो दरवाजा तो खोजता। असल में जिसको हम रोग कहते हैं, वह रोग नहीं है, रोग का लक्षण है। साधारण चिकित्सक लक्षण से लड़ता है, महाचिकित्सक रोग के मूल से लड़ता है।

आधुनिक मनोविज्ञान कहता है कि जब तक आदमी का मन न बदला जाए, तब तक किसी बीमारी से वस्तुतः छुटकारा नहीं होता।

इसलिए तुमने भी देखा होगा, एक दफे बीमारी के चक्कर में पड़ जाओ तो निकलने का रास्ता नहीं दिखता। किसी तरह एक बीमारी से निकल नहीं पाते कि दूसरी घर कर लेती है, कि दूसरे से निकल नहीं पाते कि तीसरी घर कर लेती है। ऐसा लगता है, एक कतार है बीमारियों की, तुम एक से निपटे कि दूसरी बीमारी पकड़ती है। जब तक ठीक थे, ठीक थे। इसलिए लोग कहते हैं, बीमारी अकेली नहीं आती। कहावतें कहती हैं, बीमारी अकेली नहीं आती। संग-साथ में और बीमारियां लाती है। दुख अकेला नहीं आता, साथ में भीड़ लाता है।

इसका कारण? इसका कारण न तो दुख है, न बीमारी है। इसका कारण यह है कि मूल को हम छूते नहीं।

समझो कि एक वृक्ष की जड़ों में रोग लग गया है और पत्ते विकृत होकर आने लगे हैं। पूरे खिलते नहीं, पूरे खुलते नहीं, हरियाली खो गयी है। तुम पत्ते काटते रहो, या पत्तों पर मलहम लगाते रहो, या पत्तों पर जल का छिड़काव करते रहो--गुलाब जल का छिड़काव करो, तो भी कुछ बहुत होगा नहीं। जड़ जब तक आमूल स्वस्थ न हो तब तक कुछ भी न होगा।

मनुष्य की जड़ उसके मन में है। मनुष्य शब्द ही मन से बना है। मनुष्य यानी जो मन में रुपा है, मन में गड़ा है। उर्दू का शब्द है, आदमी, वह उतना महत्वपूर्ण नहीं। उसमें बहुत गहरा अर्थ नहीं है। उसमें जो अर्थ भी है, वह छिछला है। आदम का अर्थ होता है, मिट्टी। जो मिट्टी से बना है, उसको कहते आदमी। क्योंकि भगवान ने पहले आदमी को मिट्टी से बनाया और फिर उसमें श्वास फूंक दी, इसलिए उसका नाम आदम। फिर आदम के जो बच्चे हुए, उनका नाम आदमी। आदमी मिट्टी से बना है, मतलब आदमी देह है।

हमारी पकड़ इससे गहरी है। हम कहते हैं, मनुष्य। अंग्रेजी का मैन भी संस्कृत के मन का ही रूपांतर है। वह भी महत्वपूर्ण है। हम कहते हैं, मनुष्य। हम कहते हैं, मिट्टी नहीं है आदमी, आदमी है मन, आदमी है विचार, आदमी है उसका मनोविज्ञान। जैसे ईसाइयत, इस्लाम और यहूदी आदम को पहला आदमी मानते हैं, हम नहीं मानते। क्योंकि आदम होना तो आदमी का ऊपरी वेश है, वह असली बात नहीं है। असली बात तो भीतर छिपा हुआ सूक्ष्म रूप है।

मनुष्य का अर्थ ही होता है, जिसकी जड़ें मन में गड़ी हैं। लेकिन आधुनिक खोजें इस सत्य के करीब आ रही हैं। आधुनिक खोजें इस बात को स्वीकार करने लगी हैं कि आदमी शरीर पर समाप्त नहीं है। न तो शरीर पर शुरू होता है, न शरीर पर समाप्त होता है। शरीर तो घर है जिसमें कोई बसा है। फिर हम यह भी नहीं कहते कि आदमी मन पर समाप्त हो जाता है, हम कहते हैं, मन में गड़ा है। है तो मन से भी पार। इसलिए आदमी है तो आत्मा।

अब इन तीन शब्दों को ठीक से लेना--आत्मा, मन, देह। मन दोनों के बीच में है। मन को तुम शरीर से जोड़ दो तो संसारी हो जाते हो और मन को तुम आत्मा से जोड़ दो तो संन्यासी हो जाते हो। मन के जोड़ का सारा खेल है। आत्मा भी तुम्हारे भीतर है, शरीर भी तुम्हारे पास है, बीच में डोलता हुआ मन है। इसलिए मन सदा डोलता है। डांवाडोल रहता है। मध्य में लहरें लेता रहता है। अगर तुम्हारा मन शरीर की छाया होकर चलने लगे तो तुम संसारी, अगर तुम्हारा मन आत्मा की छाया होकर चलने लगे, तुम संन्यासी। कुछ और फर्क नहीं है। मन अगर अपने से नीचे की बात मानने लगे तो संसारी, मन अगर अपने ऊपर देखने लगे तो संन्यासी।

संन्यास की धारणा इस देश में पैदा हुई, क्योंकि हमें यह बात समझ में आ गयी कि मन दो ढंग से काम कर सकता है। मन तटस्थ है। मन की अपनी कोई धारणा नहीं है। मन यह नहीं कहता, ऐसा करो। तुम पर निर्भर है। तुम चाहो तो मन को शरीर के पीछे लगा दो, तो वह शरीर की गुलामी करता रहेगा। मन तो बड़ा

अदभुत गुलाम है। उस जैसा आज्ञाकारी कोई भी नहीं। तुम उसे आत्मा की सेवा में लगा दो, वह आत्मा की सेवा में लग जाएगा। तुम उसे लोभ में लगा दो, वह लोभ बन जाएगा। तुम उसे करुणा में लगा दो, वह करुणा बन जाएगा।

सारे धर्म की कला इतनी ही है कि हम मन को नीचे जाने से हटाकर ऊपर जाने में कैसे लगा दें। और ख्याल रखना, जो सीढ़ियां नीचे ले जाती हैं वही सीढ़ियां ऊपर ले जाती हैं। सीढ़ियां तो वही हैं। ऐसा भी हो सकता है कि दो आदमी बिल्कुल एक जैसे हों, एक जगह हों, और फिर भी एक संन्यासी हो और एक संसारी हो।

ऐसा समझो कि किसी मकान की सीढ़ियां तुम चढ़ रहे हो। एक आदमी ऊपर से नीचे उतर रहा है, तुम ऊपर चढ़ रहे हो। तीस सीढ़ियां हैं। पंद्रहवीं सीढ़ी पर तुम दोनों का मिलना हो गया, तुम ऊपर की तरफ जा रहे हो, कोई नीचे की तरफ आ रहा है। पंद्रहवीं सीढ़ी पर तुम खड़े हो, दोनों एक ही जगह खड़े हो, लेकिन फिर भी एक जैसे नहीं हो, क्योंकि एक नीचे जा रहा है और एक ऊपर जा रहा है। दोनों बिल्कुल एक जैसे लगोगे, कोई तो फर्क नहीं होगा, क्योंकि सीढ़ी तो पंद्रहवीं होगी, स्थान तो वही होगा। लेकिन फिर भी गहरे में फर्क है--एक ऊपर जा रहा है, एक नीचे आ रहा है, दिशा में फर्क है, उन्मुखता भिन्न-भिन्न है।

जब मन देहोन्मुख होता है, तो संसार। और जब मन आत्मोन्मुख हो जाता है, रामोन्मुख हो जाता है, तो संन्यास। तो कभी-कभी ऐसा भी हो सकता है कि संसारी और संन्यासी बिल्कुल एक जैसा लगे, एक ही सीढ़ी पर खड़ा हुआ मालूम पड़े, फिर भी अगर उनकी दिशाएं अलग हैं, उनकी आंखें अगर अलग दिशाओं में देख रही हैं, तो वे भिन्न हैं, मौलिक रूप से भिन्न हैं।

आधुनिक मनोविज्ञान कहता है कि जब तक हम मन को स्वस्थ न कर लें, तब तक शरीर की बहुत सी बीमारियां ठीक हो ही नहीं सकतीं। इसलिए पश्चिम में एक नए तरह की चिकित्सा पैदा हो रही है--साइकोसोमेटिक। शरीर और मन, दोनों का इलाज साथ-साथ होना चाहिए। और शरीर से भी ज्यादा महत्वपूर्ण है मन का इलाज। बीमारी अगर मन में हो और शरीर पर केवल उसकी छाया पड़ती हो, तो तुम छाया को पोंछते रहो, मिटाते रहो, इससे कुछ भी न होगा। मन से हट जाए, तो शरीर तत्क्षण स्वस्थ हो जाएगा।

इस कहानी का पहला तो यही अदभुत अर्थ कि यह जो रोहिणी है, यह अत्यंत अहंकारी रही होगी। अहंकार स्त्री को होता है तो रूप का होता है। आदमी को अहंकार होता है तो नाम का होता है। दो ही अहंकार हैं--नाम, रूप। इसलिए माया के सारे संसार का हमने एक ही अर्थ किया है--नाम-रूप। रूप का अर्थ होता है, देह। नाम का अर्थ होता है, सूक्ष्म मन। मनुष्य का, अगर वह पुरुष है तो बहुत लगाव होता है नाम से--प्रतिष्ठा, पद, पदवी, यश, धन, ज्ञान, त्याग--कहीं नाम। स्त्री का आग्रह होता है रूप पर। सौंदर्य।

मुल्ला नसरुद्दीन मुझसे बोला कि मुझे नौकरी मिल गयी है, एक ब्यूटी पारलर में। एक सौंदर्य-प्रसाधन की दुकान में नौकरी मिल गयी है। मैंने उसे उस दुकान के सामने खड़ा कई बार देखा, तो पूछा कि तू वहां खड़ा ही तो रहता है, नौकरी क्या मिली? बाहर खड़ा रहता है! उसने कहा, यही मेरी नौकरी है। मैंने कहा, तेरा काम क्या है? उसने कहा, काम भी बड़ा सरल है--ऐसे बड़ा सूक्ष्म। फिर भी, मैंने कहा, मुझे कहो काम तेरा क्या है? मैं जब देखता हूं, वहीं तू खड़ा है बाहर। तो उसने कहा, काम मेरा यह है कि जो स्त्रियां सौंदर्य-प्रसाधन के लिए आती हैं, जब वे भीतर जाती हैं तो मेरा काम है उपेक्षा दिखलाना। नजर भी नहीं डालना, देखना ही नहीं कि कौन जा रहा है, कौन आ रहा है। और जब वे सज-धजकर, बाल ठीक करवाकर बाहर निकलती हैं, तो सीटी बजाना। यह मेरा काम है, यह मेरी नौकरी है। इससे दुकान खूब चल रही है। क्योंकि स्त्रियों को समझ में एक

बात आ जाती है कि अभी गयी थी और यह आदमी देखा तक नहीं और अब बाल-वाल संवारकर बाहर आ रही हूं तो सीटी बजा रहा है--वही आदमी! तो जरूर सुंदर होकर लौटी हूं।

स्त्री का सारा आकर्षण रूप में है। इसलिए स्त्री को बहुत फिकर नहीं होती नाम की। इसलिए स्त्रियां कोई ऐसे बहुत काम नहीं करतीं जिनसे नाम मिले, कि कोई बड़ी किताब लिखनी, कि मूर्ति बनानी, कि पेंटिंग बनानी, कि महाकाव्य लिखना, कि दुनिया की कोई ख्याति मिल जाए। कुछ लेना-देना नहीं। स्त्री को सारा प्रयोजन है सौंदर्य से।

रोहिणी सुंदर स्त्री रही होगी। स्त्री थी, सौंदर्य पर उसकी पकड़ रही होगी। और यह जो अहंकार हो--जैसा भी हो अहंकार, चाहे रूप का, चाहे नाम का, जहां अहंकार है वहां क्रोध है। क्योंकि क्रोध का अर्थ ही होता है, अहंकार को लगी चोट। तुम सोचते हो कि तुम बड़े ज्ञानी हो, किसी ने कह दिया कि क्या तुममें रखा है ज्ञान-वान--चोट लग गयी। तुम सोचते हो कि तुम बड़े सज्जन हो और किसी ने कह दिया कि काहे के सज्जन, चोर, बेईमान; तुम सोचते हो साधु हो, किसी ने कह दिया असाधु; तुमने सोचा कि सुंदर हो और किसी ने कह दिया असुंदर; तो चोट लग गयी। तुम्हारी मान्यता को चोट लग जाए तो क्रोध पैदा होता है। तुम्हारी मान्यता को जो साथ दे दे, उस पर बड़ा लगाव आता है।

यही तो प्रशंसा से तुम इतने प्रशंसित होते हो। कोई कह दे कि हां, तुम जैसा सुंदर और कौन! तुम बाग-बाग हो जाते हो। तुम्हारी सब पखुड़ियां खिल जाती हैं, तुम खुश हो जाते हो। किसी ने तुम्हारे अहंकार को फुसलाया, राजी कर लिया।

कुरूप से कुरूप स्त्री को भी कह दो कि तुम सुंदर हो तो वह भी इनकार नहीं करेगी। वस्तुतः वह कहेगी कि तुम्हीं पहली दफे पारखी मिले, अब तक कोई पहचान ही न पाया। मैं तो जानती ही थी, लेकिन पारखी चाहिए न! हीरे तो पारखी होते तो पहचानते। तुम बुद्धू से बुद्धू आदमी से कह दो कि तुम बुद्धिमान हो, बड़े बुद्धिमान हो, तो वह भी नहीं कहता कि देखो, नाहक चापलूसी मत करो; मैं तो बुद्धू हूं। वह भी नहीं कहेगा। पागल से पागल को कह दो कि तुम जैसा जागरूक, शांत चित्त आदमी और कहां है? वह भी अंगीकार करता है।

अहंकार के अनुकूल जो पड़ता है, वह हम स्वीकार करते हैं। और अहंकार को जो भरता है, उसको हम मित्र कहते हैं--यद्यपि वह है तो शत्रु। क्योंकि वह तुम्हें उस जगह ले जा रहा है जहां से तुम बुरी तरह गिरोगे। जहां से ऐसे गिरोगे कि फिर सम्हलना मुश्किल हो जाएगा। वह तुम्हें ऐसी जगह उठा रहा है जहां से गिरना सुनिश्चित है। अहंकार पर कोई भी थिर होकर रह नहीं सकता। वह जगह बारीक है, तुम्हें सम्हाल न पाएगी, वहां से तुम गिरोगे ही। और आज जितने अहंकार से तुम्हारी तृप्ति हुई है, कल और तुम मांगोगे, और ज्यादा, और ज्यादा। आखिर कब तक यह होगा? एक घड़ी आएगी कि तुम अपने ही अतिशय से गिरोगे, बुरी चोट खाओगे।

जो जितने ऊपर अहंकार की चोटी पर चढ़ेगा, उतनी ही बड़ी खाई में गिरने का खतरा मोल ले रहा है। आज नहीं कल, कल नहीं परसों, गिरती आने वाली है। और तुम चकित होओगे कि जिन्होंने प्रशंसा की थी, वे ही निंदा में मुखर हो जाते हैं। वे बदला लेंगे। जब प्रशंसा की थी तब भी बेमन से की थी, तब भी करनी पड़ी थी, कोई प्रयोजन था इसलिए की थी, तुमसे कुछ लाभ था, तुमसे कुछ निकालना था इसलिए की थी। बदला तो लेंगे।

कोई भी प्रशंसा प्रशंसा की तरह थोड़े ही करता है, उसका कोई प्रयोजन है, उसे तुम्हारा शोषण करना है। उसका काम निपट जाएगा तो वही बदला लेगा। जिसने तुम्हें आकर खूब आल्हादित किया था, वही तुम्हें

गालियां देगा। तब दिल को और भी चोट लगेगी। अपने ही पराए हो गए, ऐसा लगेगा। मित्र शत्रु हो गए, ऐसा लगेगा। और कहावतें कहती हैं दुनिया की कि जिसके साथ नेकी करो वही बदी करता है।

नेकी इत्यादि तुमने की भी नहीं है। उसने तुम्हारी प्रशंसा की थी, तुमने कुछ उस प्रशंसा के कारण कर दिया था, वह नेकी नहीं थी। वह सिर्फ सौदा था। और उस आदमी को तुम्हारी प्रशंसा करनी पड़ी थी, तुम्हारे सामने झुकना पड़ा था, इसलिए वह तुम्हें कभी क्षमा तो कर नहीं सकेगा। वह इसका बदला तो लेगा। जब भी अवसर आ जाएगा, ठीक समय होगा, वह बदला लेगा।

तो रोहिणी को रूप का दंभ था। रूप के दंभ के कारण बहुत चोटें लगी होंगी, क्रोधित होती थी। अगर तुम्हें चोटें लगती हों तो एक बात ख्याल में ले लेना, चोट लगने का लक्षण, अर्थ यही कि तुम्हारे भीतर अहंकार का घाव बहुत गहरा है, जरा सी बात भी अखर जाती है। अगर तुम्हारे मन में सम्मान की इच्छा है और अपमान से बचने का भाव है, तो तुम अहंकार का पोषण कर रहे हो।

फिर इन क्रोध और अहंकार के बीच में उसे छवि रोग हो गया। चेहरा विकृत हो गया। मनोवैज्ञानिक कहते हैं कि चमड़ी के रोग तो निन्यानबे प्रतिशत मानसिक होते हैं। सभी रोग नब्बे प्रतिशत मानसिक होते हैं, लेकिन चमड़ी के रोग तो निन्यानबे प्रतिशत मानसिक होते हैं। क्योंकि चमड़ी बड़ी संवेदनशील है। और चमड़ी हमारी सबसे बड़ी इंद्रिय है।

कान छोटा सा है। कान पर चोट करनी हो तो निशाना ठीक-ठीक लगाना पड़े तो ही चोट होगी। आंख छोटी सी है। आंख पर चोट करनी हो तो निशाना ठीक लगना चाहिए। जीभ भी छोटी सी है। लेकिन चमड़ी तुम्हारे पूरे शरीर को घेरे हुए है, यह तुम्हारी सबसे बड़ी इंद्रिय है। स्पर्श की इंद्रिय सबसे बड़ी इंद्रिय है। इस पर चोट बड़ी आसानी से लग सकती है, निशाना लगाने की जरूरत ही नहीं है।

इसलिए मन की चोटें आंख पर भी लगती हैं, कान पर भी लगती हैं, जीभ पर भी लगती हैं, लेकिन इनकी मात्रा बहुत छोटी-छोटी है। लेकिन शरीर की चमड़ी का फैलाव बहुत है। उस फैलाव के कारण चमड़ी पर सर्वाधिक मन की चोटें पड़ती हैं। और चमड़ी का कोई भी रोग किसी इलाज से ठीक नहीं होता। लेकिन मानसिक इलाज से ठीक होता है।

चमड़ी इस अर्थ में भी विचारणीय है कि तुम्हारी और जो इंद्रियां हैं, वे चमड़ी के ही विशिष्ट रूप हैं। कान है क्या? चमड़ी का ही एक विशिष्ट रूप है। और आंख है क्या? आंख भी चमड़ी का ही एक विशिष्ट रूप है। चमड़ी ने ही अपने एक हिस्से को देखने में कुशल बना लिया है, वह आंख हो गयी है। और चमड़ी ने ही एक दूसरे हिस्से को स्वाद लेने में कुशल बना लिया है, वह तुम्हारी जीभ हो गयी है। और चमड़ी ने ही एक दूसरे हिस्से को विशेषज्ञ बना लिया है, नाक हो गयी तुम्हारी, सुगंध के लिए विशेषज्ञ। ये एक्सपर्ट हैं, ये चमड़ी की विशेषताएं हैं। लेकिन हैं सब चमड़ी के ही खेल।

बच्चा जब पहली दफा पैदा होता है मां के पेट में बढ़ता है, तो पहले तो चमड़ी आती है। फिर चमड़ी में ही धीरे-धीरे आंख उभरती, फिर चमड़ी में ही धीरे-धीरे कान उभरता, फिर चमड़ी में ही जननेंद्रिय उभरती, फिर चमड़ी में ही जीभ, नाक, सब उभरते जाते। लेकिन सबसे पहले तो चमड़ी होती। तो चमड़ी बहुत मूल है। और इसीलिए स्पर्श बड़ा महत्वपूर्ण है।

इसीलिए जब हम किसी के प्रेम में पड़ते हैं तो तत्क्षण स्पर्श करना चाहते हैं, हाथ में हाथ लेना चाहते हैं, गले से गले लगाना चाहते हैं, आलिंगन करना चाहते हैं। जब हम किसी के प्रेम में पड़ते हैं तब हम स्पर्श करना चाहते हैं। और जिससे हमारा प्रेम नहीं है, उसके स्पर्श से हम बचते हैं।

मनोवैज्ञानिकों ने इस पर काफी शोध की है और उन्होंने पाया है कि लोग जिनसे बचना चाहते हैं, अपने बीच और उनके बीच एक खास तरह की दूरी रखते हैं। ट्रेन में ही चाहे लोग खड़े हैं, कितनी ही भीड़ है, तो भी तुम पाओगे, हर आदमी अपने में सिकुड़ा खड़ा है, दूसरे को छूना नहीं चाहता। और जिससे तुम्हारा प्रेम नहीं है, अगर उसे तुम छू लो, तो तुम तत्क्षण क्षमा मांगते हो। क्यों? छू लेने का अर्थ हुआ कि तुमने उसकी सीमारेखा में प्रवेश कर दिया, जो कि नहीं करना चाहिए, ट्रेसपास हुआ। तुम दूसरे के घर में बिना आज्ञा मांगे घुस गए। जिससे तुम्हारा प्रेम नहीं है उसको छू लेते हो, तुम तत्क्षण क्षमा मांगते हो कि माफ करना, भूल हो गयी, जानकर नहीं किया है। और अगर कोई पुरुष या कोई स्त्री तुम ट्रेन में खड़े हो और तुमसे सटकर खड़ा हो जाए और क्षमा भी न मांगे और ऐसा भाव दिखलाए कि बड़े प्रेम में तुमसे खड़ा है, तो तुम अत्यंत नाराज हो जाते हो। तुम अत्यंत क्रोधित हो जाते हो, तुम इसे बर्दाश्त नहीं कर पाते।

इसलिए ट्रेन या बस में इकट्ठे खड़े हुए लोग भी इस तरह खड़े होते हैं कि अगर शरीर भी छू रहे हैं, तो भी उनके मन नहीं छू पाते, वे अपने को सिकोड़े खड़े होते हैं। कम से कम इतना प्रदर्शन तो करते हैं कि हम तुम्हें छू नहीं रहे हैं, अगर छू रहा है शरीर तो मजबूरी है--हम नहीं छू रहे हैं। और हम एक सीमा बांधकर रखते हैं।

तुमने देखा कभी, किसी के साथ तुम खड़े होकर बात कर रहे हो, तो सदा तुम जांचोगे कि एक सीमा तक तुम उस आदमी को बर्दाश्त करते हो, अगर वह उससे ज्यादा करीब आ जाए तो तुम पीछे हट जाते हो। एक सीमा होगी, समझो कि बारह इंच, तो बारह इंच तक वह आदमी अगर तुम्हारे करीब आ जाए, तुम्हें कोई चिंता पैदा नहीं होती, कोई बेचैनी पैदा नहीं होती। बारह इंच के भीतर आना शुरू हो जाए--हां, तुम्हारा बेटा हो तो ठीक, तुम्हारी पत्नी हो तो ठीक, तुम्हारा पति हो तो ठीक, लेकिन जिनसे तुम्हारा कोई गहरा नाता नहीं है, कोई संबंध नहीं है, वे अगर बारह इंच या दस इंच के भीतर आने लगें, तुम तत्क्षण पीछे हट जाओगे। वहां तुम्हारी एक अज्ञात सीमा है। चमड़ी का एक अज्ञात क्षेत्र है, जहां तक उसकी तरंगें फैलती हैं। उन तरंगों के भीतर कोई भी आ जाए तो हम पसंद नहीं करते हैं। अशिष्ट मालूम होती है यह बात।

स्पर्श की इंद्रिय बड़ी से बड़ी इंद्रिय है और हमारे पूरे शरीर को घेरे हुए है। इस स्पर्श की इंद्रिय पर मन के प्रभाव सर्वाधिक होते हैं।

तुमने कभी एक बात देखी, अगर बूढ़ा आदमी भी किसी जवान युवती के प्रेम में पड़ जाए, तो उसकी चमड़ी पर एक रौनक आ जाती है। उसके चेहरे पर एक तरह की जवानी आ जाती है, जैसे दस साल उम्र कम हो गयी। पश्चिम में लोग अगर ज्यादा जी रहे हैं, तो उस ज्यादा जीने में एक कारण यह भी है कि बुढ़ापे तक लोग प्रेम में पड़ते हैं। तो बुढ़ापे को सरकाते चले जाते हैं। क्योंकि चमड़ी बार-बार जवान हो जाती है। पूरब के मुल्कों में लोगों की उम्र कम है, क्योंकि एक बार तुम्हारा प्रेम हो गया किसी से, फिर तुम थिर हो गए, फिर बात खतम हो गयी, फिर तुम्हारे जीवन में दुबारा प्रेम के माध्यम से चमड़ी के नए होने का कोई उपाय नहीं है।

एक आदमी जिसके जीवन में कोई प्रेम नहीं है, उसके चेहरे को तुम गौर से देखो, तुम एक तरह की धूल जमी हुई पाओगे, एक तरह की उदासी। और एक आदमी जिसके जीवन में प्रेम है, तुम अचानक पाओगे एक तरह की त्वरा, ताजगी, अभी-अभी जैसे नहाया हो, एक गति, गत्यात्मकता, एक तेजस्विता।

हमने तो महापुरुषों के आसपास आभामंडल बनाया है। बुद्ध की प्रतिमा हो, कि कृष्ण की, कि राम की, हम आभामंडल बनाते हैं। वह आभामंडल अर्थपूर्ण है। वह यह कह रहा है कि अब इनकी चमड़ी की जो आभा है, मन के द्वारा उस आभा को कोई खंडन नहीं हो रहा है, मन उसमें बाधा नहीं डाल रहा है। इनकी आभा जैसी होनी चाहिए वैसी है। इनके आसपास एक प्रकाश का वर्तुल है। जब साधारण प्रेम में आदमी के चेहरे पर आभा

आ जाती है, तो परमात्मा के प्रेम में तो आ ही जानी चाहिए। जब साधारण प्रेम से आदमी जवान हो जाता है, तो परमात्मा के प्रेम से तो सदा जवान रहना ही चाहिए।

इसलिए हमारी कथाओं में कोई उल्लेख नहीं है कि राम बूढ़े हुए, कि कृष्ण बूढ़े हुए, कि बुद्ध बूढ़े हुए। बूढ़े तो हुए, लेकिन तुमने बुद्ध की कोई बूढ़ी प्रतिमा देखी? तुमने राम की कोई बूढ़ी प्रतिमा देखी कि लकड़ी टेककर चल रहे हों?

बूढ़े तो निश्चित हुए होंगे, यह तो कोई सवाल नहीं है कि बूढ़े नहीं हुए। बुद्ध के संबंध में तो साफ उल्लेख हैं कि बूढ़े हुए, अस्सी साल के हुए, कृष्ण भी अस्सी-बयासी के हुए। लेकिन हमने कोई चित्र भी नहीं बनाया उनके बुढ़ापे का, क्योंकि हमने एक बात सम्हालकर रखनी चाही कि इनके भीतर कुछ ऐसा प्रेम घटा था, कि एक अर्थों में ये जवान ही रहे।

इसलिए हमारे पास बूढ़े कृष्ण की कोई कथा नहीं है। बूढ़े बुद्ध की कोई कथा नहीं है। बूढ़े महावीर की कोई कथा नहीं है। ये सब बूढ़े हुए, क्योंकि शरीर का धर्म है, बूढ़ा तो होगा ही। इन सबके बाल भी सफेद हुए होंगे, लेकिन तुमने कोई प्रतिमा देखी, या कोई चित्र देखा, जिसमें बुद्ध के बाल सफेद? नहीं, क्योंकि हमने बुढ़ापे को स्वीकार नहीं किया। हमने कहा, यह बात हो नहीं सकती। हो गयी है तो शरीर पर हो रही है, लेकिन इनकी आभा सदा जवान थी। हमने उस आभा पर ही ध्यान रखा। ये चिर युवा थे। इनकी चमड़ी पर बुढ़ापे ने कोई शिकन न डाली। इनका मन एक ऐसे शाश्वत जीवन से संयुक्त हो गया, जहां बुढ़ापा आता ही नहीं।

तुमने सुना है कभी कि देवदूत बूढ़े होते हैं? कि स्वर्ग की अप्सराएं बूढ़ी होती हैं? नहीं, वे सब जवान ही रहते हैं। वहां बुढ़ापा होता ही नहीं। अर्थ इसका सीधा-सादा है। एक ऐसी भी घटना है जब मन आत्मा से जुड़ जाता है। जब तक मन शरीर से जुड़ा है, तब तक तो सब होगा जो शरीर में हो रहा है। लेकिन जैसे ही मन आत्मा से जुड़ गया, शरीर में होता रहेगा, लेकिन मन में अब कुछ भी न होगा। और जब मन में कुछ न होगा, तो हमने सारी कथाएं तो उसी गहराई की लिखी हैं।

यह रोहिणी छवि रोग से पीड़ित हो गयी। अभिमानी रही होगी, मानी रही होगी। भाई बुद्ध का बड़ा भिक्षु है--अनिरुद्ध के भी पांच सौ शिष्य थे, अनिरुद्ध काफी महत्वपूर्ण शिष्यों में एक था--वह गांव में आया है, सारा गांव उसके दर्शन करने को आया है, सारा परिवार गया और रोहिणी नहीं गयी। तो सोचा होगा अनिरुद्ध ने कि बहन को क्या हुआ? आयी क्यों नहीं? खबर भिजवायी होगी। आयी भी तो पर्दा करके आयी। घूंघट बड़ा डाल लिया होगा। उसने पूछा कि मुझसे घूंघट! भाई से घूंघट! भिक्षु से घूंघट! यह बात क्या है, तेरा दिमाग तो खराब नहीं हो गया है! तो उसने सारी कथा कही। उसने कहा कि मैं छवि रोग से पीड़ित हूं। मेरी छवि विकृत हो गयी है। चेहरे पर फफोले पड़ गये हैं, चमड़ी कुरूप हो गयी है, और मैं इस चेहरे को तुम्हें न दिखाना चाहूंगी। मुझे बड़ी लज्जा आती है।

यह भी अहंकार है। लज्जा भी अहंकार की ही छाया है। लज्जा क्या, जैसा है वैसा है! लज्जा का अर्थ ही यह होता है कि जैसा होना चाहिए वैसा नहीं है। जैसा मैं चाहता, वैसा नहीं है। और जैसा है, वैसा मैं चाहता नहीं। वैसा मुझे स्वीकार नहीं, अंगीकार नहीं। लज्जा में ही विरोध है, जो तथ्य है उसका विरोध है। और सपना, और कल्पना, कोई होना चाहिए था वह नहीं है।

तो उसने कहा, मुझे बड़ी लज्जा आती है।

तुम आमतौर से सोचते हो कि लज्जालु व्यक्ति सज्जन होता है। वह भी अहंकारी होता है। लज्जा साधु को होती ही नहीं। इसीलिए तो मीरा ने कहा, सब लोक-लाज खोयी। परम साधु को कैसी लोक-लाज? लज्जा का तो अर्थ ही होता है कि अभी चल रही है भीतर अहंकार की धारणा।

पूरब में हम कहते हैं, हमारी स्त्रियां अत्यंत लज्जालु हैं। और लज्जा को हमने गुण माना है। पश्चिम की स्त्रियों में वैसी लज्जा नहीं है तो हम सोचते हैं, यह बात तो निर्लज्ज। इनमें कोई लज्जा नहीं है।

लेकिन इसे तुम समझना, लज्जा का मतलब अहंकार है। पूरब की स्त्रियां ज्यादा अहंकारी हैं। उन्हें अपने शील, सौंदर्य, चरित्र, सतीत्व का बड़ा गहन घमंड है। पश्चिम की स्त्री इस अर्थ में सीधी-सरल है। उसे कोई लज्जा नहीं है। अहंकार के ही साथ लज्जा आती है। वह अहंकार की ही सजावट है। अहंकार पर ही सोना मढ़ दिया।

तो हम खूब प्रशंसा करते हैं कि देखो, फलां आदमी कैसा लज्जालु है। हम बुरे आदमी को कहते हैं, बेशर्म; अच्छे आदमी को कहते हैं, शर्म वाला। फिर मीरा क्या कह रही है? सब लोक-लाज खोयी? सब शर्म खो दी?

सच्चा आदमी न तो बेशर्म होता है, न शर्म वाला होता है। सच्चा आदमी बस सच्चा होता है। उसमें कोई लज्जा नहीं होती और न निर्लज्ज होता है। निर्लज्ज होने की भी कोई जरूरत न रही, वह भी लज्जा का ही रूप है। वह भी लज्जा को तोड़ता है तब कोई निर्लज्ज होता है। लेकिन जिसके पास लज्जा है ही नहीं, वह तोड़ेगा क्या? बांस होगा तो बांसुरी बज सकती है, बांस ही न होगा तो बांसुरी कैसे बजेगी? एक ऐसी चित्त की दशा है, जो लज्जा-अतीत।

तो रोहिणी आयी भी तो चेहरे पर घूंघट डालकर आयी। दूसरों से तो आदमी लज्जा करता ही, अपनों से भी करता है--जितना अहंकार हो उतनी ही लज्जा बढ़ती चली जाती है। भाई को आयी थी मिलने! और भाई भी कोई साधारण भाई न था। बुद्ध के बड़े शिष्यों में एक था। पहुंचे हुए सिद्ध पुरुषों में एक था। पूछा भाई ने, क्या कारण? कहा, छवि रोग हुआ है। फिर भाई ने कुछ और न कहा उस संबंध में। उसने कहा, तू एक काम कर, इतने भिक्षु आए गांव में, इनकी सेवा में लग। एक बड़ा भवन बनाना है। ये दस हजार भिक्षु टिकेंगे कहां? वर्षा आती है करीब, इनको रहने का इंतजाम करना है, छप्पर लगवाना है।

उसके पास रुपए भी न थे। लेकिन भाई ने कभी कुछ इसके पहले कहा भी न था! मानिनी स्त्री रही होगी। सब जेवर-जवाहरात बेच दिए। यह मान पर चोट पड़ गयी होगी--यह भी कह न सकी कि मेरे पास रुपए भी नहीं हैं, इतना मैं कहां कर सकूंगी। किया, नहीं कर सकती थी तो भी किया। लेकिन करने में डूब गयी।

इस बात को ख्याल में रखना। तुम्हारे जीवन के श्रेष्ठतम क्षण वे ही होते हैं जब तुम अपने को भूल जाते हो, कुछ भी करने में भूल जाते हो। चित्रकार चित्र बनाने में भूल जाता है, या कि मूर्तिकार मूर्ति बनाने में भूल जाता है, या कि नर्तक नाचने में भूल जाता है, या कि गीतकार गीत में भूल जाता है। जब तुम भूल जाते हो, किसी भी क्षण जहां तुम्हें विस्मरण हो जाता है अपना, उसी घड़ी जीवन में परम क्षण उतर आता है। जहां तुम अपने को भूले, वहां अहंकार हट गया। एक घड़ी को बादल छंट गए, सूरज निकला, एक घड़ी को अंधेरा टूटा और रोशनी उतरी। एक घड़ी को वर्षा हो गयी तुम पर अमृत की।

इसलिए जीसस ने सेवा पर बहुत जोर दिया है। सेवा का यही अर्थ है, इतना ही अर्थ है कि तुम दूसरे में अपने को डुबा देना। तो तुम्हारे जीवन में थोड़ी देर को निरअहंकारिता की भावदशा पैदा होगी। उससे स्वाद लगेगा। और जब तुम्हें यह पता चल जाएगा कि क्षणभर को भूलने में इतना स्वाद आता है, इतनी मिठास, तो तुम फिर सदा के लिए यह अहंकार छोड़ देना चाहोगे। चाहोगे ही, यह तर्कयुक्त होगा। स्वाद लग जाए तो तुम

फिर चाहोगे कि पूरा ही स्वाद मिल जाए। जब अहंकार भुलाने में इतना रस है, तो अहंकार को बिल्कुल गिरा देने में कितना रस न होगा।

लग गयी काम में। खड़ी रहती होगी भरी धूप में। भूल ही गयी अपने रूप को। भूल ही गयी अपने मान को। भूल ही गयी अपनी बीमारी को। चिकित्सक भी कहते हैं कि जो आदमी अपनी बीमारी को नहीं भूल पाता, उसकी बीमारी ठीक होना असंभव है। इसीलिए अगर कोई आदमी बीमार है, तो जो पहली बात चिकित्सक चाहता है, वह यह कि वह किसी तरह सो जाए। बीमार आदमी अगर सोए न, तो इलाज हो नहीं सकता। क्योंकि वह भूलता ही नहीं, वह खरोद-खरोदकर बीमारी को देखता रहता है। तुम्हारे पेट में दर्द है, तो तुम बार-बार, बार-बार वहीं-वहीं जाते। तुम्हारे जाने से दर्द पर चोट पड़ती है और घाव बड़ा होता जाता है। तुम्हें भूलना जरूरी है।

मैंने सुना है, बर्नार्ड शा फोन किया अपने डाक्टर को कि मेरे हृदय में बड़ी तेज धड़कन है और बहुत घबड़ाहट है, ऐसा लगता है कि हार्ट अटैक... आप जल्दी आएं। कोई आधी रात की बात।

चिकित्सक आया, सीढ़ियां चढ़कर ऊपर आया, ऊपर आते ही से उसने एकदम से अपना बैग नीचे पटक दिया और आरामकुर्सी पर आंख बंद करके पड़ गया। बर्नार्ड शा ने कहा, क्या हुआ? उसने कहा, मालूम होता है--हार्ट अटैक। बूढ़ा चिकित्सक था।

बर्नार्ड शा तो भूल ही गया अपने हार्ट अटैक को, बिस्तर पर लेटा था, एकदम उठ आया, कि कहीं मर न जाए। हवा की, पंखा किया, पानी पिलाया, पूछा कि अब कैसी तबीयत है--कोई दस मिनट बाद। उसने कहा कि अब बिल्कुल ठीक है।

वह उठकर चलने लगा तो उसने कहा, मेरी फीस। तो बर्नार्ड शा ने कहा, काहे की फीस, फीस तो मुझे मांगनी चाहिए। उस डाक्टर ने कहा, मुझे कुछ हुआ नहीं कोई हार्ट अटैक वगैरह, यह तो तुम्हें तुम्हारी बीमारी भुलाने के लिए। अब देखो तुम भले-चंगे हो बिल्कुल, पहले बिस्तर पर पड़े थे।

तुम्हारे सामने किसी को हार्ट अटैक हो जाए तो तुम भूल ही जाओगे कि तुम्हें कुछ तकलीफ हो रही है। बर्नार्ड शा उठ गया, दस मिनट में भूल ही गया है सब अपनी बात।

अक्सर ऐसा हो जाता है कि जब भी तुम किसी दूसरे में लीन हो जाते हो, तुम अपने को भूल जाते हो। और बीमारी दूर ही तब होती है जब तुम अपने को भूल जाते हो। बीमारी अगर बचानी हो तो भूलना मत।

इसलिए कुछ लोग बीमारी को बचाने में बड़े कुशल होते हैं। वे भूलते ही नहीं, सुबह से सांझ तक बीमारी-बीमारी की बात करते हैं। जब मौका मिलेगा तब बीमारी की बात करेंगे। जो मिल जाएगा उससे बीमारी की बात करेंगे। ये जो हाइपोकांड्रियाक, इस तरह के जो लोग होते हैं, जो बीमारी में रस लेते हैं, इनको ठीक करने का कोई उपाय नहीं, कोई उपाय ही नहीं है। क्योंकि ये बीमारी को कुरेदते जाते हैं, ये घाव को सूखने नहीं देते, ये घाव को फिर-फिर खोल देते हैं।

महीनों लगे होंगे, गर्मी के दिन रहे होंगे--क्योंकि वर्षा के लिए बुद्ध आए थे--जल्दी ही वर्षा आने को होगी, अषाढ़ के दिन करीब आते होंगे, बादल घिरते होंगे, जल्दी छप्पर डलवा देना था, दस हजार भिक्षुओं का इंतजाम करना था रहने का, रोहिणी बिल्कुल भूल गयी होगी, डूब गयी होगी काम में। कथा प्यारी है, कहती है कि निन्यानबे प्रतिशत रोग दूर हो गया। फिर भी वह बुद्ध के पास न गयी। अभी भी एक प्रतिशत बचा था। जाती-जाती पूंछ बची होगी--हाथी निकल गया होगा, पूंछ बची होगी। आखिरी छाया बीमारी की चेहरे पर रही होगी।

फिर बुद्ध ने उसे बुलवाया और बुद्ध ने पूछा उससे कि जानती हो यह किस कारण हुआ है? उसने कहा, नहीं भंते।

अनिरुद्ध ने इलाज कर दिया बिना उसे बताए। अनिरुद्ध चिकित्सक रहा होगा। बिना कुछ कहे इलाज कर दिया। शायद कहने से गड़बड़ भी हो जाती। शायद कहने से सचेतन हो जाती रोहिणी, फिर शायद इतनी आसानी से इलाज न हो पाता। कई बार चिकित्सक को तुम्हें बिना बताए इलाज करना होता है।

तुमने देखा न, चिकित्सक जब प्रिस्क्रिप्शन लिखता है तो तुम पढ़ नहीं पाते, वह एकदम जरूरी है कि तुम न पढ़ पाओ। तुम पढ़ लो तो इलाज होने में मुश्किल पड़ जाए। क्योंकि कभी-कभी तो वह ऐसी चीजें लिखता है जो तुम जानते ही हो--इनमें रखा क्या है! तुम खुद ही जानते हो।

इसलिए एलोपैथी लैटिन और ग्रीक नाम चुनती है दवाइयों के। वह एकदम उचित है। अगर तुम्हारी ही भाषा में नाम हो तो तुम कहोगे, अरे! समझो कि अजवाइन का सत्व, वह लैटिन और ग्रीक में हो तो तुम जाकर पांच रुपया या दस रुपया दे आते हो केमिस्ट को, वह अगर हिंदी में हो, तुम दो आना देने को राजी न होओगे। और अजवाइन का सत्व! अजवाइन के सत्व से कहीं कोई ठीक हुआ है! यह तो बड़े-बूढ़े घर में कहते ही रहे हैं। यह पत्नी तुम्हारी कह ही रही थी कि अजवाइन ले लो, पेट में दर्द है, गैस है, फलां-ढिकां, अजवाइन ले लो। उसकी तो तुमने सुनी भी नहीं थी, अजवाइन ली भी थी तो कोई परिणाम भी नहीं हुआ था। लेकिन यह डाक्टर का नाम, बड़ी डिग्री, बड़ी तख्ती, बड़ी भीड़, इसके बैठकखाने में दो घंटे तक प्रतीक्षा, यह सब दवा का हिस्सा है। फिर इसका प्रिस्क्रिप्शन, इसकी लिखावट पढ़ने में नहीं आती... ।

मुल्ला नसरुद्दीन मुझसे कह रहा था कि डाक्टर ने जो मुझे प्रिस्क्रिप्शन दिया था, बड़ा काम आया। मैंने पूछा, क्या काम आया? उसने कहा, दवा तो उससे ले ही ली थी, दो महीने तक रेल में सफर किया बता-बताकर कि यह पास है। क्योंकि कोई उसको पढ़ नहीं सकता, तो वह चेकर भी कुछ कहे नहीं, कि ठीक है, झंझट मिटाओ। वह तो बड़े काम की चीज है, उसको जहां भी झंझट आती है मैं बता देता हूं एकदम। उसको कोई पढ़ तो सकता नहीं और कोई यह मानने को राजी है नहीं कि पढ़ नहीं सकता। इसलिए कहता है, बिल्कुल ठीक है, आगे बढ़ो।

तुम अगर उसको फिर से डाक्टर के पास ले जाओ तो शायद तुम्हारा डाक्टर भी उसे न पढ़ सके।

अनिरुद्ध ने ठीक ही किया कि कहा नहीं। चुपचाप एक प्रक्रिया बता दी।

मेरे पास लोग आते हैं, कोई कहता है, क्रोध से परेशान हैं। मैं कहता हूं, ठीक, क्रोध की तुम फिकर न करो, ध्यान करो। उनको अच्छा नहीं लगता। क्योंकि वे तो आए थे क्रोध के लिए और मैं कहता हूं, ध्यान करो। वे समझते हैं कि उनकी बीमारी को तो मैंने छुआ ही नहीं।

तुम्हारी क्रोध की बीमारी को छूने की जरूरत ही नहीं है। तुम अगर किसी तरह ध्यान में उतर जाओ, थोड़ी देर अपने को भूलने लगो, विस्मरण करने लगो नाच में, गीत में, गान में, ध्यान में, भक्ति में, भाव में, क्रोध की क्षमता अपने आप क्षीण हो जाएगी।

कोई आता है, कहता है, मुझमें बड़ा अहंकार है, प्रज्वलित, दग्ध अंगारे की तरह, क्या करूं, कैसे बुझाऊं? मैं कहता हूं, तुम ध्यान करो। उसको भी बात ठीक नहीं लगती। क्योंकि उसे लगता है कि वह तो इतनी बड़ी बीमारी लेकर आया और मैंने उसे ऐसे टाल दिया, कहा कि ध्यान करो। वह सोचता है, शायद मैंने टाल ही

दिया। और फिर उसे यह भी हैरानी होती है कि कोई भी बीमारी लेकर आओ, मैं कहता हूं, ध्यान करो! कहीं सब बीमारियों की एक दवा हो सकती है!

मैं तुमसे कहता हूं, हो सकती है। क्योंकि सब बीमारियों के पीछे एक मन है। और सब दवाओं के पीछे एक ध्यान है। ध्यान यानी मनरहित दशा। और तो क्या ध्यान का अर्थ होता है! ध्यान रामबाण है। उससे सब शत्रु मारे जाते हैं। क्योंकि शत्रु के नाम कुछ भी हों, सब मन के ही नाम हैं।

अनिरुद्ध ने ठीक ही किया कि रोहिणी को कहा कि तू जा, इस काम में लग जा। उसने उसकी बीमारी की चर्चा ही न उठायी, उसका विश्लेषण भी न किया। कभी-कभी विश्लेषण महंगा पड़ जाता है।

मनोचिकित्सक विश्लेषण करते हैं। तो बीमार को तीन-तीन, चार-चार साल, पांच-पांच साल लग जाते हैं। रोज जाओ, घंटेभर विश्लेषण चलता है। पांच साल मन का विश्लेषण चलता है, फिर भी कुछ खास परिणाम होते, ऐसा दिखायी नहीं पड़ता। विश्लेषण थोड़ा जरूरत से ज्यादा हो गया। निदान ही निदान चलता रहता है, औषधि का मौका ही नहीं आता। असली बात तो औषधि है। निदान तो चिकित्सक कर ले अपने भीतर, निदान की तुम्हें बताने की भी जरूरत नहीं।

अनिरुद्ध ने देख लिया होगा कि मामला क्या है। अनिरुद्ध की बहन थी, बचपन से जानता होगा कि इसका असली रोग क्या है। इसका असली रोग है रूप की आकांक्षा। इसका असली रोग है दंभ, घमंड। वही रोग इसे खाए जा रहा है। यह अपने को भुला नहीं पाती, यह अपनी देह को नहीं भुला पाती। उसने चुपचाप एक विधि दे दी।

यह काम ऐसा था कि कठिन था, पैसा था नहीं पास, गहने बेचने पड़ेंगे। और गहना अगर कोई सुंदर स्त्री बेचने को राजी हो जाए, तो उसने अपने सौंदर्य को सजाने का आधा काम तो बंद कर ही दिया। आखिर गहने का लोभ ही क्या था? गहने में अर्थ ही क्या था? वही अर्थ था कि ज्यादा सुंदर दिखे। हीरे-जवाहरात का सौंदर्य भी मेरे सौंदर्य में जुड़ जाए, और मुझे चमकाए, और दीप्तिवान करे।

अनिरुद्ध ने ऐसी तरकीब की कि सब गहने बिक गए। शायद कीमती साड़ियां भी बेच दी होंगी। तो उस रूप को सजाने का जो उपाय था, वह तोड़ दिया अनिरुद्ध ने, जड़ से काट दिया।

और फिर बड़ी बात यह की कि यह काम ऐसा था, जल्दी करना था, वर्षा आती थी, और बड़ा काम था, और यह रोहिणी बिल्कुल उलझ गयी होगी। सुबह से सांझ तक थकी-मांदी काम में लगी रहती होगी, रात बेहोश होकर पड़ जाती होगी, सुबह फिर भागकर जाती होगी। यह काम इतना बड़ा था, बुद्ध द्वार पर खड़े थे, वर्षा सिर पर आती थी, इतना बड़ा काम उसके ऊपर आ पड़ा था, उसे पूरा करके दिखलाना था। पुरानी मानिनी स्त्री थी, इतना बड़ा दायित्व मिला था, उसे पूरा करना ही है। इस सब में भूल गयी होगी।

तो बुद्ध ने--जब वह बुद्ध के पास गयी--तब बुद्ध ने कहा, जानती हो किस कारण हुआ? नहीं भंते।

हम रोग से पीड़ित हैं, और हम ही रोग के जन्मदाता हैं, और हमें पता भी नहीं कि कैसे हम रोग को पैदा करते हैं। अब तुम इलाज भी कर लो तो क्या होगा! अगर तुम रोग को पैदा करते ही चले जाओगे, तो कितना ही इलाज करो कुछ हल न होगा। एक हाथ से इलाज करोगे, दूसरे हाथ से रोग पैदा करोगे, तो कब अंतिम परिणाम आने वाला है? कभी नहीं।

लेकिन अब घड़ी आ गयी थी। अब एक प्रतिशत बीमारी बची थी। अब विश्लेषण किया जा सकता है। और इस सोयी हुई स्त्री को जगाया जा सकता है। बुद्ध ने यह मौके को देखकर कहा, रोहिणी, तेरे क्रोध के कारण। तेरा क्रोध ही तेरे रूप पर कुरूपता बन गया है।

तुमने कभी देखा कि सुंदर से सुंदर व्यक्ति भी जब क्रोध करता है तो कुरूप हो जाता है। काश, तुम्हें पता हो कि तुम कितने कुरूप हो जाते हो जब तुम क्रोध करते हो, और तुम कितने सुंदर हो जाते हो जब तुम प्रेम करते हो, तो शायद तुम इसी कारण क्रोध करना छोड़ दो।

कभी आईने के सामने खड़े होकर क्रोध की मुद्रा बनाना, क्रोध को जगाना, वीभत्स चेहरा खड़ा करना और देखना कि क्या हालत तुम्हारे चेहरे की हो जाती है। अपना चेहरा तो क्रोध में दिखता नहीं, इसलिए तुम्हें पता ही नहीं चलता कि क्रोध में जब तुम आते हो तो क्या तुम्हारी गति हो जाती है! कैसा नरक तुम्हारे चेहरे पर उतर आता है! कैसी हिंसा! कैसी हत्या! तुम कैसे पशुवत मालूम होने लगते हो! तुम्हारी आंखें खून से भर जाती हैं। तुम्हारी मुट्ठियां भिंच जाती हैं। तुम्हारे दांत पिसने लगते हैं। यह पशु की अवस्था है।

तुम्हें पता है न कि पशु जब क्रोध से भरता है तो दो ही काम कर सकता है--एक तो अपने नाखून, अंगुलियों से नोच सकता है, इसलिए मुट्ठियां भिंच जाती हैं; और दूसरा अपने दांतों से चीर-फाड़ कर सकता है। और तो कोई पशु के पास हथियार होते नहीं। आज भी आदमी जब क्रोध करता है, तो डार्विन सही है, यही सिद्ध करता है, तब तुम्हारी मुट्ठियां भिंचने लगती हैं। तुम एकदम नोचने को तैयार हो जाते हो। और तुम्हारे दांत काटने को तैयार हो जाते हैं। तुम गिर गए पशु-तल पर। तुम आदमी न रहे क्रोध के क्षण में। और स्वभावतः, उस अवस्था में अगर तुम्हारे चेहरे पर पाशविकता उभर आती है, एक हैवानी स्थिति बन जाती है, तो कुछ आश्चर्य नहीं।

काश, तुम देख सको अपने चेहरे को क्रोध में! लेकिन दूसरे देखते हैं। तुम दूसरों का देखते हो। अपना कोई भी नहीं देख पाता। अपना जो देखने लगे, वह धीरे-धीरे मुक्त हो जाता है। उसे होना ही पड़ेगा।

तो कभी-कभी आईने के सामने क्रोध में खड़े हो जाना। क्रोध को उभारना, एक कल्पना खड़ी करना, एक नाटक खेलना। अपने दुश्मन का स्मरण करना, जिसको तुम मार ही डालना चाहते हो, और सोचना कि मारने को बिल्कुल तत्पर हो गया हूं, अब मेरी कैसी चित्त की दशा होगी और मन कैसा होगा, आंखें कैसी होंगी, चेहरा कैसा होगा--और देखना अपनी कुरूपता। शायद तुम फिर कभी क्रोध न कर पाओ।

फिर कभी करुणा का भाव जगाकर भी देखना, क्योंकि क्रोध के विपरीत है करुणा। तब तुम अचानक पाओगे कि तुम्हारे चेहरे में बुद्धत्व उभर आता है। तुम्हारे चेहरे में छिपा हुआ बुद्ध प्रगट होने लगता है। तुम्हारे चेहरे में कुछ एक अपूर्व प्रसाद भी छिपा है। जैसा पशु छिपा है, वैसा परमात्मा भी छिपा है। जब तुम करुणा भरकर खड़े होओगे, तब तुम अचानक अपने भीतर परमात्मा को प्रगट होते पाओगे। उसकी तुम्हें जरा भी झलक मिल जाए तो तुम्हारे जीवन में क्रांति सुनिश्चित है।

बुद्ध ने कहा, तेरे क्रोध के कारण। यह अत्यंत क्रोध का फल है और इसीलिए देख कि करुणा से अपने आप दूर हो चला।

तू इन दीन-दरिद्र भिक्षुओं के लिए, भिखारियों के लिए, घर-विहीन अनागरिकों के लिए इतनी आतुरता से छप्पर डाल रही है, मकान बना रही है, इस करुणा के कारण यह रोग अपने से दूर हो गया है। क्रोध के कारण पैदा हुआ था, करुणा के कारण दूर हो गया। क्रोध के कारण जो बीमारी है, करुणा उसका इलाज है। हिंसा के कारण जो बीमारी है, प्रेम उसका इलाज है। अहंकार के कारण जो बीमारी है, विनम्रता उसका इलाज है।

लेकिन, बुद्ध ने कहा, पूरा दुख दूर नहीं हुआ। क्योंकि करुणा तेरी अभी जाग्रत करुणा नहीं। ऐसा तूने किया, लेकिन सोए-सोए किया। अभी इसमें भी थोड़ा अहंकार बचा है। थोड़ा सा अहंकार कि देखो, कितना बड़ा काम कर रही हूं। कोई नहीं कर सका कपिलवस्तु में, वह मैं कर रही हूं। अभी इसमें एक शुभ अहंकार, जिसको

कृष्णमूर्ति कहते हैं--पायस इगोइजम, एक पवित्र अहंकार। पर अहंकार तो अहंकार है, चाहे कितना ही पवित्र हो। जहर तो जहर है, चाहे कितना ही शुद्ध हो। असलियत तो बात यह है कि जितना शुद्ध हो उतना ही खतरनाक होगा। अशुद्ध जहर में उतना खतरा नहीं है।

मुल्ला नसरुद्दीन मरना चाहता था। जहर लाकर पीकर सो गया। सुबह बड़ा हैरान हुआ जब दूध वाले की आवाज सुनायी पड़ने लगी; उसने कहा, हद्द हो गयी, क्या यहां मरकर भी दूध वाले आते हैं! और जब उसका बेटा बस्ता लिए उसके पास से निकला, उसने धीरे से आंख खोलकर देखी; उसने कहा, हद्द हो गयी, क्या यह बेटा भी मेरे साथ ही आ गया और स्कूल जा रहा है! और जब उसने पत्नी की आवाज सुनी तब तो वह चौंककर बैठ गया, उसने कहा, यह नहीं हो सकता! क्योंकि जिससे बचने को मैं मर रहा था, अगर वह भी साथ आ गयी तो मरने का फायदा क्या! आंख खोलकर सब देखा तो अपना ही कमरा है। बड़ा नाराज हुआ, भागा गया दुकानदार के पास जिससे खरीदकर लाया था, कि क्या मामला है?

दुकानदार ने कहा, साहब, अब क्या करें? हर चीज में मिलावट है। शुद्ध जहर आजकल मिलता कहां है! यह कलियुग चल रहा है। सतयुग की छोड़ो, बड़े मियां। शुद्ध चीज मिलती कहां है!

अशुद्ध जहर उतना खतरनाक नहीं है। शुद्ध जहर की मात्रा थोड़ी भी होगी तो बहुत खतरनाक हो जाएगी। यद्यपि जहर इतना शुद्ध है कि अब शरीर पर उसके परिणाम नहीं पड़ रहे हैं, क्योंकि शरीर पर तो अशुद्ध चीज के परिणाम ज्यादा पड़ते हैं।

इसलिए तुम फर्क देखना, एक असात्विक अहंकारी का रोग शरीर पर प्रगट होने लगेगा, और सात्विक अहंकारी का रोग शरीर पर प्रगट नहीं होगा। उसको अगर देखना है तो तुम्हें जरा गहरी आंखों से खोजना होगा। वह भीतर होगा, बड़ा सूक्ष्म होगा। संसारी का अहंकार कोई भी पकड़ ले, संन्यासी का अहंकार पकड़ने के लिए आंखें चाहिए। भोगी का अहंकार कोई भी पकड़ ले, त्यागी का अहंकार पकड़ने के लिए आंखें चाहिए।

बुद्ध ने कहा कि देख, करुणा से लाभ तो हुआ, लेकिन अभी करुणा तेरी सोयी-सोयी, मूर्च्छित है, इसे जगा। जागकर कर, जो तू कर रही है। तेरा अहंकार सूक्ष्म होकर मौजूद है। अब इसे भी जाने दे। और तब उन्होंने ये गाथाएं कहीं--

कोधं जहे विप्पजहेय्य मानं सांंजनं सब्बमतिक्कमेय्य।
तं नामरूपस्मि असज्जमानं अकिंचनं नानुपातन्ति दुक्खा।।
यो वे उप्पतितं कोधं रथं भन्तं" व धारये।
तमहं सारथिं ब्रूमि रस्मिग्गाहो इतरो जनो।।
अक्कोधेन जिने कोधं असाधुं साधुना जिने।
जिने कदरियं दानेन सच्चेन अलिकवादिनं।।
सच्चं भणे न कुज्झेय्य दज्जाप्पस्मिम्पि याचितो।
एतेह तीहि ठानेहि गच्छे देवान सन्तिके।।

"क्रोध को छोड़े; अभिमान को त्याग दे; सारे संयोजनों के पार हो जाए। इस तरह नाम-रूप में आसक्त न होने वाले तथा अकिंचन पुरुष को दुख संतप्त नहीं करते।"

"जो चढ़े हुए क्रोध को भटक गए रथ की भांति रोक लेता है, उसी को मैं सारथी कहता हूं; दूसरे तो केवल लगाम थामने वाले हैं।"

"अक्रोध से क्रोध को जीते। असाधु को साधु से जीते। कृपण को दान से जीते। और झूठ बोलने वाले को सत्य से जीते।"

"सच बोले। क्रोध न करे। मांगने पर थोड़ा भी अवश्य दे। इन तीन बातों से मनुष्य देवताओं के पास पहुंचता है।"

ऐसी सूत्र में गाथाएं बुद्ध ने रोहिणी को कहीं। इनमें कुछ शब्द बड़े महत्वपूर्ण हैं, उनको अलग ख्याल में ले लें।

"क्रोध को छोड़े; अभिमान को त्याग दे; सारे संयोजनों के पार हो जाए।"

सारे संयोजनों के पार हो जाए। कल के लिए आयोजन बनाकर न जीए। सहज जीए। जो होगा कल, होगा। जैसा होगा वैसा होगा। हम तो मौजूद होंगे तो जो बन सकेगा कल, कल कर लेंगे। संयोजन न बनाए।

अहंकार बड़ी योजनाएं बनाता है। अहंकार कल के लिए बड़े सेतु बनाता है। अहंकार कल में ही जीता है। इसलिए जी ही नहीं पाता। कल और परसों, न केवल इस संसार में, बल्कि परलोक में भी विचार रखता है कि कैसा-कैसा इंतजाम करना है। क्या पुण्य करूं, क्या न करूं, ताकि परलोक में भी जगह परमात्मा के मकान के बिल्कुल बगल में मिले। यह जो संयोजन है, यह जो प्लानिंग है, इसको बुद्ध कहते हैं, यह बंधन है। सहज होकर जीए।

तुम्हारे सारे संयोजन काल्पनिक हैं। लियो तालस्ताय की मैं एक कहानी पढ़ रहा था। एक गरीब आदमी एक बगीचे में ककड़ियां चुराने घुसा। खूब ककड़ियां लगी थीं। अभी ककड़ियां उसने तोड़ी नहीं थीं, लेकिन ककड़ियों को देखकर उसका मन बड़ी कल्पनाओं से भर गया। उसने कहा कि आज तो गजब हो गया! सारी ककड़ियां ले जाऊंगा। बेचकर जो पैसा आएगा उससे मुर्गियां खरीद लूंगा। अंडे बेचूंगा। अंडों से जो पैसे मिलेंगे तो एक भैंस खरीद लूंगा। फिर दूध बेचूंगा, फिर दही बेचूंगा, फिर घी बेचूंगा, फिर पैसे आते जाएंगे, तो मैं भी इससे अगर दस गुना बगीचा लगाकर न दिखलाया तो मेरा नाम मेरा नाम नहीं। ककड़ियां ही ककड़ियां पैदा करूंगा।

और यह ध्यान रखना, उसके मन में ख्याल आया कि जिस तरह मैं चोरी करने आया हूं, कोई अगर चोरी करने आ गया तो? तो उसने कहा, ध्यान रखना, इस तरह का मेरे बगीचे में न चलेगा। अब वह सोचने लगा जोर-जोर से कि यह भी हो सकता है, चोरी हो जाए। उसने कहा, इस तरह मेरे बगीचे में न चलेगा, एक पहरेदार रख दूंगा। और रख ही नहीं दूंगा पहरेदार, क्योंकि पहरेदारों का आजकल क्या भरोसा, खुद ही मिल जाएं चोरों से, तो बीच-बीच में जाकर चिल्लाकर आवाज देता रहूंगा--सावधान, होशियार रहना। इतने जोर से निकल गयी यह बात--सावधान, होशियार रहना--कि वह माली आ गया भागकर, यह पकड़े गए बुरी तरह। ककड़ी अभी तोड़ी भी न थी! संयोजन बहुत कर लिया। संयोजन जरूरत से ज्यादा हो गया।

संयोजन में जीता है संसारी मन। संयोजन के बिना जीता है संन्यासी मन। संन्यास यानी सहज होकर जीना।

"जो चढ़े हुए क्रोध को भटक गए रथ की भांति रोक लेता है, उसी को मैं सारथी कहता हूं।"

बुद्ध कहते हैं, क्रोध न आया, क्रोध की परिस्थिति न बनी और तुमने क्रोध न किया, यह थोड़े ही कोई गुण है। किसी ने गाली न दी तो तुमने क्रोध न किया, किसी ने बुरा-भला न कहा तो तुमने क्रोध नहीं किया, तो यह थोड़े ही कोई गुण है।

"चढ़े हुए क्रोध को जो भटक गए रथ की भांति रोक लेता है, उसी को मैं सारथी कहता हूं।"

किसी ने गाली दी और तुमने क्रोध न किया, किसी ने जूता फेंक दिया और तुमने क्रोध न किया... ।

"जो चढ़े हुए क्रोध को भटक गए रथ की भांति रोक लेता है, उसी को मैं सारथी कहता हूं, दूसरे तो केवल लगाम थामने वाले हैं।"

कभी-कभी ऐसा होता है न, तुम्हारा छोटा बेटा भी रथ में बैठा हो और लगाम थाम लेता है। अब रथ तो चले गए, कभी-कभी तुम्हारी कार में बैठा हो, तो स्टीयरिंग व्हील सम्हाल लेता है। हालांकि तुम बिल्कुल नहीं छोड़ देते, तुम पकड़े रहते हो, हिसाब रखते हो, मगर वह थामकर बड़ा मजा लेने लगता है। मगर वह सिर्फ लगाम थामने वाला है। अड़चन आ जाएगी तो उससे कुछ गाड़ी सम्हलने वाली नहीं है। सम्हालनी तुम्हें ही पड़ेगी। वह कोई सारथी नहीं है।

तो बुद्ध कहते हैं, "क्रोध को अक्रोध से जीते, असाधु को साधु से जीते।"

हमारे भीतर क्रोध पड़ा है, उसे अक्रोध से जीतना है। और हमारे भीतर असाधु पड़ा है, उसे साधु से जीतना है। और हमारे भीतर कृपणता पड़ी है, उसे दान से जीतना है। और हमारे भीतर झूठ पड़ा है, उसे सच से जीतना है।

ऐसा जो करने में सफल हो जाए, वह मनुष्य देवताओं के पास पहुंच जाता है। वह मनुष्य देवता हो जाता है। उस मनुष्य के भीतर भगवत्ता प्रगट होने लगती है।

दूसरी कथा--

राजगृह के श्रेष्ठी की पूर्णा नामक एक दासी थी। एक रात वह धान कूटती हुई पसीने से भीगकर बाहर आकर खड़ी हो गयी। आधी रात, थकी-मांदी, अपने प्रेमी की प्रतीक्षा कर रही थी। प्रेमी को आता न देख बड़ी दुखी भी होने लगी। थकी-मांदी भी थी और कामातुर भी। प्रेमी को आता न देख स्वाभाविक था कि उसके मन में दुख पैदा हो। दिनभर धान कूटती रही इसी आशा में कि रात प्रेमी आएगा। चिंता के कारण सो भी न सकती थी। दो-चार बार बिस्तर पर भी गयी, फिर लौट-लौट बाहर आ गयी कि कहीं ऐसा न हो कि मैं नींद में सो जाऊं और प्रेमी आए और द्वार पर दस्तक दे और मुझे सुनायी भी न पड़े। थकी-मांदी इतनी हूं कि अगर डूब गयी नींद में तो दस्तक सुनायी न पड़ेगी। तो बार-बार लौटकर बाहर आ जाती है।

तभी उसने देखा कि पास के आम्रकुंज में, जहां बुद्ध का निवास था, जहां बुद्ध ठहरे थे, जहां बुद्ध का विहार चल रहा था और उनके हजारों भिक्षु ठहरे हुए थे, उसने देखा, अनेक भिक्षु शांत बैठे हैं, अनेक भिक्षु खड़े हैं, अनेक भिक्षु चल-फिर रहे हैं। उसे बड़ी हैरानी हुई। उसने सोचा, इतनी रात गए ये भिक्षु यहां क्या कर रहे हैं? क्यों जाग रहे हैं? उसने सोचा, मैं तो धान कूटती हुई जागी हूं, ये क्यों जाग रहे हैं? ये क्या कूट रहे हैं? और उसने सोचा, मैं तो अपने प्रेमी की प्रतीक्षा करती जागी हूं, ये किसकी प्रतीक्षा कर रहे हैं? फिर हंसी और अपने आप ही बोली, अरे, सब भ्रष्ट हैं, ढोंगी हैं, पाखंडी हैं। ये भी अपने प्रेमियों और प्रेयसियों की प्रतीक्षा कर रहे होंगे। अन्यथा आधी रात को जागने का क्या प्रयोजन है?

दूसरे दिन सुबह भगवान उसके द्वार पर भिक्षाटन के लिए गए। वह तो बहुत चौंकी। भगवान को वह इनकार करना चाहकर भी इनकार न कर सकी। पाखंडियों का ही गुरु है, तो होना तो पाखंडी ही चाहिए। इनकार तो करना चाहती थी, लेकिन सामने खड़े हुए इस शांतमुद्रा व्यक्ति को इनकार कर भी न सकी। तो उसने भगवान को किसी तरह भोजन कराया। भोजनोपरांत भगवान ने उससे कहा, पूर्णे, क्यों तू मेरे भिक्षुओं की निंदा

करती है? उसे तो भरोसा न आया, क्योंकि उसने यह बात किसी से कही न थी। वह बोली, भंते, निंदा! मैं तो नहीं करती, मैंने कब की निंदा? भगवान ने कहा, रात की सोच, रात तूने क्या सोचा था?

पूर्णा बहुत शर्मिंदा हुई और फिर उसने सारी बात कह सुनायी। शास्ता ने उससे कहा, पूर्णे, तू अपने दुख से नहीं सोयी थी, मेरे भिक्षु अपने आनंद के कारण जागते थे। तू विचारों-विकारों के कारण नहीं सोती थी, मेरे भिक्षु ध्यान कर रहे थे, निर्विचार के कारण नहीं सोते थे। नींद और नींद में भेद है पूर्णे, और जागरण और जागरण में भी। यह नया जागना सीख, पागल, पुराना जागना कुछ बहुत जागना नहीं है। सोए-सोए तो सब गंवाया ही गंवाया, अब कुछ कमा भी ले। और तब उन्होंने यह गाथा कही--

सदा जागरमानानं अहोरत्तानुसिक्खिनं।
निब्बानं अधिमुत्तानं अत्थं गच्छन्ति आसवा।।

"जो सदा जागरूक रहते हैं और दिन-रात सीखते रहते हैं तथा निर्वाण ही जिनका एकमात्र उद्देश्य है, उनके ही आश्रव नष्ट होते हैं।"

पहले तो इस कथा को ठीक से समझ लें।

पहली बात, हम दूसरों के संबंध में वही सोचते हैं जो हम अपने संबंध में जानते हैं। स्वाभाविक भी है। और तो हमारे पास नापने का कोई मापदंड भी नहीं। तो चोर सारे संसार को चोर की तरह देखता है। और साधु खोजता भी है तो असाधु को नहीं खोज पाता। क्रोधी सारे संसार में क्रोधी ही देखता है और बेईमान बेईमान ही देखता है। क्योंकि हम जो देखते हैं, वह हमारे दृष्टिकोण का ही प्रतिफलन है।

ऐसा समझो कि जैसे जगत तो दर्पण है, हम अपना ही चेहरा देख लेते हैं। हर चेहरे में अपना ही चेहरा देख लेते हैं। दूसरे का चेहरा देखने की कुशलता, दूसरे का चेहरा जैसा है वैसा देखने की कुशलता तो केवल जागरूक पुरुषों में हो सकती है। सोए-सोए, नींद से भरे, बेहोश हम देखना भी चाहें दूसरे का चेहरा तो हम देख नहीं सकते। हमारी आंखें धारणाओं से बंधी हैं। और हमारी आंखों पर बड़ा धुआं है।

अब यह स्त्री अपने प्रेमी की कामातुर होकर प्रतीक्षा कर रही है। यह जानती है कि आधी रात जागने का क्या कारण है। ये भिक्षु क्यों जाग रहे हैं? इसे तो कभी सपने में भी ख्याल न आया होगा कि जागने का कोई और कारण भी हो सकता है। ये क्यों जाग रहे हैं? ये भी जरूर मेरी तरह किसी उलझन में पड़े हैं, सो नहीं पा रहे, इनको भी कोई चिंता पकड़े हुए है। कोई बेचैनी इनके ऊपर भी सवार है। कोई भूत इन्हें भी सता रहा है, जैसे मुझे सता रहा है। तो सोचा उसने, ये सब पाखंडी, अरे ढोंगी, भ्रष्ट!

ख्याल रखना, जब तुम दूसरे के संबंध में कोई निर्णय लो तो तुम अपने संबंध में खबर देते हो। तुम जो निर्णय दूसरे के संबंध में लेते हो, वह दूसरे के संबंध में सही हो न हो, तुम्हारे संबंध में निश्चित ही सही होता है। दूसरे के संबंध में निर्णय लेने से सावधान रहना। लेना ही मत।

इसलिए जीसस ने कहा, जज यी नाट, दूसरे के संबंध में न्यायाधीश ही मत बनो।

तुम हो कौन! दूसरे के भीतर क्या घट रहा है, तुम्हें कहां पता! तुम्हें अपने भीतर क्या घट रहा है, इसका भी पता नहीं चलता है। तुम अपने ही भीतर नहीं गए, तुम दूसरों के भीतर जाने की बात ही मत सोचो।

मगर यह होता है। जहां हम हैं, उससे ऊपर हम किसी को मान नहीं सकते। इससे अहंकार को बड़ी चोट लगती है। यह पूर्णा दासी है, यह कैसे मान सकती है कि इससे ऊपर भी कोई मनुष्य का रूप हो सकता है। आधी

रात को लोग ध्यान भी करने के लिए जाग सकते हैं, यह तो बात ही उठती नहीं। ध्यान करने! ध्यान तो उसने कभी किया नहीं। यह ध्यान शब्द तो कोरा है, इसमें तो कुछ अर्थ नहीं।

यहां लोग आ जाते हैं, वे लोगों को यहां ध्यान करते देखते हैं संन्यासियों को, उन्हें भरोसा नहीं आता। वे सोचते हैं, ये सब पागल हो गए। स्वाभाविक। पागल ही हो गए होंगे, क्योंकि उन्होंने तो ऐसा कभी किया नहीं। एक बात पक्की है कि वे जानते हैं, ऐसा वे तभी करेंगे जब पागल हो जाएंगे, इसलिए वे सोचते हैं कि ये पागल हो गए हैं। इस निर्णय में वे अपने संबंध में सूचना दे रहे हैं। यह तो वे मान ही नहीं सकते कि लोग किसी आनंद में डूबकर रसलीन होकर नाच रहे हैं। वे तो यही मान सकते हैं कि किसी ने सम्मोहित कर लिया होगा, हिप्नोटाइज कर दिया होगा। बेचारे! उनको बड़ी दया आती है।

फिर वे यह भी नहीं मान सकते कि मनुष्य उनसे ऊपर जा सकता है, कोई भी मनुष्य उनके ऊपर जा सकता है। इसलिए जब भी उनको खबर मिलती है, कोई मनुष्य ऊपर गया, वे तत्क्षण उसकी निंदा में तत्पर हो जाते हैं। निंदा के द्वारा वे अपने अहंकार की सुरक्षा करते हैं। निंदा के द्वारा वे उस मनुष्य को नीचे ले आते हैं। अपने से जब तक नीचे न ले आएं, तब तक उन्हें चैन नहीं, बेचैनी रहती है। कोई उनसे आगे निकल गया! यह तो बर्दाश्त के बाहर है। वे ही श्रेष्ठतम हैं, दूसरे उनसे निकृष्ट ही हो सकते हैं, उनसे पीछे ही हो सकते हैं।

तो यह दासी सोचने लगी, सब पाखंडी, सब ढोंगी। ये रात जागकर क्या कर रहे हैं?

दूसरे दिन भगवान ने उसके द्वार पर भिक्षाटन के लिए आकर आवाज दी। तो वह बहुत हैरान हुई। रात ही तो उसने सोचा था और यह पाखंडियों का गुरु दरवाजे पर खड़ा है! इनकार करना भी चाहा, लेकिन इनकार न कर सकी। कभी ऐसे क्षण आते हैं जीवन में जब तुम्हारे अहंकार से निकली हुई आवाज किसी के व्यक्तित्व के प्रभाव में क्षीण पड़ जाती है, दब जाती है, टूट जाती है। चाहती तो यह यही थी कहना कि हट जाओ, कहीं और जाओ, कहीं और मांगो, मैं इस पाखंड में सम्मिलित नहीं होना चाहती। मैं क्यों दूं? मगर बुद्ध की मौजूदगी, उनका वह सौम्य रूप, उनका वह समत्व, उनका वह प्रसाद, उनके चारों तरफ बरसती हुई करुणा, वह अपने बावजूद देने को मजबूर हो गयी। उसने सोचा कि दे ही दो। चुपचाप विदा कर दो, कौन झंझट करे! कहीं-कहीं उसे लगने लगा कि शायद आदमी ठीक हो ही।

उसी व्यक्ति को तुम गुरु जानना, जो तुम्हारे बावजूद तुम्हें ठीक लगने लगे। गुरु का इतना ही अर्थ होता है कि तुम तो इनकार ही करना चाहते थे, लेकिन इनकार कर न पाए। तुम्हारा पूरा मन कहता था कि भागो यहां से, यह भी कहां की बातों में पड़ गए हो, लेकिन फिर किसी चीज ने अटका लिया। उलझ गए, रुक गए। भागना चाहकर न भाग सके। ऐसा कोई व्यक्ति मिल जाए तो जानना कि गुरु मिल गया है, जिससे भागकर भी न भाग सके। जिससे छुड़ाने की अपने को सब चेष्टा की और सब चेष्टा व्यर्थ हो गयी। जिसके विरोध में सब सोचा, लेकिन कुछ काम न आया। सब सोचा-विचारा टूट-टूट गया और जिसकी धारा तुम्हें खींचती ही गयी, बुलाती ही गयी। जिसकी आवाज तुम्हारे भीतर के कोलाहल को पार करके तुम्हारे भीतर आंतरिक केंद्र तक पहुंचने लगी। तुम्हारे कोलाहल को पार करके भी जिसका स्वर-संगीत सुनायी पड़ने लगा--यद्यपि कठिनाई से, क्योंकि कोलाहल है, लेकिन जिसका संगीत सुनने को मजबूर होना पड़ा। जिसके चरणों में तुम अपने बावजूद झुके, वही गुरु है।

जिसके चरणों में तुम सरलता से झुक गए, तुम्हें कोई अड़चन न आयी, वह कोई गुरु नहीं है। वह तुम्हारी मान्यताओं का परिपोषक होगा। वह तुम्हारी धारणाओं का परिपोषक होगा। वह पुजारी होगा, पंडित होगा, लेकिन गुरु नहीं। तुम जैसा मानते थे वैसा ही वह भी मानता है, तो तुम झुक गए। तुमसे ज्यादा जानता है,

लेकिन तुमसे ज्यादा उसका अस्तित्व नहीं है। शास्त्र उसने ज्यादा पढ़े हैं, तर्क ज्यादा है, बुद्धिमान ज्यादा है, मगर है वहीं जहां तुम हो और तुम जैसा ही है।

मुसलमान मौलवी के सामने झुक जाता है। हिंदू ब्राह्मण के सामने झुक जाता है। जैन जैन-मुनि के सामने झुक जाता है। यह झुकना कोई गुरु का पा लेना नहीं है। गुरु की तो पहचान ही यही है, जिसके सामने तुम्हें अपने बावजूद झुकना पड़े। तुम नहीं झुकना चाहते थे, लेकिन अवश, कोई झुका गया। एक झोंका आया और तुम्हें झुक जाना पड़ा।

पूर्णा ने किसी तरह भोजन कराया। भोजनोपरांत भगवान ने उससे कहा, पूर्णे, क्यों तू मेरे भिक्षुओं की निंदा करती है? वह बोली, भंते, मैं और निंदा! नहीं-नहीं, कभी नहीं। मैं क्यों निंदा करूंगी? भगवान ने कहा, रात की सोच। रात तूने क्या सोचा था? पूर्णा शर्मिंदा हुई और फिर उसने सारी बात कह सुनायी। शास्ता ने उससे कहा, पूर्णा, तू अपने दुख से नहीं सोती थी, मेरे भिक्षु आनंद के कारण जागते थे।

तुम्हें पता है कि कभी-कभी दुख की उत्तेजना में तुम नहीं सो पाते और कभी-कभी आनंद की उत्तेजना--अगर तुम्हारे जीवन में एकाध क्षण भी ऐसा आया है कि जब तुम आनंदित थे, पुलकित थे, तो क्या तुमने नहीं पाया है कि नींद असंभव हो गयी? जो आनंदित है, वह सोना भूल जाएगा। जो दुखी है, वह सोना चाहे भी तो भी सो न सकेगा; और जो आनंदित है, वह सोना भूल जाएगा।

इसलिए संन्यासी की धीरे-धीरे नींद कम होती जाती है। कम करने को मैं नहीं कहता हूं। मैं तुमसे कहता नहीं कि तुम नींद कम कर लेना। लेकिन संन्यासी की नींद धीरे-धीरे कम होती जाती है। कृष्ण तो कहते हैं कि योगी जागता ही रहता है, जब सारा संसार सोया होता है। नींद की जरूरत धीरे-धीरे कम हो जाती है। जैसे-जैसे तुम्हारे भीतर की चेतना जागरूक होने लगती है, वैसे-वैसे शरीर सो भी जाए तो भी तुम नहीं सोते हो। और आधी रात से बेहतर समय ध्यान के लिए कोई हो नहीं सकता। क्योंकि संसार का कोलाहल हट गया, उपद्रवी सब सो गए, सब राजनीतिज्ञ गहरी नींद में पड़ गए, अब न कहीं कोई चुनाव चल रहा है, न कहीं कोई उपद्रव है, न कोई शोर-शराबा है, कुछ भी नहीं है, सब सन्नाटा हो गया है। तो आधी रात से ज्यादा सुंदर कोई क्षण नहीं है। यह पृथ्वी सो जाती है। पौधे सो जाते, पक्षी सो जाते। उस सन्नाटे में जागने की बड़ी सुविधा है।

तो कुछ भिक्षुओं को उसने देखा बैठे हैं, लेकिन जागे हुए हैं। कुछ धीरे-धीरे चल रहे हैं। कुछ खड़े हैं। ये क्या कर रहे हैं? इनका दिमाग खराब हो गया? संसारी जागता है, ठीक--चिंता, बेचैनी--इनको क्या हो रहा है? अरे, सब भ्रष्ट हैं!

बुद्ध ने उससे कहा, तू अपने दुख से नहीं सोती थी, ये भिक्षु अपने आनंद के कारण जागते थे। तू विचारों में डूबी थी, चिंताओं में, विकारों में, ये ध्यान में डूबे थे। ध्यान में नींद कहां! नींद और नींद में भेद है, पूर्णे।

जब ध्यानी सोता है, तो भी सोता नहीं, और तुम तो जागते भी हो तो क्या खाक जागते हो।

और जागरण और जागरण में भी भेद है, पूर्णे। अब तू नया जागरण सीख।

आखिर बुद्ध ने इतनी करुणा क्यों की इस स्त्री पर? ऐसा इसका कुछ पुण्य तो नहीं था। निंदा ही की थी न! प्रश्न उठेगा, क्यों बुद्ध इसके द्वार गए? क्या उस नगर में कोई और द्वार न था? लेकिन तुम्हें एक मनोविज्ञान की बात स्मरण दिला देनी जरूरी है, जिसके मन में निंदा उठी है, उससे संबंध जुड़ गया। जिसने इतना भी कहा है कि ये भिक्षु पाखंडी हैं, उसने कुछ तो रस लिया। और जिसके मन में घृणा है, उसके मन में प्रेम पैदा किया जा सकता है। लेकिन जिनके मन में घृणा भी नहीं है, उपेक्षा है, उनके मन में प्रेम कभी पैदा नहीं किया जा सकता।

मैं भी तीन तरह के लोगों को जानता हूं। एक, जिनके मन में मेरे प्रति प्रेम है, स्वभावतः उनको बड़ा सहारा दिया जा सकता है। एक, जो मुझसे नाराज हैं, जिनके मन में मेरे प्रति विरोध है, घृणा है, उनको भी सम्हाला जा सकता है। और तीसरे वे, जिनको उपेक्षा है। जिनको कुछ लेना-देना नहीं। उनके साथ कुछ भी नहीं किया जा सकता।

बुद्ध का जाना सूचक है। इस स्त्री ने कम से कम घृणा तो जाहिर की। इसने कुछ तो किया। अगर इसने उपेक्षा की होती तो बुद्ध ने द्वार पर दस्तक न दी होती। इसने इतना तो श्रम उठाया कि कहा कि सब पाखंडी। जरूरी है कि इसको जाकर कहा जाए कि सब पाखंडी नहीं हैं। जरूरी है कि इसे जगाया जाए। यह जाग सकती है।

एक यहूदी फकीर ने किताब लिखी और जो यहूदियों का सबसे बड़ा धर्मगुरु था उसके पास भेजी। जिसके हाथ भेजी, उससे कहा, एक बात ख्याल रखना, वह जो भी कहे, ख्याल रखना और आकर मुझे बता देना।

वह युवक गया किताब लेकर। वह फकीर की किताब थी, फकीर से धर्मगुरु नाराज था--धर्मगुरु फकीरों से सदा नाराज रहे।

उस धर्मगुरु ने जैसे ही देखा कि किताब फकीर की है, उसने उसे उठाकर दरवाजे के बाहर फेंक दिया। उसने कहा, हटाओ, इस किताब को भीतर मत लाओ, क्या मेरे घर को अपवित्र करना है? लेकिन उस धर्मगुरु की पत्नी ने कहा, ऐसी भी क्या बात, हजारों किताबें अपने घर में हैं, यह भी रखी रहती। और अगर फेंकना ही था तो इस आदमी के जाने के बाद फेंक सकते थे। नहीं पढ़ना था तो नहीं पढ़ते, कितनी किताबें पड़ी हैं जो तुमने कभी नहीं पढ़ीं, यह भी पड़ी रहती। मगर ऐसा असदव्यवहार करने की क्या जरूरत?

उस युवक ने यह सब बात सुनी, वह लौटा। फकीर को उसने कहा कि धर्मगुरु ने तो किताब एकदम फेंक दी, एकदम आगबबूला हो गया, मुझे ऐसा लगा कि मुझ पर हमला न कर बैठे, जैसे हाथ में अंगारा रख दिया हो। लेकिन उसकी पत्नी बड़ी भली है। उसने कहा कि ऐसा न करो, किताब रख दो घर में, इतनी किताबें हैं, न पढ़नी हो मत पढ़ना, कितनी तो हैं जो तुमने कभी नहीं पढ़ीं, और अगर फेंकना ही हो तो पीछे फेंक देना, ऐसा असदव्यवहार क्यों करते हो?

वह फकीर उस युवक से बोला, नासमझ, उस धर्मगुरु को तो मैं किसी न किसी दिन बदल लूंगा, लेकिन उसकी पत्नी को बदलना असंभव है। उसकी पत्नी में उपेक्षा है। वह कहती है, पड़ी रहने दो, एक कोने में पड़ी रहेगी, क्या हर्जा है। इतनी किताबें पड़ी हैं, यह भी पड़ी रहेगी। और फेंकना हो तो पीछे फेंक देना। इतनी गरमागरमी क्या! फकीर कहने लगा, ध्यान रख, उस धर्मगुरु को तो मैं बदल लूंगा, वह तो मेरे पीछे आज नहीं कल आ जाएगा--इतनी गरमागरमी है न! इतनी गरम नाराजगी है! तो यही नाराजगी प्रेम भी बन सकती है। शत्रु मित्र बन सकता है, मित्र शत्रु बन सकते हैं। लेकिन जो तटस्थ हैं, वे न तो मित्र बनते हैं न शत्रु बनते हैं।

बुद्ध उसके द्वार पर इसलिए गए। और यह अपूर्व गाथा उन्होंने कही--

"जो सदा जागरूक रहते हैं और दिन-रात सीखते रहते हैं तथा निर्वाण ही जिनका एकमात्र उद्देश्य है, उनके ही आश्रव नष्ट होते हैं।"

उनके ही पाप नष्ट होते हैं, उनका ही अंधेरा टूटता है, उनका ही अज्ञान गिरता है।

"जो सदा जागरूक... ।"

सदा जागरमानानं... ।

"और जो दिन-रात सीखते रहते हैं... ।"

जिनका शिष्यत्व पूर्ण है, जो सीखने में चूकते ही नहीं, दिन हो कि रात, सुबह हो कि सांझ, अपना हो कि पराया, शत्रु हो कि मित्र, कोई घृणा करे कि प्रेम, कोई गाली दे कि सम्मान, जो सीखते ही रहते हैं, जो हर चीज को अपने लिए शिक्षण में बदल लेने की कला जानते; उसी का नाम तो शिष्य है। मैंने तुमसे कहा, गुरु वह जिसके सामने तुम्हें विवश, अपने बावजूद झुकना पड़े; और शिष्य वह जो हर स्थिति में सीख ले। ऐसी कोई स्थिति न हो जिसमें वह कहे, इसमें सीखने को कुछ भी नहीं है। ऐसी स्थिति होती ही नहीं। सभी स्थितियों में सीखा जा सकता है।

अहोरत्तानुसिक्खिनं।

दिन हो कि रात, सफलता हो कि असफलता, जय हो कि पराजय, जन्म हो कि मृत्यु--

अहोरत्तानुसिक्खिनं।

हर स्थिति में जो सीखता रहे, जागा हुआ रहे।

"निर्वाण ही जिसका एकमात्र उद्देश्य है।"

जो किसी भी तरह हो, शरीर और मन की सीमाओं से मुक्त होकर आत्मा के विशाल आकाश में लीन हो जाना चाहता है, जो अपनी बूंद को सागर में गिराने को उत्सुक है, ऐसा ही व्यक्ति अंधेरे के पार जाता है।

और आखिरी सूत्र--प्यारी घटना है।

श्रावस्ती का अतुल नामक एक व्यक्ति पांच सौ और व्यक्तियों के साथ भगवान के संघ में धर्मश्रवण के लिए गया। वह क्रमशः स्थविर रेवत, स्थविर सारिपुत्र और आयुष्मान आनंद के पास जा फिर भगवान के पास पहुंचा।

ऐसी ही व्यवस्था थी। बुद्ध के जो बड़े शिष्य थे, पहले लोग उनको सुनें, समझें, कुछ थोड़ी पकड़ आ जाए, कुछ थोड़ा समझ आ जाए तो फिर भगवान को वे जाकर पूछ लें।

भगवान से उसने कहा, भंते, मैं इतनी प्रबल आशा से धर्मश्रवण के लिए आया था, लेकिन रेवत स्थविर कुछ बोले ही नहीं, चुपचाप बैठे रहे। यह कोई बात हुई! मैं अकेला भी नहीं, पांच सौ लोगों के साथ आया था। हम दूर से यात्रा करके आए थे। बड़ा नाम सुना था रेवत का कि ज्ञान को उपलब्ध हो गए हैं, आपके बड़े शिष्य हैं। यह क्या बात हुई, हम बैठे रहे और वे चुपचाप बैठे रहे, कुछ बोले नहीं! यह तो बात कुछ जंची नहीं।

फिर हम सारिपुत्र के पास गए। सारिपुत्र बोले, लेकिन इतना बोले कि सब हमारे सिर पर से बह गया। जरूरत से ज्यादा बोल गए। और ऐसी सूक्ष्म-सूक्ष्म बातें कहीं कि हमारी पकड़ में ही न आयीं। ऐसी हालत आ गयी कि बैठे-बैठे ऊब आने लगी, उबकाई आने लगी, झपकी लग गयी, कई बार तो सो भी गए। यह भी कोई बात हुई, भगवान! इतना बोलना चाहिए! इस तरह सूक्ष्मता की बातें कहनी चाहिए! हमारी समझ में जो पड़े, वह कहो और जितना समझ में पड़े, उतना कहो। तुमने इतना ज्यादा कह दिया कि जो थोड़ा-बहुत समझ में पड़ता, वह भी बह गया तुम्हारे पूर में। यह सारिपुत्र तो पूर की तरह मालूम होते हैं, बा.ढ़ आ गयी। एक चुपचाप बैठे रहे, उनसे एक बूंद न मिली! एक सज्जन थे कि ऐसे बरसे मूसलाधार कि कुछ हाथ न लगा!

और फिर हम उन्हें सुनने के बाद आनंद स्थविर के पास गए। उन्होंने बहुत थोड़ा कहा। अत्यंत सूत्ररूप, जो कुछ पकड़ में आया नहीं। यह भी कुछ बात हुई, भगवान! अरे, कुछ फैलाकर कहो, समझाकर कहो, कुछ दृष्टांत से कहो, कुछ दोहराकर कहो कि हमारी समझ में पड़ जाए। सूत्ररूप दोहरा दिया! तो सूत्र तो बड़े कठिन हैं--बीजरूप, हमारी पकड़ में न आए। अब हम आपके पास आए हैं। हम तो उनके पास से क्रुद्ध होकर लौटे हैं।

भगवान ने अतुल की बात सुनी, हंसे और बोले, अतुल, यह प्राचीन समय से होता आ रहा है। मौन रहने वाले की भी निंदा होती है, बहुभाषी की भी निंदा होती है, अल्पभाषी की भी निंदा होती है। संसार में निंदा नियम है। प्रशंसा तो लोग मजबूरी में करते हैं। असली रस तो निंदा में ही पाते हैं। प्रशंसा भी लोग निंदा के आयोजन में ही करते हैं। पृथ्वी, सूर्य और चंद्र तक की निंदा करते हैं। किसी की निंदा करने से नहीं चूकते। मेरी ही देखो कितनी निंदा चलती है, भगवान ने कहा। लेकिन मूढ़ क्या कहते हैं, यह विचारणीय नहीं है। और तब उन्होंने यह गाथा कही--

पोराणमेतं अतुल! नेतं अज्जनामिव।
निन्दन्ति तुण्हीमासीनं निन्दन्ति बहुभाणिनं।
मितभाणिनम्पि निन्दन्ति नत्थि लोके अनिन्दितो।।

"हे अतुल, यह पुरानी बात है, यह कोई आज की नहीं, कि लोग चुप बैठे की निंदा करते हैं, बहुत बोलने वाले की निंदा करते हैं, मितभाषी की भी निंदा करते हैं; लोक में अनिंदित कोई भी नहीं है।"

आदमी बड़ा अजीब है। आदमी निंदा के रस में बड़ा डूबा है। तुम कोई न कोई बहाना निंदा करने का खोज ही लोगे। अब कोई चुप बैठा है तो निंदा। क्योंकि बोलते क्यों नहीं? कोई बोल रहा है तो निंदा। क्योंकि ज्यादा बोल रहा है। कोई अल्प बोल रहा है तो निंदा। क्योंकि समझाकर नहीं बोल रहा है।

तुमने कहानी सुनी? एक आदमी अपनी पत्नी के साथ अपने गधे को लेकर कहीं जा रहा था। राह में कुछ लोग मिले। दोनों पैदल चल रहे थे, क्योंकि दो गधे थे नहीं, एक गधा था। और गधा कमजोर था और दो को सम्हाल नहीं सकता था। उन आदमियों ने कहा, हद्द के मूरख मालूम होते हो, गधे को किसलिए लिए हो, और बैठते क्यों नहीं! यह गधे को काहे के लिए चल रहे हो? यात्रा पर जा रहे हो, गधे पर बैठो। तो उस आदमी ने कहा कि मूढ़ बनने से तो यही बेहतर है, गधे पर बैठ जाएं; तो वह गधे पर बैठ गया, पत्नी उसकी नीचे साथ-साथ चलने लगी।

दूसरी भीड़ मिली, उन्होंने कहा, हद्द हो गयी, यह मूरख देखो, पत्नी को चलवा रहा है पैदल, खुद गधे पर बैठे हैं! अरे मर्द बच्चा होकर चलता नहीं है नीचे! स्त्री को ऊपर बिठा! उसने कहा, यह बात भी ठीक है। तो वह नीचे चलने लगा, स्त्री को ऊपर बिठा दिया।

फिर कुछ लोग मिले, उन्होंने कहा, यह देखो मजा! आ गया कलियुग, स्त्री गधे पर बैठी है, पति नीचे चल रहा है! अरे, पति परमात्मा है! तो उन्होंने कहा, अब क्या करना, बड़ी मुसीबत; तो कहा, दोनों ही बैठ जाओ। तो दोनों गधे पर बैठ गए।

थोड़ी देर बाद फिर लोग मिले, उन्होंने कहा, देखो मार डालोगे गधे को; तुम गधे मालूम होते हो, गधे की जान निकली जा रही है, कमर झुकी जा रही है, दो-दो चढ़े बैठे हो! शरम नहीं आती? आखिर पशुओं में भी प्राण हैं!

तो उन्होंने कहा, अब क्या, करना क्या! तो उन्होंने कहा, अब एक ही उपाय बचा है कि हम गधे को लेकर चलें, क्योंकि और तो सब उपाय कर देखे। तो एक रस्सी में गधे को बांधकर, उसकी टांगों में रस्सी डालकर, डंडा पिरोकर कंधे पर रखकर दोनों चले।

थोड़ी दूर गए थे कि फिर लोग मिल गए। उन्होंने कहा, यह क्या कर रहे हो? होश है? हमने आदमी देखे गधे पर चढ़े, मगर गधा आदमी पर चढ़ा नहीं देखा, तुम कर क्या रहे हो?

यह पुरानी पंचतंत्र की कथा है। मगर सार्थक है। ऐसी ही दशा है। यहां अगर तुम लोगों की मानकर चलते रहो तो तुम जीवन में कभी भी थिर न हो सकोगे। चुप हुए तो लोग निंदा करेंगे, बोले तो निंदा करेंगे। कुछ भी करो, लोग निंदा करेंगे।

इस सूत्र का अर्थ क्या है? इस सूत्र का अर्थ है कि निंदा का रस जिसको लेना है, वह कारण खोज लेगा। इसलिए तुम निंदा करने वालों की चिंता मत करना।

इसलिए बुद्ध कहते हैं, मूढ़ क्या कहते हैं, इस पर ध्यान देने की जरूरत भी नहीं है। मूढ़ तो मूढ़ता की बातें कहते रहेंगे। तुम तो वही करना जो तुम्हारी प्रज्ञा तुम्हें करने को कहे। तुम्हें अगर चुप बैठना ठीक लगे तो चुप रहना, चाहे लोग कुछ भी कहें। तुम्हें बोलना ठीक लगे तो बोलना, चाहे लोग कुछ भी कहें। तुम्हें अल्पभाषण ठीक लगे तो अल्पभाषण करना, और तुम्हें धारा बहानी हो बाहर की तो धारा बहाना। तुम लोगों की चिंता मत लेना कि लोग क्या कहते हैं।

तुम अपने जीवन के मालिक हो। तुम अपने जीवन को अपने ढंग से जीना। तुम तुम हो, और तुम इसकी फिकर मत करना कि लोगों का मत क्या है। मत की फिकर की, तो तुम्हें वे पागल बनाकर छोड़ेंगे।

जिसने लोगों के मत की फिकर की, वह दो कौड़ी का होकर मरता है। लोगों के मतों की फिकर ही मत करना। तुम अपने भीतर की शांति से, अपने भीतर के आनंद से, अपने भीतर के बोध से जीना। जो तुम्हें ठीक लगता हो, उसे करना। और उसे रोज-रोज बदलना भी मत।

अगर बदलना भी कभी पड़े तो अपने ही भीतर के बोध से बदलना, लोगों के बोध के कारण नहीं। लोग क्या कहते हैं, इस चिंता में मत पड़ना। तो ही तुम कहीं पहुंच पाओगे। नहीं तो तुम कहीं भी न पहुंच पाओगे।

तुम दक्षिण गए, लोग कहेंगे, कहां जा रहे हो, दक्षिण में क्या रखा है? तुम उत्तर गए, लोग मिल जाएंगे, कहेंगे, उत्तर में क्या रखा है, कहां जा रहे हो? तुम पश्चिम जाओ तो लोग मिल जाएंगे, पूरब जाओ तो लोग मिल जाएंगे। सब दिशाओं में लोग हैं, और सब दिशाओं के पक्षपाती और सब दिशाओं के खिलाफ कोई न कोई मिल जाएगा। तुम्हें कुछ भी न करने देंगे लोग।

तुम्हें अगर जीवन में कुछ पाना हो, कोई सिद्धि, कोई उपलब्धि, अगर जीवन के रस से तुम्हें कुछ निचोड़ना हो, कोई सुगंध, तो तुम अपनी धुन में रमे रहना। एक बात इस सूत्र से निकलती है।

और दूसरी बात--कि दूसरे क्या कर रहे हैं, इसका तुम निर्णय मत करना। तुम इस निंदा में मत पड़ना कि वे ठीक कर रहे हैं कि गलत कर रहे हैं, कौन जाने! वे जानें, उनका जानें। न तो तुम दूसरों को बाधा देने देना अपने काम में, और न दूसरों के काम में बाधा देना। दुनिया काफी सुंदर हो सकती है, अगर लोग एक-दूसरे के कामों में बाधा न दें, मंतव्य न दें, निर्णय न दें।

प्रत्येक व्यक्ति को स्वयं होने का अधिकार है। और प्रत्येक व्यक्ति को अपनी जीवन-दिशा खोजने का जन्मसिद्ध अधिकार है। होना चाहिए।

तुम दोनों बातों का स्मरण रखना। न तो दूसरे पर बाधा देना कि तुम क्या कर रहे हो, कैसा कर रहे हो, तुम्हें ऐसा नहीं करना चाहिए--तुम किसी के नियंता नहीं हो, मालिक नहीं हो। उसे अपने ढंग से जीने दो, उसे परमात्मा को अपने ढंग से खोजने दो। और न तुम किसी को अपना मालिक बनाना। कोई तुम्हारा मालिक नहीं है।

इस परम स्वतंत्रता में जो जीता है, वही एक दिन अपने भीतर के दीए को खोज पाता है, जला पाता है। उसी को बुद्ध ने कहा है--अप्प दीपो भव, अपने दीए बनो।

आज इतना ही।

छियत्तरवां प्रवचन

धर्म अनुभव है

पहला प्रश्नः आप बुद्धिवाद से बचने को क्यों कहते हैं?

ताकि तुम बुद्धिमान हो सको। ताकि कभी तुम बुद्ध भी हो सको।

बुद्धिवाद झूठी बुद्धिमत्ता है। बुद्धिवाद वस्तुतः तुम्हारे भीतर छिपे हुए चैतन्य का जागरण नहीं, सिर्फ उधार है। बुद्धिवाद है दूसरों के विचारों को अपना मान लेना। बुद्धिवाद है, जो तुम नहीं जानते हो, उसके संबंध में कुछ धारणाएं केवल विचार करके तय कर लेना। जैसे अंधा आदमी प्रकाश के संबंध में कोई धारणा बना ले। वह धारणा होगी बुद्धिवाद। सोचे, सुने, दूसरों ने जो गीत गाए प्रकाश के उनका संग्रह करे, अनेकों से पूछे और प्रकाश के संबंध में जो भी पता चल सके उस सबके आधार पर कोई धारणा बना ले, अनुभव तो अंधे को प्रकाश का नहीं है, आंख तो उसके पास नहीं है, तो प्रकाश की वह जो भी धारणा बनाएगा वह बुद्धिवाद होगी। वह केवल बुद्धि का ही खेल है। वह वाद मात्र है।

अगर वह आदमी सच में प्रकाश में उत्सुक है तो इस धोखे में पड़ेगा नहीं। बजाय प्रकाश के संबंध में शास्त्र पढ़ने के, आंखों की चिकित्सा करवाएगा। आंखों की चिकित्सा हो जाए तो प्रकाश का अनुभव होगा। वह अनुभव बुद्धिवाद नहीं है, वह अनुभव बुद्धत्व है।

बुद्धि उधार, तो बुद्धिवाद। बुद्धि अपनी, निज की, अपने अनुभव में जड़ें जमाए हुए, तो बुद्धत्व। बुद्धि शब्द बड़ा अदभुत है। बुद्धि गिरती है तो बुद्धिवाद। बुद्धि उठती है तो बुद्धत्व। बुद्धि जब झूठ के जाल में पड़ जाती है तो बुद्धिवाद। और बुद्धि में जब सत्य का आविर्भाव होता है तो बुद्धत्व। दोनों ही बुद्धि के काम हैं।

मैं बुद्धि का विरोधी नहीं हूं, बुद्धिवाद का निश्चित विरोधी हूं। मैं कहता हूं, स्वाद लो, पाकशास्त्र पढ़ने से कुछ भी न होगा; न भूख मिटेगी, न पोषण उपलब्ध होगा। भोजन करो, भोजन तैयार करो। रूखी-सूखी रोटी भी बेहतर है पाकशास्त्र में लिखी हुई विधियों के मुकाबले, चाहे वे विधियां कितने ही स्वादिष्ट भोजनों के संबंध में क्यों न हों। मगर वे विधियां विधियां हैं, उन्हें तुम न खा सकते, न तुम पी सकते। उनको ही तुम जीवन की संपदा मत मान लेना। इसलिए मैं कहता हूं कि बुद्धिवाद से सावधान होना जरूरी है।

और तुम कितना ही प्रकाश का विचार कर-करके धारणा बना लो, भीतर तुम्हारे कोई कहता ही रहेगा, यह धारणा मात्र है, तुमने जाना कहां? अभी तुमने जाना कहां? अभी तुमने जीया कहां? अभी आंख तो है ही नहीं, अंधेरे में टटोल रहे हो।

बुद्धिवाद ऐसा ही है, जैसे हमारी कहावत है--अंधे को अंधेरे में बड़ी दूर की सूझी। एक तो अंधा, फिर ऊपर से अंधेरा, और फिर दूर की सूझी। पास का भी दिखायी नहीं पड़ता!

जिंदगी जैसे बने जीना हकीकत है

और बाकी सब किताबों की नसीहत है

रास्ते जितने बने जिद ने बनाए

लीक तो आखिर बुजुर्गों की वसीयत है

ओढ़ना बेहद जरूरी है नकाबों को

आदमी की चाह नंगी है मुसीबत है

एक अदना आदमी भी बहुत कर लेता

ऐन मौके पर अड़ी अफसोस इज्जत है

तर्क ने कितना बदल डाला सचाई को

पर नहीं एहसास मर पाया गनीमत है

तर्क तो बहुत झूठे दिखावे, धारणाएं, मान्यताएं, खड़ी कर देता है।

तर्क ने कितना बदल डाला सचाई को

पर नहीं एहसास मर पाया गनीमत है

पर एक ही बात अच्छी है कि लाख तुम बुद्धिवादी हो जाओ, तुम्हारे भीतर कोई कहता ही रहेगा--ये सब बातचीत, ये सब विचारजाल, ये सब तर्कजाल; अनुभव कहां है? वह एहसास मरेगा नहीं। उसी अहसास के आधार पर आशा की जा सकती है कि तुम कभी जागोगे।

बुद्धि चलती दूसरों की बनायी हुई लकीर पर। और सत्य पर पहुंचने का यह कोई मार्ग ही नहीं। सत्य पर तो कभी तुम लीक पर चलकर पहुंच ही नहीं सकते। लीक का अर्थ ही होता है, मुर्दा रास्ता। जो रास्ता ही मर गया, उससे जीवित सत्य तक नहीं पहुंचा जा सकता।

जिंदा रास्ता कैसा होता है? जिंदा रास्ता होता, अपने ही पैर से चलकर बनाना पड़ता है। जितना चलते हो, उतना ही बनता है। जितना अनुभव करते हो, उतना ही करीब पहुंचते हो। दूसरों के पीछे चलते रहे, तो बुद्धिवाद। हिंदू हो, मुसलमान हो, ईसाई हो, जैन हो, तो बुद्धिवाद। धार्मिक हो अगर, तब कुछ बात होनी शुरू हुई। और धर्म का क्या लेना-देना जैन से, हिंदू से, बौद्ध से, ईसाई से। धर्म का कोई संबंध नहीं। धर्म अनुभव है। जैसे प्रकाश आंख का अनुभव है, वैसा धर्म भीतर की आंख का अनुभव है।

तो भीतर की आंख को खोलने में लगो। बैठे-बैठे विचार ही करके जीवन को मत गंवाते रहना। न मालूम कितने जन्मों से तुम विचार कर रहे हो, न मालूम कितने जीवन तुमने विचार में गंवा दिए। बैठना अब तुम्हारी आदत हो गयी, अब तुम चलते ही नहीं। अब तुम सोचते ही रहते हो। उठो और चलो। वादों की राख को झड़ा दो, ताकि तुम्हारे भीतर का अंगारा प्रगट हो सके। और सत्य का अंगारा तुम्हारे भीतर पड़ा है, राख तुमने बाहर से इकट्ठी कर ली है--शास्त्रों की, सिद्धांतों की राख तुम बाहर से इकट्ठा कर लिए हो। इसमें मत परेशान होओ।

दूसरा प्रश्नः कर्ताभाव के जाने के बाद भी कर्म बचता है, ऐसा आपने कहा। आपके संन्यासी के लिए आप कौन सा कर्म नियत करना चाहेंगे?

तुमने कुछ तय कर रखा है कि तुम कभी अपने व्यक्तित्व की घोषणा न करोगे। तुमने तय ही कर रखा है कि तुम सदा कार्बन कापी रहोगे, कभी असली आदमी न बनोगे। तुम सदा चाहते हो, कोई नियत कर दे कि तुम क्या करो। कोई बता दे कि ऐसे उठो, ऐसे बैठो, यह खाओ, यह पीओ। तुम अपने मालिक नहीं होना चाहते। गुलामी तुम्हारे खून में उतर गयी है।

मैंने कहा कि कर्ताभाव के जाने के बाद भी कर्म बचता है, तुम्हें उसी में सहारा मिल गया। वहां कोई जगह नहीं सहारे की! तुमने वहीं रास्ता खोज लिया गुलामी का। तुम पूछने लगे, तो फिर आप बता दें कि फिर

संन्यासी क्या करे? जब कर्म तो बचेगा कर्ताभाव के जाने के बाद भी, तो फिर कर्म कौन सा करे यह आप बता दें।

मैं कह रहा था कि कर्ताभाव चला जाए, और साक्षीभाव जगे। जिसका साक्षीभाव जग गया, उसे कर्म नियत करने की जरूरत ही नहीं है। कर्म रहेगा, लेकिन अब साक्षीभाव से कर्म होगा, अब कर्ताभाव से कर्म नहीं होगा। और जिसके भीतर साक्षी का दीया जला है, उसे दिखायी पड़ेगा कि क्या करना उचित है। उसे कोई अंधी धारणाओं के अनुसार थोड़े ही चलना पड़ेगा। अंधा आदमी पूछता है, कहां है द्वार? आंख वाला पूछता है? आंख वाले के पास आंख है, आंख में सब आ गए द्वार, सब आ गए मार्ग। आंख वाला उठता है और द्वार से निकल जाता है। न तो किसी से पूछता, सोचता भी नहीं कि द्वार कहां है, जब निकलना है चारों तरफ देखता है, जहां द्वार है निकल जाता है। अंधा आदमी कहेगा, पहले पूछो तो कि जाना किस दिशा से है, द्वार कहां है, कहीं दीवाल से न टकरा जाएं।

साक्षीभाव! जहां कर्ताभाव गया, मैं कर्ता हूं ऐसा जहां भाव गिर गया, वहां मैं द्रष्टा हूं ऐसे भाव का जन्म होता है। जो ऊर्जा कर्ताभाव में बंधी है, वही ऊर्जा कर्ताभाव से मुक्त होकर साक्षी बन जाती है। मैं सिर्फ देखने वाला हूं। उस देखने में दर्शन है, दृष्टि है, आंख है। उस दृष्टि से फिर तुम्हारे जीवन के सारे कृत्य संचालित होने लगेंगे। फिर तुम्हें पूछने की जरूरत न रह जाएगी।

लेकिन तुम कर्ताभाव गिराने में उतने उत्सुक नहीं हो। कर्ताभाव जब गिरेगा, तब भी कर्म तो बचेगा, तुम पूछते हो, तो फिर उस कर्म को हम कैसे करेंगे, वह आप बता दें।

यह ऐसा ही है जैसे अंधे आदमी का इलाज कराने हम ले जाएं, और वह पूछे कि जब मेरी आंख ठीक हो जाएगी तो मैं किस-किस से पूछूंगा, कैसे पूछूंगा, कैसे टटोलूंगा कि मेरा रास्ता कहां है? हम उससे कहेंगे, पागल, तू चुप रह, पहले आंख ठीक हो जाने दे, फिर ये बातें नहीं उठेंगी।

ऐसा हुआ कि जीसस के जीवन में एक उल्लेख है। एक आदमी आया, लंगड़ा था, बैसाखियों के सहारे टेकते-टेकते जीसस के पास पहुंचा। उन्होंने उसे छुआ और वह सर्वांग सुंदर हो गया, सर्वांग स्वस्थ हो गया, उसका लंगड़ापन चला गया। उसने जीसस को बहुत-बहुत धन्यवाद दिया, बैसाखियां बगल में दबायीं और जाने लगा। जीसस ने कहा, अरे पागल, बैसाखियां फेंक। अब ये बैसाखियां क्यों ले जा रहा है? उसने कहा, ठीक याद दिलायी, क्योंकि मुझे तो यह बात ही भूल गयी थी कि बैसाखियों के बिना चला जा सकता है।

पुरानी आदत! अब लंगड़ा नहीं है, लेकिन बैसाखी के बिना तो कैसे जीएगा-- जन्मभर, जीवनभर बैसाखी के ही सहारे चला है, आदत हो गयी है।

तुम्हारी भी आदत हो गयी है पूछने की। कोई न कोई बताने वाला चाहिए। तुम अपने ढंग से कब जीओगे? संन्यास का अर्थ ही होता है कि तुमने अब घोषणा की कि अब मैं उधार न जीयूंगा, नगद जीयूंगा। तुमने घोषणा की कि अब मैं अपने ढंग से जीयूंगा, चाहे जो परिणाम हो। स्वतंत्रता अब नहीं खोऊंगा, अब गुलामी के और सूत्र नहीं खोजूंगा।

मैं यहां तुम्हें स्वतंत्रता देने को हूं, तुम्हारा कर्म नियत करने को नहीं। मैं कौन हूं तुम्हारा कर्म नियत करूं! और कर्म नियत किया कैसे जा सकता है। परिस्थिति तय करेगी कि क्या कर्म उचित है। कोई कर्म अपने आप में उचित नहीं होता। जो कर्म आज उचित है, कल दूसरी परिस्थिति में अनुचित हो सकता है। जो दवा एक मरीज के काम की है, दूसरे मरीज के काम की न हो।

तुमने कहानी सुनी न! एक सूफी कहानी है। एक वैद्य बूढ़ा हो गया। तो उसने अपने बेटे से कहा कि अब मैं बूढ़ा हो गया हूं, अब तू मेरी कला सीख ले, अब मैं ज्यादा दिन का मेहमान नहीं हूं; खूब गुलछर्रे कर लिए, अब मैं मर जाऊंगा तो तू भूखा मरेगा। अब तू चल मेरे साथ, मरीजों को देख और समझने की कोशिश कर; इस शास्त्र को समझ ले। दो-चार साल जीयूंगा, उस बीच तू कम से कम इस योग्य हो जा कि अपनी रोटी-रोजी कमा सके। तो बेटा बाप के साथ गया। अब तक तो कभी उसने फिकर न की थी, यह बात उसको भी ख्याल में आयी कि बाप कब तक साथ देगा, उसके हाथ-पैर कंपने लगे हैं, बाप बूढ़ा हो गया है, तो वह गया। बाप ने कहा कि तू ठीक से देख, जो-जो मैं करता हूं उस पर ध्यान रख।

एक मरीज को देखा, नब्ज पकड़ी उसकी, नब्ज देखी, उसकी जीभ देखी और फिर कहा कि मालूम होता है तुमने ज्यादा आम खाए हैं। उसी की वजह से तुम्हारे पेट में तकलीफ है। बेटा तो बड़ा चकित हुआ कि चमत्कार! नब्ज देखकर कैसे पता चला कि ज्यादा आम खाए हैं? रास्ते में पूछने लगा कि पिताजी, और तो सब ठीक, नब्ज देखकर कैसे पता चला? अब आप मुझे समझा दें, क्योंकि आपने कहा, सब सीखना है। उसने कहा, नब्ज देखकर पता नहीं चला, और भी चीजें देखनी पड़ती हैं। मैंने झांककर देखा, उसकी पलंग के नीचे आम की गुठलियां पड़ी हैं, ढेर लगा है। सिर्फ इतने ही से थोड़े काम चलता है, नब्ज तो देखनी पड़ती है, मगर और चीजें भी देखनी पड़ती हैं। उसने कहा, अब समझ गया।

बाप दूसरे दिन किसी मरीज को देखने गया था। कोई आदमी बुलाने आया तो उसने कहा, मैं आता हूं। पिता तो बाहर गए हैं, लेकिन अब मैं भी काफी समझ गया हूं। वह गया।

उसने नब्ज पर हाथ रखा, नब्ज तो उसे कुछ मालूम भी नहीं थी कैसे देखी जाती है, नब्ज पर हाथ पड़ा भी कि नहीं यह भी उसे पक्का नहीं समझ में आया, ज्यादा नजर तो बिस्तर के नीचे लगी थी उसकी कि कहां क्या पड़ा है? बिस्तर के नीचे उसने देखा; समझ गया। उसने कहा कि देखो जी, तुम अपना घोड़ा खा गए--क्योंकि बिस्तर के नीचे घोड़े की जीन इत्यादि पड़ी थी--और घोड़ा खाओगे तो पेट में दर्द होगा। वह आदमी तो बहुत हैरान हुआ कि वैद्य तो बहुत देखे, मगर आप बड़े अदभुत वैद्य हैं, घोड़ा खा गया!

जो एक परिस्थिति में सही होगा, दूसरी परिस्थिति में सही नहीं रह जाएगा। जो एक क्षण में उचित होगा, दूसरे क्षण में अनुचित हो सकता है। बोध चाहिए! ताकि उस क्षण में तुम तय कर सको, तय करने की भी जरूरत न पड़े, उस क्षण में तुम देख सको कि क्या ठीक है और वही तुम्हारे जीवन से हो।

तो मैं तुम्हें नियत कर्म नहीं बताता, सिर्फ एक ही बात पर मेरा जोर है कि तुम थोड़ा जागरण सीखो। वह हर जगह काम आएगा, हर परिस्थिति में काम आएगा। बजाय इसके कि मैं तुम्हें एक-एक परिस्थिति के लिए कर्म समझाऊं, यह ज्यादा उचित है कि तुम्हें ऐसा बोध मिल जाए कि हर परिस्थिति में तुम अपना कर्म खोज लो। क्योंकि परिस्थितियां अनंत हैं।

जीसस ने कहा है, अगर दुश्मन तुम्हारे एक गाल पर चांटा मारे तो दूसरा उसके सामने कर देना। अब यह एक नियत बात हो गयी।

एक ईसाई फकीर को एक आदमी ने चांटा मार दिया। स्वभावतः उसने तत्क्षण सोचा कि क्या करने योग्य है? जीसस ने कहा है कि दूसरा गाल सामने कर देना, उसने दूसरा गाल सामने कर दिया। वह आदमी भी अदभुत रहा होगा, वह आदमी भी कोई साधारण आदमी नहीं था, वह आदमी भी कोई मैक्यावेली या चाणक्य का शिष्य रहा होगा, उसने दूसरे गाल पर और दुगुनी ताकत से चांटा जड़ दिया। फकीर ने तो सोचा था कि जीसस ने कहा है कि जब तुम एक गाल पर कोई मारेगा और दूसरा उसके सामने करोगे, तो उसे अपनी भूल

समझ में आएगी कि किस साधु पुरुष को मार दिया! लेकिन इसके लिए साधु पुरुष चाहिए, समझने के लिए। अब यह आदमी ऐसा था, इसने कहा यह तो और ही अच्छा रहा, उसने एक दूसरा भी जोर से जड़ दिया।

बस जैसे ही दूसरा चांटा जड़ा कि वह फकीर छलांग लगाकर उसके ऊपर टूट पड़ा, उसकी छाती पर बैठ गया और लगा उसे मारने। वह आदमी भी थोड़ा चौंका। उसने कहा, भाई यह क्या करते हो, ईसाई होकर! और जीसस ने कहा है कि एक गाल पर जो चांटा मारे, दूसरा सामने कर देना, तुम यह क्या करते हो! तो उसने कहा कि एक गाल था, तुमने उस पर चांटा मार लिया, जीसस का वचन है कि दूसरा सामने कर देना, अब तीसरा तो कोई गाल है नहीं! इसके आगे वचन समाप्त हो जाता है, अब मैं अपने हिसाब से चलूंगा।

कोई वचन सदा साथ नहीं चल सकता। एक सीमा आएगी जहां वचन समाप्त हो जाएगा। मैं तुम्हें प्रतिपल के लिए नियत कर्म कैसे दे सकता हूं? चौबीस घंटे में हजारों स्थितियां हैं।

जीसस का एक शिष्य उनसे पूछता है कि कोई आदमी हमारी हानि करे, आप कहते हैं, क्षमा कर दो, कितनी बार? ठीक बात पूछी। कितनी बार क्षमा कर दो? तो जीसस ने सोचा, इसके पहले कि जीसस कुछ कहें उस आदमी ने कहा, सात बार करना ठीक होगा? जीसस ने कहा कि नहीं, सात से काम नहीं चलेगा। तो उस आदमी ने कहा, सतहत्तर बार करना ठीक होगा क्या? जीसस ने कहा, नहीं, यह भी कम पड़ेगा। तो उस आदमी ने कहा, आपका क्या मतलब, सात सौ सत्तर बार? तब जीसस को भी ख्याल में आया होगा कि सात सौ सत्तर बार भी क्षमा करने के बाद स्थिति तो बच रहती है! फिर सात सौ इकहत्तरवीं बार क्या होगा?

तुम कितनी ही व्यवस्था तय कर दो, व्यवस्था चुक जाएगी। एक सीमा आएगी जहां व्यवस्था चुक जाएगी; फिर तुम क्या करोगे?

दूसरों की मानकर चलोगे तो सदा झंझट में पड़ोगे। तुम्हें चाहिए अपनी आंख, तुम्हें चाहिए अपना बोध। यह जो आदमी पूछ रहा है, कितनी बार क्षमा करें, यह क्षमा का सूत्र ही नहीं समझा। क्योंकि क्षमा का अर्थ अगर समझ गया हो, तो कितनी बार पूछने की बात ही गलत है। कितनी बार का तो मतलब यह हुआ कि एक सीमा के बाद अक्षमा आ जाएगी। सात बार क्षमा कर दिया तो आठवीं बार फिर बदला लेगा। और हो सकता है आठवीं बार सातों बार का इकट्ठा बदला ले, क्योंकि यह आदमी क्षमा करने का सूत्र समझा ही नहीं। यह पूछ रहा है, कितनी बार? आखिर हर चीज की सीमा होती है! क्षमा की कोई सीमा नहीं हो सकती। जीसस ने कहा है कि ठीक, सात सौ सत्तर बार। लेकिन मैं तुमसे कहूंगा, सात सौ सत्तर बार से भी हल न होगा। तुम बहुत बेईमान हो। तुम सात सौ इकहत्तरवीं बार में सारा बदला ले लोगे।

जीसस ने सोचा होगा कि सात सौ सत्तर बहुत हो गया, अब और इसके आगे क्या ले जाना! लेकिन आदमी की बेईमानी बहुत बड़ी है। आदमी की बेईमानी अनंत है। तुम्हारा क्रोध अनंत है, तुम्हारी घृणा अनंत है। तुम्हारे रोगों की कोई सीमा नहीं है। इसलिए मैं नियतकर्म में उत्सुक नहीं हूं। मैं तुमसे यह नहीं कहता कि ऐसा करो। कि पांच बजे सुबह उठो। मैं तुमसे कहता हूं कि नींद जब पूरी हो जाए और तुम स्वस्थ हो गए और नींद का काम पूरा हो गया तो उठो! अगर पांच बजे पूरा हो गया तो पांच बजे, और अगर चार बजे पूरा हो गया हो तो चार बजे, और कभी किसी दिन अगर देर से सोए हो और छह बजे पूरा हो, तो छह बजे।

मैं मेरे गांव के पास एक रईस को जानता था। एक छोटे से इलाके के राजा थे वह। खूबी के आदमी थे। रातभर तो वह नाच-गाने में रहते थे--शराब पीना, नाच-गाना--और दिनभर सोते थे। तो उनके डाक्टर ने, बीमार पड़े तो डाक्टर ने कहा--अंग्रेज डाक्टर--उसने कहा कि आप ऐसा करिए कि अब आपको थोड़ा जल्दी सुबह उठना पड़ेगा, यह रात का राग-रंग बंद करिए। सुबह ठीक छह बजे तो उठना ही है, नहीं तो आपका

स्वास्थ्य ठीक नहीं हो सकता। यह दिनभर पड़े रहना बिस्तर में, इससे ही आपका जीवन नष्ट हुआ जा रहा है। रात सोने के लिए है, दिन जागने के लिए है, दिन श्रम करने के लिए है, आप छह बजे उठें।

उस रईस ने क्या किया, पता है? उसने कहा, ठीक, इसमें कौन सी अड़चन है! और उसकी जिंदगी में उसने कोई फर्क न किया, उसने सिर्फ अपने नौकरों को कह दिया कि जब भी मैं उठूं, घड़ी में छह बजा देना। बात खतम हो गयी। नियम पूरा हो गया। जब भी मैं उठूं, घड़ी में छह बजा देना।

नियम के साथ तो रास्ता है। नियम के साथ तो बेईमानी की जा सकती है, सिर्फ बोध के साथ बेईमानी नहीं हो सकती। नियम से तो तरकीब निकल आती है। तुम जानते हो सरकार कितने नियम बनाती है, और तुम्हारा वकील उसमें से रास्ता निकाल देता है। तुम भी रास्ता निकाल लेते हो। दुनिया की कोई सरकार अभी तक इस तरह के नियम नहीं बना सकी जिनमें से रास्ता न निकाला जा सकता हो। कितनी व्यवस्था करती है, एक-एक बात को कहने में पूरा-पूरा पेज लगा देते हैं कानूनविद, सब तरह की शर्तबंदी करते हैं, सब तरह के छेद रोकने की कोशिश करते हैं, कहीं से कोई तरकीब न निकाल ले, फिर भी तरकीब निकल आती है।

धर्म नियम नहीं है, धर्म बोध है। क्योंकि बोध से ही सिर्फ--फिर तुम तरकीब न निकाल पाओगे। निकालने की जरूरत ही न रह जाएगी। अब मैंने जो कहा था वह कुछ और था, तुमने जो समझा वह कुछ और है।

"कर्ताभाव के जाने के बाद भी कर्म बचता है।"

निश्चित। मैंने इसलिए ऐसा कहा कि कर्ताभाव के जाने के बाद तुम यह मत समझ लेना कि अब चादर ओढ़कर पड़ रहना है, क्योंकि अब तो कर्ताभाव चला गया तो अब हम क्यों करें!

ऐसे बहुत से आलसी इस देश में हैं जो सोचते हैं कि अब कर्ता ही भाव नहीं रहा तो अब हम क्यों करें, हम तो परमहंस हो गए। अब वे बैठे हैं, अब वे कहते हैं, परमात्मा करेगा। जब परमात्मा ही करने वाला है तो हम क्यों करें! उन्होंने बात में से कुछ और ही बात निकाल ली। उन्होंने कर्ताभाव नहीं छोड़ा, कर्म छोड़ दिया। कर्ताभाव छोड़ा हो तो कर्म छोड़ने की जरूरत नहीं, तुम परमात्मा के उपकरण हो गए। परमात्मा करेगा तो तुमसे ही। उसके पास अपने तो कोई हाथ नहीं हैं, तुम्हारे ही हाथ हैं। परमात्मा जो कुछ करेगा, करेगा तो तुमसे ही।

तो अगर तुम कर्म छोड़कर बैठ गए तो तुमने कर्ताभाव नहीं छोड़ा। कर्ताभाव छोड़ा होता तो तुम उपकरण बन जाते, निमित्तमात्र बन जाते; तुम कहते, अब जो तुझे करवाना हो, तू करवा। जहां ले जाना हो, ले जा। जो तेरी मर्जी, हम तेरे साथ चलेंगे। हम तेरी रौ में बहेंगे, तेरी धारा हमारी धारा होगी, अब हम लड़ेंगे नहीं। अब हमारा अपना निजी न कोई लक्ष्य है, न कोई गंतव्य है। तू डुबा दे, तो वही किनारा। तू उबार ले तो ठीक, तू डुबा दे तो ठीक। हम हर हाल राजी होंगे। मगर इसका यह मतलब नहीं कि हम चादर ओढ़कर सो जाएंगे।

इसलिए मैंने कहा, कर्ताभाव के चले जाने के बाद भी कर्म बचता है। लेकिन अब कर्म तुम्हारा नहीं होता, अब परमात्मा का होता है। अब सफलता मिलती है तो तुम उसके चरणों में चढ़ा देते हो, असफलता मिलती है तो उसके चरणों में चढ़ा देते हो। सुख या दुख जो तुम्हें मिलता है, तुम उसके चरणों में चढ़ा देते हो। तुम कहते हो, अब मैं तो हूं नहीं, तू ही है। अच्छा करवाना हो अच्छा करवा, बुरा करवाना हो बुरा करवा। यही तो सारा संदेश है कृष्ण की गीता का। वह अर्जुन को इतना ही तो समझाए कि तू निमित्तमात्र हो जा। फिर परमात्मा युद्ध करवाए तो युद्ध कर, और परमात्मा अगर संन्यास दिलवा दे और जंगल में ले जाए तो जंगल में चला जा। मगर तू अपनी तरफ से मत जा, उस पर छोड़ दे।

अर्जुन कह रहा था कि मैं चला जाऊं छोड़कर। वह कर्ता बनना चाहता था। कृष्ण ने कहा, तू कर्ताभाव छोड़, कर्ता तो वही है। अर्जुन कह रहा था, मैं इन्हें काटूं, मारूं, पाप लगेगा। पाप का भाव ही कर्ताभाव का हिस्सा है। मैं करूंगा, तो मुझे फल भोगना पड़ेगा। कृष्ण ने कहा, तू उसकी फिकर ही छोड़, जिनको मारना है वह मार ही चुका है। वे मरे हुए खड़े हैं, धक्का देने की बात है, तू निमित्त हो जा। तू नहीं होगा तो कोई और निमित्त हो जाएगा, मरेंगे तो ये। ये जो मरने को आए हैं, मरेंगे। इनकी मृत्यु तो तय हो चुकी, मैं इन्हें मरा हुआ देख रहा हूं। इसमें अनेक तो लाशें खड़ी हैं। न तुझे पाप लगने वाला है, न पुण्य। तू सिर्फ कर्ताभाव छोड़ दे। कर्ताभाव को ही पाप लगता, कर्ताभाव को ही पुण्य लगता।

इसलिए ज्ञानियों ने कहा है, पाप भी बांधता है और पुण्य भी बांधता है। शायद पाप लोहे की जंजीर जैसा है और पुण्य सोने की जंजीर जैसा है, लेकिन जंजीर तो जंजीर है, सोने की हो कि लोहे की हो, बांधती तो है ही। और सचाई तो ऐसी है कि सोने की जंजीर और भी जोर से बांधती है, क्योंकि उसे छोड़ने का मन भी नहीं होता। तुम खुद ही पकड़ लेते हो। लोहे की जंजीर तो तुम छोड़ना भी चाहते हो, सोने की जंजीर कौन छोड़ना चाहता है! सोने की जंजीर को तो लोग आभूषण कहते हैं, गहना कहते हैं, संपदा कहते हैं।

पुण्य भी बांधता है, पाप भी बांधता है, क्योंकि मूलतः कर्ताभाव बांधता है। अगर तुम मुझसे पूछो तो मैं कहूंगा, कर्ताभाव ही एकमात्र बंधन है। कर्ताभाव संसार है। अकर्ताभाव से, साक्षीभाव से जीना संन्यास है। कर्म तो रहेगा--उठोगे, बैठोगे, भूख भी लगेगी, पानी भी पीओगे, दिन में चलोगे भी, रात सोओगे भी, सब होगा; व्यर्थ रुक जाएगा, जो तुम्हारे कर्ताभाव के कारण हो रहा था वह रुक जाएगा, लेकिन जो सार्थक है, वह चलता रहेगा। वह जो पागलपन था, वह रुक जाएगा।

बुद्ध को ज्ञान हुआ, या महावीर को ज्ञान हुआ, तो ज्ञान के बाद बैठ तो नहीं गए, गोबर-गणेश होकर बैठ तो नहीं गए। चालीस साल तक निरंतर चलते रहे, बोलते रहे, समझाते रहे। प्रभु ने जो करवाया, वह किया। जो हुआ, उसे होने दिया। विराट कर्म हुआ, लेकिन कर्ता का कोई भाव नहीं था। जिस दिन मौत आयी उस दिन रोने नहीं लगे बैठकर कि अब मैं जा रहा हूं तो मेरे किए हुए काम का क्या होगा, अधूरा छूट गया।

हमेशा ही अधूरा छूटता है। जब भी तुम जाओगे, काम अधूरा छूटेगा। तुम रोओगे अगर कर्ताभाव रहा। अगर कर्ताभाव न रहा, तो जिसका काम है वह जाने। अधूरा तो अधूरा, पूरा तो पूरा, जितना करवाना था उतना ले लिया--अब किसी और से लेगा। कोई मैंने ही तो सारा ठेका नहीं लिया है, कोई और होगा जिससे यह काम आगे चलेगा। मेरे जाने के बाद भी संसार तो चलता रहेगा। तो जो अधूरा है वह पूरा होता रहेगा। फिर पूरा कब क्या होता है! सब चलता ही रहता है। यह धारा बहती ही रहती है। यह अनंतशृंखला है, न कोई प्रारंभ है, न कोई अंत है।

ऐसी जो स्थिति है साक्षीभाव की, उसमें मैंने कहा, कर्म तो शेष रहता है। कर्म शेष रहता है, इसलिए कहा कि तुम कहीं अकर्मण्य न हो जाओ। ऐसा हुआ है। मलूकदास की प्रसिद्ध पंक्ति है न, तो कई नासमझ उसको पकड़कर बैठ गए हैं--

अजगर करै न चाकरी, पंछी करै न काम।

दास मलूका कह गए, सबके दाता राम।।

अब यह मलूकदास की बड़ी ऊंची बात है।

अजगर करै न चाकरी...

सच है कि सांप कोई नौकरी नहीं करता और पंछी कोई काम नहीं करते--कहीं दफ्तर में नहीं जाते, क्लर्क नहीं, स्टेशन मास्टर नहीं, प्रोफेसर नहीं, कोई कामधाम नहीं है, फिर भी सब मस्ती से जी रहे हैं। भोजन भी मिलता है, विश्राम भी मिलता है! कहां कमी है।

दास मलूका कह गए सबके दाता राम।

मगर इसका मतलब यह तो नहीं है, पक्षियों को तुमने कभी सुस्त बैठे देखा? कि बैठे हों तुम्हारे साधुओं जैसे, कि मंदिरों में बैठे हैं, कि पूजा-स्थलों में बैठे हैं कि दास मलूका कह गए--पंछी सुन लें और बैठ जाएं, काम में लगे हैं। नौकरी नहीं करते हैं, यह बात सच है, मगर काम में नहीं लगे हैं, यह बात गलत है। कितना विराट कर्म चल रहा है। ... सुनते हो? पक्षी अभी काम में लगे हुए हैं--बातचीत चल रही, संवाद चल रहा, चीजें लायी जा रही हैं, ले जायी जा रही हैं। हां, एक बात है, कर्ताभाव नहीं है। इसलिए चिंता नहीं है।

अजगर भी सरकता है, अजगर भी फुफकारता है। लेकिन काम में नहीं लगा है। यह सब सहज हो रहा है, इसको करना नहीं पड़ता; यह स्वाभाविक है। जैसे नदी बह रही है, तो तुम यह थोड़े ही कहोगे कि नदी अपने को बहा रही है। वृक्ष बड़ा हो रहा है, तो तुम यह थोड़े ही कहोगे कि वृक्ष अपने को बड़ा कर रहा है। हो रहा है। यह सब हो रहा है। वृक्ष बड़े हो रहे हैं, नदियां बह रही हैं, पहाड़ बूढ़े हो रहे, आकाश में बादल घुमड़ रहे, बिजलियां चमक रहीं, यह सब हो रहा है।

साक्षीभाव को उपलब्ध व्यक्ति के जीवन में घटनाएं होती हैं, जैसे नदियां बहती हैं, वृक्ष बड़े होते हैं, पक्षी गीत गुनगुनाते हैं। कर्ताभाव नहीं होता। इसलिए मैंने कहा, कर्म बचता है। शुद्ध कर्म बचता है। बड़ा अनूठा कर्म बचता है, जिसमें स्वाद ही स्वाद होता है, जिसमें रस ही रस होता है। लेकिन निकलता है तुम्हारे भीतर के आनंद से। तो तुमने इससे फिर वही बात निकाल ली जो दास मलूका से लोगों ने निकाल ली है।

तुम पूछने लगे, "ऐसा आपने कहा, आपके संन्यासी के लिए आप कौन सा कर्म नियत करना चाहेंगे?"

तुम खुद फंसोगे, मुझको भी फंसाओगे। मैं क्यों करूं कोई कर्म नियत? परिस्थिति, समय जो अनुकूल होगा, तुम्हारे भीतर जगाएगी। परमात्मा--परिस्थिति, समय, इन सब के इकट्ठे जोड़ का नाम परमात्मा है। तुम्हारे भीतर से प्रतिसंवाद होगा। तुम्हारी चेतना से उत्तर निकलेगा। और तुम्हारा उत्तर तब कभी भी असंगत न होगा, संगत होगा।

अगर मैं तुम्हें कोई उत्तर दे दूं तो तुम्हारा जीवन पूरा असंगत हो जाएगा। क्योंकि तुम अपना उत्तर बांधकर चलोगे और जिंदगी किसी उत्तर से बंधी है? जिंदगी रोज बदलती जाती है। जिंदगी विराट परिवर्तन है। यह तुम्हारे हिसाब से थोड़े ही चलती है कि तुम्हारा उत्तर देखकर चलती है कि तुम्हारे पास जो उत्तर है वही प्रश्न पूछूं। यह तो ऐसे प्रश्न पूछेगी जिनका उत्तर कभी तुमने सोचा भी नहीं, विचारा भी नहीं, किसी शास्त्र में नहीं है। फिर तुम क्या करोगे? फिर तुम वही उत्तर दोगे जो तुम्हारे पास है।

मैं वर्षों तक विश्वविद्यालय में शिक्षक था। मैं बहुत हैरान हुआ यह बात जानकर कि विद्यार्थी ऐसे प्रश्नों के उत्तर देते हैं जो कि पूछे नहीं गए। पूछा कुछ गया है, जवाब कुछ देते हैं। फिर मैंने उन विद्यार्थियों को बुला-बुलाकर पूछना शुरू किया कि मामला क्या है? उन्होंने कहा, मामला यह है कि हमें जो मालूम है वही तो हम जवाब दे सकते हैं। आप कुछ इस ढंग से पूछते हैं कि वह हमारी पकड़ के बाहर हो जाता है। तो जो हमें मालूम है, जो हमारी कुंजी में दिया हुआ है, वह हम दे सकते हैं जवाब। अगर तुम वही प्रश्न पूछो जो उनकी कुंजी में दिया हुआ है तो वे दोहरा देंगे तोते की तरह। अगर प्रश्न में जरा सा फर्क कर दिया, बस वे मुश्किल में पड़ गए। अपना कोई बोध तो नहीं है, कुंजियां हैं, उधार कुंजियां हैं।

तुम किसी तरह की कुंजी मुझसे पाने की आशा मत करो। मैं तुम्हें उधार आदमी बनाना नहीं चाहता। मैं चाहता हूं तुम जागो, तुम्हारे पास अपनी ज्योति हो, उस ज्योति में तुम देखो, उस देखने में जो तुम्हारे जीवन में घटना घटे, उसे घटने दो। इतना ही कहता हूं, अंधेरे में मत टटोलते रहो, रोशनी हो सकती है, और आंखें खुल सकती हैं। अंधे तुम नहीं हो, तुमने आंखें बंद कर रखी हैं, या आंखों पर पर्दा डाल रखा है।

इसलिए मैं कोई कर्म नियत नहीं करना चाहता हूं। और तुम इस दिशा में इस भांति सोचो ही मत। मैं तुम्हें मुक्ति देता हूं। तुम सिर्फ सारी शक्ति बोध पर लगा दो, ध्यान पर लगा दो।

इसलिए न तुमसे कहता हूं शराब छोड़ो, न तुमसे कहता हूं धूम्रपान छोड़ो, न तुमसे कहता हूं यह छोड़ो, वह छोड़ो, ऐसे उठो, वैसे बैठो, यह योग करो, कुछ भी नहीं कहता हूं। कहता हूं, सारी शक्ति ध्यान पर लगा दो। क्योंकि ध्यान की चिनगारी पैदा हो जाए, तो शेष सब अपने से हो जाएगा। उस चिनगारी के बाद यह बात निश्चित है कि तुम ऐसे ही न रहोगे जैसे हो। धूम्रपान जा सकता है, मदिरापान जा सकता है, कामवासना जा सकती है; धन, लोभ, पद, सब जा सकते हैं, तुम ऐसे न रहोगे जैसे हो, यह बात पक्की है। लेकिन मैं तुमसे नहीं कहता कि तुम इन्हें बदलो। मैं तुमसे कहता हूं, तुम सिर्फ जागो, तुम्हारे जागरण के पीछे बदलाहट आती है। और तब बदलाहट में बड़ा सौंदर्य होता है। प्रयास से जो किया जाता है, कुरूप हो जाता है। क्योंकि प्रयास में जबर्दस्ती है, स्वभाव नहीं है।

तीसरा प्रश्नः आप हमेशा कहते हैं कि प्रेम ही परमात्मा है। प्रेम और परमात्मा का क्या संबंध है?

मैं जब कहता हूं, प्रेम ही परमात्मा है, तब मैं यही कह रहा हूं कि वे दो नहीं हैं। इसलिए संबंध की बात ही मत पूछो। संबंध तो दो में होता है। प्रेम ही परमात्मा है। प्रेम कहो या परमात्मा कहो, एक ही बात कही जाती है। और ज्यादा अच्छा होगा, तुम प्रेम ही कहो। क्योंकि परमात्मा के नाम पर इतनी घृणा फैलायी गयी है, परमात्मा के नाम पर आदमी ने इतनी हत्या की है, इतना अनाचार किया, अत्याचार किया है, इतना व्यभिचार किया है कि अब अच्छा होगा कि हम प्रेम शब्द को ही परमात्मा के सिंहासन पर पूरा विराजमान कर दें।

प्रेम ही परमात्मा है, संबंध की तो पूछो मत--तुम यह पूछ रहे हो कि दोनों के बीच क्या संबंध है? तुमने दो तो मान ही लिया।

नहीं, परमात्मा प्रेम से अलग कुछ भी नहीं है। जहां तुम्हारा प्रेम आया, जहां तुम्हारा प्रेम का प्रकाश पड़ा, वहीं परमात्मा प्रगट हो जाता है। इसीलिए तो तुम जिसको प्रेम करते हो, उसमें दिव्यता दिखायी पड़ने लगती है। प्रेम दिव्यता को अनावृत करता है, उघाड़ता है। तुम एक साधारण स्त्री को प्रेम करो, साधारण पुरुष को प्रेम करो, तुम्हारे घर एक बेटे का जन्म हो उसको प्रेम करो, और अचानक तुम पाओगे कि जिस तरफ तुम्हारे प्रेम की दृष्टि गयी, वहीं दिव्यता खड़ी हो जाती है।

यही तो प्रेमियों की अड़चन है। क्योंकि जहां उन्हें दिव्यता दिखायी पड़ जाती है कभी, फिर सिद्ध नहीं होती, तो बड़ी अड़चन खड़ी होती है। जिस स्त्री में तुमने दैवीय रूप देखा था या जिस पुरुष में तुमने परमात्मा की झलक पायी थी, फिर जीवन के व्यवहार में वैसी झलक खो जाती है, नहीं बचती, तो पीड़ा होती है। लगता है, धोखा दिया गया। कोई धोखा नहीं दे रहा है, सिर्फ तुम्हारे पास जो प्रेम की आंख है, अभी इतनी स्थिर नहीं है कि तुम सदा किसी व्यक्ति में परमात्मा देख सको। जब-जब तुम्हारी आंख बंद हो जाती है, परमात्मा दिखायी पड़ना बंद हो जाता है।

तो प्रेम शुरुआत में तो बड़ा दिव्य होता है--सभी प्रेम दिव्य होते हैं। फिर सभी पतित हो जाते हैं, क्योंकि आंखों की आदत नहीं है इतना खुला रहने की। जिस दिन तुम सारे जगत को प्रेम कर पाओगे, उस दिन सारे जगत में परमात्मा प्रगट हो जाएगा।

मैं तुमसे कहता हूं, प्रेम ही परमात्मा है।

आ गया नूर जर्रे-जर्रे पर
सितारे भी चमक उठे हैं कुछ और
रोशनी चांद की भी बढ़ गयी है
महककर फूल इठलाए हैं कुछ और

प्रेम की लहर के आते ही! प्रेम का झोंका आ जाए!

आ गया नूर जर्रे-जर्रे पर

तो एक अदभुत प्रकाश कण-कण पर दिखायी पड़ने लगता है। तुमने प्रेमी को चलते देखा? जैसे जमीन की कशिश उस पर काम नहीं करती, जैसे वह उड़ा जाता है, जैसे उसे पंख लग गए हैं। तुमने प्रेमी की आंखें देखीं? जैसे उनमें दीए जलने लगे हैं। तुमने प्रेमी का चेहरा देखा? रोशन। कोई दिव्य आभा प्रगट होने लगती है।

आ गया नूर जर्रे-जर्रे पर
सितारे भी चमक उठे हैं कुछ और
रोशनी चांद की भी बढ़ गयी है
महककर फूल कुछ इठलाए हैं और
तुम्हारी आंख की एक जुंबिश ने
जिंदगी ही मेरी बदल डाली
लबों से तुमने जो इकरार किया
शर्म आंखों की बढ़ गयी है कुछ और
जब निगाहें मिली थीं पहली बार
निकलता सा लगा दिल पहलू से
तुम्हारी आंखों की गहराई में
हर घड़ी डूबने लगा था कुछ और
इस खामोश मुहब्बत ने कभी
सुकून से हमें जीने न दिया
हंसकर जब भी कभी देखा तुमने
दिल की बेचैनी बढ़ गयी कुछ और
बड़ा एहसान तुमने मुझ पर किया
तड़पते दिल को सहारा देकर
कबूल करके यह खामोश सदा
बढ़ाया प्यार मेरी राहों में कुछ और
आ गया नूर जर्रे-जर्रे पर
सितारे भी चमक उठे हैं कुछ और

रोशनी चांद की भी बढ़ गयी है

महककर फूल कुछ इठलाए हैं और

यह तो साधारण प्रेम की बात। यह तो उस प्रेम की बात जो दो मनुष्यों के बीच घट जाता है। उस प्रेम की तो बात ही क्या कहें, जो मनुष्य और समस्त के बीच घटता है। मैं उसी प्रेम की बात कर रहा हूं। दो मनुष्यों के बीच जो घटता है, यह तो दो बूंदों का मिलन है। और मनुष्य और अनंत के बीच जो घटता है, वह बूंद का सागर से मिलन है। दो बूंदें मिलकर भी तो बहुत बड़ी नहीं हो पातीं।

तुमने देखा, कभी-कभी कमल के पत्ते पर दो ओस की बूंदें सरककर एक हो जाती हैं, तो भी बूंद तो बूंद ही रहती है। एक बूंद बन गयी दो की जगह, कोई बड़ा विराट तो नहीं घट जाता। थोड़ी सीमा बड़ी हो जाती है। तुम थोड़े आधे-आधे थे, प्रेमी से मिलकर तुम थोड़े-थोड़े पूरे हो जाते हो। तुम अकेले-अकेले थे, प्रेमी से मिलकर तुम अकेले नहीं रह जाते।

प्रेम का मार्ग प्रार्थना का मार्ग। तुम देखो, हिंदू हैं, तो सीता-राम की साथ-साथ मूर्ति बनायी है, कि राधा-कृष्ण की, कि शिव-पार्वती की। ये प्रतीक हैं ये मूर्तियां। प्रतीक हैं इस बात की कि जो प्रेम मनुष्य और मनुष्य के बीच घटता है, उसी प्रेम को फैलाना है। उसी प्रेम को इतना बड़ा करना है कि मनुष्य और अनंत के बीच घट जाए।

ध्यान के मार्ग पर इसकी जरूरत नहीं होती। इसलिए महावीर अकेले खड़े हैं, इसलिए बुद्ध अकेले बैठे हैं। ध्यान के मार्ग पर दूसरे की जरूरत नहीं है। प्रेम के मार्ग पर दूसरे की जरूरत है। प्रेम तो दूसरे के बिना फलित ही न हो सकेगा। इसलिए ध्यान के मार्ग पर परमात्मा की धारणा की भी जरूरत नहीं है। लेकिन प्रेम के मार्ग पर तो परमात्मा की धारणा अनिवार्य है, अपरिहार्य है।

तो जब मैं तुमसे कहता हूं, प्रेम परमात्मा है, तो मैं भक्त की भाषा बोल रहा हूं। तुम्हें जो रुच जाए, तुम्हें जो ठीक पड़ जाए। अगर तुम्हें ऐसा लगता हो कि प्रेम में तुम सरलता से पिघल पाते हो, तुम्हारी आंखों से आंसुओं की धार बहने लगती है सुगमता से, तुम्हारा दिल डोलने लगता है, तुम नाचने लगते हो--तुम्हारा मनमयूर नाचने लगता, तुम्हारे भीतर एक छंद पैदा होता है, एक स्फुरणा होती है, रोआं-रोआं किसी रोमांच से पुलकित हो जाता है, अगर तुम्हारे भीतर प्रेम का भाव रोमांच लाता हो, तो पहचान लेना कि तुम्हारे लिए भक्ति ही द्वार है।

अगर तुम्हें प्रेम का शब्द खाली निकल जाता हो, प्रेम के शब्द से कुछ न होता हो, न आंख में आंसू झलकते हों, न हृदय में कोई धड़कन होती हो, न रोमांच होता हो, अगर प्रेम का शब्द खाली-खाली निकल जाता हो, कोरा-कोरा, इस शब्द में कोई प्राण ही न मालूम पड़ते हों, तो तुम इस बात को छोड़ देना, फिर कोई जरूरत नहीं है।

हमेशा ख्याल रखना, जो मार्ग तुम्हारे लिए न हो, उस पर श्रम मत करना। क्योंकि वह सारा श्रम व्यर्थ जाएगा। जिद्द मत करना। ऐसा मत कहना कि मैंने तो चुन लिया, इसी पर अटका रहूंगा।

मेरे पास बहुत से लोग आते हैं, वे कहते हैं, हम बहुत दिन से प्रार्थना कर रहे हैं, कुछ परिणाम नहीं हुआ। तो हमने कोई पाप किए हैं? हमने कोई पिछले जन्मों में बुरे कर्म किए हैं?

जब मैं देखता हूं गौर से, तो यह पाता हूं कि न तो कोई पाप किए हैं--क्या पाप करोगे तुम! पाप करने को है क्या बहुत! यह पाप करने की धारणा भी कर्ता का ही हिस्सा है। करने वाला तो परमात्मा है, तुम क्या पाप

करोगे, क्या पुण्य करोगे! यह कर्म का जो हमारा सिद्धांत है, कि कर्म किए, यह भी कर्ता का ही हिस्सा है। यह अज्ञान का ही बोध है। न तो तुमने कुछ पाप किए, न पुण्य किए हैं। जो उसने करवाया है, करवाया है। जो हुआ है, हुआ है। फिर तुम क्यों अटके हो? अटके इसलिए हो कि तुम उस द्वार से प्रवेश करने की कोशिश कर रहे हो जो तुम्हारा द्वार नहीं है। प्रार्थना तो कर रहे हो वर्षों से, लेकिन प्रार्थना तुम्हारा द्वार नहीं है। फिर समझाने को तुम सोच लेते हो कि पाप किए होंगे, इसलिए बाधा पड़ रही है। नहीं कोई बाधा पड़ती। तुम ध्यान से तलाशो, अगर प्रार्थना से नहीं मिल रहा है तो।

कुछ लोग हैं जो ध्यान पर लगे हुए हैं, कुछ नहीं हो रहा है। उनको मैं कहता हूं, तुम प्रार्थना से तलाशो। मेरी नजर मार्ग पर नहीं है, मेरी नजर तुम पर है। मेरे लिए यह बात बहुत अर्थपूर्ण नहीं है कि तुम किस मार्ग से पहुंचते हो, मेरे लिए यही बात अर्थपूर्ण है कि तुम पहुंचते हो। पहुंच जाओ, किसी वाहन पर सवार होकर--घोड़े पर, कि हाथी पर, कि पैदल, कि बैलगाड़ी में--कैसे भी पहुंच जाओ। वाहन की बहुत चिंता मत करो, वाहन तुम्हारे लिए है, तुम वाहन के लिए नहीं हो।

अब तक पृथ्वी पर मार्गों पर बहुत जोर दिया गया। तुम भक्त से पूछो तो वह भक्त की ही बात को कहेगा। वह कहेगा, सिर्फ भक्ति से ही पहुंच सकते हो। वह आधी बात सच कह रहा है। आधे लोग भक्ति से पहुंच सकते हैं। तुम ध्यानी से पूछो, ज्ञानी से पूछो, वह कहता है, ध्यान के मार्ग से ही कोई पहुंचता है, भक्ति के मार्ग से कैसे पहुंचोगे! वह सब कपोल कल्पना है। वह भी आधी बात सच कह रहा है। आधे लोग ध्यान से पहुंचे हैं, आधे लोग भक्ति से पहुंचे हैं। और लोग उस मार्ग पर चलने की चेष्टा करते रहे जो उनका नहीं था, जिस मार्ग के साथ उनके हृदय का मेल नहीं बैठता था, वे कभी नहीं पहुंचते हैं, वे भटकते ही रहे हैं।

तुम अगर भटक रहे हो तो बहुत संभावना यही है कि तुम ऐसे द्वार से प्रवेश कर रहे हो, जो तुम्हारा द्वार नहीं है।

तो जब मैं कहता हूं, प्रेम परमात्मा है, तो मेरा अर्थ है उन आधे लोगों के लिए जो प्रेम से ही प्रवेश पा सकेंगे। यह उनके लिए कह रहा हूं। सबको इसे मान लेने की जरूरत नहीं है। जिनको यह बात न जमती हो, वे इसे छोड़ दें।

मगर हम बड़े परेशान होते हैं। कभी-कभी हम ऐसी बातों के लिए परेशान होते हैं जिनका कोई प्रयोजन नहीं होता है।

कल एक मित्र--बुद्धिमान मित्र--रात मिलने आए। प्रश्न पूछा, तो अजीब सा प्रश्न पूछा। प्रश्न यह पूछा कि परशुराम को अवतार क्यों कहा जाता है? क्योंकि उन्होंने तो सिर्फ हिंसा की, मार-काट की, पृथ्वी को क्षत्रियों से खाली कर दिया, विध्वंस ही विध्वंस। उनको अवतार क्यों कहा जाता है?

अब पहली तो बात यह कि क्या लेना-देना परशुराम से! तुम्हें अवतार न जंचते हों, क्षमा करो, उनको जाने दो। कोई परशुराम तुम पर मुकदमा नहीं चलाएंगे कि तुमने हमें अवतार क्यों नहीं माना। भूलो, क्या लेना-देना परशुराम से! हुए भी कि नहीं हुए, इसका भी कुछ पक्का नहीं है। तुम क्यों अड़चन ले रहे हो? अब दूर से, दिल्ली से चलकर मुझसे मिलने आए हैं, और मिलकर पूछा यह!

फिर अगर ऐसा लगता है कि परशुराम का मामला हल ही करना होगा, तभी तुम आगे बढ़ सकोगे--जो कि मेरी समझ में नहीं आता कि क्यों, परशुराम से क्या प्रयोजन है! बुद्धि की खुजलाहट है। नहीं जंचती बात, नहीं जंचती। अब उन पर अहिंसा का प्रभाव होगा, महावीर और बुद्ध का प्रभाव होगा, उनके मन में यह बात

जंचती होगी कि अवतारी पुरुष तो अहिंसक होना चाहिए। कुछ कल्याण का काम करे। विध्वंस! इसको अवतार क्यों कहना?

तो तुम्हें अगर महावीर और बुद्ध की बात ठीक जमती है, तो महावीर और बुद्ध के मार्ग वाले परशुराम को अवतार कहते भी नहीं, तुम फिकर छोड़ो। लेकिन अगर तुम्हें ऐसा लगता है कि तुम्हारी गांठ परशुराम से बंधी है, और तुम्हारा मन मानने का करता है कि होने तो चाहिए अवतार और फिर ये और दूसरी धारणाएं बाधा डालती हैं, तो दूसरी धारणाओं को छोड़ो, फिर समझने की कोशिश करो।

हिंदू विचार तो समस्त जगत को दैवीय मानता है, दिव्य मानता है--हिंसा भी और अहिंसा भी, सृजन भी और विध्वंस भी। वह भक्त की धारणा है। भक्त कहता है, भगवान हजार रूप में प्रगट होता है, सब रूप उसके। कभी वह विध्वंसक के रूप में भी प्रगट होता है। क्योंकि विध्वंस किसका? उसका ही। वही कर्ता है, हम तो कोई कर्ता नहीं हैं। कभी वह बुद्ध की तरह प्रगट होता है--करुणा का सागर। और कभी वह परशुराम की तरह प्रगट होता है--फरसे को हाथ में लिए हुए अति कठोर। कभी वह चट्टान की तरह प्रगट होता है और कभी फूल की तरह भी। चट्टान भी वही है और फूल भी वही है। दोनों वही है।

फिर, उसका प्रयोजन वही जाने। अगर हमारी समझ में नहीं पड़ता, क्योंकि हमें लगता है, हमारे मूल्य के विपरीत जाती है यह बात कि कोई आदमी हिंसा कर रहा है, तो इस हिंसा का क्या प्रयोजन! कभी-कभी हिंसा का भी प्रयोजन है। कभी-कभी बुराई से भी लड़ना होता है। और कभी-कभी हिंसा से लड़ने का एक ही उपाय होता है--हिंसा। क्षत्रिय तो हिंसा का प्रतीक है। जब हम कहते हैं, परशुराम ने सारी दुनिया को क्षत्रियों से खाली कर दिया, तो हम इतना ही कह रहे हैं कि परशुराम ने सारी दुनिया को हिंसा से खाली कर दिया। मगर क्षत्रियों से जूझना हो तो क्षत्रिय होकर ही जूझा जा सकता है, और कोई उपाय नहीं है। वे तो तलवार की भाषा ही समझते हैं।

अब तुमको ऊपर से तो देखने में लगेगा कि परशुराम हिंसक हैं, अगर भीतर गौर से इस प्रतीक में झांकोगे तो पता लगेगा कि परशुराम ने दुनिया से हिंसा को मिटाने का जैसा वृहत आयोजन किया, वैसा न बुद्ध ने किया, न महावीर ने। बुद्ध और महावीर तो समझाते रहे कि भई, हिंसा मत करो। परशुराम तो लेकर फरसा और जूझ पड़े, कि मिटा ही डालेंगे, हिंसा की जड़ों को काट डालेंगे।

मगर एक मजे की बात देखते हो, न बुद्ध के और महावीर के समझाने से हिंसा जाती है, न परशुराम के अठारह बार क्षत्रियों को काट डालने से हिंसा जाती है।

तो इसमें एक और गहरा सत्य छिपा है कि इस जगत से द्वंद्व कभी नष्ट होता ही नहीं। बुराई और भलाई साथ-साथ हैं। हिंसा-अहिंसा साथ-साथ हैं। करुणा-कठोरता साथ-साथ हैं। ऐसा कभी भी नहीं होगा कि तुम एक को काटकर गिरा दोगे। बुद्ध महावीर समझाकर न गिरा सके, और परशुराम ने तो बड़ी चेष्टा की, भयंकर चेष्टा की, बड़ा श्रम लिया कि सारे क्षत्रिय काटते गए, कि न रहेगा बांस न बजेगी बांसुरी, मगर फिर-फिर हिंसा उभर आयी। इस जगत से द्वंद्व नष्ट नहीं होने वाला। यह कथा का गहरा अर्थ है।

तो फिर क्या करें? तुम द्वंद्व के बाहर हो सकते हो, जगत से द्वंद्व नहीं मिटने वाला। तुम द्वंद्व के बाहर हो सकते हो, जगत से द्वंद्व कभी नहीं मिटेगा। हां, तुम जब चाहो तब द्वंद्व से बाहर सरक जाओ। और उस सरक जाने की कला ही है साक्षीभाव। तुम साक्षी हो जाओ; न अहिंसक, न हिंसक; न इधर, न उधर; तुम मध्य में खड़े होकर बीच से निकल जाओ। तुम कह दो कि अब मैं कर्ता नहीं हूं। लेकिन व्यर्थ के प्रश्नों में मत उलझो, व्यर्थ के बौद्धिक प्रश्नों में मत उलझो।

अगर ध्यान में रुचि है तो ध्यान में डूब जाओ, फिर प्रेम के संबंध में प्रश्न ही मत पूछो। समय कहां है! व्यर्थ क्यों समय गंवाते हो? कल का पक्का नहीं है। एक क्षण बाद का पक्का नहीं है। अगर प्रेम की बात जंचती है तो ध्यान की बात भूलो और प्रेम में डुबकी ले लो। समय नहीं है ज्यादा। लेकिन मैं अक्सर देखता हूं कि लोग इस तरह की बातों में बड़ा श्रम लगाते हैं।

अब जिन मित्र ने यह पूछा, वह निश्चित ही चिंतित हैं। चिंता जरा व्यर्थ मालूम होती है, लेकिन वह चिंतित हैं, इसमें कोई शक नहीं है। और प्रामाणिक उनकी परेशानी मालूम होती है। उनके चेहरे पर बड़े बल पड़ गए हैं। परशुराम को अवतार क्यों कहा जाता है? मुझसे बात करने के बाद भी, मेरे समझाने के बाद भी, उन्होंने कहा कि अभी तो ज्यादा समय नहीं है आपके पास, फिर कभी आऊंगा।

मगर उनको अभी बात जंची नहीं है। यह बात नहीं जंची कि यह व्यर्थ है, इसे छोड़ें, इससे क्या लेना-देना! मतलब अभी वह सोच-विचार जारी रखेंगे। परशुराम न हुए रोग हो गए!

और परशुराम ने हिंसा की या नहीं की, तुम परशुराम को पकड़कर अपने जीवन के साथ जो हिंसा कर रहे हो, वह तुम्हारी समझ में नहीं आती। जिससे प्रयोजन न हो, उसके संबंध में विचार करने की भी जरूरत नहीं। इतना भी क्यों अपनी शक्ति, अपनी ऊर्जा को व्यय करो।

तो यदि तुम्हारे जीवन में प्रेम है, और तुम्हें लगता है कि प्रेम में तुम्हें सुविधा मिलेगी, सुगम मालूम होता है, उतरो। फिर तुम पाओगे कि प्रेम में जैसे-जैसे उतरे, परमात्मा में उतरे। एक दिन तुम पाओगे कि प्रेम की पराकाष्ठा ही परमात्मा है। न हो रस प्रेम में, तो इस तरह के प्रश्नों में मत उलझो। तुम ध्यान में उतरो।

और दो के अतिरिक्त तीसरा कोई मार्ग नहीं है। इसलिए निर्णय करना बहुत कठिन नहीं है। अच्छा ही है कि दो ही मार्ग हैं। दो ही मार्ग के रहते भी तुम निर्णय नहीं कर पा रहे, अगर और बहुत ज्यादा मार्ग होते तो बड़ी अड़चन हो जाती, फिर तो निर्णय कभी न हो पाता। दोनों पर प्रयोग करके देख लो।

कभी-कभी ऐसा भी होता है कि अनिर्णय की स्थिति होती है। ऐसा भी लगता है कि प्रेम ठीक, ऐसा भी लगता है ध्यान ठीक। तो दोनों पर प्रयोग करके देख लो। एक वर्ष पूरा का पूरा भक्ति में डुबा दो। मिल गया तो ठीक, फिर दूसरे पर प्रयोग करने की जरूरत न रह जाएगी। लेकिन पूरा लगा दो। न मिला तो भी एक बात तय हो जाएगी कि यह मेरा मार्ग नहीं है।

अधूरे-अधूरे कुनकुने लोगों को बड़ी तकलीफ है। न तो कभी हृदयपूर्वक किया है, इसलिए तय ही नहीं हो पाता कि मेरा मार्ग है या नहीं है।

मैं तुमसे कहता हूं, जो भी तुम पूरे रूप से कर लोगे, उसमें से निर्णय बाहर आ जाएगा। पूर्ण कृत्य निर्णायक होता है। या तो दिखेगा यह मेरा मार्ग है, फिर तो चल पड़े, फिर तो लौटने की कोई जरूरत न रही। या दिख जाएगा कि यह मेरा मार्ग नहीं है, तो भी झंझट मिट गयी, दूसरा फिर तुम्हारा मार्ग है। फिर कोई अड़चन न रही। हर हालत में निर्णय आ जाएगा।

चौथा प्रश्नः मनुष्य आनंद कब मनाए? उत्सव कब उचित है?

हद्द की कंजूसी है! आनंद भी प्रतीक्षा करोगे कि कब मनाएं! दुख के संबंध में कंजूसी करो तो ठीक है कि आदमी दुखी कब हो? ऐसा पूछो तो ठीक है। आनंद के संबंध में पूछते हो! आनंद तो स्वभाव है। चौबीस घंटे आदमी सुखी हो। प्रतिपल आदमी आनंदित हो। उत्सव तो जीवन का ढंग है। उत्सव तो चल रहा है चारों तरफ।

यह जो विराट है, उत्सवलीन है। तुम्हारी मर्जी, चाहो तो बाहर खड़े रहो, मत डूबो इस उत्सव में, चाहो तो डुबकी ले लो।

तुम पूछते हो, "मनुष्य आनंद कब मनाए?"

प्रश्न की अर्थवत्ता मैं समझा। अधिक लोगों का यह प्रश्न है। लोग दुखी होने में जरा भी कृपणता नहीं करते, न वक्त देखते, न बेवक्त देखते, समय-असमय कुछ नहीं देखते, ऋतु-बेऋतु कुछ नहीं देखते, दुखी होने के लिए तो चौबीस घंटे तत्पर हैं, मौका भर मिल जाए। कभी तो मौका भी नहीं मिलता तो भी हो जाते हैं। कभी तो कारण भी नहीं मिलता तो भी हो जाते हैं। लेकिन सुख के संबंध में बड़े कृपण हैं। लाख उपाय जुटाओ, तब मुश्किल से थोड़ा मुस्कुराते हैं। वह भी बड़े रुके-रुके, जैसे कि बड़ी ज्यादती हो रही है उन पर। हंसना कठिन मालूम होता है, नाचना कठिन मालूम होता है, गीत गुनगुनाना कठिन मालूम होता है। हमने दुख के साथ बड़ी गांठ बांध ली है। दुख को हमने जीवन की चर्या बना ली है।

इसलिए तुम पूछते हो, "मनुष्य आनंद कब मनाए? उत्सव कब मनाए?"

एक रूसी कथा मैंने सुनी है। किन्हीं सज्जन ने सड़क पर एक भिक्षुक को एक रूबल दे दिया। यह उस बीते सुनहरे जमाने की बात है जब एक रुपए की तरह एक रूबल से भी बहुत कुछ खरीदा जा सकता था। रूबल रूसी सिक्का है। थोड़ी देर बाद वे सज्जन जब उसी राह से लौट रहे थे तो देखा कि वही भिक्षुक एक होटल में बैठा हुआ तंदूरी चिकन पर हाथ साफ कर रहा है। उनसे न रहा गया और वे होटल में जाकर उसे डांटने लगे। उससे बोले कि तुम सड़कों पर भीख मांगते हो और तंदूरी चिकन खाते हो? भिक्षुक भी गजब का आदमी था। बजाय झेंपने के, उलटे वह उस दाता को ही डांटने लगा। उससे बोला, उल्लू के पट्ठे! पहले जब मेरे पास रूबल नहीं था तो मैं तंदूरी चिकन खा नहीं सकता था। अब जब मेरे पास रूबल है, तो आप कहते हैं, मुझे तंदूरी चिकन नहीं खाना चाहिए। तो फिर मैं तंदूरी चिकन खाऊं कब? रूबल नहीं था तो खा नहीं सकता था, रूबल है तो तुम कहते, खाओ मत, क्योंकि तुम भिखारी हो, यह क्या कर रहे हो? तो मैं तंदूरी चिकन खाऊंगा कब?

मैं तुमसे कहता हूं, रूबल हो या न हो, तंदूरी चिकन खाओ। क्योंकि मैं जिस तंदूरी चिकन की बात कर रहा हूं, उसके लिए रूबल की जरूरत ही नहीं है। तुम यह पूछो ही मत कि कब? मैं जिस उत्सव की बात कर रहा हूं, उस उत्सव के लिए सब समय ठीक समय है और सब ऋतुएं ठीक ऋतुएं हैं। मैं जिस बसंत की बात कर रहा हूं, वह बारह महीने फैल सकता है। वह बारहमासी हो सकता है। मैं जिन फूलों की बात कर रहा हूं, वे हर जगह खिल सकते हैं, हर देश में खिल सकते हैं, हर परिस्थिति में खिल सकते हैं--सफलता में, असफलता में; जवानी में, बुढ़ापे में; धन में, निर्धनता में। मैं जिन फूलों की बात कर रहा हूं, वे हर जगह खिल सकते हैं, हर परिस्थिति में खिल सकते हैं। मैं शाश्वत के फूलों की बात कर रहा हूं।

अब तुम पूछते हो, "मनुष्य आनंद कब मनाए?"

तुम्हारा क्या इरादा है! कोई दिन तय करके मनाओगे--कि रविवार को मनाए, कि छुट्टी का दिन ठीक। छह दिन दुखी रहोगे, सातवें दिन अचानक आनंदित कैसे हो पाओगे? छह दिन का अभ्यास पीछा करेगा।

तुमने देखा या नहीं, छुट्टी के दिन लोग क्या करते हैं? छुट्टी के दिन लोग रोजमर्रा के काम से ज्यादा काम करते हैं। छुट्टी के दिन पत्नियां परेशान हो जाती हैं, क्योंकि पति काफी खटर-पटर मचाता घर में आकर। कहीं कार खोलकर सफाई शुरू कर देता है, कहीं रेडियो खोल लेता है, कहीं घड़ी खोल लेता है--ज्यादा खटर-पटर करता है। क्योंकि छह दिन काम का अभ्यास, अचानक बेकाम कैसे रहोगे? छह दिन सोचता है कि छुट्टी का दिन आ रहा है, विश्राम करेंगे, और जब छुट्टी का दिन आता है, तो विश्राम करना कोई इतनी आसान बात तो नहीं!

विश्राम तो जीवन की शैली हो तो ही कर सकते हो। वह तनाव, आदत भाग-दौड़ की, उसको बेचैनी लगती है--अब क्या करें?

तो लेकर पत्नी-बच्चों को चला, हिल स्टेशन चलो। तो कम से कम ड्राइव ही करेगा। छुट्टी के दिन जितने एक्सीडेंट होते हैं दुनिया में उतने किसी और दिन नहीं होते। और छुट्टी के दिन लोग ऐसे थके-मांदे लौटते हैं कि कम से कम दो-तीन दिन लग जाते हैं दफ्तर में उनको, जब कहीं वह फिर स्वस्थ हो पाते हैं। छुट्टी का दिन महंगा पड़ जाता है। छुट्टी मनानी कोई आसान बात तो नहीं! जब तक कि छुट्टी तुम्हारे जीवन की कला ही न हो गयी हो।

तो तुम पूछते हो, "कब आनंद मनाएं?"

अगर तुमने शर्त रखी कि ये शर्तें पूरी हों तब मैं आनंद मनाऊंगा--ऐसी शर्तें लोगों ने रखी हैं, इसीलिए तो दुखी हैं। वे कहते हैं, जब मेरे पास बड़ा महल होगा, तब। कि जब बैंक में मेरे पास बड़ा बैलेंस होगा, तब। कि जब दुनिया की सबसे सुंदरतम स्त्री मुझे उपलब्ध हो जाएगी, तब। कि बड़े पद पर पहुंचूंगा, तब। अभी क्या आनंद मनाऊं! शर्तें उन्होंने इतनी बांध रखी हैं कि न वे शर्तें कभी पूरी होती हैं, न वे कभी आनंद मना पाते हैं। और ऐसा भी नहीं कि शर्तें पूरी होतीं ही नहीं, कभी-कभी शर्तें पूरी भी हो जाती हैं, लेकिन जीवनभर की दुख की आदत!

उमर खय्याम ने एक बड़ी मीठी बात कही है। उमर खय्याम ने कहा है कि हे उपदेशको, हे मंदिर के पुजारियो, मौलवी-पंडितो, तुम कहते हो, स्वर्ग में शराब के चश्मे बह रहे हैं, और यहां तुम शराब पीने नहीं देते। अभ्यास न होगा तो चश्मों का क्या करेंगे? यह बात बड़ी अर्थ की है। यहां अभ्यास तो कर लेने दो। यहां तो प्याले-कुल्हड़ से ही पीने को मिलती है, अभ्यास तो हो जाए। नहीं तो अचानक, जरा सोचो तुम, जिंदगीभर तो यहां कभी शराबखाने न गए, और फिर एकदम स्वर्ग पहुंचे, और वहां शराब के झरने बह रहे हैं! तुम पीओगे? तुम न पी सकोगे। तुम निंदा से भर जाओगे। तुम कहोगे, यह पाप है।

यह बात अर्थपूर्ण है। यह बात शराब के संबंध में नहीं है। यह बात जीवन के आनंद के संबंध में है। उमर खय्याम एक सूफी फकीर है। शराब से उसे क्या लेना-देना! उसने कभी जीवन में शराब पी भी नहीं है। वह नाहक बदनाम हो गया है, क्योंकि शराब की उसने बड़ी चर्चा की है। तो लोग समझे, शराब की ही चर्चा कर रहा है। शराब तो सिर्फ प्रतीक है मस्ती का। वह ठीक कह रहा है। अगर मस्त यहां न हुए, तो वहां कैसे मस्ती करोगे? यहां न नाचे, तो अचानक स्वर्ग में पहुंचकर नाचोगे? जंचेगा ही नहीं। बेहूदे लगोगे! इधर कभी गाए नहीं, वहां एकदम गाओगे तो बड़ी बेसुरी आवाज निकलेगी, और लोग कहेंगे, भई शांत रहो! स्वर्ग की शांति में विघ्न न डालो। तुम तो अपना पुराना अभ्यास यहां भी जारी रखो, बना लो वही लंबी उदास सूरत, बैठ जाओ किसी झाड़ के नीचे, योगासन साधो।

तुम पूछते हो, "मनुष्य आनंद कब मनाए?"

मनुष्य आनंद ही आनंद मनाए। चलते, उठते, बैठते, सोते, खाते-पीते, सुख में और दुख में भी आनंद मनाए। सुख में तो मनाए ही, दुख में भी मनाए। जब घर में किसी का जन्म हो तब तो मनाए ही, जब घर से कोई विदा हो तब भी मनाए। जन्म में भी और मृत्यु में भी। उत्सव के लिए कोई मौका छोड़े ही न। किसी न किसी बहाने कोई न कोई उपाय खोज ले।

च्वांग्तसू चीन का अदभुत संत हुआ। उसकी पत्नी मर गयी। तो खुद सम्राट संवेदना प्रगट करने आया। लेकिन सम्राट सोच-सोचकर आया होगा कि च्वांग्तसू जैसा विचारक, अदभुत आदमी, उससे क्या कहूंगा? तो

सब तैयार करके आया होगा कि यह-यह कहूंगा कि तेरी पत्नी मर गयी, बड़ा बुरा हुआ, अब दुख न करो, सब ठीक हो जाएगा, आत्मा तो मरती नहीं--कुछ ऐसी बातें सोचकर आया होगा। इधर देखा तो बड़ी मुश्किल में पड़ गया, उसको तो बड़ी बेचैनी हुई। वह सज्जन तो एक खंजड़ी बजा रहे हैं एक झाड़ के नीचे बैठकर और गाना गा रहे हैं। और सुबह पत्नी को दफनाया है! और यह सांझ--अभी पूरा दिन भी नहीं बीता है, जिस सूरज ने सुबह पत्नी को कब्र में रखे जाते देखा वह सूरज भी अभी नहीं डूबा है, अभी देर नहीं हुई है, अभी तो घाव इतना हरा है--और यह अपना पैर फैलाए एक झाड़ के नीचे खंजड़ी बजा रहे हैं!

अब सम्राट आ ही गया था, कुछ कहना भी जरूर था, उसे बेचैनी भी हुई। उसने कहा कि महाशय, दुखी न हों, इतना ही काफी है, लेकिन सुखी हों, यह जरा जरूरत से ज्यादा हो गया। दुखी न हों, ठीक। वह तो मैं भी कहने आया था कि दुखी न हों, लेकिन अब तो कोई कहने की आवश्यकता ही नहीं रही, जो मैं सोचकर आया था सब बेकार ही हो गया, लेकिन इतना जरूर कहना चाहता हूं कि दुखी न हों, इतना पर्याप्त; लेकिन सुखी हों और खंजड़ी बजाएं और गाना गाएं!

च्वांग्तसू ने कहा, क्यों नहीं? जो भी आनंद का अवसर मिले, उसे चूकना क्यों? अपनी पत्नी को भी मैं गाना गाकर विदा नहीं दे सकता! तो फिर किसको विदा दूंगा गाना गाकर? और जिस स्त्री के साथ जीवनभर रहा, क्या इतना भी नहीं कर सकता कि जाते समय खंजड़ी बजाकर उसे कह सकूं कि अलविदा! तुम कौन हो मेरे उत्सव में बाधा डालने वाले?

सम्राट को तो समझ में ही नहीं आया कि अब वह क्या करे? बात तो च्वांग्तसू ने बड़े गजब की कही कि जिसके साथ जीवन का बहुत राग-रंग देखा; सुख-दुख, उतार-चढ़ाव देखे; जो हर घड़ी छाया की तरह मेरे पीछे रही; उसको भी विदा न दे सकूं एक गीत गाकर! यह तो जरा अकृतज्ञता हो जाएगी। यह तो मेरा कृतज्ञभाव! यह तो मैं सिर्फ अहोभाव प्रगट कर रहा हूं।

अगर अवसर खोजे तुम आनंद के लिए तो कभी न मिलेगा। और अगर तुम आनंदित होना जानते हो, तो हर अवसर अवसर है। हर मौसम मौसम है। हर घड़ी तुम कोई न कोई तरकीब खोज ही ले सकते हो। क्या गजब का आदमी रहा होगा च्वांग्तसू! कैसी घड़ी में खंजड़ी बजाने की बात खोज ली! ऐसा ही मनुष्य होना चाहिए।

तो मैं तो तुमसे कहूंगा, हर घड़ी आनंद मनाओ।

"उत्सव कब उचित है?"

हर घड़ी उत्सव उचित है। क्योंकि जब तुम उत्सव में हो, तभी तुम परमात्मा के निकट हो। और जब तुम उत्सव में सम्मिलित नहीं हो, तुम परमात्मा के बाहर हो, उत्सव में होना परमात्मा में होना है, उत्सव में न होना परमात्मा के बाहर होना है। तुम्हारी मर्जी! तुम्हें अगर परमात्मा के बाहर-बाहर जीना हो, तो तुम जीओ। फिर संताप होगा, विषाद होगा, दुख होगा, पीड़ा होगी, चिंता होगी, वह तुम्हारा चुनाव है। उत्सव बन सकती थी जो ऊर्जा, वही बनेगी चिंता, वही बनेगी विषाद। फूल बन सकती थी जो ऊर्जा, वही कांटे और शूल बनकर चुभेगी छाती में।

मगर चुनाव तुम्हारा है। तुम चाहते तो सारा जीवन उत्सव हो सकता था। होना चाहिए। उत्सव के लिए प्रतीक्षा मत करो कि कब? छोड़ो ही मत कोई अवसर। हर क्षण को उत्सव में बदल लो।

पांचवां प्र्श्नः संसार को दुखमय बनाने के पीछे राज क्या है?

पूछने से लगता है, जैसे किसी ने तुम्हारे लिए संसार को दुखमय बना दिया है! किसी ने। तुमने बना लिया है, किसी ने बना नहीं दिया है। तुम्हारे हाथ में है। तुम इस ढंग से जी सकते हो कि संसार निर्वाण हो जाए और तुम इस ढंग से जी सकते हो कि निर्वाण संसार हो जाए। संसार और निर्वाण दो नहीं।

इस क्रांतिकारी उदघोष को सुनो--संसार और निर्वाण दो नहीं हैं, देखने के दो ढंग हैं। सत्य तो एक ही है। जब तुम गलत ढंग से देखते हो, तो संसार--और दुखी होते हो; जब ठीक ढंग से देखते हो, तो निर्वाण--और सुखी होते हो। देखने की बात है, देखने-देखने की बात है। बस दृष्टि की ही बात है। दृष्टि ही सृष्टि है।

तो तुम अपनी आंख पर ख्याल करो। तुम्हारा प्रश्न ऐसा लगता है--कि संसार को दुखमय बनाने के पीछे राज क्या है--जैसे किसी ने दुखमय बना दिया है, और जरूर इसके पीछे कुछ राज होगा। संसार को दुखमय तुमने बना लिया है। और राज कुल इतना ही है कि तुम सुखी नहीं होना चाहते।

अब तुम कहोगे कि यह बात तो जंचती नहीं, क्योंकि हम सब सुखी होना चाहते हैं। तुम इस ढंग से सुखी होना चाहते हो कि उसका परिणाम दुख होता है। तुम्हारे सुखी होने की मांग में कहीं कुछ भ्रांति है। तुम्हारे सुखी होने की चेष्टा में ही दुख पैदा हो रहा है। तुम्हारे सुखी होने की दिशा ही तुमने गलत चुन ली है। सुखी होने का तुम्हारा ढंग इतना गलत है कि तुम सुखी नहीं हो पाते। और तुम्हें ढंग दिया जाता रहा है--बुद्धपुरुष आते रहे, जाते रहे, कहते रहे, उनकी तुम सुनते नहीं। तुम कहते हो, महाराज, अगर आप ज्यादा सताओगे तो हम आपकी पूजा कर लेंगे, मगर सुनेंगे नहीं। अगर आप ज्यादा शोरगुल मचाओगे तो हम मंदिर में आपकी प्रतिमा विराजमान कर देंगे, धूप-दीप जलाएंगे, मगर सुनेंगे नहीं।

क्यों? तुम्हारा दुख के साथ बहुत गठबंधन हो गया है। तुम दुख के साथ बहुत जुड़ गए हो, वह तुम्हारी आदत हो गयी है। तुम डरते हो कि अगर दुख से छूट गए तो फिर क्या होगा? तुम डरते हो कि अगर दुख न रहा तो तुम बिल्कुल अकेले-अकेले रह जाओगे।

यहां रोज मेरे पास ऐसी घटना घटती है। कोई व्यक्ति अगर दो-चार-छह महीने सतत ठीक से ध्यान कर लेता है, तो घड़ी आनी शुरू हो जाती है जब चिंता पैदा नहीं होती, जब तनाव नहीं पैदा होता, जब धीरे-धीरे विचार खोने लगते हैं... ।

कल ही एक युवक आया और उसने कहा कि मैं पागल तो नहीं हो जाऊंगा? क्योंकि मुझे ऐसा डर लग रहा है। अब कोई चिंता नहीं आती, दिन गुजर जाते हैं और कोई तनाव पैदा नहीं होता, तो मैं घबड़ा रहा हूं, कहीं ऐसा तो नहीं होगा कि मैं पागल हो जाऊं! तनाव पुरानी आदत थी, चिंता पुरानी आदत थी, उससे तुम परिचित थे, जाना-माना था, अब अचानक वह खो रहा है, तो ऐसा लगता है, तुम्हारे पैर के नीचे की भूमि खिसक रही है।

मनस्विद कहते हैं कि आदमी दुख को चलाए रखना चाहता है। उसको पानी सींचता रहता है। ऊपर-ऊपर से कहता भी रहता है कि मैं दुखी नहीं होना चाहता, लेकिन पानी सींचता रहता है। जब भी तुम उसे तरकीब बताओ दुख के बाहर होने की, वह कहता है, यह कैसे होगा?

एक स्त्री मुझे आकर कहती है कि मेरे पति किसी और स्त्री में उत्सुक हो गए हैं, मैं बहुत दुखी हो रही हूं, मुझे दुख से बचाएं। मैं उससे कहता हूं, ईर्ष्या दुख का कारण है, तू ईर्ष्या छोड़ दे। तो वह कहती है, यह कैसे होगा? दुख से छुड़ा लें, ईर्ष्या छोड़नी नहीं है! और ईर्ष्या दुख का कारण है। अब जब यह बात बिल्कुल साफ हो जाए--साफ है, सारे बुद्धों के वचनों का सार इतना है कि ईर्ष्या दुख देती है। अब वह स्त्री मुझसे कहने लगी--

संन्यासिनी है, पति भी संन्यासी है--स्त्री मुझे कहने लगी कि यह तो नहीं हो सकता। मैं मर जाऊंगी, मैं आत्महत्या कर लूंगी।

आत्महत्या करने को राजी है, ईर्ष्या छोड़ने को राजी नहीं है। जरा सोचो! ईर्ष्या का मूल्य आत्महत्या! जीवन के मूल्य से भी ज्यादा मालूम पड़ता है। वह कहने लगी, यह तो हो ही नहीं सकता है, यह तो मैं बर्दाश्त ही नहीं कर सकती हूं, यह तो मैं सोच भी नहीं सकती हूं कि मेरे पति और किसी स्त्री में उत्सुक हैं। और अभी सिर्फ उत्सुक हैं! अभी कुछ और नहीं हुआ है। लेकिन उत्सुकता! कि उसके साथ बैठकर कभी-कभी हंस-बोल लेते हैं।

यह स्त्री पहले तो मुझे आयी तो उसने कहा कि ध्यान भी कर रही हूं दो साल से, कोई छह महीने पहले ध्यान में एक स्त्री दिखायी पड़ने लगी। मैंने पूछा, ध्यान में स्त्री! तू भी खूब नया अनुभव लायी! अभी कुंडलिनी और चक्र इत्यादि के लोग लाते हैं, मगर ध्यान में स्त्री! तभी मुझे शक हुआ कि मामला तो कुछ गड़बड़ है।

फिर मैंने पूछा, फिर क्या हुआ? उसने कहा, फिर धीरे-धीरे उसका चेहरा साफ होने लगा और एक दिन मैंने ध्यान में देखा कि वह अपने बाल संवार रही है। और तब मैं पहचान गयी कि वह कौन है। वह मेरे पड़ोस में ही रहने वाले की स्त्री है। यह ध्यान से हुआ। और तब से ही मैं पीछे लग गयी कि मामला क्या है? यह स्त्री मुझे दिखायी क्यों पड़ती है? तब धीरे-धीरे वह खोजबीन करने से पता चला कि मेरा पति उसमें उत्सुक है।

अब यह बड़े मजे की बात हो गयी, यह सब ध्यान से हुआ!

ईर्ष्या इतनी भरी है हृदय में कि तुम्हारे ध्यान में भी ईर्ष्या के ही बिंब बनेंगे। तुम्हारे ध्यान में भी परमात्मा तो नहीं आएगा, तुम्हारे ध्यान में प्रकाश तो नहीं आएगा, एक स्त्री बाल संवार रही है! और फिर इसने खोजबीन करनी शुरू की। खोजबीन करके इसने पा भी लिया कि पति इसमें उत्सुक हैं। उत्सुक ही हैं अभी, मगर वह जली जा रही है। वह कहती है, मैं आत्महत्या कर लूंगी, यह तो मैं सोच ही नहीं सकती। दुखी होने के लिए राजी है, मरने को भी राजी है, मगर ईर्ष्या छोड़ने को राजी नहीं। अब क्या कहोगे?

मैंने उससे कहा कि मरकर तू भूत हो जाएगी। जब तुझे ध्यान में यह स्त्री बाल संवारते दिखती है तो बड़ा खतरा है, तू मरकर भूत हो जाएगी, तू पति को भी सताएगी, इस स्त्री को भी सताएगी। उसने कहा, चाहे भूत हो जाऊं, मगर अब जी नहीं सकती। भूत होने को राजी है। मैंने उससे कहा कि भूत को मालूम है कैसी तकलीफें झेलनी पड़ती हैं? उसने कहा, कुछ भी हो। आप मुझे दुख के बाहर निकाल लें।

थोड़ा सोचो! तुम सोचते हो कोई दुख पैदा कर रहा है, एक। फिर तुम सोचते हो, कोई तुम्हें दुख के बाहर निकाल ले। और तुम यह बुनियादी बात नहीं देखते कि दुख तुम पैदा करते हो और दुख के बाहर भी तुम ही निकल सकते हो। न तो कोई पैदा कर रहा है और न कोई निकाल सकता है। तुम मालिक हो और यह गरिमा है तुम्हारी कि तुम अपने मालिक हो। यह बात बड़ी बेहूदी होती कि कोई तुम्हारे लिए दुख पैदा कर देता और तुमको दुखी होना पड़ता। और यह बात भी बड़ी अपमानजनक होती कि कोई तुम्हें दुख के बाहर निकाल लेता। क्योंकि जो तुम्हें दुख के बाहर निकालेगा, वह कभी भी तुम्हें फिर डुबकी लगवा दे सकता है।

नहीं, तुम अपने मालिक हो। तुम्हारी स्वतंत्रता परम है। मगर तुम देखो कि सच में तुम दुख के बाहर होना चाहते हो? और तुम्हें दिखायी पड़ जाए कि दुख के बाहर होना है, तो ईर्ष्या में छोड़ने न छोड़ने जैसा क्या है! क्या पड़ा है ईर्ष्या में! तुम छोड़ दोगे। पति में क्या पड़ा है, उस स्त्री में क्या पड़ा है, और पति किसी स्त्री में उत्सुक हो, इससे लेना-देना क्या है! इससे क्या फर्क पड़ता है! सिर्फ थोड़ी सी समझ की किरण और ईर्ष्या ऐसे गिर जाती है, जैसे किसी ने पुराने वस्त्र उतारकर रख दिए, और तुम दुख के बाहर हो।

और शायद दुख के बाहर होकर तुम्हें पता चले कि पति शायद उत्सुक भी नहीं हैं, क्योंकि यह हो सकता है, यह सिर्फ ईर्ष्या का ही पूरा का पूरा फैलाव हो। क्योंकि ईर्ष्या के कारण तुम वैसी बातें देख सकते हो जो हों ही न। और मुझे लगता है संभावना यही है। क्योंकि इसको ध्यान में स्त्री का चेहरा दिखायी पड़ना, बाल संवारते दिखायी पड़ना, फिर उसका पता लगा लेना कि वह जो दिखायी पड़ती है स्त्री यही स्त्री है, फिर इसका पता लगा लेना... ।

तुझे, मैंने पूछा, पता कैसे चला? वह कहती है, वह आपका टेप चलाते हैं, उसमें वह भी सुनने आती है। और भी लोग आते हैं? उसने कहा, और भी लोग आते हैं। मैंने पूछा, तुझे यहां भेजा किसने? उसने कहा कि मेरे पति ने ही भेजा, उन्होंने कहा कि तू वहीं जा, मेरी समझ के बाहर है। मैं समझा-समझाकर हार गया तुझे कि कुछ नहीं है! लेकिन वह मानने को राजी नहीं है, वह प्रमाण जुटा रही है कि कुछ है।

और तुम ख्याल रखना, अगर तुम किसी आदमी के पीछे पड़ जाओ कि कुछ है, कुछ है, शायद तुम पैदा करवा दो। क्योंकि आदमी आदमी जैसे आदमी हैं। उत्सुकता पैदा करवा दो। शायद यह पत्नी इतना परेशान करने लगे चौबीस घंटे उनको घर में कि इससे ही बचने के लिए वह उस स्त्री में उत्सुक होने लगें।

ईर्ष्या टूट जाए, तो शायद इसे दिखायी पड़े कि वह मेरा प्रक्षेपण था। और न भी हो प्रक्षेपण, सच भी हो, तो क्या फर्क पड़ता है! क्या लेना-देना है! वह पति की झंझट है। वह पति अपनी तकलीफ झेलेंगे। अगर उनकी उत्सुकता है तो वह खुद उस उत्सुकता का जो परिणाम होगा, भोगेंगे। मुझे क्या लेना-देना है!

दुख के बाहर आदमी होना चाहे, तो कोई रोक नहीं रहा है। दुख के बाहर होना हो, तो हम हर चीज से दुख के बाहर होने का संकेत निकाल लेते हैं।

यह मैंने तुमसे इस स्त्री की बात कही, ठीक इसके मुकाबले स्टिकलैंड गिलीलान की एक कहानी तुम्हें कहता हूं।

एक आदमी की एक नन्हीं बिटिया थी--इकलौती, अत्यंत लाड़ली। वह उसी के लिए जीता था, वही उसका जीवन थी। सो जब वह बीमार पड़ी और अच्छे से अच्छे वैद्य-हकीम भी उसे अच्छा न कर सके, तो वह करीब-करीब बावला सा हो गया और उसे अच्छा करने के लिए उसने आकाश-पाताल एक कर दिया। मगर सारे प्रयत्न व्यर्थ गए, बच्ची अंततः मर गयी।

पिता की मानसिक स्वस्थता नष्ट हो गयी। उसके मन में तीव्र कटुता भर गयी। उसने स्वजन, मित्र, सबसे काटकर अपने को अलग कर लिया। उसने द्वार-दरवाजे बंद कर दिए। जिन-जिन बातों में उसे रस था, उसने सब बातें छोड़ दीं। जीवन का सारा क्रम अस्तव्यस्त हो गया। मित्रों से मिलना बंद कर दिया, कामधाम बंद कर दिया, वह अपने घर में करीब-करीब कब्र की तरह घर को बना लिया, उसी में पड़ा रह गया।

एक रात उसे सपना आया। वह स्वर्ग में पहुंच गया था। वहां उसे छोटे-छोटे बाल देवदूतों का एक जुलूस दिखायी दिया। एक श्वेत सिंहासन के पास से उनकी अंतहीन पंक्ति चलती जा रही थी। सफेद चोला पहने हुए हर एक बाल देवदूत के पास जलती हुई मोमबत्ती थी। परंतु उसने देखा कि एक बच्चे के हाथ की मोमबत्ती बिना जलायी हुई है--हर एक बाल देवदूत एक मोमबत्ती को हाथ में लिए चल रहा है, सफेद वस्त्र पहने एक अंतहीन पंक्ति गुजर रही है--लेकिन एक देवदूत के हाथ में बत्ती बुझी हुई है। फिर उसने देखा कि प्रकाशहीन मोमबत्ती वाली वह बालिका तो उसी की बिटिया है। वह उसकी ओर लपका। जुलूस थम गया, उसने बालिका को बाहों में भर लिया, प्यार से उसको सहलाया और पूछा, बेटी, सिर्फ तुम्हारी ही मोमबत्ती क्यों बुझी हुई है? पिताजी ये लोग तो इसे बार-बार जलाते हैं, पर आपके आंसू इसे बार-बार बुझा देते हैं।

और तभी आदमी की नींद टूट गयी। संदेश स्पष्ट था, उसका उस पर गहरा प्रभाव पड़ा। उस दिन से वह एकांत की कैद से निकलकर, फिर से आनंदपूर्वक पहले की तरह अपने पुराने मित्रों, संबंधियों से मिलने-जुलने लगा। अब उसकी लाड़ली बिटिया की मोमबत्ती उसके व्यर्थ आंसुओं से बुझती नहीं थी।

सपना है। सपना तुम्हारा है। सपना इशारा देता है। सपना तुम्हारे अचेतन से उठता है। इस आदमी ने यह सपना देखा। ऐसा नहीं है कि यह कहीं कोई सच में स्वर्ग पहुंच गया, कि वहां इसकी बिटिया इसको दिखायी पड़ गयी बुझी मोमबत्ती ले जाती हुई। लेकिन इसके अचेतन ने इसे खबर दी कि तुम मूढ़ता कर रहे हो, तुम व्यर्थ की मूढ़ता कर रहे हो, इसमें कुछ सार नहीं है। ये आंसू अब कब तक रोते रहोगे? इसके अचेतन ने एक संकेत भेजा। यह सपना इसी का संकेत है कि तुम्हारे आंसू गिर रहे तुम्हारी लड़की की मोमबत्ती पर, उसकी रोशनी बुझ-बुझ जाती है, अब यह बंद करो। क्योंकि तुम दुखी हो, तो तुमने जिससे प्रेम किया है वह दुखी होगा। तुम दुखी हो तो तुम सारे जगत को दुख में उतार रहे हो। तुम दुख की सीढ़ी बन रहे हो।

इसको बात ख्याल में आ गयी। फिर जीना उसने शुरू किया, फिर अपने को फैलाया, फिर रोशनी में आया, फिर फूल देखे, फिर चांद-तारे देखे, फिर नाचा होगा, फिर गीत गाया होगा, फिर मित्रों से मिला, फिर संबंध-सेतु बनाए, फिर जीने लगा। वह जो कब्र थी, उसके बाहर आ गया। इशारा काम कर गया। तुम्हारे स्वप्न तुम्हारे अचेतन में चलती हुई उधेड़बुन की खबरें हैं।

अब इस स्त्री ने सपना देखा कि एक स्त्री दिखायी पड़ती है--सपना ही है वह, क्योंकि ध्यान में इस तरह की बातें कैसे दिखायी पड़ सकती हैं! झपकी खा रही होगी ध्यान में बैठकर। ध्यान में कहीं स्त्रियां दिखायी पड़ेंगी। मगर उसने सोचा कि उसने बड़ी भारी बात खोज ली है। अगर थोड़ी समझदारी से समझे तो उसका मतलब यह है कि मन ने उसे कहा कि तेरे भीतर बहुत ईर्ष्या पड़ी है। वही ईर्ष्या ही स्त्री का प्रतिबिंब बनकर खड़ी हो गयी।

सच तो यह है कि इस स्त्री ने इस घटना को देखने के पहले ही उस पड़ोसी स्त्री पर शक करना शुरू कर दिया होगा। चाहे वह शक स्पष्ट न रहा हो, धुंधला-धुंधला रहा हो, क्योंकि उस शक के बिना यह सपना नहीं आ सकता था। अब यह कहती उलटी बात है। यह कहती है कि सपने से मुझे पता चला। लेकिन बात ऐसी हो नहीं सकती। सपने के पहले इसके मन में शक रहा होगा। हो सकता है स्त्री पर शक न रहा हो, तो पति पर शक रहा होगा। शक रहा होगा। उस शक ने ही सपने का रूप लिया है। एक संदेह रहा होगा, वही संदेह मूर्तिमान होकर खड़ा हो गया है।

अब ईर्ष्या में जल रही है। अभी इसे भी पक्का नहीं है कि सच में कोई संबंध है पति का। संबंध हो तो भी ईर्ष्या का क्या कारण है! कौन किसका पति है और किसकी पत्नी है! और ईर्ष्या के कारण तुम जलते हो, तुम दुख पाते हो। दुख पाने का तय कर लिया हो तो ठीक। ईर्ष्या को खूब पानी दो, सींचो, संवारो।

यह तो मैंने एक उदाहरण की बात कही। लोग हैं, प्रतिस्पर्धा के कारण दुख पा रहे हैं। कोई अहंकार के कारण दुख पा रहा है। कोई निर्धनता के कारण दुख पा रहा है। लेकिन इन सबके दुख के कारण तुम्हारे भीतर हैं। तुम धन चाहते हो, इसलिए निर्धनता में दुख है। तुम सम्मान चाहते हो, सम्मान नहीं मिलता, इसलिए दुख है। तुम अहंकार को फैलाकर दुनिया में कुछ सिद्ध करना चाहते हो, दुनिया सिद्ध नहीं करने देती है, तो दुख है। दुख कोई दूसरा पैदा नहीं कर रहा है। दुख तुम्हारे स्वनिर्मित हैं। और यह अच्छा है कि स्वनिर्मित हैं, क्योंकि इसी में वह राज छिपा है--तुम चाहो तो इनके बाहर अभी आ सकते हो। और मैं कहता हूं, अभी! मैं यह भी नहीं कहता

कि कल या कभी। इसी क्षण तुम सारे दुख के बाहर आ सकते हो। अगर तुम एक क्षण की भी देर कर रहे हो तो उसका मतलब सिर्फ इतना ही है कि तुम्हारा दुखों से लगाव हो गया है, तुम उन्हें छोड़ना नहीं चाहते।

ऐसे ही जैसे एक आदमी अंगारा हाथ में रखे हो और चिल्लाता हो कि मैं इस अंगारे को कैसे छोडूं? ऐसी तुम्हारी दशा है। तुम उससे क्या कहोगे कि पागल, अगर अंगारा जला रहा है तो छोड़ने में देर क्या है? अंगारा तुझे नहीं पकड़ सकता, तूने ही अंगारे को पकड़ा है। तो तू एक तरफ जल भी रहा है, इसलिए दुख भी हो रहा है, तू बचना भी चाहता है; और अंगारे में कुछ लगाव भी है, तो तू छोड़ता भी नहीं। ऐसा द्वंद्व है।

दुख में हमारा कुछ रस है। उसे हम छोड़ते भी नहीं। और दुख दुख दे रहा है, इस कारण छोड़ना भी चाहते हैं। इसलिए जाते भी हैं और पूछते भी हैं कि दुख से छुटकारा कैसे हो?

भगवान ने
सोने के प्याले में
आनंद भरकर मनुष्य को दिया
और कहा, इसे पीओ
और मस्ती में भूल जाओ।
केवल आज का दिन ही सही है,
अतीत और भविष्य
दोनों को भूल जाओ।
भगवान ने
मिट्टी के प्याले में
शोक भरकर मनुष्य को दिया
और कहा, इसे पीओ
और आनंद का अर्थ समझो।
अंत में सबकी किस्मत में
आंसू लिखा है,
दुनिया में जो भी चाक-चिक है
उसे व्यर्थ समझो।

सुख भी है संसार में, दुख भी है संसार में। सुख सोने के प्याले में दिया भगवान ने कि पीओ और मस्ती में भूल जाओ। और फिर दुख मिट्टी के प्याले में दिया और कहा, इसे पीओ और आनंद का अर्थ समझो।

अंत में सबकी किस्मत में
आंसू लिखा है,
दुनिया में जो भी चाक-चिक है
उसे व्यर्थ समझो।

सुख दे रहा है संसार, साथ में दुख। क्योंकि दुख के स्वाद के साथ ही सुख का स्वाद समझ में आएगा। और जब तुम समझने में कुशल हो जाओगे तो तुम देखोगे--हर सुख के साथ दुख जुड़ा है। और हर सोने की प्याली के पीछे मिट्टी की प्याली आ रही है। और हर दिन के साथ रात बंधी है। और हर जन्म के साथ मौत की गांठ पड़ी

है। जिस दिन तुम्हें यह दिखायी पड़ेगा कि यहां हर सुख दुख को छिपाए हुए आ रहा है, उस दिन तुम दोनों के बाहर हो जाओगे। दोनों के बाहर होने का उपाय साक्षीभाव है।

दुख हो, उसे भी देख लो; सुख हो, उसे भी देख लो; और यह जानते रहो कि मैं दोनों में कोई भी नहीं हूं। मैं पार हूं, मैं अलग हूं, मैं भिन्न हूं। इस भिन्न के बोध में ही तुम्हारे जीवन में आनंद उतरेगा। आनंद सुख-दुख के पार है। और इस भिन्नता के बोध में ही तुम्हारे जीवन में उत्सव आएगा।

उत्सव अभी हो रहा है। ऐसा नहीं है कि कोई साज सजना है, संगीतज्ञ आने हैं, नर्तक इकट्ठे होने हैं, सब मौजूद हैं। यह जगत लीला है। यह जगत बड़ा उत्सव है।

आखिरी प्रश्नः प्रायः रोज ही मैत्रेय जी हमें सचेत करते हैं कि प्रवचन के बीच खांसने से ओशो को बाधा पहुंचती है, लेकिन कल के प्रवचन के दरम्यान कई गौरैए चिड़िएं चीं-चीं करती हुई आपके इर्द-गिर्द मंडराती रहीं और फिर उनमें से एक आपके बाएं हाथ पर और दूसरी माइक पर बैठ गयी, और आश्चर्य कि उससे आपकी मुद्रा या प्रवचन-प्रवाह में रत्तीभर भी फर्क नहीं पड़ा। और गौरैए भी ऐसे आयीं-गयीं जैसे किसी शाख पर आती-जाती हों और ऐसा लगा कि सब कुछ अपनी जगह स्वाभाविक रूप में स्थित है, यद्यपि हम श्रोतागण अवश्य चकित रह गए! इस पर थोड़ा प्रकाश डालने की अनुकंपा करें।

मैत्रेय जी को तुम्हें कहना पड़ता है, न खांसो--और तुमने एक मजे की बात देखी, तुम उनकी मान भी लेते हो और खांसते भी नहीं। तो खांसना करीब-करीब झूठ है। और तुमने यह देखा, एक आदमी खांसे, तो दूसरा खांसेगा, तीसरा खांसेगा, चौथा खांसेगा, एकशृंखला पैदा होती है।

और खांसने के पीछे कुछ कारण हैं। खांसने के पीछे खांसी शायद ही कारण होती है--सौ में एक मौके पर। तब तो तुम रोक ही नहीं सकते, चाहे मैत्रेय जी लाख सिर मारें। तुम क्या करोगे! कोई भी क्या करेगा! लेकिन निन्यानबे मौकों पर तुम रोक पाते हो। जो तुम रोक पाते हो वह झूठी है।

पर झूठी खांसी क्यों आती है? झूठी खांसी इसलिए आती है कि तुम खाली बैठे हो। खाली बैठे तुम्हें बड़ी बेचैनी होती है। आदमी, देखा, खाली बैठे-बैठे सिगरेट पीने लगता है। खाली बैठे-बैठे उसी अखबार को दुबारा पढ़ने लगता है। खाली बैठे-बैठे भूख लग आती है, जाकर फ्रिज खोलकर कुछ खाने लगता है। खाली नहीं बैठ सकते। खाली बैठना बड़ा कठिन है। कुछ न कुछ तुम करोगे।

जब तुम कभी ध्यान के लिए बैठोगे थोड़ी देर को, तो तुम कहोगे, कहीं चींटी चढ़ने लगी--कहीं कोई चींटी नहीं है, देखो, चींटी नहीं चढ़ रही है--फिर कहीं पैर में खुजलाहट आ गयी, कहीं हाथ सुन्न हो गया, कहीं कान में कुछ चढ़ने लगा, कहीं भीतर कुछ होने लगा, हजार चीजें होने लगीं। ऐसे कुछ भी नहीं होता। ये हजार चीजें तुम्हारे मन की जो बेचैनी की आदत है, उसके कारण होती हैं।

अब तुम यहां बैठे हो, डेढ़ घंटा! तुम कुछ न कर सकोगे, तो खांसोगे। और एक खांसा तो दूसरे को अचानक लगेगा कि उसको भी खांसी आ रही है।

मनुष्य करीब-करीब अनुकरण से जीता है। डार्विन गलत नहीं है, आदमी बंदर की औलाद है।

तुमने कभी देखा, रास्ते पर तुम चले जा रहे हो और एक आदमी पेशाबघर में चला गया, अचानक तुम्हें ख्याल आया कि अरे, तुम्हें भी पेशाब लगी है। अभी देखो, मैंने अभी पेशाब शब्द कहा, तुममें से कई को लग

गयी होगी। एकदम ख्याल आ जाएगा। तुमने देखा, अगर कोई नीबू का नाम ले दे तो जीभ पर लार आने लगती है। नाम से! आदमी ऐसा अनुकरण से भरा हुआ है।

तो मैत्रेय जी तुम्हें रोकते हैं। मुझे कोई बाधा पड़ेगी, ऐसा नहीं है। लेकिन तुम शांत बैठे हो तब भी तुम मुझे नहीं सुन पाते, और अगर तुम खांसा-खांसी में उलझ गए तब तो तुम बिल्कुल ही नहीं समझ पाओगे। मुझे क्या बाधा पड़ेगी? लेकिन तुम जिस प्रयोजन से यहां बैठे हो, उसमें खलल पड़ जाएगा। तुम्हारा मन तो बड़े जल्दी ही डांवाडोल हो जाता है। तुम्हें तो बड़ी छोटी-छोटी बातों में विघ्न पड़ जाता है। तुम्हें तो निर्विघ्न रहना इतना कठिन है। इसलिए तुमसे कहते हैं।

रह गयी गौरैए चिड़ियों की बात, तो वह कोई मैत्रेय जी की तो सुनेंगी नहीं! उनसे वह कितना ही कहें, उनकी जो मौज होगी वैसा करेंगी। लेकिन चिड़ियां माफ की जा सकती हैं। उनका यहां आ जाना भी सुखद है। उनका आना इसी बात की खबर देता है कि तुम शांत बैठे हो। उनका आना इसी बात की खबर देता है कि उन्हें तुम्हारी चिंता नहीं। मूर्तिवत, वह तुम्हें यही समझती हैं कि बैठे हैं--संगमरमर की मूर्तियां। कोई अड़चन नहीं, वे यहां खेलकूद करके, शोरगुल मचाकर अपना चली जाती हैं। उनका यह कभी-कभी आ जाना तुम्हारी शांति का प्रतीक है। सुंदर है।

फिर तुम पूछते हो कि "हम चकित हुए!"

चकित होने का इसमें कुछ भी नहीं है। मेरे बोलने से गौरैया चिड़िया परेशान नहीं हो रही है, तो गौरैया चिड़िया के चीं-चीं करने से मुझे क्यों परेशान होना चाहिए! कम से कम इतना तो गौरव मुझे दोगे, जितना गौरैया चिड़िया को देते हो! मेरे हाथ पर बैठने में उसे कुछ अड़चन नहीं हो रही है, तो मुझे क्यों अड़चन होनी चाहिए? वह बैठ भी इसीलिए सकी कि उसे प्रतीत हो रहा है कि अड़चन नहीं होगी।

धीरे-धीरे जैसे-जैसे तुम शांत होने लगोगे, तुम पाओगे, वे तुम्हारे सिर पर भी आकर बैठने लगीं, हाथ पर आकर बैठने लगीं, जैसे-जैसे उन्हें यह भरोसा आ जाएगा कि यहां भलेमानुस बैठे हैं, इनसे कुछ भय का कारण नहीं है। तुमसे भय है, डर है कि तुम उन्हें नुकसान पहुंचा सकते हो, उस भय के कारण वे दूर-दूर हैं। जैसे-जैसे तुम्हारी तरफ से निर्भय की तरंग उठने लगेगी, फिर दूर रहने का कोई कारण नहीं रह जाता।

आदमी ने पशुओं को भयभीत करके दूर कर दिया है, और पशुओं को दूर करके एक बड़ी महत्वपूर्ण बात खो दी, प्रकृति से संबंध खो दिया है। तुमसे तो वृक्ष भी डरते जब तुम वृक्षों के पास जाते हो।

अभी वैज्ञानिक इस पर काफी परिशोध करते हैं। उन्होंने यंत्र भी बना लिए हैं, वृक्षों में लगा देते हैं, और वृक्ष से खबर आने लगती है। जैसे कि तुमने कभी कार्डियोग्राम लिया हो, तो कागज पर ग्राफ बन जाता है कि हृदय की धड़कन कैसी है? ऐसे ही वृक्ष के भीतर कैसी तरंग चल रही है, उसका ग्राफ बन जाता है। जैसे ही वृक्ष देखता है कि कोई आदमी आ रहा है, उसकी तरंग बदल जाती है। फिर आदमी-आदमी से बदलती है। अगर वह देखता है कि लकड़ी काटने वाला कुल्हाड़ी लिए चला आ रहा है--अभी उसने काटी नहीं, अभी दूर ही है--तत्क्षण उसकी बेचैनी बढ़ जाती है। तरंगें बड़ी जोर की बनने लगती हैं, वह बहुत घबड़ाया हुआ हो जाता है। उसने देखा, माली आ रहा है पानी लिए हुए, उसकी तरंगें बड़ी शांत हो जाती हैं।

कुछ आश्चर्य नहीं है कि संत फ्रांसिस की कहानियां सच ही रही हों। कुछ आश्चर्य नहीं है कि महावीर और बुद्ध के जीवन के उल्लेख सही ही रहे हों। अर्थ तो उनका स्पष्ट है कि महावीर के पास पशु-पक्षी आकर बैठ जाते, सिंह भी आकर बैठ जाता। इतनी शांत है दशा कि सिंह को भी तरंग पकड़ लेती होगी। कि बुद्ध जिस जंगल से निकलते हैं, वहां सूखे वृक्ष हरे हो जाते हैं। इतने तरंगित हो जाते होंगे बुद्ध के आगमन से।

तो कुछ भी चकित होने का कारण नहीं है। धीरे-धीरे तुम्हारी तरंग जब ठहरती जाएगी और जब हम यहां एक वातावरण बनाने में सफल हो जाएंगे, जहां एक भी आदमी से उन्हें भय न हो, तो तुम देखोगे, चकित होकर देखोगे कि जैसे तुम यहां बैठे हो, ऐसे ही बहुत सी चिड़ियां भी, पक्षी भी आकर बैठ गए हैं। तुम्हारे कारण भय बना रहता, घबड़ाहट बनी रहती। हिंसा तुम्हारे भीतर है, तो उसकी तरंग है चारों तरफ। उस तरंग के हट जाने पर एक संबंध जुड़ता है प्रकृति से।

कहते हैं, संत फ्रांसिस से एक आदमी पूछने आया। नदी के किनारे फ्रांसिस खड़े थे। उस आदमी ने पूछा कि हमने सुना है कि पशु-पक्षी भी आपकी बातें सुनने आते हैं, आपको इस संबंध में क्या कहना है? फ्रांसिस ने कहा, मैं क्या कहूं, यहां कोई पशु-पक्षी है? कोई है भाई यहां? उन्होंने जोर से आवाज मारी। वहां कोई पशु-पक्षी नहीं था, लेकिन मछलियों ने सिर ऊपर निकाला--पूरी नदी पर मछलियों ने सिर ऊपर कर लिया। उन्होंने कहा, इनसे पूछ लो। अब मैं क्या प्रमाण दूं, उन्होंने कहा, इनसे पूछ लो।

यह हो सकता है, क्योंकि सारा अस्तित्व एक ही प्राण से आंदोलित है। पशु-पक्षी के भीतर भी हमारे जैसी ही आत्मा है। वृक्ष के भीतर भी हमारे जैसे ही आत्मा है। शरीर का भेद है, आत्मा का तो कोई भेद नहीं। वृक्ष ने वृक्ष का शरीर लिया है, पक्षी ने पक्षी का शरीर लिया है, तुमने आदमी का शरीर लिया है। यह फर्क ऊपर-ऊपर है। यह वस्त्रों का भेद है--किसी ने लाल रंग के कपड़े पहने हैं, किसी ने नीले रंग के कपड़े पहने हैं, किसी ने सफेद कपड़े पहन रखे हैं, या कोई नग्न खड़ा है। किसी ने पूर्वीय ढंग के कपड़े पहने हैं, किसी ने पाश्चात्य ढंग के कपड़े पहने हैं, मगर यह कपड़ों का फर्क है, भीतर जो छिपा है, वह तो एक ही है।

बिजली के खंभे पर बैठी चिड़िया
ठिनक-ठिनक गाती है
किस दिल से भरकर रखी है
कितनी करुणा भर लाती है
पंख फुदकते, चोंच मटकती
कूद-कूद बल खाती है वह
जीने के जंतर-मंतर पागलनी-सी
समझाती है वह
ऊपर है आकाश उघाड़ा
नीचे धरती बिना ढंकी
और मध्य में तेरी महिमा
तारों से हर ओर टंकी
किसके महल झोपड़ी किसकी
किसकी फूलन कांटे किसके
आंख मूंद लेने पर यह
चलते दिखते सन्नाटे किसके
यह गिरधारी की कमरी-सी
यह राधा के वलय बंद-सी
यह प्रतिभा की सूझों वाले

रस भर आए अमर छंद-सी
ऊंची-नीची मैली-उजली
यमुना की पागल हिलोर-सी
गगन तलक उठ रही पवन के
बिना बंधे उन्मत्त जोर-सी
चहक-चहककर बहक-बहककर
बोलों में झरते प्रणाम-सी
गांवों में अधनंगे शिशु के
दो हाथों के राम-राम-सी
पल-पल पर वह खेल रही है
कितनी मस्ती भर लाती है
बिजली के खंभे पर बैठी चिड़िया
ठिनक-ठिनक गाती है

सुनना सीखो। कान थोड़े साफ करो, आंखों के पर्दे हटाओ, तो तुम्हें हर जगह से प्रभु का संदेश ही सुनायी पड़ेगा। हर स्थिति में उसके ही इशारे हैं।

आज इतना ही।

सतत्तरवां प्रवचन

जितनी कामना, उतनी मृत्यु

पांडुपलासो"ब दानिसि यमपुरिसापि च तं उपट्ठिता।
उय्योगमुखे च तिट्ठसि पाथेयम्पि च ते न विज्जति।। 195।।

सो करोहि दीपमत्तनो खिप्पम वायम पंडितो भव।
निद्धन्तमलो अनंगणो दिब्बं अरियभूमिमेहिसि।। 196।।

उपनीतवयो च दानिसि सम्पयातोसि यमस्स सन्तिके।
वासोपि च ते नत्थि अन्तरा पाथेय्यम्पि च ते न विज्जति।। 197।।

सो करोहि दीपमत्तनो खिप्पम वायम पंडितो भव।
निद्धन्तमलो अनंगणो न पुन जातिजरं उपेहिसि।। 198।।

अनुपुब्बेन मेधावी थोकथाकं खणे खणे।
कम्मारो रजतस्सेव निद्धमे मलमत्तनो।। 199।।

अयसा"व मलं समुट्ठितं तदुट्ठाय तमेव खादति।
एवं अतिधोनचारिनं सानि कम्मानि नयन्ति दुग्गति।। 200।।

एक स्वर्णकार मरणशय्या पर था। स्वभावतः मृत्यु से बहुत भयभीत। क्योंकि मृत्यु के लिए कोई तैयारी तो की नहीं थी। कोई भी करता नहीं। जीवन ऐसे ही बीत जाता है, और आखिरी घड़ी जब करीब आती है तब बेचैनी होती है। उस दूर की यात्रा के लिए कुछ आयोजन तो किया नहीं था। बहुत घबड़ाने लगा। उसके बेटों ने अपने पिता के जीवन के लिए भिक्षुसंघ के साथ भगवान को निमंत्रित करके दान दिया। भोजनोपरांत पुत्रों ने कहा, भंते, इस भोजन को हम लोगों ने पिता के जीवन के लिए दिया है, आप उन्हें आशीष दें। आशीष दें कि उनकी आयु लंबी हो।

मरता हुआ आदमी, मरणशय्या पर पड़ा आदमी अभी भी आकांक्षा जीवन की ही करता है। तो इसका अर्थ हुआ कि जीवन से कुछ सीखा नहीं। इसका अर्थ हुआ कि जीवन की व्यर्थता दिखायी नहीं पड़ी। इसका अर्थ हुआ कि जीवन जीआ ही नहीं। अन्यथा व्यर्थता दिखायी पड़ ही जाती।

बुद्धपुरुषों के पास जाकर भी लोग व्यर्थ की ही मांग करते हैं। आशीष भी मांगते हैं तो असार के लिए मांगते हैं।

उसके पुत्रों ने कहा, आशीष दें भगवान कि हमारे पिता की आयु लंबी हो। बुद्ध हंसे और उन्होंने मरणशय्या पर पड़े वृद्ध से कहा, उपासक, अब तू जीवन का मोह छोड़। जीवेषणा मूढ़ता है। अब तो कम से कम

मूढ़ता छोड़। अब तो कम से कम होश सम्हाल। अब तो जाग। तू बूढ़ा हुआ, तेरा शरीर पीले पत्ते के समान पक गया है और परलोक की यात्रा के लिए तेरे पास कोई पुण्य-पाथेय नहीं है। मांगना हो तो उस संबंध में कुछ मांग।

जिस यात्रा के लिए तू चला है, उस यात्रा के लिए कलेवा भी तेरे पास नहीं है और यात्रा लंबी है। पुण्य-पाथेय तेरे पास नहीं। तेरी गठरी खाली है। यह जीवन तो गया, तू पीले पत्ते की भांति हो गया है, अब गिरा, तब गिरा, जरा सा हवा का झोंका पर्याप्त होगा और अभी भी तू वृक्ष से चिपटे रहना चाहता है। अब तैयारी कर वृक्ष से गिरने की। और यह यात्रा जिस पर तू निकलेगा मृत्यु के बाद, लंबी है। देह छूट जाएगी, देह से जो कमाया था वह भी छूट जाएगा। कुछ ऐसा कमाया है जो देह के पार, देह के बिना तेरे साथ जा सकता हो?

उसे ही हम पुण्य कहते हैं। पुण्य का अर्थ है, कुछ ऐसी कमाई जो मौत न छीन सके। पुण्य का अर्थ है, कुछ ऐसी कमाई जो देह की नहीं है, देहातीत है। ध्यान की है, समाधि की है। कुछ ऐसी कमाई जो आत्मिक है, जो आत्मा के साथ चलेगी। उसको पुण्य-पाथेय कहते हैं। पाथेय का अर्थ होता है, यात्रा के लिए कलेवा। रास्ते में भूख लगेगी तो कुछ पाथेय होना चाहिए।

तो बुद्ध ने कहा कि परलोक की यात्रा के लिए तेरे पास कोई पुण्य-पाथेय नहीं है और अब भी तू जीवन की आकांक्षा करता है! और अब भी तू मांग रहा है कि और लंबा जीवन मिले! इतने लंबे जीवन से क्या पाया? बूढ़ा काफी बूढ़ा था, सौ वर्ष का होगा। इतने लंबे जीवन से क्या पाया? अब मूढ़ता छोड़। सौ वर्ष में नहीं मिला तो दो-चार वर्ष और जी लेगा तो क्या मिलेगा? सौ वर्ष में गंवाया ही, तो दो-चार वर्ष में और थोड़ा गंवा लेगा, और क्या होगा?

बुद्ध ने कहा, अब जीवन की नहीं, अपनी खोज कर। अब अपनी प्रतिष्ठा कर। अपना केंद्र खोज। उसे खोज जो अमृत है। मौत से जूझने का वही उपाय है। मौत से जूझने का उपाय जीवन नहीं है, क्योंकि जीवन को तो मौत जीत ही लेती है, सदा जीत लेती है।

देखा, चिकित्साशास्त्र ने कितना विकास कर लिया है, आदमी को कितनी औषधियां उपलब्ध हो गयी हैं, लेकिन मृत्यु की दर तो सौ प्रतिशत की सौ प्रतिशत है। जितने आदमी पैदा होते हैं उतने आदमी मरते हैं। मृत्यु की दर सौ प्रतिशत ही रहेगी। मृत्यु की दर कभी कम नहीं होने वाली। चाहे दवाएं हों, चाहे आयोजन हों, आदमी थोड़ा लंबा जी लेगा, लेकिन मौत तो आनी ही है। ऐसा कभी भी न हुआ कि मौत निन्यानबे प्रतिशत हो, कि सौ बच्चे पैदा हों और निन्यानबे आदमी मरें और एक बच जाए। मृत्यु-दर सुनिश्चित है।

जीवन में तूने पाया क्या, बुद्ध उससे पूछने लगे। यह बात बड़ी कठोर है। मरते आदमी से ऐसी बात पूछनी नहीं चाहिए। मरते आदमी को तो हम सांत्वना देते हैं। मरते आदमी को तो हम लोरी सुनाते हैं कि वह सो जाए शांति से। मरते आदमी को हम ऐसे कठोर शब्द नहीं कहते। लेकिन बुद्ध ने बड़ा कठोर शब्द कहा। उससे कहा, तेरे पास कोई पुण्य-पाथेय नहीं, अपनी प्रतिष्ठा कर, अपना केंद्र खोज, स्व में रम, प्रज्ञावान हो, अब और मूर्ख मत बन, स्वप्नों से जाग। जीवन मात्र एक स्वप्न है।

संत सांत्वना नहीं देते। और जो सांत्वना दे, वह संत नहीं है, इसे समझ लेना। हालांकि तुम जिन्हें संत कहते हो, वे सांत्वना देने का ही काम करते हैं। और तुम उन्हें पूजते भी इसीलिए हो कि वे सांत्वना देते हैं। तुम्हारे सुख-दुख में थपकी देते हैं। तुम्हें भुलाए रखते हैं, भरमाए रखते हैं। तुमसे कहते चले जाते हैं, सब ठीक है, घबड़ाओ न, सब ठीक हो जाएगा।

संत सांत्वना देते ही नहीं, संत तो सत्य देते हैं। और सत्य सदा कठोर है। सत्य सदा कठोर है, जब मैं ऐसा कहता हूं तो इसका अर्थ ठीक से समझ लेना। सत्य अपने आप में कठोर नहीं है, लेकिन तुम इतना असत्य में जीए

हो, इसलिए सत्य कठोर मालूम होता है। तुमने अपना सारा जीवन असत्य कर लिया है, इसलिए सत्य की चोट गहरी पड़ती है। भिद जाती है प्राणों तक। सत्य को तुम सह नहीं पाते, क्योंकि तुमने असत्य को ही सहने का अभ्यास किया है।

सत्य तो होता है नग्न, उस पर कोई वस्त्र नहीं होते। और न सत्य कोई मुखौटे ओढ़ता है। और न सत्य तुम्हारे अनुकूल होने की कोई चेष्टा करता है। तुम्हारे अनुकूल तो जो सत्य होगा तो असत्य हो जाएगा। तुम असत्य हो, तुम्हारे अनुकूल सत्य हुआ कि असत्य हुआ। और सांत्वना तुम्हें उसी से मिलती है जो तुम्हारे अनुकूल हो। जो तुम्हारे प्रतिकूल हो, उससे चोट लगती है। ख्याल रखना, सत्य में कोई चोट नहीं है, क्योंकि तुमने असत्य का अभ्यास कर रखा है, इसलिए चोट है। सत्य जटिल नहीं है। सत्य तो बड़ा सरल है। लेकिन तुम जटिल हो। सत्य तो सीधा, साफ-सुथरा है। लेकिन तुम बड़ी उलझन और बड़ी गांठों से भरे हो। तो सत्य की चोट लगती है।

संत चोट करते हैं। क्योंकि चोट ही एकमात्र आशा है, चोट में ही आश्वासन है, शायद तुम जग जाओ। इसलिए संतों को हम धन्यवाद भी नहीं दे पाते। और जब तक हम धन्यवाद देने को तैयार होते हैं, तब तक संत जा चुके होते हैं। जीसस को तुमने धन्यवाद दिया? बुद्ध को तुमने धन्यवाद दिया?

हां, फिर मर जाने के बाद तुम हजारों साल तक पूजा करते हो। यह पश्चात्ताप है। तुम्हारी पूजा पश्चात्ताप है। तुम पश्चात्ताप करते हो कि हम धन्यवाद नहीं दे पाए, चूक गए। और यह सदा हुआ है।

असंतों की तुम पूजा करते हो। तुम जरा अपने मन की बात पहचानना, परखना। तुम किसे संत कहते हो? जिसके पास जाकर तुम्हें सांत्वना मिल जाए। तुम्हारा संत सांत्वना का नाम है। जो तुम्हारी पीठ थपथपा दे। जो तुमसे कह दे, घबड़ाओ मत। जो तुमसे कह दे, मेरा हाथ तुम्हारे सिर पर है। जो तुमसे कह दे, मेरी आशीष तुम्हारे साथ है। जो तुमसे कह दे कि प्रार्थना कर लो, परमात्मा सब ठीक कर देगा। कि यह मंत्र जप लो, कि यह ताबीज ले लो, इससे सब ठीक हो जाएगा। जो तुम्हें सस्ते नुस्खे दे देता है। और सस्ते नुस्खों में तुम सो जाते हो।

जो तुम्हें सांत्वना देता है, वह तुम्हारा दुश्मन है। क्योंकि उसकी सांत्वना के कारण ही तुम जागोगे नहीं। उसकी सांत्वना एक तरह की शामक दवाई है, ट्रैंक्विलाइजर है। अच्छी लगती है, मीठी लगती है। पर जो मीठा लगता है, वह सभी अमृत थोड़े ही होता है। सच तो यह है कि जिसको भी तुम्हारे गले के भीतर जहर उतारना हो, उसे जहर पर मिठास का लेप करना पड़ता है। सांत्वना मीठा जहर है। मारेगा; इससे तुम जागोगे नहीं।

इसलिए बुद्धपुरुष चोट करते हैं। उनके वचन तीर की तरह छिद जाते हैं। जिनमें सामर्थ्य होती है सहने की, वे रूपांतरित हो जाते हैं, और जो कायर हैं, भाग खड़े होते हैं। वे नाराज हो जाते हैं सदा के लिए। वे फिर कभी बुद्ध के चरणों में नहीं आते। वे कभी उनके पास नहीं फटकते। वे सदा के लिए दुखी होकर नाराज हो जाते हैं, वे दुश्मन हो जाते हैं।

तुम जरा ख्याल करना, तुम अपने मित्रों के दुश्मन हो जाते हो, अपने दुश्मनों को अपना मित्र समझ लेते हो।

बुद्ध से कभी किसी ने कहा था कि आप इतनी कठोर बातें कह देते हैं; तो बुद्ध ने कहा, क्योंकि मैं तुम्हारा कल्याण-मित्र हूं--यह बड़ा प्यारा शब्द बुद्ध ने उपयोग किया, कल्याण-मित्र--अन्यथा मुझे क्या प्रयोजन है कि तुम्हें चोट करूं। तुम्हें चोट करने में मुझे कुछ मजा नहीं आ रहा है। करुणा के कारण चोट कर रहा हूं, कल्याण-मित्र हूं।

जरा सोचो यह घटना, आदमी मर रहा है, अभी तो उससे कहना था, बिल्कुल न घबड़ाओ, अभी कहां मौत! अभी तो तुम जवान हो, अभी तो तुम्हारे चेहरे पर कैसी रौनक जवानी की, अभी कहां मरना है! अभी उठ

बैठोगे, सब ठीक हो जाएगा। बीमारी है, आयी है, चली जाएगी, घबड़ाओ मत। और तुम्हारा पुण्य तो काफी बड़ा है। इतने बड़े पुण्य से तुम्हारी रक्षा होगी ही। परमात्मा तुम पर प्रसन्न है। ऐसा बुद्ध कहे होते तो शायद यह बूढ़ा प्रसन्न होता, शायद और दान दिया होता। और दो-चार दिन बुद्ध के लिए निमंत्रित किया होता।

लेकिन बुद्ध ने तो बड़ी अजीब बात कही, उस मरते हुए बूढ़े को कहा कि अब तू जीवन का मोह छोड़। मूढ़ता काफी हो चुकी। सौ वर्ष कुछ कम नहीं होते। इतने दिन भटक लिया अंधा होकर, अब तो आंखें खोल। इस जीवन में धरा क्या है जिसकी तू मांग कर रहा है! इससे मिला क्या है? मिलेगा क्या? कब किसको क्या मिला है? हाथ आखिर राख से भरे रह जाते हैं। होश को सम्हाल, बुद्ध कहने लगे, कुछ पुण्य-पाथेय इकट्ठा कर ले, तू बिल्कुल भिखारी है।

स्वर्णकार बड़ा धनी था। वह उस श्रावस्ती नगर का सबसे बड़ा सुनार था, सबसे बड़ा सर्राफ था। उसके पास धन बहुत था। लेकिन बुद्ध उसे कह रहे हैं, तू भिखारी है, क्योंकि तेरे पास पुण्य-पाथेय नहीं। तेरे पास ध्यान तो बिल्कुल नहीं है, यह धन क्या काम पड़ेगा? यह जरा भी काम नहीं पड़ेगा। यह धन तो यहीं पड़ा रह जाएगा, तुझे अकेला जाना होगा। कुछ एक ऐसी बात सीख ले जो तेरे साथ जा सके, कोई तेरे संग हो सके--न पत्नी होगी, न बेटे होंगे, न धन होगा, न पद; न यह बाहर से मिलने वाली प्रतिष्ठा होगी, आत्मप्रतिष्ठा कर ले, अपने में ठहर जा; कुछ अपने स्व को जगा ले, ताकि मौत की अंधेरी रात से तू रोशनी लिए गुजर जाए।

एक-एक शब्द समझने जैसा है।

उससे कहा, तू बूढ़ा हुआ, तेरा शरीर पीले पत्ते के समान पक गया है और अभी भी तेरी वासना जवान की?

इसे ख्याल करना। शरीर तो बूढ़ा हो जाता है, वासना जवान ही बनी रहती है। और वासना अगर जवान बनी रहती है तो तुमने बाल धूप में पका लिए। फिर तुम्हारे जीवन में कोई प्रौढ़ता नहीं है। तुम्हारे जीवन में कुछ समझ, कोई सार जीवन का तुम्हारे हाथ नहीं लगा। तुम बूढ़े तो हो गए, लेकिन बचकाने के बचकाने हो।

ख्याल करना, संत बच्चों की भांति हो जाते हैं और असंत बचकाने के बचकाने रह जाते हैं। बचकानापन और बच्चों की भांति हो जाने का फर्क ख्याल में ले लेना। बचकानेपन का अर्थ है, आदमी बढ़ा ही नहीं। और पुनः बच्चों जैसे हो जाने का अर्थ है, आदमी इतना बढ़ा, इतना बढ़ा कि फिर सरल हो गया। कि जटिलता की व्यर्थता दिखायी पड़ गयी।

तो बच्चों जैसा हो जाना तो बड़ा बहुमूल्य है, अमूल्य है; और बचकाने रह जाना बड़ा दुर्भाग्य है। बच्चों जैसे हो जाना तो सौभाग्य है और बचकाने रह जाना बड़ी से बड़ी दुर्भाग्य की दशा है।

अब यह आदमी सौ वर्ष का हो गया। यह पीले पत्ते की तरह है। जरा सा हवा का झोंका, हवा के झोंके की भी जरूरत न पड़ेगी, यह गिरेगा, बिना झोंके के भी गिर जाएगा। यह अपने पकने के कारण ही गिरने वाला है। मौत के किनारे खड़ा। घड़ी दो घड़ी की बात है। इस सीमा पर खड़े होकर भी पीछे देख रहा है, आगे नहीं देख रहा है। जीवन को जकड़ रहा है, पकड़ रहा है--और थोड़ी देर रुक लूं, और थोड़ी देर रुक लूं।

ख्याल करो, जब आदमी और थोड़ी देर रुकना चाहता है तो यह किस बात का सबूत होता है? यह इस बात का सबूत होता है कि जीवन को जी नहीं पाया। जीआ जरूर, ऊपर-ऊपर। जीवन से पहचान न हुई। जीवन का सार इसके हाथ न लगा। ऐसे ही ऊपर से बह गया जीवन। अगर ठीक से जी लिया होता, तो अब जीवन को न पकड़ता। अब तो खुशी से छोड़ने को राजी हो जाता। धन्यवाद देता कि चलो ठीक हुआ। एक दुख-स्वप्न समाप्त

हुआ, एक व्यर्थ की दौड़ का अंत आ गया। और यह भविष्य की तरफ देखता, यह पीछे की तरफ लौटकर नहीं देखता।

जीवन को पकड़ने वाला आदमी सोचेगा, मेरे बेटे, उनकी शादी करनी है, उनके बेटों के बेटे, और अब तो पोते भी हो गए और नाती और सब, इनका क्या होगा? इतना धन कमाया, इसका क्या होगा! क्या करूंगा, क्या नहीं करूंगा? अभी यह मौत बीच में आ गयी, अभी तो बहुत काम अधूरे पड़े हैं। वह पीछे लौटता है, और पीछे का फैलाव देखता है। स्वभावतः सौ साल में उसने हजारों बातें शुरू कीं और हजारों बातें अधूरी रह गयीं, कोई बात पूरी तो कभी होती नहीं। क्योंकि एक में से दूसरी निकल आती है, दूसरी में से तीसरी निकल आती है और अधूरी ही रहती है। तो हजार काम अधूरे रह गए हैं। वह चाहता है, थोड़ी देर और रुक जाता तो सब पूरा कर लेता। जैसे कि कोई कभी पूरा कर पाया है! वह आगे नहीं देखता। ऐसे रोते और झींखते ही मरता है। इसलिए मृत्यु से भी चूक जाता है; जीवन से तो चूका ही, मृत्यु से भी चूक जाता है।

अगर तुम जीवन को जागकर देख लो तो भी सत्य उपलब्ध हो जाए। अगर तुम मृत्यु को जागकर देख लो तो भी सत्य उपलब्ध हो जाए। क्योंकि सत्य तो जागकर देखने में उपलब्ध होता है; किस चीज के प्रति जागे, इससे बहुत अंतर नहीं पड़ता।

इस वृद्ध को ही बुद्ध ने आज के पांच सूत्र कहे थे, ये पांच गाथाएं--

पांडुपलासो"ब दानिसि यमपुरिसापि च तं उपट्ठिता।
उय्योगमुखे च तिट्ठसि पाथेयम्पि च ते न विज्जति।।

"तू पीले पत्ते के समान हो गया, यमदूत तेरे पास खड़े हैं, तू प्रयाण के लिए तैयार है और तेरे पास पाथेय कुछ भी नहीं है? अतः तू अपने लिए द्वीप बना, उद्योग कर, पंडित बन, मल धो डाल और निर्दोष बन; तब तू दिव्य आर्यभूमि को प्राप्त करेगा।"

सो करोहि दीपमत्तनो खिप्पम वायम पंडितो भव।
निद्धन्तमलो अनंगणो दिब्बं अरियभूमिमेहिसि।।

"तू पीले पत्ते के समान हो गया।"

तो बुद्ध पहले तो उसे यह कहते हैं कि तेरी मौत आ गयी, अब तू जीवन की बात छोड़। कल तक तो तू टाल सकता था, स्थगित कर सकता था कि आज थोड़े ही मौत है--ऐसे ही तो हम सब टाल रहे हैं। हम कहते हैं, आज तो जिंदा हैं, कल जब आएगी मौत तब देखेंगे, अभी आती कहां? अभी तो जवान हैं, बूढ़े होंगे तब देखेंगे। बूढ़ा भी सोचता है, अभी इतने बूढ़े थोड़े ही हो गए हैं कि मर ही जाएंगे। कभी कोई आदमी इस तरह तो सोचता ही नहीं कि मर जाऊंगा। वह यही सोचता है, जीयूंगा, अभी तो बहुत जीयूंगा। अभी क्या बिगड़ा है, अभी तो सब ठीक है।

बुद्ध उससे कहने लगे कि अब तक तो तू टाल सकता था, आज टालने की कोई जगह न रही, तू पीले पत्ते के समान है और यमदूत तेरी खाट के आसपास खड़े हैं, मैं उन्हें देख रहा हूं, चाहे तुझे दिखायी न पड़ते हों। मौत आ गयी। अब तू जीवन के संबंध में सोचना छोड़, अब तू मौत के संबंध में सोच ले। जीवन तो चूका ही चूका,

गया सो गया, अब उस पर कुछ किया नहीं जा सकता; तूने मुझे बहुत देर में बुलाया है, बुद्ध ने कहा होगा; मरते वक्त बुलाया है। मगर अभी भी जो थोड़ी, घड़ी दो घड़ी बची हैं, पल दो पल बचे हैं, इनका भी ठीक उपयोग कर ले, तो कुछ हो सकता है। यमदूत तेरे पास आ खड़े हैं, जरा गौर से देख। मौत आ ही गयी है, मेरे आशीष कुछ काम न पड़ेंगे। और इस तरह के आशीष मैं देता भी नहीं।

मेरे पास लोग आ जाते हैं इस तरह के आशीष मांगने। इस देश में असंतों की इतनी लंबी परंपरा है कि लोग यही भूल गए हैं कि किस बात के लिए आशीष मांगना और किस बात के लिए आशीष नहीं मांगना। कोई आ जाता है कि अदालत में मुकदमा है, आशीर्वाद दे दीजिए कि मुकदमा जीत जाऊं। कोई आ जाता है कि लड़के को नौकरी नहीं मिल रही है, आशीष दे दीजिए कि लड़के को नौकरी मिल जाए।

एक महिला दो-चार दिन पहले संन्यास ली, मैंने पूछा, कुछ पूछना तो नहीं है? उसने कहा, नहीं, और तो सब ठीक है, मेरे लड़के पढ़ते-लिखते नहीं। स्कूल ही नहीं जाते, और जाते भी हैं तो कुछ पढ़ाई-लिखाई नहीं करते, कुछ आशीर्वाद दे दीजिए। इस तरह की बातों के आशीर्वाद मांगे जाते रहे हैं! और देने वाले देते रहे और लेने वाले लेते रहे! इससे एक बड़ी भ्रांति पैदा हो गयी है।

बुद्धपुरुष के पास जाकर किस बात का आशीर्वाद मांगना, इसकी भी व्यवस्था हम भूल गए हैं। बुद्ध से तो एक ही बात का आशीर्वाद मांगा जा सकता है कि ज्ञान हो, कि ध्यान हो, कि समाधि हो। क्योंकि बुद्ध के सामने तो वही धन है। और तो सब व्यर्थ है। और तो तुम कूड़े-करकट का आशीर्वाद मांग रहे हो।

तुम ऐसे समझो कि किसी चिकित्सक को जाकर कहो कि कुछ आशीर्वाद दे दो कि टी.बी. हो जाए, कि आशीर्वाद दे दो कि कैंसर हो जाए। तो जैसे यह मूढ़तापूर्ण लगेगा चिकित्सक को, वैसे ही बुद्ध को भी यह मूढ़तापूर्ण लगता है कि कोई मांगता है कि जीवन थोड़ा लंबा हो जाए। बुद्ध तो जीवन को रोग की तरह देखते हैं--दुख और दुख और दुख। बुद्ध कहते हैं, जन्म दुख, जवानी दुख, बुढ़ापा दुख, मृत्यु दुख, जीवन का सारा स्वाद दुख का है। इसको लंबाने का क्या अर्थ? तुम कैंसर को लंबाना चाहते हो? क्षयरोग को लंबाना चाहते हो?

बुद्ध ने उसे काफी झकझोरा होगा। उस मरते आदमी के साथ बड़ी कठोरता की। उनकी करुणा अपार रही होगी। अन्यथा मरते पर तो वह सोचते कि अब जाने भी दो। यह जिंदगीभर तो जागा नहीं, अब क्या जागेगा? छोड़ो भी। अब मरते वक्त इसको शांति से मर जाने दो। नहीं, लेकिन बुद्ध ने उसे मरते वक्त झकझोरा। क्यों? क्योंकि सत्य कुछ ऐसी बात है कि कभी-कभी क्षण में हो जाती है। इसलिए एक क्षण भी खोया नहीं जा सकता। सत्य कुछ ऐसी बात है कि अगर चोट लग जाए, अगर आदमी हिम्मतवर हो, साहसी हो, हृदय वाला हो और चोट खा जाए तो एक क्षण में भी घट जाता है। इसलिए आखिरी बूंद तक जीवन की बुद्धपुरुष चेष्टा करते हैं कि तुम जग जाओ। वे अंतिम तक तुम्हें झकझोरे जाते हैं।

कहा कि तू प्रयाण के लिए तैयार है और तेरे पास पाथेय कुछ नहीं है। खूब दुखी कर दिया होगा उस आदमी को। एक तो मौत, एक तो मर रहा हूं, जो था वह छूट रहा है--बेटे, बेटी, परिवार, धन, संपत्ति, जीवनभर की कमाई सब छूटी जा रही है--और एक यह सज्जन आ गए! और यह सज्जन कह रहे हैं कि तेरे हाथ में कुछ नहीं है, तू बिल्कुल खाली जा रहा है, और यात्रा तो होने वाली है, मौत आ गयी, ये यमदूत खड़े हैं, पालकी तैयार है, जल्दी बिठाकर तुझे ले जाएंगे। और तेरे पास रास्ते के लिए पाथेय भी नहीं है, और तो बात छोड़। ऐसा भी नहीं है कि थोड़े-बहुत पैसे रास्ते के लिए डाल दिए हों तूने, वह भी तेरे पास नहीं हैं। तेरे पास ध्यान की कौड़ी भी नहीं है। खूब दुखी कर दिया होगा इस आदमी को।

मगर, समझना। बहुत दुख में ही शायद तुम जाग सको। सुख में तो आदमी सो जाता है, दुख में जाग सकता है। सुख में तो नींद आ जाती है, पीड़ा में नींद नहीं आती। बुद्ध ने ऐसी चोट की है उसके कलेजे पर कि अगर कलेजा होगा, तो क्षार-क्षार हो ही जाएगा। तेरे पास पाथेय कुछ भी नहीं है, तू भिखारी है। और अभी भी तू आशीष मांग रहा है व्यर्थ के लिए। अब तो कुछ सार्थक कर ले, तू अपने लिए द्वीप बना। यह बुद्ध का विशिष्ट वचन है--तू अपने लिए द्वीप बना।

सो करोहि दीपमत्तनो... ।

देखते हैं द्वीप, सागर के बीच छोटा सा द्वीप, सबसे अलग-थलग, महाद्वीप से टूटा अपने में जीता है। बुद्ध बार-बार कहते हैं--द्वीप बनो। द्वीप का अर्थ है, सब संबंधों से मुक्त हो जाओ, जैसे सागर में कोई छोटा द्वीप। किसी से जुड़े मत रहो, असंग हो जाओ। द्वीप का अर्थ है, असंग हो जाओ, अकेले हो जाओ।

उस बूढ़े से उन्होंने कहा कि अब तू अकेला हो जा। अब तू भूल ही जा कि कोई तेरा बेटा है, कोई तेरी पत्नी है, कोई तेरे पोते हैं, कोई तेरे नाती हैं, कुछ तेरे पास धन है, सब भूल जा। यह देह भी तेरी नहीं, इसके लिए तो लेने यमदूत आ गए हैं। यह मन भी तेरा नहीं, यह भी सब उधार है। अब तू सारे संबंध छोड़ दे। अब तू असंग हो जा। इस मृत्यु की आखिरी घड़ी में तू एक काम कर ले--अपने सब नाते तोड़ दे, अपने सब सेतु गिरा दे; असंग और अकेला, द्वीप की भांति हो जा। ऐसा असंग और अकेला होकर तू मुक्त हो जाएगा। तो फिर मृत्यु मोक्ष बन जाती है।

समझना। जो अकेला होकर मरता है, वह मुक्त हो जाता है। जो संबंधों से जुड़ा मरता है, वह फिर पैदा हो जाता है, फिर जीवन में लौट आता है। जब तक तुम्हें दूसरे की जरूरत है, तब तक तुम वापस आते रहोगे। तब तक वापस आना ही पड़ेगा। क्योंकि दूसरा तो यहीं मिलता है और कहीं मिलता नहीं।

पति मरते वक्त अगर पत्नी की आकांक्षा रखता है, फिर लौट आएगा। पत्नी मरते वक्त पति की आकांक्षा करती है, फिर लौट आएगी। तुम्हारी आकांक्षा तुम्हें लौटा लाएगी। क्योंकि लौटते तो केवल वे ही नहीं हैं जिनकी दूसरे से कोई आकांक्षा न रही। अब लौटने की कोई जरूरत न रही।

संसार का अर्थ है, दूसरे की मौजूदगी; जहां दूसरा उपलब्ध होता है। पत्नी मिल सकती है, पति मिल सकता है, मित्र मिल सकता है, बेटे-बेटियां मिल सकतीं, जहां दूसरा मिल सकता है वह स्थल है संसार। और मोक्ष का अर्थ है, जहां तुम निपट अकेले हो, कैवल्य की दशा। जहां तुम्हारे अतिरिक्त कोई भी नहीं। तुम हो और बस तुम हो। जहां अनंत तक तुम ही तुम हो और कोई दूसरा नहीं है। जहां तुम हेलो भी न कह सकोगे, जयराम जी भी न कह सकोगे किसी से। उस दशा में जाने की तैयारी तो उसी की हो सकती है तो जीवन से सारे संबंध तोड़कर गया हो। जिसने पीछे लौटकर भी न देखा हो। जो पूरी विदा ले लिया हो संसार से। इस धारणा को बुद्ध कहते हैं द्वीप बनना।

सो करोहि दीपमत्तनो खिप्पम वायम पंडितो भव।

और बुद्ध कहते हैं, ऐसा जो द्वीप बन गया हो, ऐसा ही व्यक्ति पंडित है।

पंडित का अर्थ तुम ऐसा मत जानना जैसा पंडित का अब अर्थ हो गया है। पंडित का मौलिक अर्थ होता है, प्रज्ञा को उपलब्ध, जिसके भीतर की ज्योति जग गयी। अब तो पंडित का अर्थ होता है, जिसके पास शास्त्र का कूड़ा-करकट काफी है। जिसके पास सूचनाएं बहुत हैं। जिसके भीतर की ज्योति तो बिल्कुल नहीं जली है, लेकिन जिसने बाहर से धुआं काफी इकट्ठा कर लिया है।

और तुमने कहावत तो सुनी होगी न--जहां-जहां धुआं वहां-वहां आग। तो पंडित का अर्थ है आज, ऐसा आदमी जिसने खूब धुआं इकट्ठा कर लिया है चारों तरफ। और स्वभावतः, बाहर से जो लोग देखते हैं वे सोचते हैं--जहां-जहां धुआं वहां-वहां आग--जब इतना धुआं है तो आग भी होगी। लेकिन तुम ऐसा इंतजाम कर सकते हो, यह तर्क का पुराना नियम काम नहीं देगा, तुम तो धुएं की टंकी रख सकते हो अपनी बनाकर और धुआं निकालते रहो घर, पूरे मुहल्ले को धोखा देते रहो कि आग जल रही है और आग बिल्कुल न हो, सिर्फ धुएं की टंकी! उधार धुआं लाया जा सकता है।

पंडित, बुद्ध कहते थे उस आदमी को, जिसकी भीतर की ज्योति जग गयी। और सच तो यह है कि जब वह भीतर की ज्योति जगती है तो धुआं होता ही नहीं।

तुमने देखा, आग के जलने से धुआं पैदा नहीं होता, धुआं पैदा होने का कारण दूसरा है। लकड़ी गीली होती है, इसलिए। जितनी लकड़ी सूखी होती है, उतना ही कम धुआं पैदा होता है। लकड़ी अगर पूरी-पूरी सूखी हो तो धुआं पैदा नहीं होता। तो धुआं आग से पैदा नहीं होता, धुआं तो लकड़ी में छिपे पानी से पैदा होता है। लकड़ी गीली होती है तो धुआं हो जाता है।

जिसके भीतर की आग सच में जली, और जिसने अपने को ध्यान में सुखाया था, और जिसके भीतर की वासना का सारा गीलापन, वासना की सारी आर्द्रता, सारा पानी सूख गया था, जिसके भीतर कोई वासना की दौड़ न रही थी, जो काष्ठवत हो गया था--इसलिए पुराना एक शब्द है, काष्ठ समाधि। ऐसा हो जाता है व्यक्ति, जैसे सूखी लकड़ी। काष्ठवत।

और तब एक आग जलती है। उस आग में फिर कोई धुआं नहीं होता। वह आग अपनी होती है, उधार नहीं होती है, किसी और की नहीं होती है। और वह आग बिना ईंधन के जलती है। बिन बाती बिन तेल। न तो उसके लिए बाती की जरूरत होती है, न तेल की जरूरत होती है। वह अपूर्व चमत्कार है। एक ऐसा ज्ञान तुम्हारे भीतर घटता है जो बाहर से आया ही नहीं। जो तुम्हारे भीतर ही आविर्भूत होता है। उस दशा को बुद्ध कहते हैं, पंडित।

सो करोहि दीपमत्तनो खिप्पम वायम पंडितो भव।

अब तो तू द्वीप बन जा, अब तो तू पंडित बन; उद्योग कर, मल धो डाल और निर्दोष बन। अब और मल इकट्ठा मत कर। अब और जीवन मत मांग। अब तो कुछ मांग ही मत। अब तो जो मौत द्वार पर आ गयी है, उसे स्वीकार कर ले। स्वागत से स्वीकार कर ले। तथाता भाव को उपलब्ध हो। उसमें उतर जा, अन्यथा की कोई मांग न करते हुए।

मल का अर्थ होता है, मांग। मल का अर्थ होता है, ऐसा हो जाए, वैसा हो जाए। मल का अर्थ होता है, मैं जैसा चाहूं वैसा हो जाए। मल का अर्थ होता है, मैं की छाया, मैं की गंदगी। जहां अहंकार है, वहां मल है। अगर तुम अहंकार से जीते हो तो तुम म्लेच्छ। अगर तुम अहंकार से मुक्त हो गए तो निर्दोष, निर्मल। और जो निर्मल हो जाता है, उसने ही जाना।

तो बुद्ध कहते हैं, "निर्दोष बन, मल धो डाल। और तब तू दिव्य आर्यभूमि को प्राप्त करेगा।"

निद्धन्तमलो अनंगणो दिब्बं अरियभूमिमेहिसि।

और श्रेष्ठ पुरुषों को जो उपलब्ध होता है, श्रेष्ठतम को जो उपलब्ध होता है, वह परमलोक, उसको बुद्ध कहते हैं--आर्यभूमि। श्रेष्ठों का देश। वह आकाश, जो उन्हीं को मिलता जो सारे मल को धो डाले हैं। उस ऊंचाई पर वे ही उठ पाते हैं जिनका सारा मल कट गया है।

तू मुझसे आशीष मांग, बुद्ध ने कहा, जीवन का नहीं, मोक्ष का। तू मुझसे आशीष मांग--क्या इस जमीन पर पैदा होने का आशीष मांगता है! आशीष मांग कि आर्यभूमि में तेरा जन्म हो। ख्याल रखना, आर्यभूमि का मतलब कोई हिंदुस्तान नहीं। आर्यभूमि का अर्थ होता है, दिव्यलोक, परमात्मा का लोक, भगवत्ता का लोक। आशीष ही मांगना है, तो बुद्ध कहते हैं, ऐसा कुछ मांग।

उपनीतवयो च दानिसि सम्पयातोसि यमस्स सन्तिके।
वासोपि च ते नत्थि अन्तरा पाथेय्यम्पि च ते न विज्जति।।

तेरी आयु हो चुकी, पागल! तू यम के पास पहुंच चुका। मौत के जबड़े में पड़ा है। तेरा निवास स्थल भी नहीं है और, और मध्यांतर के लिए तेरे पास पाथेय भी नहीं है। तूने कोई घर बनाया नहीं भगवान में। तू यहीं जमीन पर मिट्टी के घर बनाता रहा, तूने चेतना का कोई घर न बनाया। तेरा निवास स्थल भी नहीं है। तू भटकेगा लोक-लोकांतर में, तू आवारा हो जाएगा। तूने कोई घर न बनाया, तूने कोई शरणस्थल न बनाया। तूने कोई छप्पर नहीं डाला।

हम तो यहीं के छप्पर डालने में विदा हो जाते हैं, तो उस दूर के लोक में, उस आर्यभूमि में मकान बन ही नहीं पाता।

बुद्ध अपने भिक्षुओं को कई नाम दिए हैं, उनमें एक नाम है--अनागार। जिसका यहां कोई घर नहीं। आगार का अर्थ होता है, घर। अनागार का अर्थ होता है, जिसका कोई घर नहीं, गृहविहीन। किसी ने बुद्ध से पूछा है कि आप अपने भिक्षु को अनागार क्यों कहते हैं? तो उन्होंने कहा, इसलिए कि यहां मेरा भिक्षु घर नहीं बनाता। मेरा भिक्षु कहीं और घर बनाता है, अदृश्य-लोक में। जहां चमड़ी की आंखों से कुछ भी नहीं दिखायी पड़ेगा। तुम्हारा दिव्य-च्नु खुले तो दिखायी पड़ेगा। मेरे भिक्षु गृहविहीन नहीं हैं, लेकिन इनके घर किसी और ही लोक में निर्मित हुए हैं, कोई और आयाम में निर्मित हुए हैं। यहां ये घरविहीन हैं। यहां इन्होंने घर बनाना छोड़ दिया, क्योंकि यहां तो घर सब रेत में बनाए सिद्ध होते हैं। ताश के पत्तों के घर हैं। गिर जाते हैं। क्या बनाने योग्य! कुछ ऐसा घर बनाओ जो गिरे न! कुछ ऐसा घर बनाओ जो सदा-सदा रहे, जो सदैव रहे।

तो बुद्ध उससे कहने लगेः

वासोपि च ते नत्थि...

"तेरा कोई घर भी नहीं है।"

... अन्तरा पाथेय्यम्पि च ते न विज्जति।

"और न मध्यांतर के लिए, बीच के मार्ग के लिए कोई पाथेय है।"

उपनीतवयो... ।

तेरी उम्र चुक गयी; मगर तेरी वासना नहीं चुकती? तो फिर जन्मेगा, फिर गर्भ में पड़ेगा, फिर उतर आएगा, फिर आवागमन हो जाएगा, फिर यही चक्कर! जो तूने किया है बहुत बार, वही तू फिर-फिर करेगा।

इस देश की जो सबसे अनूठी खोज है, जो मनुष्य-जाति के लिए इस देश का सबसे बड़ा दान है, वह है आवागमन से मुक्त होने की धारणा। मनुष्य-जाति के किसी और अंश ने कभी इस धारणा को नहीं उपजाया। पूरब ने, विशेषकर भारत ने इस धारणा को जन्म दिया कि हम बहुत बार पैदा हो चुके, और हर बार पैदा होकर हमने वही किया जो हम अभी कर रहे हैं। और हम फिर पैदा होना चाहते हैं, और हम फिर यही करेंगे। तो हमारी मूढ़ता हद्द की होगी! क्योंकि इतनी पुनरुक्ति तो मूढ़ ही कर सकता है। जिसमें थोड़ी बुद्धि है, वह पुनरुक्ति क्यों करेगा? वह कहेगा, यह चाक, जिसमें मैं बंधा हुआ घूम रहा हूं, अब बंद होना चाहिए।

तो बुद्ध उससे कहने लगे, तेरी आयु हो चुकी, लेकिन तेरी वासना नहीं चुकती? यम के मुंह में बैठा है, फिर भी जीवन की आकांक्षा करता है?

सो करोहि दीपमत्तनो खिप्पम वायम पंडितो भव।

मैं तुझसे फिर कहता, बुद्ध ने कहा, फिर-फिर कहता हूं कि तू अपने लिए द्वीप बना, उद्योग कर, पंडित बन।

निद्धन्तमलो अनंगणो न पुन जातिजरं उपेहिसि।।

मल धो डाल, निर्दोष बन, मैं तुझे आशीष देता हूं कि अगर तू थोड़ा उद्योग करे तो फिर तेरा न कोई जन्म होगा और न फिर तेरी कोई मृत्यु होगी। फिर तू जन्म और जरा को प्राप्त नहीं होगा।

निद्धन्तमलो अनंगणो न पुन जातिजरं उपेहिसि।।

यही बुद्धों का आशीष हो सकता है कि फिर तुम्हारा जन्म न हो। बड़ा अजीब सा लगेगा। क्योंकि हम तो लोगों को इस तरह का आशीष देते हैं कि तुम्हारी लंबी आयु हो, खूब जीओ, युग-युग जीओ। बुद्धपुरुष कहते हैं कि आशीष कि फिर कभी न जीओ, कि फिर कभी न जन्मो। क्योंकि जन्म होगा तो फिर मौत होगी। जन्म होगा तो फिर बुढ़ापा होगा। जन्म होगा तो फिर दुख-पीड़ा होगी। जन्म होगा तो फिर चिंता-संताप होगा। इसलिए जन्म ही न हो।

ऐसा आशीष दुनिया में कहीं और नहीं दिया गया है। सिर्फ इस देश में ऐसा आशीष दिया गया है कि तुम्हारा कभी जन्म न हो। तुम्हारा फिर कभी कोई आना न हो। तुम अनागामी हो जाओ।

बुद्ध ने कहा, आशीष मांगता है, तो ऐसा आशीष ले।

अनुपुब्बेन मेधावी थोकथाकं खणे खणे।

कम्मारो रजतस्सेव निद्धमे मलमत्तनो।।

"सुनार"--सुनार था बूढ़ा तो उन्होंने उदाहरण दिया कि--"सुनार जैसे चांदी के मैल को क्रमशः थोड़ा-थोड़ा और क्षण-क्षण जलाकर उसे शुद्ध करता है, वैसे ही मेधावी पुरुष अपने मैल को क्रमशः दूर कर लेता है।"

ऐसा ही तू कर।

अनुपुब्बेन मेधावी थोकथाकं खणे खणे।

कितना ही मैल हो, धीरे-धीरे, थोड़ा-थोड़ा करके, क्षण-क्षण करके कट जाता है। सागर रीत जाते हैं। बूंद-बूंद करके घड़ा खाली हो जाता है।

अनुपुब्बेन मेधावी थोकथाकं खणे खणे।

कम्मारो रजतस्सेव निद्धमे मलमत्तनो।।

और तू तो सुनार है, तू तो जानता कि चांदी में कितनी ही गंदगी हो, धीरे-धीरे साफ करके चांदी साफ हो जाती है। ऐसा ही तू भी मेधावी बन, साफ हो जा, शुद्ध हो जा, निर्मल हो जा। जीवन का आशीष नहीं देता, परमजीवन का आशीष देता हूं। ऐसे जीवन का आशीष देता हूं, जहां शाश्वत आनंद होगा, शाश्वत शांति होगी।

कहते हैं, वह स्वर्णकार सांत्वना की जगह यह चोट करने वाली बात सुन पहले तो बहुत चौंका।

पहले तो हतप्रभ रह गया होगा, किंकर्तव्यविमूढ़। पहले तो सोचा होगा, किस आदमी को बुला लिया! किससे आशीष मांगने की भूल कर ली! हम तो इस जीवन को बढ़ाने की बात कर रहे हैं, यह आगे के भी सब जीवन समाप्त करने का आशीर्वाद दे रहा है! हमने तो मांगा कि यह जीवन थोड़ा लंबा हो जाए और यह कह रहा कि कभी तेरा जीवन ही न हो अब कोई, अब सदा के लिए समाप्त ही हो जाए, अब बात ही खतम हो, जड़-मूल से ही काट देते हैं। पहले तो बहुत चौंका, जैसे कोई भी चौंकता।

संतों से पहले भी मिलना हुआ होगा--तथाकथित संतों से, जो सांत्वना देते हैं। जिनका काम ही यह है कि तुम्हारे घाव पर मलहम-पट्टी करते रहते हैं। जो तुम्हें सब तरह से समझाते रहते हैं। तुम अगर दीन-दरिद्र हो, दुखी-पीड़ित हो, वे कहते हैं कि पुराने जन्मों का कर्म है, कट जाएगा, फिकर न करो, सब ठीक हुआ जाता है। कि भगवान कोई परीक्षा ले रहा है। यह परीक्षा का क्षण है, परेशान न होओ, निकल जाएगा। कि रात कितनी ही अंधेरी हो, सुबह आने के करीब है, घबड़ाते क्यों हो? और जब रात ज्यादा अंधेरी होती है, तो समझो कि सुबह करीब आ रही है। ऐसा समझाए चले जाते हैं--हर हाल में तुम टिके रहो, बने रहो, जहां हो जैसे रहो। तुम्हारी मलहम-पट्टी करते रहते हैं। शायद ऐसे संतों से इसका मिलना जीवन में हुआ होगा, उसी आधार पर तो यह बुद्ध से भी इस तरह का आशीष मांगने की भूल कर बैठा।

चौंका होगा बहुत, निश्चित चौंका होगा। सांत्वना की जगह यह चोट करने वाली बात! यह कठोर सत्य, यह कड़वी बात! लेकिन आदमी हिम्मत का था। चोट घर कर गयी। एक बिजली जैसे कौंध गयी। और इस बिजली की कौंध में उसके जीवन के अंतिम क्षण ज्योतिर्मय हो गए। उसे बात साफ-साफ दिखायी पड़ गयी। दो टूक थी बात। सीधी थी, लाग-लगाव कुछ भी न था, छल-कपट कुछ भी न था, बात में कोई बड़े सिद्धांत का जाल नहीं था, सीधी-सीधी थी। सुनार के समझ में आ सके, ऐसी थी। इसलिए सुनार का उल्लेख भी बुद्ध ने किया था। जैसे किसी ने अंधेरे में अचानक प्रकाश जला दिया हो, मशाल जला दी हो, ऐसी उसे बात साफ दिखायी पड़ गयी।

देखा होगा उसने गौर से तो उसे भी यमदूत दिखायी पड़ गए होंगे। बात तो सच ही थी। कितनी ही कड़वी हो, सच तो थी ही। कितना ही नग्न हो सत्य, झुठलाया नहीं जा सकता था। कायर होता, कमजोर होता, तो शायद झुठला देता। कहता अपने बेटों से कि किसको लिवा लाए हो? अरे, किसी संत को लाओ! यह किस तरह के आदमी को लिवा लाए? मैं मर रहा हूं, मैं चाहता हूं कि थोड़ी सी कोई शांति मुझे दे, समझाए, और यह आदमी और जो कुछ थोड़ी-बहुत शांति है वह भी छीने ले रहा है। यह मेरे पैर के नीचे की जमीन खिसकाए ले रहा है, किसको यहां ले आए हो? लेकिन आदमी हिम्मत का रहा होगा। उसने बात को हटाया नहीं, जाने दिया हृदय में--काटती थी, दुखती थी, पीड़ा होती थी, लेकिन बात जाने दी। एक बिजली की भांति उसके अंतिम क्षण ज्योतिर्मय हो गए।

सांत्वना देते भी नहीं संत, उसे उस क्षण दिखायी पड़ा। संत तो वही जो सत्य देता है, उसे उस क्षण दिखायी पड़ा। फिर चाहे कितना भी कड़वा क्यों न हो--और दवाएं कड़वी होती ही हैं। उसे यह बात समझ में पड़ी, दवाएं लेता भी रहा होगा, बीमार था, वर्षों से खाट पर लगा था, तो उसे ख्याल में आया होगा--दवाएं कड़वी होती भी हैं।

वह स्वर्णकार स्रोतापत्ति-फल को पाकर मरा। वह धन्यभागी था।

बुद्ध जैसा वैद्य जीवन के अंतिम क्षण में भी मिल जाए तो बड़ा धन्यभाग है। स्रोतापत्ति-फल को पाकर मरा। वह ध्यान की धारा में प्रविष्ट हो गया। यह एक चौंकाने वाली बात, यह एक चोट तलवार की, जैसे उसके मोह के जाल को काट गयी। उसने बुद्ध के चरणों में सिर रख दिया। झुक गया, समर्पित हो गया। उसने धन्यवाद दिया बुद्ध को। उसने कहा, कोई हर्ज नहीं। जीवनभर भटका, कोई हर्ज नहीं, अगर सुबह का भूला सांझ भी घर आ जाए तो भूला तो नहीं कहलाता। चलो सांझ ही सही, सूरज ढलते-ढलते सही, घर आ गया, बात समझ में आ गयी। उसने पीछे लौटकर देखना बंद कर दिया।

जैसे ही तुम पीछे लौटकर देखना बंद करते हो और जीवन की कामना और वासना को छोड़ देते हो, वैसे ही शांति फलित हो जाती है, वैसे ही ध्यान लग जाता है। विचार अपने आप चले जाते हैं जब वासना चली जाए। विचार तो वासना की छाया है। वासना के जाए बिना जाते नहीं। तुम कितना ही विचारों को हटाओ, जब तक वासना घर जमाए बैठी है, तब तक विचार आते ही रहेंगे। जब तक वासना का वृक्ष है, तब तक विचारों के पक्षी उस पर डेरा डालते ही रहेंगे, आते ही रहेंगे। वासना का वृक्ष ही कट जाए तो फिर पक्षी आने अपने आप बंद हो जाते हैं। और यह एक क्षण में हुआ।

यह बुद्ध-विचार की एक अनूठी प्रक्रिया है। फिर बुद्ध से लेकर ढाई हजार वर्षों में अनेकों को यह घटना घटी है। कभी-कभी एक क्षण में। योग में इस तरह की कोई व्यवस्था नहीं है। योग तो कहता है, जन्मों-जन्मों चेष्टा करनी पड़ती है तब कुछ मिलता है। बुद्ध ने कहा कि अगर बोध की क्षमता हो, अगर साहस हो, अगर

हिम्मत हो अज्ञात में उतरने की, तो एक क्षण में भी हो जाता है। कोई अनंतकाल तक प्रतीक्षा करने की जरूरत नहीं, श्रम करने की जरूरत नहीं। त्वरा चाहिए, तीव्रता चाहिए। अगर तीव्रता हो तो एक क्षण में लपट पैदा हो जाती है। और अगर तीव्रता न हो तो तुम जन्म-जन्म कोशिश करते रहो--अधूरी-अधूरी कोशिश, कुनकुनी-कुनकुनी कोशिश--कुछ परिणाम नहीं होता। आग जलती ही नहीं। पानी कभी भाप बनता ही नहीं। तुम कभी आकाश में उड़ते ही नहीं, पंख तुम्हें कभी लगते ही नहीं।

ख्याल रखना, लोग मुझसे कभी-कभी आकर पूछते हैं कि समाधि कितने समय में फलित होगी? मैं उनसे कहता हूं, तुम पर निर्भर करता है। समाधि का कोई हिसाब नहीं है कि छह साल में, कि बारह साल में--महावीर को बारह साल में हुई, बुद्ध को छह साल में हुई--किसी को अस्सी साल भी लगते हैं, किसी को अस्सी जन्म भी लगते हैं, किसी को क्षण में भी हुई है। तुम पर निर्भर करता है, कितनी त्वरा! कितनी तीव्रता! कितने बल से तुम चले हो! तुमने अपने को पूरा दांव पर लगाया तो एक क्षण में भी हुई है। और तुमने धीरे-धीरे दांव पर लगाया--दांव पर लगाया नहीं मतलब--धीरे-धीरे सौदा करने की कोशिश की कि देखें शायद इतने से हो जाए, कि देखें शायद इतने से हो जाए, तो काफी समय लग जाता है। समाधि समयातीत है, इसलिए समय का कोई संबंध नहीं है। एक क्षण में भी हो सकती है।

यह बूढ़ा स्रोतापत्ति-फल को उत्पन्न होकर मरा।

स्रोतापत्ति-फल शुरुआत है और मोक्ष अंत है। स्रोतापत्ति-फल का अर्थ होता है, स्रोत में उतर गया, धारा में उतर गया। और जो धारा में उतर गया, वह सागर पहुंच ही जाएगा। अब कुछ देर की बात न रही, पहुंचा ही है। नाव छोड़ दी धारा में, धारा तो जा ही रही है सागर की तरफ।

इसे तुम समझना।

इस जगत में ध्यान की धारा बह रही है। उस ध्यान की धारा को ही तुम गंगा समझो, वही गंगा है। उसी में नहाने से तुम पवित्र हो जाओगे। और तो सारी गंगाएं व्यर्थ हैं। एक ध्यान की धारा इस जगत में बह रही है। जो उसमें उतर जाता है, वह धारा उसे समाधि के सागर तक पहुंचा देती है--ले जाती है, खुद ले जाती है, तुम्हें हाथ-पैर भी नहीं चलाना पड़ता।

रामकृष्ण कहते थे, तुम तो अपनी नाव छोड़ दो, उसकी हवाएं तुम्हारे पालों में भर जाएंगी और तुम्हें गंतव्य तक ले जाएंगी।

तुम तो इस नदी में उतर जाओ--बुद्ध कहते थे--बस, यह नदी तो जा ही रही है, यह तुम्हें ले जाएगी। नदी में उतरने की घड़ी स्रोतापत्ति-फल कहलाती है।

वह स्वर्णकार स्रोतापत्ति-फल को पाकर मरा।

मर गया, उसी घड़ी मर गया, बुद्ध मौजूद थे और मर गया। धन्यभागी था। बुद्ध के सान्निध्य में मृत्यु घट जाए तो और क्या धन्यभाग! चाहे जीवनभर भटका हो, लेकिन सांझ उन चरणों में आ गया जिन चरणों में पहुंच जाने से सब मिल जाता है। बुद्ध के चरणों में सिर रखे और मर गया।

बुद्ध के चरणों में जिसका सिर झुका हो और मर जाए--शायद तुम्हें समझ में भी न आए कि इसमें कैसा, क्या धन्यभाग! इसमें बड़ा धन्यभाग। स्रोतापत्ति-फल उत्पन्न हो गया। बुद्ध की धारा में झुक गया, उतर गया। बुद्ध के साथ भांवर पाड़ लीं। बुद्ध के साथ गठबंधन हो गया। बुद्ध की विराट ऊर्जा में यह भी लीन हो गया। इसने जरा भी ना-नुच न की, तर्क-विवाद न किया--फुर्सत भी न थी, समय भी न था। शायद जीवन अभी और होता तो यह सोचता कि कल आऊंगा, सोचूंगा, विचारूंगा। शायद अभी जवान होता तो कहता कि अभी तो

जवान हूं, संन्यास तो बुढ़ापे के लिए है, समर्पण तो बुढ़ापे के लिए है; अभी तो बहुत कुछ संसार में करना है, कर लूं तब आऊंगा, जरूर आऊंगा, आपकी बात जंचती है, मगर अभी मेरा समय नहीं आया। लेकिन इसको दिख गया होगा कि बात तो सच है, पत्ता तो पीला हो गया है बिल्कुल।

यह झुठला रहा होगा, दिखायी तो खुद भी पड़ता है। कितना झुठलाओ तो भी भीतर तो दिखायी पड़ता रहता है। कोई अपने को कितनी देर धोखा दे सकता है? धोखे के बीच में सच उभरता है। इसको भी लगता तो होगा ही। हालांकि इसके बेटे कहते होंगे, नहीं-नहीं, अभी कहां मरना! अभी तो आप बिल्कुल स्वस्थ हैं। चिकित्सक आता होगा, वह कहता होगा, नहीं, सब ठीक चल रहा है। बस दवा लेते जाएं, कुछ दिन में उठ आएंगे। सब ठीक हो जाने वाला है, कुछ दिन में जल्दी ही अपने पैर पर चलने लगेंगे।

चिकित्सक भी कहता होगा, बेटे भी कहते होंगे, प्रियजन आते होंगे, परिवार के लोग। और सबकी आंखों में इसको दिखायी पड़ता होगा पीला पत्ता, सबकी आंखों में इसको दिखायी पड़ता होगा कि मैं मर रहा हूं, सबके चेहरे कहते होंगे कि अब भाई, बचने की उम्मीद नहीं है--कहते कुछ होंगे, बतलाते कुछ होंगे, लेकिन छिप तो नहीं सकता। फिर इसको खुद भी तो पता चलता होगा, हाथ हिलाना मुश्किल हो गया, सांस लेना मुश्किल हो गया, ऊर्जा रोज-रोज डूबी जाती है।

बुद्ध ने सीधी-सीधी बात कह दी। यह बुद्ध की ईमानदारी उसे छू गयी। मित्र थे, प्रियजन थे, चिकित्सक थे, वे कहते थे--नहीं, बचोगे। बुद्ध ने कहा, बचना- वचना सब बकवास। मेरा आशीष भी कुछ काम नहीं आएगा। और ऐसा आशीष मैं देता भी नहीं। और ऐसा आशीष तू मांग भी नहीं। यह मौत तेरे चारों तरफ घेरे खड़ी है; यमदूत मौजूद हैं, डोली तैयार है, किसी भी क्षण बैठ जाना पड़ेगा। अब सोच ले, भीतर प्रतिष्ठित हो जा, ध्यान की किरण को पकड़ ले, वासना को छोड़ दे। उसे यह बात दिख गयी होगी कि मौत चारों तरफ घिरी है। उस मौत के घिराव को देखकर वह बुद्ध के चरणों में झुक गया होगा। समय भी न था स्थगित करने को, पोस्टपोन करने को कि कहे कि कल, कि जरा सोच लूं।

और मैं तुमसे कहता हूं कि यह घटना बड़ी अर्थपूर्ण है, ऐसी ही दशा प्रत्येक मनुष्य की है। कोई ऐसा ही थोड़े है कि जब आदमी पीला ही पत्ता होता है तब मरता है, हरे पत्ते मर जाते हैं। मौत कुछ बुढ़ापे में ही थोड़े ही आती है, जवानी में आ जाती है। मौत कुछ हिसाब थोड़े ही रखती है, मौत कोई नियम थोड़े ही मानती है, किसी भी घड़ी आ सकती है। तुम भी इसी दशा में हो, जिस दशा में यह स्वर्णकार था। इससे रत्तीभर दशा भिन्न नहीं है। जरूरी नहीं है कि कल भी तुम सभी यहां होओगे। कोई विदा हो सकता है। स्थिति तो वही है। यमदूत ऐसा थोड़े ही है कि कभी आते हैं, वह तुम जब जन्मते हो तभी डोली लेकर साथ आते हैं। वे डोली लिए पास ही बैठे रहते हैं, कब मौका आ जाए कि ले जाएं। कुछ ऐसा थोड़े ही है कि जब जरूरत पड़ेगी तब आएंगे, ऐसे में तो बहुत देर लग जाए। हर आदमी अपने यमदूत अपने साथ ही लेकर पैदा होता है। वह डोली तुम साथ ही लेकर आए हो। तुम्हारी अर्थी बंधी हुई रखी है। देर-अबेर बंध जाएगी।

इसे तुम घटना को ऐसा मत सोचना कि ठीक है, उस बूढ़े आदमी को ही ठीक है, अपने से कुछ इसका संबंध नहीं है। शायद तुम यह भी सोच रहे होओ कि मैं तुमसे यह कहानी क्यों कह रहा हूं? यह तो बूढ़ों को कहनी चाहिए।

तुम भी उसी दशा में हो। एक दिन का पैदा हुआ बच्चा भी उसी दशा में है। जिसने पहली सांस ली, वह बच्चा भी उसी दशा में है। क्योंकि कई बार तो पहली सांस के बाद ही दूसरी सांस नहीं आती। जो बच्चा पैदा हो

गया, उसके पास मौत घिरी है। कब आएगी, इसका पक्का पता नहीं है। लेकिन एक बात तो पक्की है कि आएगी। आ ही गयी है। तुम्हें घेरकर बैठी है।

फिर तुम अगर सोचो कि कल निर्णय करेंगे, तो क्या पता बीच में आ जाए, तो निर्णय कभी न हो पाए। इसलिए जिस व्यक्ति को जीवन में क्रांति लानी है, उसके लिए समय नहीं है। उसके लिए यही क्षण है, एक ही क्षण है। इस क्षण में झुक जाए तो झुक जाए, इस क्षण में स्रोतापत्ति-फल पैदा हो जाए तो हो जाए। या तो अभी, या कभी नहीं। क्योंकि अभी के अतिरिक्त कोई समय ही नहीं है।

झुक गया बुद्ध के चरणों में, चरणों में झुके-झुके मर गया। अपूर्व धन्यभागी था। समर्पण की दशा में मर गया! बुद्ध की उस चौंधती हुई रोशनी में मर गया। उस भाव को समझता हुआ मर गया। बेटे तो रोए होंगे, परिवार तो रोया होगा। क्योंकि उनको तो यह दिखायी भी न पड़ा होगा कि क्या हुआ। लेकिन बुद्ध प्रसन्न हुए होंगे, बुद्ध के जागरूक भिक्षु समझे होंगे। उन्होंने समझा होगा कि अपूर्व घटा! इसीलिए तो यह कथा धम्मपद में सम्मिलित कर ली गयी। सभी कथाएं सम्मिलित नहीं कर ली गयीं, चालीस वर्षों में हजारों बातें घटी हैं बुद्ध के जीवन में, सभी नहीं सम्मिलित कर ली गयीं। जो बहुत प्रतीकात्मक हैं, बहुत सूचक हैं। यह बड़ी सूचक घटना है।

तो लड़ो मत। जीवन के लिए मत लड़ो, मोक्ष के लिए लड़ो। लड़ना हो तो मोक्ष के लिए लड़ो। जीवन को लंबाने की आकांक्षा मत करो, आकांक्षा ही करनी हो तो जीवन से मुक्त होने की आकांक्षा करो।

मैं एक कविता कल पढ़ रहा था। दिनकर की है, जा चुके अब तो वह। ऐसे ही लड़ते-लड़ते गए। मरते समय भी स्रोतापन्न होने का सौभाग्य नहीं मिला। मेरे पास आते थे, ध्यान की बात भी पूछते थे, कहते थे कभी करूंगा भी, लेकिन चिंता उनको देह की ही बनी रहती थी। डायबिटीज थी, तो उसकी चिंता। भोजन से प्रेम था और डायबिटीज होने के कारण भोजन अब ठीक से जो करने का मन होता था वह नहीं कर पाते थे, उसकी बड़ी पीड़ा थी। ऐसे ही गए। उनकी यह कविता कल मेरे हाथ लग गयी--

बुढ़ापा,
तुमसे मेरी दोस्ती नहीं, लड़ाई है;
तुम्हारा आना दोस्त का आना नहीं
दुश्मन की चढ़ाई है।
तुम अकेले नहीं आए
विपत्तियों की फौज सजाकर लाए हो,
लेकिन मैं आत्मसमर्पण नहीं करूंगा,
जवानी की आखिरी दीवाल से पीठ लगाकर
मैं तुमसे अंत तक लड़ूंगा।

लड़ते रहे। कविता ठीक ही है। वह जो कह रहे हैं, ऐसा ही किया उन्होंने।

लेकिन जीवन के लिए लड़ना, इसका एक ही अर्थ होता है--दूसरे जीवन की मांग। मौत तो आती, मगर मौत से लड़कर तुम दूसरे जीवन के लिए रास्ता बना लेते हो। पैदा हो गए होंगे किसी गर्भ में, क्योंकि इतनी देर वह रुक नहीं सकते। इतनी प्रबल आकांक्षा थी जीवन की, जीवन को पकड़ रखने का ऐसा भाव था कि देर न लगी होगी, इधर मरे होंगे उधर पैदा हो गए होंगे। फिर वही चक्कर, फिर वही उपद्रव, फिर मरेंगे। आशा की जा सकती है कि इस बार ऐसी भूल न करेंगे, इस बार स्रोतापन्न होकर मरेंगे।

स्रोतापन्न का अर्थ है, अब मृत्यु को स्वीकार करके मर रहे हैं। क्योंकि मृत्यु जीवन का अपरिहार्य अंग है। मृत्यु ऐसे ही अनायास दुर्घटना नहीं है, मृत्यु जीवन का ही हिस्सा है। मृत्यु जीवन पर छायी है, जीवन में छिपी है। स्वीकार करके मर रहे हैं, क्योंकि अब जीवन की कोई आकांक्षा नहीं है। देख लिया, बहुत देख लिया, सब तरफ से देख लिया और कुछ सार नहीं पाया, इसलिए इस आनंदभाव से मर रहे हैं--लड़ते हुए नहीं। शांतभाव से डूब रहे हैं।

जो शांत भाव से मर जाए, उसका फिर जन्म नहीं होता। जो परिपूर्ण शांति में मर जाए, वह अनागामी हो जाता है। वह उस लोक में थिर हो जाता है, जिसको बुद्ध आर्यभूमि कहते हैं।

निद्धन्तमलो अनंगणो दिब्बं अरियभूमिमेहिसि।

मैं तुमसे भी यही कहता हूं। मौत तो आएगी, उसको स्वीकार करना। जीवन की व्यर्थता दिख जाए तो ही स्वीकार कर सकोगे। अगर जीवन में सार्थकता दिखती है, तो कैसे स्वीकार करोगे? तो तुम लड़ोगे। लड़े कि तुम चूक जाओगे। यहां लड़ने को कुछ है ही नहीं। यहां जागने को बहुत कुछ है, लड़ने को कुछ भी नहीं है। जीतने को कुछ भी नहीं है, जागने को बहुत कुछ है। और जो जाग गया, वही जीत गया।

इसलिए जागे पुरुषों को हमने जिन कहा है। जिन यानी जीते हुए। मगर उनकी सारी जीत क्या थी? उनकी सारी जीत उनके जागरण में थी।

जीवन एक तरह का भुलावा है, छलावा है। यह आशा बंधाता है। अभी तो कुछ भी ठीक नहीं है--कभी ठीक नहीं होता--मगर जीवन कहता है, कल ठीक हो जाएगा। अभी कल तक तो रुको, एक दिन तो और मांग लो, कौन जाने कल ठीक हो ही जाए। तो जीवन जीता आशा से।

अभी-अभी कोहरा चीरकर चमकेगा सूरज
चमक उठेंगी ठठकी नंगी भूरी डालें
अभी-अभी थिरकेगी पछिया बयार
झरने लग जाएंगे नीम के पीले पत्ते
अभी-अभी खिलखिलाकर हंस पड़ेगा कचनार
गुदगुदा उठेगा उसकी अगवानी में
अमलतास की टहनियों का पोर-पोर
अभी-अभी करवटें लेंगे बूंदों के सपने
फूलों के अंदर, फलियों के अंदर
अभी-अभी कोहरा चीरकर चमकेगा सूरज
चमक उठेंगी ठठकी नंगी भूरी डालें

अभी-अभी कुछ होगा। जल्दी कुछ होगा। थोड़ी देर और टिके रहो, थोड़ी देर और लड़े जाओ, कौन जाने कल, कल ही वह नियति का दिन हो जब तुम पर सौभाग्य की वर्षा हो, छप्पर टूटे! कौन जाने, कल तो और रुक लो, एक दिन तो और देख लो। अब तक हारे, सच है, लेकिन सदा थोड़े हारते रहोगे। ऐसा मन समझाता। ऐसा मन आशा की डोर में लटकाए रखता और आदमी सरकता रहता। अगर जीवन से जागना है, तो आशा से जागना पड़ता है।

बुद्ध ने बड़ा जोर दिया है अनाशा पर। बुद्ध आशीष देते थे कि भिक्षु, तेरी आशा मर जाए। मेरा आशीष। आशा मर जाए! कि तू बिल्कुल ही निराश हो जाए, ऐसा मेरा आशीष है। तुम तो घबड़ाओगे, तुम कहोगे, यह तो बात बड़ी बुरी हो गयी--निराश हो जाओ!

निराश का अर्थ होता है आस-रहित हो जाओ। कोई आशा न रहे। यह कोई दुखद अवस्था नहीं है निराशा, यह तो केवल जागरण की अवस्था है। अब कोई आशा न रही, अब भविष्य न रहा, अब कल की कोई बात न रही। जब कल की कोई बात नहीं तो तुम्हारी ऊर्जा भविष्य में नहीं दौड़ती। भविष्य तो मरुस्थल की तरह है, उसी में तुम्हारी ऊर्जा खो जाती है, नदी खो जाती है मरुस्थल में। जब भविष्य नहीं बचता, कोई आशा नहीं बचती, तो तुम्हारी ऊर्जा इकट्ठी होती है, तुम्हारी ऊर्जा एक सरोवर बन जाती है। उसी सरोवर में प्रतिष्ठा है--आत्मप्रतिष्ठा, स्वबोध। और वही सरोवर एक दिन निर्वाण सिद्ध होता है।

दूसरा सूत्र, उसकी कथा। वह भी पहले सूत्र के साथ जुड़ी कथा है।

एक भिक्षु थे, तिष्य। वर्षा-वास के पश्चात किसी ने उन्हें एक बहुत मोटे सूत वाला चादर भेंट किया।

बहुत भिक्षु वर्षा के दिनों में रुक जाते थे, तीन-चार महीने, और वर्षा-वास के बाद जब वे यात्रा पर पुनः निकलते तो लोग उन्हें भेंट देते। भेंट भी क्या? थोड़ी सी भेंट लेने की उन्हें आज्ञा थी। तीन वस्त्र रख सकते थे, इससे ज्यादा नहीं। तो कोई चादर भेंट कर देता, या कोई भिक्षापात्र भेंट कर देता। तो पुराना भिक्षापात्र छोड़ देना पड़ता, पुरानी चादर छोड़ देनी पड़ती।

यह भिक्षु तिष्य ने वर्षा-वास किया किसी गांव में। जब वर्षा-वास के बाद उन्हें एक मोटे सूत वाला चादर भेंट किया गया तो उन्हें पसंद न आया। बहुत मोटे सूत वाला था।

भिक्षु को आज्ञा नहीं थी कि जो उसे दिया जाए उसमें वह शिकायत करे। या वह कहे कि यह बहुत मोटे सूत वाला है, यह मैं न लूंगा। भिक्षु को जो दिया जाए, वह चुपचाप स्वीकार कर ले। लेकिन आदमी तो होशियार होते हैं, कानूनी होते हैं, तरकीब तो निकाल ही लेते हैं।

उसी गांव में तिष्य की बहन रहती थी। जब यह चादर भेंट की गयी तो वह बहन भी खड़ी थी। तो भिक्षु तिष्य ने वह चादर बहन के हाथ में रख दिया--कुछ कहा नहीं! बहन को भी बात समझ में आ गयी कि चादर बहुत मोटे सूत वाला है। वह घर गयी। उसने उस मोटे सूत वाले चादर को तेज चाकू से पतला-पतला चीर, ओखल में कूट, उसे धुनकर पुनः पतले सूत वाली चादर तैयार की। इस बीच भिक्षु तिष्य बड़ी आतुरता से उस वस्त्र की प्रतीक्षा करते थे और मन ही मन उसके संबंध में अनेक-अनेक कामनाएं बनाते थे, कि ऐसा होगा चादर, कि वैसा होगा चादर; कि ओढ़कर ऐसा चलूंगा, कि वैसा चलूंगा।

ख्याल करना, आदमी को वासना बनाने के लिए कोई बहुत बड़ा सामान नहीं चाहिए। फकीर की लंगोटी काफी है। उस पर ही सारे महल बन सकते हैं कामना के। कुछ ऐसा नहीं है कि तुम्हें बहुत बड़ा महल चाहिए, एक झोपड़ी बहुत। आदमी की वासना को टांगने के लिए कोई भी खूंटी काम आ जाती है। अब एक चादर थी, उस पर कोई ऐसा परेशान होने की जरूरत न थी, लेकिन भिक्षु के लिए चादर ही बहुत है। वह खूब सोचने लगे कि बहन ऐसा बनाएगी, कि बहन वैसा बनाएगी।

बड़ी आतुरता से प्रतीक्षा करते थे। मन ही मन बड़ी कामनाएं उठती थीं। फिर एक दिन उनकी बहन ने वह वस्त्र लाकर उन्हें भेंट किया। उनका मन-मयूर नाच उठा। ऐसा सुंदर चीवर तो भगवान के पास भी नहीं है, तिष्य ने सोचा। और अहंकार को खूब पोषण मिला। उन्होंने कहा कि अब कल जब निकलूंगा पहनकर तो

भगवान को भी पता चलेगा, कि तुम्हारे पास भी ऐसा सुंदर चादर नहीं है। संघ में किसी के पास ऐसा चादर नहीं है।

लेकिन सांझ हो गयी थी, सो तिष्य ने सोचा, कल पहनूंगा। अब रात को पहनकर निकलूंगा तो देखेगा भी कौन? और मजा तो दिखाने ही का होता है। ऐसा सोचकर बड़े जतन और लाड़-प्यार से उस वस्त्र को अरगनी पर टांग दिया। वे रात उसकी चिंता में ठीक से सो भी न सके।

जिसके पास भी कुछ है, वह चिंता की वजह से सो नहीं पाता। इसलिए गरीब सो लेता है, अमीर नहीं सो पाता। अमीर को सोना चाहिए ज्यादा शांति से, उसके पास सब है, गरीब के पास कुछ भी नहीं है; लेकिन गरीब सो लेता है, अमीर नहीं सो पाता। जैसे-जैसे धन बढ़ता है, वैसे-वैसे चिंता बढ़ती है।

यह भिक्षु तिष्य रोज शांति से सो लेते थे, आज बड़ी बेचैनी में पड़ गए--रात कोई चुरा ही ले! अब भिक्षु ठहरते थे एक ही जगह, एक ही छप्पर के नीचे हजारों भिक्षु ठहरते थे--रात कोई उठा ही ले! तो सुबह पता लगाना मुश्किल हो जाएगा। और चादर ऐसी है कि किसी की भी आंख में गड़ सकती है। और किसी ने देख ही ली हो बहन को लाते हुए, और कोई इसकी प्रतीक्षा में बैठा हो। तो रात भय के कारण दो-चार बार तो उठ-उठकर अंधेरे में टटोलकर उन्होंने देख लिया कि चादर अपनी जगह है या नहीं?

नींद में उस सुंदर वस्त्र के संबंध में तरह-तरह के स्वप्न भी चलते रहे। कब सुबह हो और कब पहनूं, ऐसी वासना पास-पास मंडराती रही। संयोग की बात कि उसी रात तिष्य का देहांत हो गया। वह चीवर के प्रति इतनी अति बलवती तृष्णा थी उनकी--उस चादर, चीवर के प्रति--कि तिष्य मरकर चीलर हो गए और उसी चीवर में समा गए। मरते ही चीलर हो गए और चीवर में जा बैठे।

दूसरे दिन भिक्षु उनके मृत शरीर को जलाकर नियमानुसार उस चीवर को परस्पर बांटने के लिए उठाए। यह भी नियम था, जब एक भिक्षु मर जाए तो उसकी वस्तुएं बांट दी जाएं, जिनके पास न हों उन्हें दे दी जाएं। वह चीलर तो पागल हो उठा। वह चीलर--अब तो तिष्य कहां थे, अब तो चीलर हो गए थे, वह उस चादर में छिपे बैठे थे--वह बिल्कुल पागल हो उठा। हमारी वस्तु लूट रहे हैं, कह-कहकर इधर-उधर दौड़ने और चिल्लाने लगा।

भगवान के अतिरिक्त कोई और तो उस चीलर की आवाज सुन न सका। भगवान ने उसकी आवाज सुनी, हंसे और उन्होंने आनंद से कहा, आनंद, उन भिक्षुओं से कह दो कि तिष्य की चीवर को अभी वहीं की वहीं रख दें। सातवें दिन बाद वह चीलर मर गया। चीलर की उम्र कितनी! जब तिष्य ही मर गए तो चीलर की कितनी उम्र, चीलर कितनी देर जीएगा! तब भगवान ने भिक्षुओं को तिष्य के चीवर को आपस में बांट लेने को कहा।

भिक्षुओं ने स्वभावतः भगवान से एक सप्ताह पहले रुक जाने और फिर आज अचानक बांटने की आज्ञा देने का कारण पूछा।

तब भगवान ने तिष्य के चीलर होने और दुबारा मरने की बात बतायी और कहा, कामी अनंत बार मरता है। जितनी कामना, उतनी मृत्यु। क्योंकि जितनी कामना, उतने जन्म। प्रत्येक कामना एक जन्म बन जाती है और प्रत्येक कामना एक मृत्यु बन जाती है। और यह गाथा कही--

अयसा"व मलं समुट्ठितं तदुट्ठाय तमेव खादति।

एवं अतिधोनचारिनं सानि कम्मानि नयन्ति दुग्गतिं।।

"जैसे लोहे का मोर्चा उससे उत्पन्न होकर उसी को खाता है, वैसे ही सदाचार का उल्लंघन करने वाले मनुष्य के अपने कर्म उसे दुर्गति को पहुंचाते हैं।"

यह कथा महत्वपूर्ण है। एक तो तुम यह मत सोचना कि ज्यादा हो तो ही परेशानी होगी। ज्यादा-कम से कोई संबंध नहीं है। परेशानी लानी हो तो किसी भी चीज पर परेशानी आ सकती है। क्षुद्र सी चीज पर परेशानी हो सकती है। और परेशानी न होनी हो, न उठानी हो, न परेशानी में जाना हो, तो विराट से विराट चीज भी कोई परेशानी नहीं ला सकती। तो कभी ऐसा भी होता है कि भिक्षु तिष्य जैसा आदमी एक चादर के पीछे चिंतित हो जाता है। और कभी राजा जनक जैसा आदमी बड़े साम्राज्य में रहते हुए भी जरा भी चिंतित नहीं होता।

तो एक बात ख्याल में लेना कि चिंता बड़े और छोटे से संबंधित नहीं है। चिंता समझ और नासमझी से संबंधित है। अब यह आदमी भिक्षु हो गया, सब छोड़ दिया, मगर भीतरी वासना बदली नहीं। वही का वही। कभी हो सकता था रास्ते पर अकड़कर चलता रहा हो, अब भी वही अकड़ कायम है, छिप गयी है। रस्सी शायद जल भी गयी हो, तो भी उसकी अकड़ नहीं गयी! आज उसे एक पतली चादर मिल गयी, महीन चादर, तो वह सोचता, अहा! अब जरा मैं पहनकर चलूंगा। भगवान के पास भी ऐसी चादर नहीं है। उसका चित्त इससे बड़ा प्रसन्न हो रहा है।

यह ईर्ष्या, यह अहंकार, यह प्रदर्शन की भावना; यह तो संन्यासी का लक्षण नहीं। इसलिए बुद्ध कहते हैं, यह आचरण से पतन है। संन्यासी के आचरण का तो अर्थ ही यह होता है कि अब उसको प्रदर्शन की कोई इच्छा नहीं रही। अब दिखावे में उसका कोई रस नहीं है। संन्यासी का तो अर्थ ही यह होता है कि छोटी चीज हो कि बड़ी चीज हो, अब उसका ऐसा कोई मोह नहीं कि वह पकड़े। संन्यासी का तो अर्थ ही यह होता है कि अपना भी जो है उसे भी अपना न माने, देह को भी अपना न माने, मन को भी अपना न माने।

संसारी का अर्थ होता है कि वह तो दूसरे की चीजों को भी अपना मान लेता है। यहां तुम आए, न तो जमीन लेकर आए, न मकान लेकर आए। जमीन यहां थी, तुम आए उसके पहले थी, तुमने उस पर झंडा गाड़ दिया, तुम्हारी हो गयी।

आदमी अजीब पागल है। जब अमरीकन पहली दफा चांद पर गए तो वहीं झंडा गाड़ आए। झंडा गाड़े बिना चलता ही नहीं। जैसे चांद किसी के बाप का हो। उस पर झंडा गाड़ दिया। जब हिलेरी एवरेस्ट पर चढ़ा तो उसने एवरेस्ट पर झंडा गाड़ दिया। अब एवरेस्ट सदियों से है, आदमी नहीं था, तब से है। चांद कब से है! आदमी रहेंगे और समाप्त हो जाएंगे और चांद बना रहेगा। किसका है! लेकिन हम तो दूसरे की चीज पर भी कब्जा कर लेते हैं।

मैं कल एक कहानी पढ़ रहा था। एक धनी यहूदी एक भिक्षुक को हर साल एक निश्चित रकम दिया करता था। एक साल उसने उससे आधी ही रकम भिक्षुक को दी। भिक्षुक ने इस पर मुंह बनाया तो धनी ने उसे समझाया, भाई, इस साल मेरे खर्चे बहुत बढ़ गए हैं। मेरा सबसे बड़ा बेटा देश की सबसे बड़ी नर्तकी पर फिदा हो गया है और उस पर पानी की तरह पैसा बहा रहा है। इसलिए मुझे क्षमा करो, इस बार ज्यादा न दे सकूंगा। ऐसा सुनकर तो भिक्षुक एकदम खफा हो गया और बोला, श्रीमान जी, आपका चिंरजीव अगर देश की सबसे बड़ी नर्तकी को पालना चाहता है तो पाले, मगर अपने पैसों से पाले, मेरे पैसों से तो नहीं।

दूसरे की चीज पर भी अपना कब्जा हो जाता है।

ख्याल रहे, संन्यासी का अर्थ है, दूसरे की चीज पर तो कब्जे का सवाल ही न रहा, कोई चीज अपनी है ऐसी धारणा भी विदा हो जाए। अब एक छोटी सी चादर, वह साम्राज्य बन गयी। एक छोटी सी चादर, उसी में उसने बेईमानी भी निकाल ली। मोटे धागे की थी, कह तो सकता नहीं था। कह नहीं सकता था कि इसे न लूंगा, कि पतले धागे की चाहिए। मगर कानूनी तरकीब निकाल ली। जहां कानूनी तरकीबें हैं, वहां आदमी की सरलता खो जाती है, पाखंड शुरू हो जाता है।

जैन मुनियों में, विशेषकर दिगंबर जैन मुनियों में, महावीर के समय से चला आया एक नियम है, प्यारा नियम है। महावीर जब निकलते थे सुबह ध्यान के बाद भिक्षा के लिए, तो वे एक व्रत ले लेते थे मन में कि अगर आज किसी घर के सामने दो आम लटके होंगे, तो मैं भोजन ले लूंगा। या किसी घर के सामने एक काली गाय खड़ी होगी तो भोजन ले लूंगा। ऐसा एक नियम ले लेते, फिर सारे गांव में घूम आते। कभी-कभी महीनों तक भी भोजन नहीं मिलता था, क्योंकि अब इसका क्या भरोसा।

एक दफा उन्होंने नियम ले लिया कि एक बैल खड़ा हो, और बैल के सींग में गुड़ लगा हो। तीन महीने तक बैल न मिला। अब बैल के सींग में गुड़ लगा हुआ! फिर जिस घर के सामने खड़ा हो उस घर के लोग निमंत्रण दें, तब न। तो कई बातें मिलनी चाहिए। वह मेल नहीं खाई तो तीन महीने तक वे वापस लौट आते थे।

दिगंबर जैन मुनि अभी भी इसका पालन करता है। लेकिन उसने कानूनी तरकीब निकाल ली है। वह दो-तीन चीजें उसने तय कर रखी हैं, बस उतने ही लेता है नियम। तो तुम बहुत चकित होगे, जब दिगंबर जैन मुनि गांव में आता है तो कई घरों के सामने तुम देखोगे कि दो केले लटके हैं, दो आम लटके हैं। बस वह दो-तीन चीजें रखता है, तो सभी घरों के सामने उतनी चीजें लटका देते हैं। अब यह कानूनी तरकीब हो गयी। अब वह एक भी दिन बिना भोजन किए नहीं जाता। महावीर को तीन महीने तक भी एक दफा भोजन बिना किए जाना पड़ा था। और अक्सर बिना भोजन किए जाना पड़ता था।

महावीर के बारह साल की साधना के समय में, कहते हैं, कुल तीन सौ पैंसठ दिन उन्हें भोजन मिला था। मतलब ग्यारह साल भूखे और एक साल भोजन, ऐसा। एक-एक दिन कभी सात दिन के बाद, कभी पंद्रह दिन के बाद, कभी महीनेभर के बाद। जरूर उन्होंने कोई कानूनी तरकीब नहीं की होगी, नहीं तो अपना एक ही नियम रोज ले लिया कि दो केले। धीरे-धीरे लोगों को पता चल ही जाएगा कि जहां दो केले लटके होते हैं, वहीं ये भोजन लेते हैं, तो फिर श्रावक दो केले लटकाने लगेंगे। दो क्या वे दो सौ लटका दें, तो उससे कोई फर्क! कितनी अड़चन है उसमें!

इतना ही नहीं, दिगंबर जैन मुनि किसी गांव में जाए, हो सकता है लोगों को पता न हो, नए गांव में पहुंचे, लोगों को पता न हो कि वह क्या नियम लेता है, तो एक चौका उसके साथ चलता है। एक श्रावक, एक श्राविका, दो-चार सज्जन--एक चौका उसके साथ चलता है। तो वह हर गांव में जहां जाता है, उसके एक दिन पहले पहुंच जाते हैं। गांव के लोग तो भोजन बनाते ही हैं, अगर वहां न मिले तो इस चौके वालों को तो पक्का पता है, अगर गांव में न मिल पाए तो लौटकर इस चौके में भोजन मिल जाता है, लेकिन भोजन कभी चूकता नहीं। फिर जरूरत क्या है इसको करने की? वह महावीर की जो बात थी वह तो खो गयी। आदमी बेईमान है।

एक बार ऐसा हुआ कि एक बौद्ध भिक्षु भिक्षा मांगकर लौट रहा था और एक चील मांस का टुकड़ा लेकर जाती होगी, उसके मुंह से छूट गया। वह भिक्षु के पात्र में गिर गया। अब बुद्ध ने कहा था, जो तुम्हारे पात्र में गिर जाए, वह स्वीकार कर लेना। अब उसने सोचा कि क्या करना? ताजा मांस का टुकड़ा था। पुराना मांसाहारी था वह। तो उसने सोचा कि भगवान ने खुद ही कहा है कि जो पात्र में गिर जाए, अब इसमें इनकार भी कैसे करना।

लेकिन पास में और भिक्षु भी थे, उन्होंने भी देख लिया था, उन्होंने कहा कि ठहरो! ऐसी स्थिति के लिए भगवान ने नहीं कहा है। भगवान से पूछना पड़ेगा। अभी रुको। उनको भी ईर्ष्या सताने लगी कि यह तो मांस खा जाएगा और हम! सभी क्षत्रिय थे। क्योंकि बुद्ध के अनुयायी और महावीर के अनुयायी अधिकतर सब क्षत्रिय थे, वे दोनों भी क्षत्रिय थे। तो क्षत्रिय घरों से लोग ज्यादा आए थे।

भगवान के पास बात गयी। बुद्ध ने सोचा। उन्होंने सोचा--तुम्हारी बेईमानी के कारण कैसी अड़चनें खड़ी होती हैं--उन्होंने सोचा कि अगर मैं कहूं कि तुम्हारे पात्र में जो गिरा है तुम कर लो भोजन, तो यह मांसाहार करेगा। मगर, अगर मैं कहूं कि नहीं, तुम्हारे ऊपर छोड़ता हूं, कभी ऐसी स्थिति आ जाए कि जो करने योग्य नहीं है तो छोड़ देना, तो भी खतरा है। क्योंकि फिर तत्क्षण भिखारी--फिर भिक्षु जो है बौद्ध का--वह घरों में जाने लगेगा, जो उसको पसंद नहीं है वह उसको छोड़ने लगेगा। वह कहेगा, यह करने योग्य नहीं है। किसी ने रूखी-सूखी रोटी दी वह छोड़ देगा, किसी ने पू.ड़ी तो वह ले लेगा। तो वह खतरा और बड़ा हो जाएगा। यह चील इत्यादि ने तो एक बार गिरा दिया, यह कोई रोज-रोज तो गिराने वाली नहीं है मांस। इसलिए उन्होंने कहा कि ठीक है, जो पात्र में आ जाए वह ले लेना।

इस छोटी सी घटना के कारण सारे बौद्ध मांसाहारी हो गए। शाकाहार खो ही गया। चीन, जापान, कोरिया, तिब्बत, बर्मा, सब मांसाहारी हो गए। सब बौद्ध मुल्क मांसाहारी हैं, इस छोटी सी घटना के कारण। यह चील ने सारा उपद्रव कर दिया। करोड़ों लोग मांसाहारी हो गए इस एक चील की तरकीब से। अब वे कहते हैं, जो पात्र में पड़ जाए। और उनके श्रावक जानते हैं कि लोग मांसाहार पसंद करते हैं तो पात्र में मांसाहार डालने लगे। उसके पहले तक नहीं डाला था उन्होंने।

बुद्ध ने कहा है, कोई किसी को मारकर न खाए। सोचा भी नहीं होगा कि कोई कानूनी आदमी इसमें से तरकीब निकाल लेगा। किसी जानवर को मारकर न खाए। तो चीन और जापान में तुम्हें ऐसी तख्तियां लगी मिलेंगी दुकानों के सामने कि यहां अपने आप मरे जानवर का मांस बेचा जाता है। इसके लिए तो बुद्ध ने मना किया भी नहीं है। उन्होंने कहा था, कोई मारकर न खाए। तरकीब निकाल ली।

अब इतने जानवर अपने आप मर भी नहीं रहे हैं। हजारों गाएं काटी जा रही हैं। कटकर मांस आता है, होटल वाला तख्ती लटकाए बैठा है। बस, मजे से तुम कर सकते हो, क्योंकि साफ लिखा है।

तुम भी जानते हो, सारी दुनिया जानती है कि वह सब मांस कटकर आ रहा है, लेकिन इससे तुम्हें क्या मतलब! लेने वाला कहता है, यह होटल वाला जाने। अगर वह कोई पाप कर रहा है, झूठ बोल रहा है, तो वह जाने। होटल वाला सोचता है, सारी दुनिया जानती है कि इतने जानवर रोज कहां से मरेंगे, जानकर तुम ले रहे हो, तुम समझो। तख्ती तो ऐसे ही है जैसे हमारे मुल्क में तख्ती लगी रहती है, यहां शुद्ध घी बिकता है। सभी जानते हैं कि जहां-जहां शुद्ध घी लिखा है, वहां-वहां क्या बिकता है। इसमें किसी को कुछ बताने की जरूरत नहीं है। जब शुद्ध घी बिकता था तो किसी जगह तख्ती लगी ही नहीं होती थी कि शुद्ध घी बिकता है। घी बिकता है, इतना ही काफी था, शुद्ध क्यों लगाना? घी यानी शुद्ध होता है। शुद्ध घी बिकता है, उसका मतलब ही यह है कि अशुद्ध का भाव प्रवेश कर गया है।

तिष्य को कुछ बड़ी चीज नहीं थी, एक छोटी सी चादर थी, मगर चादर ने बेचैन कर दिया। खूब अहंकार उठने लगा मन में उसको। और रात अंधेरा हो गया है इसलिए अब तो पहनने का मौका नहीं है, कल सुबह, सूरज के ऊगते ही, नहा-धोकर पहनकर निकलूंगा संघ में, देखेंगे भिक्षु, ईर्ष्या से ठगे रह जाएंगे, खड़े रह जाएंगे।

भगवान के पास भी ऐसी चादर नहीं है, जैसी मेरे पास है। लेकिन संयोग की बात, न तो रात सो सका, चिंता के कारण सपने देखे और उसी रात मर भी गया।

ख्याल करना, जब भी तुम मरोगे तो जो तुम्हारी अंतिम वासना होगी, वही तुम्हारे नए जन्म का सूत्रपात होती है। इसलिए मरते वक्त अगर वासना के सहित मरे, तो वासना ही तुम्हारे जीवन का ढांचा बनेगी। आने वाले जीवन का ढांचा बनेगी।

मरते वक्त उसके मन में एक ही भाव था, एक ही भाव था कि चादर पहन लूं, चादर पहन लूं, चादर पहन लूं। फिर मर गया, तो चीलर हुआ।

चीलर का मतलब इतना ही है--कथा तो केवल एक बोधकथा है--चीलर का मतलब इतना है कि अब और तो कोई उपाय नहीं था, चीलर होकर ही चादर में प्रवेश कर सकता था, ओढ़ सकता था चादर को; तो चीलर हुआ। वह चादर की वासना उसे चीलर बना दी।

तुम्हारी वासना ही तुम्हारी नयी देह बनेगी। इसलिए मरते वक्त सोच-समझकर मरना। मगर मरते वक्त सोच-समझकर मर न सकोगे, अगर सोच-समझ पूरे जीवन न सम्हाला।

तुमने कहानियां सुनी हैं--वे कहानियां एकदम व्यर्थ नहीं हैं, बड़ी प्रतीकात्मक हैं--कि कोई आदमी मर जाता है, वह सांप होकर अपने गड़ाए हुए धन पर बैठ जाता है। वह जिंदगीभर धन की ही बात सोचता रहा, रात-दिन एक ही फिकर रही कि जहां धन गड़ाया है कोई उसमें आ न जाए; मरकर सांप हो गया है। ऐसा हो या न हो, यह सवाल नहीं है, मगर यह बात सूचक है। तुम मरकर वही हो जाओगे जो तुम्हारे जीवनभर की वासना थी। और अंतिम घड़ी में तुम्हारे चित्त पर जो बादल डोल रहे थे, उन्हीं के इशारे पर तुम्हारे नए जीवन का प्रारंभ होगा।

वह तिष्य चीवर में चीलर हो गया। और जब उसकी चादर उठायी गयी, तो स्वभावतः चीलर एकदम पागल हो उठा। वह दौड़ने लगा चादर के भीतर और चिल्लाने लगा, हमारी वस्तु लूट रहे हैं। मर गया, लेकिन वासना अभी भी नहीं मरी। मर गया, लेकिन मोह अभी भी नहीं मरा। मर गया, लेकिन अहंकार अभी भी नहीं मरा।

हमारी वस्तु लूट रहे हैं, कह-कहकर इधर-उधर दौड़ने और चिल्लाने लगा। भगवान के अतिरिक्त तो किसी ने उसकी आवाज सुनी भी नहीं।

उतनी सूक्ष्म आवाज तो सिर्फ बुद्धपुरुष ही सुन सकें। वे हंसे और उन्होंने कहा कि आनंद, उन भिक्षुओं को कह दो कि तिष्य के चीवर को अभी वहीं रख दें। सात दिन बाद जब चीलर मर गया, तो बुद्ध ने कहा, अब उस चादर को बांट लो।

स्वभावतः, भिक्षुओं ने पूछा। क्योंकि इसमें विरोधाभास था, सात दिन पहले अचानक कह दिया था कि रुक जाओ, चादर को वहीं छोड़ दो, अब अचानक कहा कि बांट लो।

तो बुद्ध ने कहा, कामी अनंत बार मरता है।

उसकी कामना तिष्य की उसे चीलर बना दी। अब चीलर की तरह वह मर गया। अब जो कामना लेकर मरा है, वह फिर उस कामना से पैदा होगा, फिर मरेगा।

कामी अनंत बार मरता है। जितनी कामना, उतनी मृत्यु। प्रत्येक कामना एक जन्म है और प्रत्येक कामना एक मृत्यु है। और तब उन्होंने यह गाथा कही--

जैसे लोहे पर मोर्चा लग जाता है, जंग लग जाती है, वह आती तो लोहे से ही है, लेकिन लोहे को ही सड़ा देती है, गला देती है, मिटा देती है। जैसे लोहे पर जंग आ जाती है, उसी से उत्पन्न होती और जंग फिर उसी लोहे को खा जाती है, ऐसे ही तुम्हारी वासनाएं तुम्हीं में उत्पन्न होतीं और तुम्हीं को खा जातीं। वासना तुम्हारी चेतना पर जंग है। वासना से जो मुक्त है, वह निर्मल है। उस पर कोई जंग नहीं।

"वैसे ही सदाचार का उल्लंघन करने वाले मनुष्य के अपने कर्म उसे दुर्गति को पहुंचाते।"

यह तिष्य की हालत देखो, बुद्ध ने कहा, अपनी ही भ्रांति, अपनी ही भूल, कैसी दुर्गति में ले गयी! कहां भिक्षु था, कहां चीलर हुआ!

मनुष्य इन सारी यात्राओं पर होकर आया है। तुम कभी पशु थे, कभी पक्षी थे, कभी पौधे थे, कभी पहाड़ थे, अब तुम मनुष्य हो। इस मनुष्य होने के अपूर्व अवसर का ठीक-ठीक उपयोग कर लो। कहीं ऐसा न हो कि यह अवसर ऐसे ही खो जाए। इस अवसर का एक ही ठीक उपयोग है और वह है--इस बार इस भांति मरो कि फिर कोई जन्म न हो। उसने ही जीवन का सम्यक उपयोग कर लिया जो इस भांति मरा कि फिर कोई जन्म न हो।

लेकिन उसके लिए निर्वासना में मरना जरूरी है। शांत, मौन, शून्य भाव में मरना जरूरी है। तो फिर तुम्हारे भीतर कोई दिशा नहीं है जो तुम्हें कहीं ले जा सके।

जब तुम्हारे भीतर कहीं जाने की कोई कामना नहीं, कुछ होने की कोई कामना नहीं, तब तुम इस पृथ्वी के प्रभाव से मुक्त हो जाते हो। तब तुम उठते हो आकाश की उस ऊंचाई पर, जहां बुद्धत्व को प्राप्त व्यक्ति ही उठते हैं।

एक ऐसा जन्म है कि फिर कोई मृत्यु नहीं। वह जन्म है मोक्ष में। और फिर ऐसे अनंत जन्म हैं जिनमें बार-बार मृत्यु है, वैसे जन्म हैं संसार में। चुनाव तुम्हारा है।

सागर बूंदों का मेला

ईश्वर आदमी अकेला

इस अकेलेपन को बुद्ध कहते हैं, द्वीप बन जाना।

सो करोहि दीपमत्तनो खिप्पम वायम पंडितो भव।

अकेले हो जाओ, असंग हो जाओ। ऐसे जीओ कि तुम अकेले हो, कोई संग-साथ नहीं, कोई संगी-साथी नहीं है, कोई अपना नहीं, कोई पराया नहीं, ऐसे द्वीप की भांति जीओ। और जिस दिन तुम द्वीप की भांति जीओगे, उसी दिन तुम्हारे भीतर वह दीया भी जलेगा जो पांडित्य का है।

यह दीया बुझा-बुझा ही न रह जाए। इस दीए को जलाना ही है। तो तुम्हारे पास पुण्य-पाथेय होगा। और तुम्हारा एक घर होगा उस विराट में, तुम बेघर न होओगे।

संसार से तो घर मिटाना है और निर्वाण में घर बनाना है।

आज इतना ही।

अठत्तरवां प्रवचन

तृष्णा का स्वभाव अतृप्ति है

पहला प्रश्नः श्रेय और प्रेय के भेद को हमें फिर से समझाने की कृपा करें।

ऐसे तो भेद साफ है। और साफ नहीं भी। क्योंकि भेद दो बड़ी सूक्ष्म बातों में है। जिसे श्रेय कहते हैं, अंतिम अर्थों में वही प्रेय सिद्ध होता है। और जिसे प्रेय कहते हैं, वह तो श्रेय है ही नहीं। इसलिए भेद सूक्ष्म भी है। लेकिन शब्द की तरफ से न पकड़ें, चैतन्य की तरफ से पकड़ें।

मूर्च्छित आदमी जिसे करने योग्य मानता है, उसे बुद्ध ने प्रेय कहा है। सोया हुआ आदमी जिसे करने योग्य मानता है, उसे प्रेय कहा है। जागा हुआ आदमी जिसे करने योग्य मानता है, उसे श्रेय कहा है। असली सवाल निद्रा को जागरण में बदलने का है। तभी प्रेय से मुक्ति और श्रेय में गति होगी।

छोटा बच्चा है, वह तो आग से भी खेलना चाहे, वह तो सांप से भी खेलना चाहे, रोको तो रोए भी, रोको तो नाराज भी हो, उसे अभी श्रेय और प्रेय का कुछ भी पता नहीं। अभी तो इस अबोध अवस्था में जो उसे प्रिय लगता है, वह प्रिय भी कहां है! आग से खेलेगा तो जलेगा; सांप से खेलेगा तो मरेगा। यह प्रीतिकर भी नहीं है। लेकिन अबोध अवस्था में निर्णय भी कैसे करे? जितना रोका जाता है, उतना ही आकर्षण प्रबल होता है। जितना तुम कहोगे, मत जाओ आग के पास, उतना आग में बुलावा मालूम होता है। बच्चे को ऐसा लगने लगता है, जरूर कुछ होगा वहां, अन्यथा सारे लोग रोकने के पीछे क्यों पड़े हैं! कुछ भी न होता तो इतने लोग रोकते क्यों?

ऐसी ही मनुष्य की दशा है। हजारों-हजारों वर्षों से जाग्रत पुरुषों ने बार-बार कहा है, वहां मत जाओ, वहां कुछ भी नहीं है। उनके निरंतर कहने का परिणाम यह हुआ है कि हमारा मन कहता है कि समस्त जाग्रत पुरुष जब कहते हैं कि वहां मत जाओ, जरूर कुछ होगा। कहीं ऐसा न हो कि कुछ हो ही। इतने लोग रोकते हैं तो कुछ होना ही चाहिए। तो हम काम में जाते, क्रोध में जाते, लोभ में जाते, मोह में जाते और इनको हम प्रिय कहते हैं! हम कहते हैं, ये हमें प्यारे लगते हैं।

और मजा यह है कि छोटा बच्चा अगर आग में जल जाए तो एक ही अनुभव काफी होगा, दुबारा फिर आग की तरफ न जाएगा। हमारी मूर्च्छा और भी घनी है। कितनी बार क्रोध किया है! और कितनी बार क्रोध की आग में जले हैं! फिर भी जब होगा तो करना प्रिय लगता है। लोभ कितनी बार किया है! और लोभ से क्या पाया है? नींद खो दी, नींद हराम हुई, चिंता जगी, बेचैनी हुई, उद्विग्न हुए, विक्षिप्तता पैदा हुई, लोभ से पाया क्या है? यहां पाने को क्या है जो लोभ से कोई पा लेगा! लेकिन फिर जब लोभ जगेगा तो प्रिय मालूम पड़ेगा।

श्रेय का अर्थ है, जो अंततः प्रिय है, जो अंततः प्रेय सिद्ध हो। जागकर भी प्रेय सिद्ध हो। सोए-सोए ही प्रेय न मालूम पड़े, जागकर भी प्रेय सिद्ध हो। अनुभव के बाद भी प्रिय सिद्ध हो। आग में हाथ डालने के बाद भी हाथ न जले और हाथ और भी स्वस्थ होकर, और भी सुंदर होकर निकल आए, तो फिर आग भी प्रिय हो गयी।

दूर से तो लगे कि बड़ी सुंदर है, खेलने जैसी है, लपट पकड़ने जैसी है, आकर्षण मालूम हो, पास जाकर सिर्फ जलना हो, घाव बने, नासूर बने... ।

तो बुद्ध ने जिसे प्रेय कहा है उसका अर्थ हुआ--तुम्हारी मूर्च्छा में जो सुंदर लगता, लेकिन अनुभव से सुंदर सिद्ध नहीं होता। तुम्हारी मूर्च्छा में जो आकर्षक लगता, लेकिन अनुभव से आकर्षक सिद्ध नहीं होता। मूर्च्छा में

जो सत्य लगता, अनुभव से स्वप्न जैसा सिद्ध होता। जो दूर-दूर से तो सुंदर मनमोहक मालूम होता, पास जैसे-जैसे आते, सारा सौंदर्य तिरोहित हो जाता। इंद्रधनुष जैसा है जो। दूर आकाश में खिंचा, कितना सुंदर, पास जाकर मुट्ठी बांधोगे तो कुछ भी हाथ में न आएगा। धुआं भी हाथ में न आएगा, धूल भी हाथ में न आएगी, वहां कुछ है नहीं। इंद्रधनुष दूरी में है, निकटता में नहीं।

जो पास आकर भी सत्य सिद्ध हो, जो परिपूर्ण अनुभव से गुजरकर भी सुंदर सिद्ध हो, भोग-भोगकर भी जिसमें पीड़ा न हो, आनंद का रस बढ़ता चला जाए, उसे बुद्ध ने श्रेय कहा है। उसे श्रेय इसलिए कहा है, ताकि तुम जिसे अभी प्रेय समझते हो, उससे भिन्न का तुम स्मरण रखो। लेकिन अगर गहरी बात पूछो, तो जिसे बुद्ध ने श्रेय कहा है, वही प्रेय है। वही वस्तुतः प्रेय है। और जिसे तुम प्रेय समझ रहे हो, वह प्रेय नहीं है। उसी प्रेय के कारण तो भटक रहे हो, कष्ट पा रहे हो। और आश्चर्य तो यही है कि आदमी अनुभव के बाद अनुभव, अनुभव के बाद अनुभव, फिर भी कुछ सीखता नहीं।

महाभारत की प्रसिद्ध कथा है, तुमने सुनी होगी। पांडव वनवास के दिनों में एक जंगल में भटक गए हैं। प्यासे हैं और एक भाई पानी लेने, खोजने गया। एक झील पर पहुंच गया। स्फटिक मणि जैसा स्वच्छ उस झील का जल है। वह तो बड़ा प्रसन्न हुआ। सब भाई प्रतीक्षा करते होंगे, वह जल्दी से पानी भरने की तैयारी करने लगा।

लेकिन जैसे ही पानी भरने को झुका झील में, एक आवाज आयी एक वृक्ष के पास से कि रुक, पहले मेरी बात का जवाब दे दे। अगर बिना जवाब दिए पानी भरने की कोशिश की तो जीवित न लौट सकेगा। और अगर जवाब न दे सका तो भी जीवित न लौट सकेगा। कोई दिखायी नहीं पड़ता है। कथा कहती है, एक यक्ष, एक आत्मा उस वृक्ष पर वास करती है और वह आत्मा तभी मुक्त होगी जब उसके प्रश्नों का उसे उत्तर मिल जाए। इसलिए उस झील पर जो भी आता है, वह आत्मा इस तरह के प्रश्न पूछती है, जिनके जान लेने से वह मुक्त हो जाएगी।

हम भी सब ऐसे ही आत्माएं हैं, जो किन्हीं प्रश्नों की तलाश में भटक रहे हैं। हम सब भी यक्ष हैं। हमारे भी प्रश्नों का उत्तर कहां मिला है! प्रश्नों का उत्तर मिल जाए तो हम मुक्त हो जाएं। इसलिए कथा बड़ी प्यारी है, मीठी है।

यक्ष कैद है वृक्ष पर। उसकी आत्मा बंदी है। वह किसी प्रश्न की तलाश कर रहा है। उसे उत्तर मिल जाए तो वह मुक्त हो जाए। यही अभिशाप है उसका कि जब तक उत्तर न पा लेगा, तब तक मुक्त न हो सकेगा। तो जो भी झील पर आता है, उसी से पूछता है कि मेरा उत्तर पहले दे दो।

उसने जो प्रश्न पूछे, वे बड़े कठिन मालूम पड़े। उत्तर नहीं दिए जा सके। तो एक पांडव बेहोश होकर गिर पड़ा। फिर दूसरा खोजता हुआ आया--अपने भाई को खोजते और पानी को खोजते। उसके साथ भी यही हुआ। चार भाई इस तरह--लाशें झील के किनारे गिर गयीं। और तब युधिष्ठिर का आगमन हुआ।

उसके प्रश्न बड़े प्यारे हैं, बड़े महत्वपूर्ण हैं। उनमें एक प्रश्न जो आज के काम का है, वह प्रश्न यह है कि मनुष्य के संबंध में सबसे अजूबी बात कौन सी है? मनुष्य के संबंध में सबसे ज्यादा अविश्वसनीय बात कौन सी है? तो युधिष्ठिर ने कहा, यही कि वह अनुभव से सीखता नहीं। यह सबसे ज्यादा आश्चर्यजनक बात है। और यक्ष ने उत्तर स्वीकार कर लिया। उसके बंधन खुल गए।

ठीक उत्तर मिल जाए तो बंधन खुलते हैं।

सबसे अजूबी बात यही है कि आदमी सीखता नहीं। तुम अपने संबंध में सोचो, तुम अपने जीवन का जरा विश्लेषण करो। कितनी बार तुमने क्रोध किया है, और हर बार क्रोध के बाद पछताए हो; हर बार, बिना नागा पछताए हो; निरपवाद पश्चात्ताप हुआ है। और हर बार निर्णय किया है कि अब नहीं, अब नहीं करूंगा क्रोध, इससे कुछ सार नहीं है। कितनी बार कामवासना में उतरे हो, हर बार विषाद ने घेरा है। हर बार थके-मांदे, पराजित विचार में पड़ गए हो कि पाया क्या, मिला क्या? कितनी आतुरता से गए थे, कितनी कामना थी, कितने सपने संजोए थे, सब धूल-धूसरित पड़े हैं। अब नहीं, अब नहीं, बहुत बार निर्णय किया है। और घंटे भी नहीं बीत पाते, दिनों की तो बात दूर, और फिर वासना प्रबल हो उठती है।

तो तुम सीखते हो? नहीं, सबसे आश्चर्यजनक बात यही कि आदमी अनुभव से सीखता नहीं।

जो आदमी अनुभव से सीखने लगता है, वह धीरे-धीरे श्रेय की तरफ जाने लगता है। क्रोध प्रेय है, अक्रोध श्रेय है। काम प्रेय है, अकाम श्रेय है। लोभ प्रेय है, दान श्रेय है। ऐसे धीरे-धीरे अनुभव से सीखकर तुम पाओगे, जिनको बुद्ध ने प्रेय कहा है, वे छूटते चले जाते हैं। और जिनको श्रेय कहा है, वे तुम्हारे जीवन में धीरे-धीरे, धीरे-धीरे जड़ें जमाने लगते हैं। और जब श्रेय की जड़ें जम जाती हैं तुम्हारी चेतना में, तुम्हारी आत्मा जब उनकी भूमि बन जाती है, तो जीवन में जो फूल खिलते हैं, वे ही वस्तुतः प्रेय हैं।

तो जिसे हम श्रेय की तरह शुरू करते हैं, शुभ की तरह शुरू करते हैं, अंततः पाते हैं, वही प्रिय है। और जिसे हम प्रेय की तरह शुरू करते हैं, उसका श्रेय होना तो दूर, आखिर में पाते हैं कि वह प्रेय भी नहीं है। इसलिए प्रेय की दिशा में जाने वाले आदमी का नाम है संसारी, और श्रेय की दिशा में जाने वाले आदमी का नाम है संन्यासी।

तुम चैतन्य की भाषा में समझो--सोया हुआ आदमी प्रेय की तरफ भागता है, जागा हुआ आदमी श्रेय की तरफ उठने लगता है।

दूसरा प्रश्नः भगवान बुद्ध को उस विधवा पर भी दया नहीं आयी जिसका इकलौता नन्हा मृत्यु ने छीन लिया था। और उन्होंने मृत्यु-शय्या पर पड़े स्वर्णकार को मृत्यु की तैयारी करने का उपदेश दिया। दूसरी तरफ जीसस क्राइस्ट ने अंधे को आंख, रोगी को आरोग्य और मृत को जीवनदान किया। फिर भी आश्चर्य है कि बुद्ध महाकारुणिक कहलाते हैं। किनकी करुणा अधिक है, बुद्ध की या क्राइस्ट की?

जिस छोटी सी कथा की ओर संकेत है, वह तुम्हें स्मरण दिला देनी उचित है।

एक स्त्री का इकलौता बेटा मर गया। वही उसका सहारा था। उस पर ही उसने सारा जीवन निछावर किया था। उसके दुख का कोई पारावर न था। वह छाती पीटती और लोटती और बाल नोचती। मोहल्ले-पड़ोस के लोग समझा-समझाकर हार गए, लेकिन वह सुनती ही न। वह अपने बेटे की लाश भी देने को राजी नहीं। वह उसको छाती से लगाए है। उसे आशा है कि कोई चमत्कार हो जाएगा। उसे आशा है कि उसकी पीड़ा, उसका दर्द, उसके आंसू भगवान समझेगा। उसकी पुकार कहीं तो सुनायी पड़ेगी। कहीं तो न्याय होगा। उसने सुन रखा है कि उसके दरबार में देर है, अंधेर नहीं! तो वह छोड़ने को राजी नहीं है। वह उस बेटे की लाश को लेकर घूमती है। वह एक क्षण को छोड़ती नहीं। रात सोती नहीं कि कोई उसकी लाश को जला न दे। तब तो लोगों ने समझा कि वह पागल हो गयी।

कोई उपाय न था। गांव में बुद्ध का आगमन हुआ था, तो लोगों ने कहा, ऐसा कर, अगर तू सोचती है कि चमत्कार हो सकता है तो इस बेटे को लेकर बुद्ध के पास चली जा। इससे बड़ा और क्या सौभाग्य होगा! जाकर बुद्ध के चरणों में इस बेटे को रख दे। अगर हो सकता है जीवन पुनः तो हो जाएगा। गांव के लोग तो जानते थे यह होगा नहीं, यह कभी हुआ नहीं है, लेकिन शायद बुद्ध के पास जाने से इसे कुछ समझ आ जाए।

वह गयी, उसने बुद्ध के चरणों में लाश रख दी। और उसने कहा, करुणा करें; आप तो महाकारुणिक हैं। मेरे बेटे को जिला दें। बुद्ध ने कहा, ठीक, तू एक काम कर। गांव में चली जा और ऐसे घर से सरसों के बीज मांग ला, जिस घर में कोई कभी मरा न हो। वैसे बीज मिल जाएं तो यह बेटा अभी जी जाएगा।

उस स्त्री के तो आंसू सब तिरोहित हो गए, वह तो नाच उठी। उसने कहा, यह मैं अभी लाती हूं, यह कोई बड़ी बात नहीं है। सरसों की ही तो खेती होती है हमारे गांव में, घर-घर सरसों है, अभी लाती हूं। उसे होश भी नहीं है कि ये बीज मिल न सकेंगे। उसे शर्त की बात ख्याल में नहीं है--कि बुद्ध ने कहा, उस घर से जिसमें कोई कभी मरा न हो। वह गयी एक घर, दो घर, तीन घर, गांव के एक-एक द्वार पर उसने दस्तक दी, गरीब से गरीब और राजा तक गयी। लेकिन सभी ने कहा, पागल, ऐसा घर कहां मिलेगा जहां कोई कभी न मरा हो! ऐसा घर तो हो ही नहीं सकता! किसी का पिता मरा है, किसी की मां मरी है, किसी का बेटा मरा है, किसी का भाई मरा है, ऐसा घर तो हो ही नहीं सकता! जितने लोग घर में रह रहे हैं, इससे अनंतगुना लोग घर में मर चुके हैं। बाप के बाप मरे, उनके बाप मरे, कितने लोग मर चुके हैं! ऐसा तो कोई घर हो नहीं सकता जहां कोई मरा न हो।

सांझ होते-होते उसे बोध आया, कि मृत्यु अनिवार्य है। वह लौटी। नाचती गयी थी खुशी में कि ले आएगी सरसों के बीज, खाली हाथ लौटी, लेकिन नाचती ही लौटी। अब बेटे के जगने की तो कोई उम्मीद न थी; अब कौन सी खुशी थी? अब वह इस खुशी में लौटी कि उसके हाथ एक सत्य लग गया है कि मृत्यु अनिवार्य है। रोना व्यर्थ है। और जो थोड़े से जीवन के क्षण बचे हैं, इनका ऐसा उपयोग कर लेना जरूरी है कि आदमी अमृत को उपलब्ध हो जाए। इस देह में तो मृत्यु घटेगी, उसको खोज लेना जरूरी है जहां मृत्यु न घटती हो।

उसने बुद्ध के चरणों में आकर सिर रख दिया। बुद्ध ने कहा, ले आयी सरसों के बीज? वह हंसने लगी, उसने कहा, आपने भी खूब मजाक किया, लेकिन बात काम कर गयी। सरसों के बीज तो नहीं मिले--और लाश को हटा दिया उसने बेटे की वहां से और लोगों से कहा, ले जाओ और दफना दो--और बुद्ध से कहा, मुझे दीक्षा दें। मुझे संन्यस्त करें। आज हूं, कल का पता नहीं, कल हो सकता है मैं भी मर जाऊं। जब सभी मर जाते हैं, तो मैं भी ज्यादा देर टिकने वाली नहीं हूं, इसलिए अब एक क्षण भी खोना उचित नहीं है। कौन बेटा है! कौन मां है! अब मुझे उसकी तलाश करनी है जो शाश्वत है, चिरंतन है। मुझे दीक्षा दें। देर न करें।

वह दीक्षित हुई। वह बुद्ध के बड़े भिक्षुओं में एक भिक्षुणी सिद्ध हुई। जो स्त्रियां बुद्ध के सान्निध्य में परम सत्य को उपलब्ध हुईं, उनमें एक स्त्री वह भी थी।

तुमने पूछा है कि "बुद्ध को महाकारुणिक कहा जाता है, और क्राइस्ट तो मुर्दों को जिला देते, अंधों को आंखें देते, बीमार को स्वस्थ कर देते, कोढ़ी को चंगा कर देते, बहरा सुनने लगता, लंगड़ा चलने लगता, गूंगा बोलने लगता, तो जीसस करुणावान हैं या बुद्ध?"

जीसस करुणावान हैं, बुद्ध महाकरुणावान। जीसस की करुणा बहुत दूर तक काम नहीं आएगी, इसलिए करुणावान। बुद्ध महाकरुणावान, उनकी करुणा अंत तक काम आएगी, अनंत तक काम आएगी।

अगर किसी मुर्दे को भी जिला दिया तो भी वह मरेगा। जीसस ने लजारस को जगा दिया था--मर गया था लजारस--फिर अब लजारस कहां है? फिर मर गया। एक ही बार मरा था, अब दुबारा मरा। तो करुणा का कुल परिणाम यह हुआ कि लजारस को दुबारा मरना पड़ा।

जीसस ने लोगों की आंखें ठीक कर दी थीं, कहां हैं वे लोग? आंखें भी गयीं, वे भी गए। लंगड़ों को चला दिया था, कहां हैं वे लोग? कब्रों में सड़ गए होंगे। जीसस करुणावान हैं, इसमें कोई संदेह नहीं। लेकिन जीसस की करुणा कितने दूर तक काम आती है! जीसस ने जो किया है, वह तो अब डाक्टर करने लगा। अगर अभी मुर्दे को नहीं जिला पा रहा है तो वह भी इस सदी के पूरे होते-होते जिला लेगा, वह कुछ अड़चन की बात नहीं है। तो जीसस चिकित्सक हैं ज्यादा से ज्यादा, बुद्ध महाचिकित्सक, महाकरुणावान।

इसलिए हमने बुद्ध को करुणावान नहीं कहा है, महाकरुणावान कहा है। बुद्ध कुछ ऐसा जीवन दे देते हैं जो फिर कभी छुड़ाए न छूटेगा। कुछ ऐसी आंख दे देते हैं जो फिर कभी न फूटेगी। कुछ ऐसे कान दे देते हैं, कुछ ऐसे श्रवण की क्षमता दे देते हैं कि जो सुनने योग्य है, सुन लिया जाएगा। कुछ ऐसे पैर दे देते हैं जो कि अगम्य में गति हो जाती है, अज्ञात में प्रवेश हो जाता है। बुद्ध भी देते हैं, देह पर नहीं, आत्मा पर; बाहर नहीं, भीतर।

भारत ने इस बात को बहुत मूल्य कभी दिया नहीं कि अंधे को आंख मिल जाए, कि बहरे को कान मिल जाएं, इससे क्या होगा? इतने तो लोग हैं जिनके पास आंख है--आंख वालों के पास भी आंख कहां! एक और अंधे को आंख मिल गयी, इससे क्या होगा? इतने तो लोग हैं कान वाले, इन्हें कुछ भी तो सुनायी नहीं पड़ा अब तक। कौन सा संगीत सुना इन्होंने? कौन सा सत्य सुना इन्होंने? और जीसस को खुद ही तो बार-बार अपने शिष्यों से कहना पड़ता है--आंखें हों तो देख लो, कान हों तो सुन लो। उनके पास आंखें भी थीं, कान भी थे, लेकिन जीसस को बार-बार कहना पड़ता है--सुनो, कान खोलकर सुनो; आंखों का उपयोग करो।

बुद्ध भी आंख देते हैं, महावीर भी आंख देते हैं, कृष्ण भी आंख देते हैं--सूक्ष्म की आंख, अंतर्दृष्टि। ऐसी आंख जो एक बार खुल जाए तो फिर कभी बंद नहीं होती। बुद्ध भी जगाते हैं, मृत्यु से नहीं, जीवन से जगाते हैं। इसलिए महाकरुणा। मृत्यु से जगाया हुआ तो फिर मरेगा, फिर पैदा होगा--जीवन से जगा देते हैं कि फिर न कोई जन्म हो और न कोई मृत्यु हो। महाजीवन में जगा देते हैं।

लेकिन साधारणतः तुम्हें भी जीसस की बात ज्यादा अर्थपूर्ण मालूम पड़ेगी। इसीलिए तो दुनिया में ईसाई बढ़ते गए। ईसाई के बढ़ते जाने का कारण है। हर आदमी को बात जंचती है। तुम्हारी भाषा में है। तुम्हें फिकर भी कहां अंतर्दृष्टि की। तुम कहते हो, छोड़ो भी, अंतर्दृष्टि चाहिए किसको! इधर हमारी आंख पर चश्मा चढ़ा है, आप अंतर्दृष्टि की बातें कर रहे हैं! पहले चश्मा तो उतर जाए। इधर हमें सुनायी नहीं पड़ रहा है, आप कहां की सत्य की बातें कर रहे हैं, पहले कान ठीक हो जाए। इधर मेरा पैर लंगड़ा है और आप कहते हैं परमात्मा में यात्रा करो, पहले संसार में यात्रा करने योग्य तो बना दें। तुम्हारी आकांक्षा के अनुकूल है जीसस की करुणा। जीसस की करुणा तुम्हारे हिसाब से करुणा है, बुद्ध की महाकरुणा बुद्ध के हिसाब से।

फर्क को समझ लेना। जीसस तुम्हें वही देते हैं जो तुम मांग रहे हो। जीसस तुम्हें प्रेय देते हैं। बुद्ध तुम्हें श्रेय देते हैं। श्रेय तुमने मांगा नहीं है। इसलिए तुम बुद्ध को शायद धन्यवाद भी नहीं दोगे। क्योंकि जो तुमने मांगा ही नहीं है, उसको तुम धन्यवाद क्यों दोगे? जो बात तुमने मांगी ही नहीं थी, शायद तुम नाराज ही होओगे कि हम कुछ मांगने आए, आप कुछ दे रहे हैं। हम कहते हैं आंखें ठीक कर दो, आप कहते हैं कि ध्यान करो, अंतर्दृष्टि खुल जाएगी। सम्हालो अपनी अंतर्दृष्टि, तुम कहना चाहते हो, हमें आंख चाहिए, चमत्कार चाहिए।

इसलिए तो तुम चमत्कारी के पीछे इकट्ठे हो जाते हो। वहां तुम्हें आशा दिखती है। तुम्हारा जीवन से मोह नहीं छूटा है। तो जीवन को जो सम्हाल देता है, संवार देता है, तुम उसकी पूजा करते हो।

बुद्ध तो कहते हैं, इसमें कुछ भी सार नहीं है। यह देह ही चली जाएगी। यह जाकर ही रहेगी। और दो-चार-दस साल जी लोगे, फिर क्या होगा? मरना तो सुनिश्चित है। जब मरना सुनिश्चित है, तो कुछ ऐसा करो कि मरने की प्रक्रिया सदा के लिए छूट जाए। तो कुछ ऐसे अंतर्लोक में जागो, जहां मृत्यु घटती नहीं।

इसलिए अगर तुम मुझसे पूछते हो तो मैं कहूंगा, बुद्ध महाकरुणावान हैं। क्राइस्ट करुणावान। क्राइस्ट तुम्हें समझ में आएंगे, बुद्ध तुम्हें समझ में न आएंगे। जो तुम्हें समझ में आ जाता है, वह तुम्हें रूपांतरित न कर पाएगा। जो तुम्हें समझ में नहीं आता। उसी के साथ तुम्हारे जीवन में क्रांति घटित होगी।

एक जीसस के जीवन की बड़ी प्यारी कहानी है, मुझे बहुत प्रिय है। ईसाइयों ने तो उसे लिखा भी नहीं। बाइबिल में संगृहीत भी नहीं किया। लेकिन सूफियों ने उसे बचा रखा है। सूफियों ने जीसस की कई कहानियां बचा रखी हैं जो ऐसी अदभुत हैं कि उनके बिना बाइबिल अधूरी है। लेकिन शायद बाइबिल लिखने वालों ने सोचकर छोड़ दिया होगा, क्योंकि वे खतरनाक कहानियां हैं।

जीसस एक गांव में आए और उन्होंने एक आदमी को देखा, जो शराब में धुत्त, सड़क के किनारे गटर में पड़ा गाली-गलौज बक रहा था। जीसस ने उसे हिलाया और कहा कि मेरे भाई, क्या जीवन शराब पीने को मिला है? उस आदमी ने आंखें खोलीं, थोड़ा होश उसे आया, उसने जल्दी से जीसस के पैर पकड़ लिए। उसने कहा, महाप्रभु, मैं तो मर गया था, तुमने ही तो मुझे जिलाया था, अब तुम्हीं जवाब दो कि मैं जिंदगी का क्या करूं? मैं तो मर गया था, तुमने मुझे जिला दिया, अब मैं क्या करूं इस जिंदगी के साथ? और अब तुम आ गए हो मुझे समझाने कि शराब मत पीओ! मैं जिंदगी के साथ करूं क्या? यह जिंदगी बहुत बोझिल है और बड़ा दुख मुझे मिल रहा है। शराब मैं पीकर किसी तरह अपने को भुला रहा हूं। अब अपनी समझदारी अपने पास रखो। तुम्हीं जिम्मेवार हो! मैं तो मर गया था, तुमने जिलाया क्यों, इसका जवाब दो।

जीसस तो बहुत घबड़ा गए होंगे कि यह आदमी कोई मुकदमा चलाएगा या क्या करेगा? लेकिन बड़े उदास भी हो गए। क्योंकि उन्होंने तो इसे जीवन दिया था, यह सोचा भी न था कि जीवन के बाद भी तो जीवन में अर्थ चाहिए न, जीवन से क्या होगा! जीवन में अर्थ न होगा तो जीवन का करोगे क्या? जीवन में अगर दिशा न होगी तो जीवन का करोगे क्या? जीवन ही मिल जाने से थोड़े ही कुछ मिलता है, जीवन तो तुम सबको मिला है। तुमने क्या किया इस जीवन का?

तुम भी उस आदमी से राजी होओगे कि अगर परमात्मा तुम्हें मिल जाए तो तुम भी उसकी गर्दन पकड़कर कहोगे कि तू जिम्मेवार है, तूने जीवन दिया क्यों? तुमने हमें पैदा क्यों किया? अब हम क्या करें? इधर पैदा कर दिया हमें, अब कहता है शराब भी मत पीओ, वेश्याघर भी मत जाओ, बेईमानी भी मत करो, झूठ भी मत बोलो, ताश भी मत खेलो, सिगरेट भी मत पीओ--एक तो जन्म दे दिया और अब कुछ करो भी मत, तू हमारी फांसी लगा रहा है। तो फिर हम जीएं किसलिए?

जीसस उदास गांव में अंदर गए, देखा एक आदमी एक सुंदर स्त्री के पीछे भागा जा रहा है, उसकी आंखों में बड़ी लोलुपता है, बड़ी वासना है। उसे पकड़ा और कहा कि तू यह क्या कर रहा है? ये आंखें, ये आंखें परमात्मा को देखने के लिए हैं। उस आदमी ने जीसस के पैर छुए और कहा, महाप्रभु, क्षमा करो। लेकिन यह मुझे कहना ही पड़ेगा कि मैं अंधा था और तुम्हीं ने मेरी आंखें ठीक कीं। अब तुम मुझे यह भी तो बताओ, इन आंखों का करूं क्या? रूप न देखूं, सौंदर्य न देखूं, तो फिर अंधा ही क्या बुरा था? आखिर आंख का तो मतलब ही यह

होता है कि आदमी रूप देखे, सौंदर्य देखे, नहीं तो अंधा होने में क्या बुराई थी? मुझे आंखें क्यों दीं? मैं तो अंधा ही भला था। न दिखता था, न पीड़ा थी। जब से ये आंखें मिल गयी हैं, रूप दिखता है, रूप बुलाता है, अदम्य है उसकी पुकार! और अब इधर आप आ गए! तो मुझे फिर से अंधा बना दो।

जीसस तो बहुत हैरान हो गए। वह उदास गांव के बाहर निकल आए। उन्हें तो बड़ी चोट लगी होगी कि यह क्या हुआ? मैंने तो लोगों की सेवा की, करुणा की, और ये लोग क्या कह रहे हैं?

एक आदमी को गांव के बाहर देखा कि फांसी लगाने का इंतजाम कर रहा है एक झाड़ के साथ। उससे पूछा कि भई, यह तू क्या कर रहा है? उसने कहा कि अब दूर रहो, और ध्यान रखना, अगर मैं मर जाऊं तो मुझे जिला मत देना। क्योंकि मैं बुरी तरह ऊब गया हूं। और आप अपना रास्ता लो! इस जीवन में रखा क्या है?

यही तो ज्यां पाल सार्त्र पूछता है कि इस जीवन में रखा क्या है? अर्थ कहां है? यही तो दुनिया के सारे विचारशील लोग पूछते हैं कि इस जीवन में प्रयोजन क्या है? ए टेल टोल्ड बाइ एन ईडियट। किसी मूर्ख के द्वारा कही हुई कथा मालूम होती है। जिसमें कुछ भी अर्थ नहीं मालूम होता। इसे समाप्त क्यों न कर दें।

दोस्तोवस्की का एक पात्र दोस्तोवस्की के प्रसिद्ध उपन्यास ब्रदर्स कर्माझोव में चिल्लाकर ईश्वर से कहता है कि यह टिकिट जो तूने मुझे जीवन में प्रवेश के लिए दी थी, अब वापस ले ले। तू है कहां? तू है भी? अगर है तो प्रमाण दे, यह मेरे जीवन के प्रवेश की जो तूने आज्ञा दी थी, इसे वापस ले ले। क्योंकि इस जीवन में कुछ भी नहीं है।

धन्यवाद देना तो दूर, आदमी ईश्वर को गुनाहगार मानता है। तुमने जीवन दिया क्यों? यहां है क्या सिवाय दुख और पीड़ा के?

लेकिन जीसस की भाषा तुम्हें समझ में आती है, क्योंकि तुम्हारी वासना के करीब पड़ती है। तुम्हारी कामना के करीब पड़ती है। तुम चाहते हो सुंदर रूप हो, लंबा जीवन हो, बड़ी उम्र हो, धन हो, पद हो, प्रतिष्ठा हो। जीसस की चमत्कारी जीवन-व्यवस्था तुम्हें आकर्षित करती है। बुद्ध के पास तो सिर्फ वे ही लोग जाएंगे जो इस जीवन से ऊब गए हैं।

ये जो तीन आदमी जिनकी मैंने तुमसे कहानी कही, जिन्होंने जीसस को कहा कि क्षमा करो महाराज, तुम्हीं ने झंझट में डाल दिया, ये तीनों आदमी अगर बुद्ध के पास जाते तो इन्हें मार्ग मिलता। तो बुद्ध कहते, ठीक ही है, तुम ठीक ही कहते हो, जीवन में रखा क्या है! जीवन दुख है। जन्म दुख है, जीवन दुख है, जरा दुख है, मृत्यु दुख है, सब दुख है; तुम ठीक कहते हो।

अगर बुद्ध को जीसस मिलते तो जीसस से बुद्ध कहते, ऐसा करो ही मत। लोगों को जगाओ। यह तुम जो करुणा कर रहे हो, यह करुणा महंगी है, घातक है।

मुझे जीसस मिलें तो मैं भी उनसे यही कहूंगा कि यह करुणा घातक है। यह करुणा माना कि लोगों को जंचती है, क्योंकि लोगों की यह मांग है, लेकिन लोगों को जो जंचता है अगर वही ठीक होता, तो तुम्हारी जरूरत क्या है? लोगों के जंचने के ढंग को बदलना है, लोगों का प्रेय बदलना है, लोगों को श्रेय देना है। लोगों को बताना है कि असली आंख और है, असली कान और है, असली जीवन और है। देह का जीवन नहीं, मन का जीवन नहीं।

तुम्हारा प्रश्न सार्थक है। मैं तो बुद्ध के साथ राजी हूं। बुद्ध महाकरुणावान हैं। लेकिन जीसस के साथ ज्यादती हो जाएगी अगर मैं इतनी बात तुम्हें याद न दिला दूं कि बुद्ध जिस देश में पैदा हुए, उसमें हजारों वर्ष के बुद्धत्व का इतिहास था, इसलिए इतनी ऊंची महाकरुणा की बात समझने वाले लोग भी मिल सकते थे, मिल

गए थे। जीसस ने जो काम शुरू किया, वह एक ऐसी जगह शुरू किया जहां कोई बुद्धत्व का इतिहास न था। यहूदी जिनको पैगंबर कहते हैं, वे भी आधे राजनीतिज्ञ। यहूदियों के पैगंबरों में एक भी आदमी बुद्ध और महावीर और कृष्ण की कोटि का नहीं है। इसीलिए तो जीसस को सूली लगा दी उन्होंने। हमने सूली नहीं लगायी बुद्ध को। कुछ ऐसा थोड़े ही था कि बुद्ध ने कोई क्रांति की बातें नहीं कहीं! बुद्ध ने महाक्रांति की बातें कही हैं। जड़-मूल से उखाड़ दिया इस देश की धारा को, परंपरा को, फिर भी हमने फांसी नहीं लगायी। हम नाराज भी हुए तो भी हमने फांसी नहीं लगायी। हमें अगर बुद्ध की बात नहीं भी पसंद पड़ी तो भी हमने फांसी नहीं लगायी।

बुद्ध बयासी साल की लंबी उम्र तक जीए, जीसस को तैंतीस साल की उम्र में मर जाना पड़ा। जीसस ने केवल तीन साल काम किया यहूदियों के बीच; तीन साल में बर्दाश्त के बाहर हो गए। तो जिन लोगों के बीच काम कर रहे थे, वे लोग इतनी ऊंचाई की बात समझ नहीं सकते थे। जीसस की करुणा नहीं समझ सके तो बुद्ध की करुणा तो कैसे समझते!

ऐसा ही समझो कि जीसस को जो क्लास मिली थी, वह पहली कक्षा थी। अब पहली कक्षा को अगर तुम आइंस्टीन की गणित समझाने लगो तो तुम पागल हो। बुद्ध को जो क्लास मिली थी, वह विश्वविद्यालय की आखिरी कक्षा थी। वहां अगर तुम बाराखड़ी सिखाओगे और वर्णमाला सिखाने लगोगे और कहोगे, एक और एक मिलकर दो होते हैं, और दो और दो मिलकर चार होते हैं, तो विद्यार्थी तुम्हें निकालकर बाहर कर देंगे कि आप अपने घर जाएं। अलग तल पर बात थी।

बुद्धपुरुषों को समझने में सदा ख्याल रखना, किनसे वह बात कर रहे थे? बात करने वाले से भी ज्यादा महत्वपूर्ण यह समझना है कि वह किससे बात कर रहे थे। क्योंकि बुद्धपुरुष को यह तो दिखायी पड़ता है कि जिससे बात कर रहे हैं उसकी समझ के बहुत दूर न हो जाए। थोड़ी दूर हो, जरा सी दूर हो कि थोड़ा सरके, आगे बढ़े, लेकिन बहुत दूर न हो जाए, नहीं तो वह सुनेगा ही नहीं, उसकी समझ में ही न आएगा। देखते हो न कि एक-एक सीढ़ी चढ़कर आदमी पहाड़ चढ़ जाता है, लेकिन सीधी खाई से और पहाड़ पर छलांग तो नहीं लगती। एक-एक सीढ़ी। सीढ़ी करीब है, एक पैर उठाया, फिर दूसरी सीढ़ी करीब आ गयी, फिर दूसरा पैर उठाया, ऐसे एक-एक कदम रखकर आदमी हजारों मील की यात्रा कर लेता है।

बुद्ध जिनसे बात कर रहे थे, वे बड़े और तरह के लोग थे। जीसस जिनसे बात कर रहे थे, वे और तरह के लोग थे। मोहम्मद जिनसे बात कर रहे थे, वे और तरह के लोग थे।

इस अर्थों में बुद्ध सौभाग्यशाली हैं। इस अर्थों में मोहम्मद और जीसस सौभाग्यशाली नहीं हैं। वे प्राइमरी स्कूल में शिक्षक थे। प्राइमरी स्कूल की भाषा बोलनी पड़ती है।

उपनिषदों का मजा, या धम्मपद का मजा और है। कुरान पढ़ो तो ऐसा लगता है जैसे कि बहुत नासमझों के लिए लिखी गयी है। ऊंचाइयां नहीं हैं, कभी-कभी ऊंचाई आती है, मगर आमतौर से ऊंचाइयां नहीं हैं। क्षुद्र बातों का भी ब्यौरा है। शादी-विवाह का भी ब्यौरा है। समाज-व्यवस्था का भी ब्यौरा है। कैसा आदमी उठे, चले, व्यवहार करे, इसका भी ब्यौरा है। वैसी ही स्थिति बाइबिल की है।

धम्मपद, या उपनिषद, या जिन-सूत्र बड़ी आकाश की बातों में हैं, बड़ी दूर ऊंचाइयां हैं उनकी, बादलों के पार। जब पहली दफे उपनिषदों का अनुवाद हुआ पश्चिम की भाषाओं में, तो उनको समझ में ही न पड़े कि ये धर्मग्रंथ कैसे हैं? क्योंकि इनमें धर्म की तो कोई बात ही नहीं। जिसको ईसाई धर्म समझते हैं, उसकी बात है भी नहीं। चोरी मत करो, एक दफे नहीं कहता उपनिषद कि चोरी मत करो। यह बात ही समझ में नहीं आती। यह

कैसा धर्म हुआ कि चोरी मत करो, बेईमानी मत करो लिखा ही नहीं है! झूठ मत बोलो लिखा ही नहीं है! दस आज्ञाएं मोजिज की, उनका तो कहीं उल्लेख नहीं है--पर-स्त्रीगमन मत करो। जब पश्चिम में पहली दफे अनुवाद हुआ तो यह विचार उठना स्वाभाविक था कि इनको धर्मग्रंथ कहें! क्योंकि जो उनकी धर्मग्रंथ की धारणा थी, उसमें तो नैतिक नियम होने चाहिए--क्या करो, क्या न करो।

मेरे पास लोग आते हैं, वे पूछते हैं कि आप हमें ठीक-ठीक बता क्यों नहीं देते कि क्या करें और क्या न करें?

उन्हें पता ही नहीं है कि धर्म का जो शिखर है, वहां करने और न करने की बात नहीं है, वहां होने की बात है। क्या हो जाएं? करने की बात ही छोटी दुनिया की बात है, बाजार की बात है। चोरी न करो, यह तो उनसे कहना चाहिए जो चोर हों। जो लोग बुद्ध के पास आकर बैठे थे, वे तो धन इत्यादि की दुनिया छोड़कर आकर बैठे थे। वे तो खुद ही समझकर आ गए थे कि वह सब बेकार है। चोरी की तो बात दूसरी, अपना धन छोड़कर आ गए थे, दूसरे का चुराने का तो सवाल क्या था! अब इनसे अगर बुद्ध कहें समझा-समझाकर कि चोरी मत करो, तो ये भी सिर पीटेंगे कि आप किससे कह रहे हैं! क्या कह रहे हैं आप! हम अपना देकर आ गए, अब दूसरे का चुराएंगे! यह बात ही फिजूल है। धन की बात समाप्त हो गयी, वह अध्याय पूरा हुआ।

ये ध्यान की दुनिया में प्रवेश कर गए हैं। इनसे बुद्ध कुछ और ही बात कहते हैं। बुद्ध कहते हैं, विचार से कैसे जागो! विचार के पार कैसे हो जाओ! बाइबिल और कुरान कहते हैं, सदविचार कैसे करो; बुद्ध कहते हैं, विचार के पार कैसे हो जाओ। सदविचार के भी पार होना है। बाइबिल और कुरान कहते हैं, पुण्य कैसे करो; और बुद्ध कहते हैं, पुण्य भी बंधन है, इसके पार होना है।

निश्चित ही बड़ी अलग तल पर बातें हो रही हैं। सीढ़ियां बड़ी भिन्न हैं। उपनिषद तो सिर्फ ब्रह्म की चर्चा करते हैं, और कोई बात ही नहीं करते। जिनसे ये बातें कही गयी होंगी--बुद्ध तो फिर भी हजारों लोगों से बोल रहे थे, उसमें सब तरह के लोग रहे होंगे, समझदार, नासमझ। उपनिषद तो बड़ी छोटी-छोटी गोष्ठियां थीं, दस-पच्चीस-पचास शिष्य थे। और शिष्य भी ऐसे-वैसे नहीं, कोई दस साल से गुरु के पास था, कोई पंद्रह साल से गुरु के पास था।

उपनिषद शब्द का अर्थ होता है, गुरु के पास बैठना। उप-निषद, उसके पास बैठना। जो उपासना का अर्थ होता है, वही उपनिषद का अर्थ होता है--उप-आसन। गुरु के पास बैठे थे, गुरु में रमते थे, गुरु की तरंगों में डोलते थे, गुरु की दशा का स्वाद लेते थे, रस लेते थे, गुरु का पान करते थे, गुरु को पीते थे--ऐसे वर्षों जिनको बीत गए थे गुरु के पास बैठे-बैठे, जो गुरु का मौन भी समझते थे। ऐसी घड़ी में गुरु चुपचाप बैठा-बैठा एक दिन कहता है--तत्वमसि। तुम वही हो।

अब पश्चिम में जब इसका अनुवाद हुआ तो यह बात जरा बेबूझ लगती है कि तुम वही हो! आदमी होश में है कि पागल है? किससे कह रहे हो, कौन सी बात कर रहे हो? कौन कौन है? तुम वही हो!

यह बड़े मौन के लंबे प्रयोग के बाद कही गयी बात है, जब शिष्य उस जगह आ गया है जहां संसार समाप्त होता है, ब्रह्म शुरू होता है। वह शुरू होता है। इस घड़ी में गुरु उसे चेताता है--तत्वमसि। तुम वही हो। वह उससे कहता है, घबड़ा मत, यह जो घट रहा है, यह तू ही है। यह तेरा ही विराट रूप है। तू भिन्न नहीं है, जा, उतर जा। वह नदी से कह रहा है, डर मत, यह सागर तेरा ही है, उतर जा, तत्वमसि।

अब यहां अगर वह कहे कि चोरी मत करो, पर-स्त्रीगमन मत करो, तो वह शिष्य कहेगा, आप किसके साथ सिर भिड़ा रहे हैं! कहां की पर-स्त्री? यहां अपनी स्त्री नहीं है, तो पर-स्त्री कहां है? पहले तो स्व-स्त्री होनी

चाहिए, तब पर-स्त्री होती है। इससे कहो कि देखो, झूठ मत बोलना, चोरी मत करना--ये सब बेमानी बातें हैं, इनका कोई अर्थ नहीं। इस परम शिखर पर तो तत्वमसि का ही उदघोष हो सकता है--कि अहं ब्रह्मास्मि, कि मैं ब्रह्म हूं।

जब ऐसे वचनों का अनुवाद होने लगा तो उन्होंने कहा, ये शास्त्र तो धार्मिक नहीं हो सकते! इनमें आदमी को धार्मिक बनाने के लिए कोई उपदेश ही नहीं हैं! इनमें तो उदघोषणाएं हैं। और उदघोषणाओं के लिए भी कोई प्रमाण नहीं है, तर्क नहीं है। अहं ब्रह्मास्मि कह दिया, बात खतम हो गयी। गुरु ने कह दिया कि मैं ब्रह्म हूं, फिर न तो कोई शिष्य यह पूछता है कि आप ऐसा क्यों कहते? इसका प्रमाण क्या?

मैं कल एक घटना पढ़ रहा था। एक संत अपने दस-पांच शिष्यों के साथ बैठे हैं। मौन का आनंद चल रहा है। संत भी चुप हैं, शिष्य भी चुप हैं। एक अजनबी आकर खड़ा होकर यह सब देख रहा है। वह एक तर्कशास्त्री है। उसको ईश्वर पर भरोसा नहीं है। वह आया ही इसलिए है कि लोगों ने कहा, यहां एक संत का वास है, तो वह आया ही इसलिए है पूछने कि ईश्वर के लिए प्रमाण क्या है? भगवान के लिए प्रमाण क्या है? यहां चुप्पी चल रही है!

मगर उससे न रहा गया। थोड़ी देर तो उसने देखा, उसने कहा कि भई, यह मेरे बरदाश्त के बाहर है। कुछ बातचीत हो, कुछ मतलब की बात हो, यह क्या गैर-मतलब चुप बैठे हैं! तो उस संत ने उसकी तरफ देखा और पूछा कि तुम अपनी कहो। तो उसने कहा, कहना कुछ नहीं है, मैं यह पूछने आया हूं कि भगवान का प्रमाण क्या है? संत ने जो उत्तर दिया वह अदभुत था। संत ने कहा, भक्तों की आंख में भगवान का प्रमाण है, और तो कहीं नहीं। भक्तों की आंख में। इनकी आंखें देख। गौर से जा एक-एक के पास, इनकी आंख में झांक।

उसने कहा, आंखों-वांखों की बातें छोड़ो, मैं तर्कयुक्त प्रमाण चाहता हूं। उस संत ने कहा, फिर तू कहीं और जा, क्योंकि तर्कयुक्त तो कोई प्रमाण नहीं है। न प्रेम के लिए कोई तर्कयुक्त प्रमाण है, न प्रार्थना के लिए कोई तर्कयुक्त प्रमाण है, न परमात्मा के लिए कोई तर्कयुक्त प्रमाण है। प्रमाण जरूर है, लेकिन प्रमाण भगवान का भक्त की आंख में है। भगवान को खोजना हो तो भक्त की आंख में।

उपनिषदों के ऋषि बैठे हैं छोटे से समूह के पास, बड़ा आत्मीय नाता है। उस आत्मीय नाते में कुछ-कुछ लेन-देन हो जाता है; कभी-कभी बोल जाते हैं। इसलिए उपनिषदों के सूत्र एक-दूसरे से जुड़े भी मालूम नहीं होते। क्योंकि बीच-बीच में जो सेतु है, वह मौन का है। छोटे-छोटे हैं उपनिषद।

आत्म-पूजा उपनिषद है, एक पोस्टकार्ड पर लिखा जा सकता है। वर्षों में पैदा हुआ होगा। और कभी-कभी तो ऐसा हुआ है कि एक उपनिषद एक आदमी से पैदा नहीं हुआ, अनेक ऋषियों से पैदा हुआ। एक गुरु कुछ कहकर मर गया, फिर उसके शिष्यों में कोई गुरु हो गया, उसने कुछ कहा, वह भी जुड़ गया। फिर उसके शिष्य ने कुछ कहा, वह जुड़ गया। ऐसे एक उपनिषद पैदा हुआ। एक आदमी के हाथ का बनाया चित्र भी नहीं है। लेकिन जिन्होंने बनाया है, एक ही चैतन्य की दशा में बनाया, इसलिए भिन्न भी नहीं है, अलग-अलग ने बनाया, यह कहना भी ठीक नहीं है। एक ने बनाया, यह कहना भी ठीक नहीं है।

ये बड़ी और तरह की कृतियां हैं। इस देश का सौभाग्य है। जैसे आज पश्चिम विज्ञान के अर्थों में सौभाग्यशाली है, वैसा यह देश धर्म के अर्थों में सौभाग्यशाली रहा है। हजारों साल की हवा के बाद कहीं ऐसी घड़ियां आती हैं जब हम उन ऊंचाइयों पर आंखें उठा सकें, उन शिखरों को देख सकें जो बादलों के पार हैं।

बुद्ध की महाकरुणा को देखने के लिए तुम्हें समझना पड़ेगा। नहीं तो यह तो बात सीधी-साफ समझ में आती है कि अगर यह औरत अपने बच्चे के मरने के बाद जीसस के पास गयी होती तो जीसस ने उसे जिला दिया

होता। तुम भी कहते कि यह करुणा हुई। यह बुद्ध ने क्या कहा कि सरसों के बीज ले आ, कि सरसों ले आ! यह क्या बात हुई! कुछ कर सकते हो तो कर देते।

बुद्ध ने भी कुछ किया। बुद्ध का किया बहुत बड़ा है। बेटा जी जाता तो बीस साल बाद मरता, पचास साल बाद मरता कि सौ साल बाद मरता, मरता तो। तो जो घटना घट गयी थी, वह सौ साल के लिए टल जाती और क्या होता? सौ साल का मूल्य क्या है इस अनंत समय के प्रवाह में? ऐसे पल जैसे बीत जाते हैं सौ साल। तुममें से कोई पचास साल का है, कोई तीस साल का है, कोई चालीस साल का, कोई साठ साल का, कैसे बीत गए? ऐसे बीत गए। ऐसे वे सौ साल भी बीत जाते। फिर बेटा मरता, और बेटे के मरने के पहले यह मां मर जाती; और बुद्ध जैसे आदमी का साथ मिला और अमृत की कोई खबर न मिलती--तो यह करुणा न होती।

बुद्ध ने बड़ी करुणा की, महाकरुणा की। बुद्ध ने कहा, तू जा, पता लगाकर आ। बुद्ध ने उसे एक बोध का मौका दिया। एक संबोधि का अवसर जुटा दिया। पूछ-पूछ, घर-घर जा-जाकर उसे समझ में आने लगा कि मौत तो सुनिश्चित है। तो फिर मेरे ही घर घटी है, ऐसा नहीं है; कुछ मुझ पर ही कोई बड़ी विपदा आ गयी, ऐसा नहीं; यह विपदा सभी पर आती। और पूछते-पूछते एक बात भी उसे साफ हो गयी कि बेटा तो मर ही गया, मैं भी मरूंगी। तो अब बुद्ध से बेटे को जिलाने के लिए कहना व्यर्थ है, अब तो बुद्ध से यही पूछ लेना चाहिए कि कुछ मुझे ऐसा रास्ता बताओ कि मरकर भी मैं न मरूं।

यही संन्यास है।

लेकिन जीसस के साथ ज्यादती मैं न करना चाहूंगा, उनसे मेरा लगाव है। इसलिए जीसस की बात को ख्याल में रखना, वे जिन लोगों के बीच काम कर रहे थे, वे छोटे ढंग की बात ही समझ सकते थे। उनके पास धर्म की कोई ऊंचाइयों का अनुभव नहीं था। हवा नहीं थी, वातावरण नहीं था। संस्कृति नहीं थी वैसी। बुद्ध भी वहां होते तो उन्हें वही करना पड़ता। और जीसस अगर भारत में पैदा होते तो उन्होंने वही कहा होता जो बुद्ध ने कहा है, कोई फर्क न पड़ता। क्योंकि दोनों की चैतन्य दशा एक सी है। लेकिन परिस्थिति भिन्न-भिन्न है।

तीसरा प्रश्नः जीवन में दुख है, बहुत दुख है। यह तो हमें कभी-कभी दिखता है, लेकिन यह हमें कभी नहीं दिखता कि जीवन ही दुख है। कहीं बुद्धपुरुष कुछ अतिशयोक्ति तो नहीं करते हैं?

अतिशयोक्ति तो मूर्च्छा में ही हो सकती है। अतिशयोक्ति तो तभी हो सकती है जब तक मन अति करने में समर्थ है। जो मन के पार हो गया, वहां अतिशयोक्ति नहीं हो सकती। वहां तो जैसा है, जो है, वैसा ही कहा जाता है। तो यह सोचने के बजाय कि बुद्धपुरुष अतिशयोक्ति तो नहीं करते, यही सोचना कि हमारे सोचने-समझने में कहीं भ्रांति होगी।

ठीक पूछा है, "जीवन में दुख है और कभी-कभी यह भी लगता है कि बहुत दुख है, मगर ऐसा कभी नहीं लगता कि जीवन ही दुख है।"

यह बात सच है। ऐसा ही लग जाए तो तुम्हारे जीवन में क्रांति घट जाए। उसी लगने से तो अंगारा पड़ता है, पहली आग लगती। जीवन में दुख है, बहुत दुख है, लेकिन एक आशा बनी रहती है कि आज है, कल सब ठीक हो जाएगा। अभी है, सदा थोड़े ही रहेगा। थोड़ी देर और है, गुजार लो, अच्छी घड़ी आती ही होगी। कभी तो सुख होगा। आशा के कारण, जीवन ही दुख है, ऐसा नहीं लग पाता। आशा बचाए रखती है।

आशा बड़ा संरक्षण देती है जीवन को। अनुभव तो कहता है, दुख ही दुख है। आशा कहती है, ठहरो, इतने जल्दी निर्णय मत लो, अभी तो जीवन बाकी है। आज तक नहीं हुआ तो ऐसा थोड़े ही है कि कल भी नहीं होगा। अब तक असफलता मिली तो कल सफलता मिलेगी। देखो, मोहम्मद गजनी आया, सत्रह दफे हार गया, अठारहवीं दफे जीत गया। आदमी हार जाता है; हिम्मत रखो, धीरज रखो, लड़ते रहो, जूझते रहो; आज हारे, कल जीतोगे; जीत भी होती है, घबड़ाओ मत। आशा खींचे लिए जाती है। और आशा हमारी सदा अनुभव पर जीत जाती है। यही हमारा दुख है, यही हमारी पीड़ा है, यही हमारा उपद्रव है, यही हमारी मूर्च्छा है।

मुल्ला नसरुद्दीन पत्नी से परेशान था। कितनी बार नहीं सोचा कि यह मर जाए। बहुत कम पति होंगे जो नहीं सोचते। पत्नियां शायद इतना साफ-साफ नहीं भी सोचतीं। सोचती तो वे भी हैं, उनका सोचना जरा धुंधला-धुंधला होता है। कौन नहीं सोचता, संग-साथ भारी पड़ने लगता है। तो मुल्ला कई बार सोच चुका, कई बार तो योजना भी बना लेता था कि मार ही डालूं, लेकिन फिर डर लगता कि अदालत, यह, वह, झंझट में पड़ूंगा।

फिर पत्नी मर भी गयी। संयोग की बात। तो पत्नी के मरने पर उसने मित्रों से घोषणा की कि अब कभी दुबारा विवाह न करूंगा। लेकिन तीन महीने बाद वह फिर लड़की की तलाश करने लगा। तो मित्रों ने कहा, पागल हुए हो, भूल गए, तीन महीने पहले क्या कहा था? उसने कहा, छोड़ो जी, जाने भी दो, आशा अनुभव पर जीत रही है। सभी स्त्रियां थोड़े ही वैसी होंगी। एक से गड़बड़ हो गयी तो सभी से थोड़े ही गड़बड़ हो जाएगी। बुरी स्त्रियां होती हैं, अच्छी स्त्रियां भी होती हैं। एक बार भूल-चूक में पड़ गए थे, अब दुबारा कदम सम्हालकर रखेंगे।

ऐसे आशा समझाए चली जाती है। दुबारा भी वही होगा। दूसरी स्त्री से भी वही होगा। दूसरे पति से भी वही होगा। इस जन्म में जो हुआ, अगले जन्म में भी वही होगा। लेकिन मन कहेगा, कोई तो रास्ता होगा, कहीं तो उपाय होगा निकल जाने का! अनुभव है अतीत में और आशा है भविष्य में। भविष्य की आशा अतीत के अनुभव पर जीतती चली जाती है और संरक्षित करती रहती है। इसलिए जीवन ही दुख है, ऐसा तुम्हें दिखायी नहीं पड़ता।

अगर ठीक से देखोगे, तो बुद्ध ने जो कहा है, वह अतिशयोक्ति नहीं, सत्य का सीधा-सीधा निरूपण है।

यों तो सारा शहर पड़ा है
पर रहने की जगह नहीं है
नाप रहे नभ की सीमाएं
किंतु राह का पता नहीं है
मंसूबे तो हिमगिरि जैसे
पर कणभर भी तथा नहीं है
कैसे मंजिल पाए कोई
सीमांतों तक जाए कोई
राशि-राशि किरणें बिखरी पर
दूर-दूर तक सुबह नहीं है
धुरीहीन सब घूम रहे हैं
केवल चलते ही रहना है

काल-सरित की प्रखर धार में
पराधीन परवश बहना है
कैसे पांव टिकाए कोई
उद्धत जलधि झुकाए कोई
लहरों के अंबार लगे हैं
पर तिरने की सतह नहीं है
जीवन के क्षणभंगुर सपने
सजने के पहले ही टूटे
जो भी चले सहारा देने
वे मनमोहक आंचल छूटे
कैसे मन समझाए कोई
सांसों को सुलझाए कोई
यहां मौत के लाख बहाने
पर जीने की वजह नहीं है
यों तो सारा शहर पड़ा है
पर रहने की जगह नहीं है

ठीक से देखोगे, आशा को हटाकर देखोगे, तो यहां रात ही रात है। दूर-दूर तक सुबह नहीं है। ठीक से देखोगे तो पाओगे, यहां डूबने के सिवाय कोई उपाय नहीं है, तिरने को कोई जगह नहीं है।

यहां मौत के लाख बहाने
पर जीने की वजह नहीं है।

हम डरते हैं, ऐसा देखने से भी हमारा प्राण कंपने लगता है, पैर के नीचे की जमीन खिसकने लगती है। हम भयभीत होते हैं कि अगर ऐसा दिखायी पड़ गया, तब तो हम ढेर हो जाएंगे वहीं। फिर तो चलेंगे कैसे, उठेंगे कैसे? आशा का सूत्र टूट जाएगा तो सहारा टूट जाएगा। यह तो अंधे के हाथ की लकड़ी है यह आशा। यह छूट गयी तो फिर हम चलेंगे कैसे, उठेंगे कैसे? श्वास कैसे लेंगे, बोलेंगे कैसे? फिर तो मुश्किल हो जाएगी।

इससे हम डरते हैं। इससे हम समझाए रखते हैं। हम कहते हैं कि नहीं, अभी तक तो नहीं हुआ सच है, मगर कल होगा। कल के सहारे जिंदगी का तथ्य छिपा रहता है। मरने तक कोई सुख नहीं मिलता। बहुत बार लगता है, अब मिला, अब मिला और चूक-चूक जाता है। बहुत बार लगता है, बस अब आ गए करीब, मंजिल बिल्कुल करीब है, यह पड़ा पैर, फिर-फिर चूक जाता है। मंजिल सदा आगे-आगे बनी रहती है, मगर मिलती कभी भी नहीं।

क्षितिज की भांति है जीवन का सुख। दिखता है--वह रहा, थोड़ी दूर और चल लें, दस मील होगा ज्यादा से ज्यादा, पहुंच जाएंगे, तुम जितने बढ़ते, उतना ही क्षितिज पीछे हट जाता। क्षितिज कहीं है थोड़े ही। जमीन और आकाश कहीं मिलते थोड़े ही। जमीन तो गोल है। मिलते मालूम होते हैं। मन और तृप्ति कहीं नहीं मिलते। मन का स्वभाव अतृप्ति है। तृष्णा और तृष्णा की तृप्ति का कभी कोई मिलन नहीं होता। तृष्णा में ही अतृप्ति है। तृष्णा का स्वभाव अतृप्ति है।

बुद्ध ने कहा है, तृष्णा दुष्पूर है, उसे भरा नहीं जा सकता।

एक फकीर ने एक सम्राट के द्वार पर भीख मांगी। संयोग की बात, सम्राट भी द्वार पर खड़ा था। उसने फकीर को कहा, क्या चाहता है? फकीर ने कहा, और कुछ नहीं चाहता, यह मेरा भिक्षापात्र है, इसे भर दो। सम्राट ने पूछा, काहे से भरना चाहता है--मजाक में रहा होगा--किस चीज से भर दूं? उस फकीर ने कहा, चीज कोई भी हो, मगर पूरा भरा हुआ पात्र लेकर जाऊंगा। अगर सम्राट हो और होने का कुछ दर्प है, चाहे मिट्टी से भर दो, मगर पूरा भर देना। खाली लेकर न जाऊंगा। छोटा सा पात्र लिए है। सम्राट हंसा, उसने अपने वजीर को कहा कि जाओ, हीरे-जवाहरातों से भर दो इसका पात्र, यह भी याद रखेगा किसी सम्राट से भीख मांगी थी!

वह फकीर खड़ा हंसता रहा। उसकी हंसी थोड़ी चोट भी करने लगी। उसके चेहरे पर बड़ा व्यंग्य था। और जब वजीर लाए, हीरे-जवाहरातों से उसका पात्र भरा, तब सम्राट को समझ में आया कि झंझट हो गयी। वे हीरे-जवाहरात उसके पात्र में गिरे और खो गए, उसका पात्र खाली का खाली रहा।

एक बड़ी मीठी सूफी कथा है यह।

सम्राट तो पागल हो गया, उसने कहा कि चाहे सब लुट जाए, मगर पात्र भरना ही है। भीड़ लग गयी, सारी राजधानी इकट्ठी हो गयी, भागे लोग चले आ रहे हैं, गांवभर में खबर फैल गयी कि एक फकीर ने चुनौती दी है और सम्राट ने चुनौती स्वीकार कर ली है और पात्र भरता नहीं। हीरे-जवाहरात डाले गए, सोना-चांदी डाले गए, रुपए डाले गए, पैसे डाले गए, जो कुछ था सम्राट ने सब डाल दिया और पात्र खाली का खाली रहा। फिर तो हारा; पैरों पर गिर पड़ा और कहा, मुझे क्षमा करो, लेकिन जाते-जाते इतना बता दो, इस पात्र का राज क्या है?

उस फकीर ने कहा, समझे नहीं? यह पात्र साधारण पात्र नहीं है। यह आदमी के मन से बनाया गया है। यह आदमी के हृदय से निर्मित है। यह आदमी की तृष्णा से बनाया गया है। यह दुष्पूर है। इसे तुम भरते जाओ, यह खाली रहेगा।

हंसना मत, क्योंकि कहानी बड़ी वास्तविक नहीं मालूम पड़ती, कहानी बिल्कुल झूठी मालूम पड़ती है। मगर मैं तुमसे कहता हूं, सच है। और तुम्हारी कहानी है। तुम भी अपने भीतर के पात्र में कितना भरते चले गए हो, भरा? पहले सोचा दस हजार रुपए होंगे, वह हो गए एक दिन और तुमने पाया कुछ नहीं भरा। फिर सोचा लाख हो जाएं, वह भी हो गए एक दिन, फिर भी तुमने पाया पात्र नहीं भरा। दस लाख की सोचते थे, वह भी हो गए एक दिन... ।

एंड्रू कारनेगी अमरीका का बड़ा अरबपति मरा, दस अरब रुपए छोड़कर मरा, लेकिन असंतुष्ट मरा। दस अरब! आदमी को तृप्त हो जाना चाहिए, अब और क्या चाहिए? लेकिन मरते वक्त किसी ने उससे पूछा कि कारनेगी, तुम तो संतुष्ट मर रहे होओगे, क्योंकि तुमने तो इतनी अपार राशि इकट्ठी की--और कारनेगी गरीब घर से आया था, बाप की तरफ से एक पैसा नहीं मिला था, खुद के ही बल से दस अरब रुपए छोड़कर गया--कारनेगी ने आंखें खोलीं और कहा, क्या बात कर रहे हो, मैं असंतुष्ट मर रहा हूं, क्योंकि मेरी योजना सौ अरब रुपए इकट्ठे करने की थी। दस अरब, क्या हल होता है! नब्बे अरब से हारकर मर रहा हूं।

कारनेगी भी हारा हुआ मरता है और सिकंदर भी हारा हुआ मरता है। और सब हारे हुए मरते हैं। यह कहानी बिल्कुल सच है। यह कहानी बिल्कुल झूठी मालूम पड़ती है और इससे सच कहानी खोजनी मुश्किल है।

यह तुम अपने भीतर खोजना तो तुम पाओगे। सोचते थे, यह स्त्री मिल जाए, यह पुरुष मिल जाए, सब तृप्ति हो जाएगी। बस, फिर तो एक स्वर्ग बसा लेंगे। फिर तो इस छोटे से झोपड़े में ही स्वर्ग बस जाएगा। वह स्त्री मिल गयी। अब फांसी लगी है और कुछ भी नहीं हो रहा है। सोचे थे एक बच्चा पैदा हो जाए, एक बेटा होगा तो

घर में किलकारी होगी, हंसी-खुशी होगी, फूल झरेंगे। बेटा हो गया, अब सिर ठोंक रहे हैं। बूड़ा वंश कबीर का उपजा पूत कमाल। अब यह कमाल पैदा हो गए! अब इनके साथ झंझट चल रही है।

तुमने जो भी चाहा, वह अगर न हुआ, तब तो शायद भ्रम बना रहे कि हो जाता तो सुख मिलता, अगर हो गया तो भ्रम टूट गया। जो स्त्री तुम्हें नहीं मिली, वह अब भी सुंदर है; और जो तुम्हें मिल गयी, उसका सारा सौंदर्य तिरोहित हो गया। धन्यभागी हैं वे प्रेमी जिनको उनकी प्रेयसी मिलती नहीं। इसलिए मजनू बड़े मजे में है। अभागे हैं वे प्रेमी जिनको उनकी प्रेयसी मिल जाती है। मिली नहीं कि सब खतम हुआ नहीं। जो तुमने चाहा, मिलते ही व्यर्थ हो जाता है, क्योंकि कुछ भरता नहीं, मन भरता ही नहीं। मन का भरना स्वभाव नहीं है।

जिस दिन तुम्हें यह दिखायी पड़ेगा, उस दिन तुम ऐसा न कहोगे कि बहुत दुख है, उस दिन तुम ऐसा कहोगे--जीवन दुख है।

ओ, हर सुबह जगाने वाले,
ओ हर शाम सुलाने वाले,
इतना दुख रचना था जग में
तो फिर मुझे नैन मत देता।
जिस दरवाजे गया, मिले
बैठे अभाव कुछ बने भिखारी
पतझर के घर गिरवी थी
मन जो भी मोह गयी फुलवारी,
कोई था बदहाल धूप में
कोई था गमगीन छांव में
महलों से कुटियों तक दुख की
थी हर सुख से रिश्तेदारी,
यूं चलती थी हाट कि बिकते
फूल, दाम पाते थे माली
दीपों से ज्यादा अमीर थी
उंगली दीप बुझाने वाली,
और यहीं तक नहीं, आड़
लेकर सोने के सिंहासन की
पूनम को बदचलन बताती
थी मावस की रजनी काली,
क्या अजीब थी प्यास कि
अपनी उमर पी रहा था हर प्याला
जीने की कोशिश में मरता
जाता था हर जीने वाला,
कहने को सब थे संबंधी
लेकिन थे आंधी के पत्ते

जब तक हों परिचित आपस में
मुरझा जाती थी हर माला,
ओ, हर चित्र बनाने वाले,
ओ, हर रास रचाने वाले,
झूठी थीं तस्वीरें सब तो
यौवन को दर्पण मत देता।
ओ, हर सुबह जगाने वाले,
ओ, हर शाम सुलाने वाले,
इतना दुख रचना था जग में
तो फिर मुझे नैन मत देता।

लेकिन मैं तुमसे कहता हूं, नैन हैं कहां? आंख है किसके पास इस दुख को देखने की? अगर ईश्वर ने आंख दी भी थी दुख को देखने की, तो तुमने उसे बंद कर रखा है। तुम डर से आंख खोलकर देखते नहीं। तुम उसी तर्क को मानते हो जिसको शुतुरमुर्ग मानता है। शुतुरमुर्ग का दुश्मन सामने आ जाता है तो वह रेत में सिर गड़ाकर खड़ा हो जाता है। उसका तर्क सीधा-साफ है, ठीक अरस्तू का तर्क है। वह तर्क यह है कि जो दिखायी नहीं पड़ता, वह है नहीं।

तुम भी तो यही तर्क मानकर चलते हो। मेरे पास लोग आ जाते हैं, वे कहते हैं, ईश्वर अगर है तो दिखलायी क्यों नहीं पड़ता? जो नहीं दिखायी पड़ता, वह नहीं है। वही तर्क शुतुरमुर्ग का है। वह आंख बंद कर लेता है, रेत में सिर गपा लेता है, दुश्मन सामने खड़ा है, दिखायी नहीं पड़ता उसको; नहीं दिखायी पड़ता तो सोचता है, है नहीं। निश्चिंत हो गया।

ऐसे ही हमने जीवन के सत्यों से आंखें छिपा ली हैं। सामने खड़ा है जीवन सारे दुख का अंबार लिए, हम जीवन को देखते ही नहीं, हम आगे देखते हैं। हम सपनों में देखते हैं, हम कल्पनाएं रचते हैं, हम सपने रचते हैं।

गुरजिएफ कहा करता था--और ठीक थी उसकी बात--कि जैसे रेल के दो डिब्बों के बीच में बफर लगे होते हैं, बफर का काम होता है कि अगर कभी जोर का धक्का लगे तो यात्रियों को धक्का न लग जाए, बफर धक्के को पी जाते हैं। या जैसे कार के नीचे स्प्रिंग लगे होते हैं, गड्ढा भी आ जाए तो स्प्रिंग कार के धक्के को पी जाते हैं, अंदर बैठे यात्री को थोड़ा-बहुत हलन-चलन होती है, लेकिन धक्का नहीं लगता। फिर जितनी अच्छी गाड़ी हो, उतने ही अच्छे स्प्रिंग होते हैं। जितनी महंगी गाड़ी हो, उतने ही अच्छे स्प्रिंग होते हैं। स्प्रिंग का अर्थ ही यह है कि वह जो चोटें आती हैं, धक्के आते हैं, उनको पी जाएं, तुम तक न पहुंचने दें।

सपने हमारे बफर हैं। सपनों के कारण जीवन के धक्के हम तक नहीं पहुंच पाते। सपना पी जाता है धक्का। हमारे और जीवन के बीच सपनों की एक दीवाल है। उधर जीवन है, वह चोटें करता जाता है और हम सपने देखते चले जाते हैं। हम सपनों में रहते हैं, हम जीवन में रहते कहां हैं! इसलिए हमें दिखायी नहीं पड़ता कि जीवन दुख है। और जिसे यह नहीं दिखायी पड़ता कि जीवन दुख है, वह महाजीवन में प्रवेश न कर सकेगा।

जब यह तुम्हें रत्ती-रत्ती सौ प्रतिशत सिद्ध हो जाएगा कि जीवन दुख है, खालिस दुख है, दुखमात्र है, दुख और जीवन पर्यायवाची हैं, जिस दिन ऐसा साक्षात्कार हो जाएगा, उसी दिन तुम जगोगे--उस दिन जगना ही पड़ेगा।

बुद्ध के पास एक आदमी आया और उसने कहा, आप कहते हैं तो ठीक ही कहते होंगे कि जीवन दुख है। बुद्ध ने कहा, रुक! मेरे कहने से जीवन दुख नहीं हो सकता। मेरे कहे को तू मान ले तो भी जीवन दुख नहीं हो सकता। तू कहता है, आप कहते हैं तो ठीक ही कहते होंगे। तेरे कहने ही से जाहिर है कि तू राजी नहीं है मेरी बात से। नहीं, उस आदमी ने कहा, जब आप जैसे पुरुष कहते हैं तो ठीक ही कहते होंगे।

यह सवाल बुद्ध के कहने का नहीं है, यह सवाल तुम्हारे देखने का है। तो बुद्ध ने कहा, ठीक, अगर तुझे लगता है कि हम जो कहते हैं ठीक ही कहते हैं, तो अब छोड़, दुख को कब तक पकड़े रहेगा? उसने कहा, अभी नहीं; आऊंगा, जरूर आऊंगा, आना ही है आपके मार्ग पर, अंततः तो सभी को आना है, लेकिन अभी नहीं। बुद्ध ने कहा, अगर तेरे घर में आग लगी हो और तुझे दिखायी पड़ता हो कि लपटें उठने लगी हैं और घर जलने लगा, तो तू उसी वक्त दौड़कर बाहर निकल जाएगा कि सोचेगा कि जाऊंगा, जरूर जाना तो है ही; सभी भाग रहे हैं, मैं भी भागूंगा, मगर अभी नहीं? उस आदमी ने कहा, आप भी क्या बातें कर रहे हैं! घर में आग लगी हो तो सोचने की फुरसत कहां, आदमी निकल जाता है बाहर। बुद्ध ने पूछा, तू किसी से पूछेगा, कहां से निकलूं? दरवाजे से, खिड़की से, पीछे के दरवाजे, आगे के दरवाजे से, कि कूद जाऊं छत से, कि छज्जे से, पूछेगा किसी से? वह कहने लगा, आप भी कैसी बातें कर रहे हैं, घर में आग लगी हो तो कोई पूछता है? जहां से मिल जाए द्वार वहां से आदमी निकल जाता है।

बुद्ध ने कहा, ऐसा ही जिस दिन तुझे जीवन का सत्य दिखायी पड़ेगा, तू एक क्षण भी टाल न सकेगा। निकल जाएगा। रुका ही नहीं जा सकता!

जिस दिन बुद्ध ने अपना महल छोड़ा, जो सारथी उन्हें ले गया गांव के बाहर छोड़ने, वह बूढ़ा सारथी था, बुद्ध का पुराना सेवक था, बचपन से बुद्ध को देखा था, बुद्ध बेटे की तरह थे उस बूढ़े के। जब बुद्ध वहां उससे कहे कि तू अब वापस लौट जा रथ को लेकर, यह मेरे गहने भी तू ले जा, तेरी भेंट, तुझे पुरस्कार; ये मेरे कपड़े भी तू ले ले, क्योंकि अब इनकी मुझे कोई जरूरत न होगी; और जब उन्होंने अपने बाल काटने शुरू किए तो उसने कहा, आप यह क्या कर रहे हैं? उन्होंने कहा, ये बाल भी तू ले जा, क्योंकि अब इनकी क्या जरूरत होगी--उनके बड़े सुंदर बाल थे--अब मैं फकीर हो रहा हूं। वह बूढ़ा समझाने लगा कि बेटा, रुक, आखिर मैं भी तेरे पिता की उम्र का हूं और मैंने तुझे बचपन से बड़ा किया है, यह तू क्या कर रहा है? ऐसे सुंदर राजमहल को, ऐसी सुंदर पत्नी को, ऐसे सुंदर अभी-अभी पैदा हुए बेटे को छोड़कर तू कहां जा रहा है, तू होश में है? एक बार लौटकर तो देख!

बुद्ध ने कहा, मैं बहुत बार लौटकर देखता हूं, लेकिन लपटों के सिवाय मुझे वहां कुछ भी नहीं दिखायी पड़ता, मेरा भवन जल रहा है। उस बूढ़े ने कहा, मुझे तो कहीं कोई लपटें नहीं दिखायी पड़ रही हैं।

बुद्ध ने कहा इस आदमी को कि अगर तुझे लपटें दिखायी पड़ जाएं, तो फिर तू रुकेगा नहीं, फिर स्थगित न करेगा। स्थगित करने की तो तभी तक संभावना है जब तक लपटें दिखायी नहीं पड़ीं।

तुम्हें भी जिस दिन दिखायी पड़ जाएगा कि जीवन वस्तुतः दुख है, उस दिन एक क्षण रुक न सकोगे। और बुद्ध अतिशयोक्ति नहीं करते हैं। बुद्धत्व में कहां अतिशयोक्ति! हमें अतिशयोक्ति लग सकती है, क्योंकि हमें लगता है कि इतने तक बात ठीक है कि जीवन में दुख हैं, चलो यह भी कहो कि बहुत हैं, मगर दुख ही दुख हैं! यह हमें बात घबड़ाती है, यह हम स्वीकार नहीं करना चाहते; कहीं तो सुख होगा, कुछ तो सुख होगा!

हां, सुख है, आशा में। घटना में कभी भी नहीं। भविष्य में, वर्तमान में कभी भी नहीं। सुख है, सपने में। और उसी सपने में लिपटे हम इस दुख को झेल लेते हैं, इस दुख की चोट नहीं पड़ पाती।

सपना तोड़ दें हम, तो दुख की चोट हमें जगा देगी। दुख की चोट ही मनुष्य को बुद्धत्व की यात्रा पर ले जाती है।

चौथा प्रश्नः दुख है। क्या उसे छिपाएं या प्रगट करें?

न तो छिपाने से कुछ होगा बहुत, न प्रगट करने से कुछ होगा बहुत। दुख को समझें। छिपाने और प्रगट करने से क्या फर्क पड़ता है? समझें, जागें, देखें, दुख में आंख गड़ाकर देखें, दुख पर ध्यान करें। दुख है तो दुख क्यों है? दुख का मूल कहां है? दुख का कारण क्या है? दुख है, तो तुम किसी तरह उस दुख के मूल को सींच रहे हो। दुख है, तो तुम किसी तरह सहारा दे रहे हो दुख को होने के लिए। दुख का विश्लेषण करें। जागकर समझें। और जैसे-जैसे दिखायी पड़ने लगेगा किस-किस तरह मैं अपने दुख को खुद सम्हाल रहा हूं, वैसे-वैसे तुम्हारे हाथ दुख को सम्हालने से हटने लगेंगे। जिस दिन तुम अपने दुख को सम्हालना बंद कर दोगे, दुख का घड़ा अपने से गिरता है और फूट जाता है।

दुख है, क्योंकि तुम दुख को बना रहे हो। दुख ऐसे ही है जैसे एक आदमी साइकिल चलाता है। वह जब तक पैडल मारता है, तभी तक साइकिल चलती है, पैडल मारना बंद कर दे, साइकिल रुक जाती है। खैर, थोड़ी-बहुत दूर चली भी जाए शायद पैडल मारना रोकने के बाद, पुराने गति के आधार से, मगर ज्यादा देर नहीं चल सकती।

क्यों? क्योंकि पैडल मारे बिना साइकिल चलेगी कैसे? दुख का जो चाक है, उसे तुम चला रहे हो। मगर किसी भांति तुमने यह देखना बंद कर दिया है कि हम उसे चला रहे हैं। तुम सदा एक तरकीब करते हो, जब भी तुम दुखी होते हो, तुम सोचते हो कोई तुम्हें दुखी कर रहा है।

पति दुखी है, वह सोचता है, पत्नी दुखी कर रही है। बाप दुखी है, वह सोचता है, बेटा दुखी कर रहा है। कोई न कोई, पर तुम दुख को टाल देते हो कि कोई मुझे दुखी कर रहा है। बस यही तुम्हारी तरकीब है, इससे दुख बचा रहता है। जिस दिन तुम देखोगे गौर से, तुम पाओगे दुखी मैं कर रहा हूं, कोई मुझे कैसे दुखी कर सकता है! किसकी सामर्थ्य है तुम्हें दुखी करने की! तुम्हें कोई न तो दुखी कर सकता, न कोई सुखी कर सकता, तुम्हारी स्वतंत्रता परम है।

समझो किसी आदमी ने गाली दे दी। अब तो बात साफ है कि न यह गाली देता, न हम दुखी होते। इतनी ऊपर-ऊपर बातें साफ नहीं होतीं। अगर यह आदमी गाली देता है और तुम दुखी होने को तैयार नहीं हो, तो तुम गाली देने पर भी दुखी न होओगे। तुम हंसकर चले जाओगे। तुम कहोगे, पागल, इसको क्या हुआ बेचारे को! इसके भीतर गाली लग रही, तो जरूर इसके भीतर बड़ी पीड़ा होगी, बड़ी तकलीफ होगी। लेकिन इससे तुम परेशान न होओगे।

बुद्ध को कोई गाली दे जाता है, तो बुद्ध तो परेशान नहीं होते। परेशान होने का कारण तो तभी बनता है जब तुम्हारे भीतर परेशानी मौजूद हो। जब तुम्हारे भीतर कोई घाव हो और कोई घाव को छेड़ दे। ऐसे कोई घाव को छेड़ दे और घाव हो ही नहीं, तो तुम्हें कोई परेशानी नहीं होती।

तुमने ख्याल किया, जब कोई गाली देता है तो तुम्हें तकलीफ इसीलिए होती है कि तुम्हारे मन में सम्मान की आकांक्षा थी और अपमान मिला। चाहा था सम्मान और अपमान मिला। सोचा था यह आदमी प्रशंसा

करेगा, स्तुति करेगा और यह गाली दे गया। तुमने यह भी ख्याल किया कि गाली का उसी मात्रा में तुम पर असर होता है, जिस मात्रा में आदमी तुम्हारे करीब होता है। चोट भी उसी की लगती है जो बहुत करीब होता है। क्योंकि जो बहुत करीब होता है, उससे हमारी अपेक्षा बहुत होती है। एक अजनबी आदमी गाली दे जाए, हमें उतना दुख नहीं होता। लेकिन मित्र गाली दे जाए तो ज्यादा दुख होता है।

क्यों? गाली तो एक जैसी है। लेकिन मित्र से हमने अपेक्षा नहीं की थी कि गाली देगा, मित्र से तो चाहा था कि कभी गाली न देगा। अपनों से चोट लगती है, ख्याल किया? परायों से क्या चोट लगती है! तुम्हारा बेटा कुछ कह दे तो चोट लग जाती है। दूसरे का बेटा कुछ कह दे तो तुम्हें कोई चोट नहीं लगती, क्या लेना-देना है! तुमने उससे कभी सोचा ही नहीं था कि कुछ बेहतर मिलने वाला है।

तो तुम्हारी अपेक्षा में चोट है। भीतर तुम्हारे है कारण। दुख बाहर से नहीं आता, दुख के तुम निर्माता हो। तुम पैडल चलाते हो, तो चाक चलता है। तुम गति देते हो तो गति आती है।

एक बात, दूसरे पर टालना बंद करो; और कारण में उतरो। सदा कारण तुम अपने में पाओगे। बुद्ध ने यही तो चार आर्यसत्य कहे--दुख है, दुख का कारण है, दुख से मुक्त होने की विधियां हैं और दुख-मुक्ति की दशा है। ये चार आर्यसत्य हैं। ये बड़े से बड़े सत्य हैं।

दुख है और दुख का कारण है। और कारण बाहर नहीं है, क्योंकि बाहर होता तब तो तुम्हारे वश के बाहर हो जाता। अगर दूसरे तुम्हें दुखी कर रहे हैं, तो जब तक दूसरे तय न करें कि तुम्हें दुखी न करें, तब तक तुम कभी सुखी न हो सकोगे। फिर तो निर्वाण भी बंधन हो गया। फिर तो मेरा मोक्ष भी तुम पर निर्भर है। फिर तो कोई स्वतंत्रता न रही। फिर तो आदमी की सारी महिमा गिर गयी।

नहीं, अगर मैं चाहूं सुखी होना, तो मुझे कोई दुखी नहीं कर सकता। क्योंकि मैं अपने भीतर से दुख के सारे कारण अलग कर सकता हूं। अपमान से दुख होता है, मैं सम्मान की आकांक्षा छोड़ सकता हूं, फिर कैसे अपमान से दुख होगा? धन छिन जाता है तो दुख होता है, मैं धन का त्याग कर सकता हूं, तो फिर कैसे दुख होगा! अपना किसी को मानते हैं तो दुख होता है, तो मैं सभी को अपना मानना छोड़ दे सकता हूं, असंग हो जाता हूं, फिर कैसे दुख होगा?

तुमने ख्याल किया, एक रास्ते से तुम गुजर रहे हो और एक वृक्ष पर से एक शाखा टूटकर तुम्हारे सिर पर गिर गयी और चोट मार दी, तो तुम उस शाखा को तो गाली नहीं देते। तुम यह तो नहीं कहते कि यह मेरी दुश्मन है। पीड़ा तो होगी, क्योंकि चोट लगी, लेकिन दुख नहीं होता। लेकिन समझो कि इसी शाखा का किसी आदमी ने उपयोग किया होता और आकर तुम्हारे सिर पर मार दी होती, तो पीड़ा भी होती और दुख भी होता।

एक झेन फकीर एक रास्ते से गुजर रहा था, एक वृक्ष से एक शाखा गिर गयी, उसको चोट लग गयी। उसने खड़े होकर सारी बात देखी, वह चुपचाप आगे चला गया, उसने कुछ भी न कहा। एक आदमी यह सब देख रहा था। उसने उस शाखा को काटकर एक डंडा बना लिया और दूसरे दिन वह फकीर जब निकल रहा था, फिर वह गया और उसने फकीर के सिर पर डंडा मार दिया। फकीर फिर खड़ा होकर देखा, थोड़ी देर कुछ सोचा, फिर अपने रास्ते पर जाने लगा। उस आदमी ने कहा कि रुको भई। अब तुमसे पूछना पड़ेगा। कल तुम चले गए थे, वह तो मेरी समझ में आ गया कि अब वृक्ष से ऊपर से शाखा गिरी, संयोग की बात है, मगर आज तो मैं तुम्हें चोट मार रहा हूं।

उस फकीर ने कहा, एक क्षण को मैं भी चौंका था कि अब क्या करना! फिर मैंने सोचा, है तो यह भी संयोग की ही बात कि तुमको ऐसा ख्याल आया। वृक्ष से समय पर शाखा टूट गयी, यह भी संयोग की बात थी,

तुमको ऐसा ख्याल आया, यह भी संयोग की बात है। जब वृक्ष पर नाराज नहीं हुआ तो तुम पर क्या नाराज होना। वृक्ष से कोई अपेक्षा नहीं थी, तुमसे भी कोई अपेक्षा नहीं है, ऐसा सोचकर मैं अपनी जगह चल पड़ा। बात खतम हो गयी।

अगर तुम गौर से अपने दुख के कारण में उतरो, समझो, तो कुछ होगा।

तुमने पूछा, "दुख है, क्या उसे छिपाएं या प्रगट करें?"

अगर दो ही उपाय हों, छिपाना और प्रगट करना, तो मैं तुमसे कहूंगा, प्रगट करो, छिपाओ मत। मगर तीसरा उपाय है, समझो, जागो, देखो। अगर ये ही दो उपाय हों तो मैं इस पक्ष में हूं कि छिपाना मत, प्रगट करना। क्योंकि छिपाने से तो और इकट्ठा होता है।

कोई मर गया घर में--पत्नी मर गयी, कि पति मर गया, कि बेटा मर गया--तो तीन उपाय हैं। या तो समझो, जो कि बड़े से बड़ा उपाय है। शायद न कर पाओ, कठिन है, कर लोगे तो बुद्धत्व की दिशा में चल पड़ोगे। न कर पाओ शायद, और तब दो ही विकल्प हैं--छिपाएं कि प्रगट करें? तो मैं कहूंगा, प्रगट करो। तो रो लो। तो छाती पीट लो। तो लोट जाओ, दो-चार दिन भोजन न करो, मुर्दे की भांति पड़े रहो, इससे लाभ होगा। बह जाएगा।

रोक लिया अगर, तो मवाद की तरह भीतर रह जाएगा। वह ज्यादा देर तक सताएगा। दूर तक साथ जाएगा। दो-चार दिन में निकल जाता, शायद फिर दो-चार जन्मों में निकले। या निकले ही नहीं, बना ही रहे घाव।

एक स्त्री मेरे पास लायी गयी थी--प्रोफेसर, पढ़ी-लिखी महिला। उसके पति मर गए, तो वह रोयी भी नहीं। और गांव के लोगों ने बड़ी प्रशंसा की उसकी, सभी ने कहा कि ऐसा होना चाहिए आदमी को बुद्धिमान। सबने प्रशंसा की तो उसने और मजबूती से अपने को रोक लिया। लेकिन तीन महीने बाद उसको हिस्टीरिया शुरू हुआ, फिट आने लगे, मूर्च्छा आने लगी। कोई उसे मेरे पास ले आया। मैंने उसकी सारी बात पूछी। मैंने उसको पूछा, तूने उस व्यक्ति को प्रेम किया था? उसने कहा, मैंने बहुत प्रेम किया था, प्रेम-विवाह था, मां-बाप से लड़कर उस युवक से मैंने विवाह किया था। तो फिर मैंने कहा कि दुख तो हुआ होगा? उसने कहा, दुख तो हुआ, लेकिन मैंने प्रगट नहीं किया। सार भी क्या प्रगट करने से!

मैंने कहा, वही दुख इकट्ठा होकर अब मूर्च्छा ला रहा है। तू रो ले, दिल खोलकर रो ले। इसे दबा मत। उसने कहा, उससे क्या होगा? क्या मेरा पति मुझे वापस मिल जाएगा? मैंने कहा, पति तेरा वापस नहीं मिलेगा, सिर्फ यह हिस्टीरिया चला जाएगा। पति वापस मिलेगा, यह मैं भी नहीं कहता। पति तो तू रो, तो नहीं मिलने वाला; न रो, तो नहीं मिलने वाला; हंस, तो नहीं मिलने वाला। कुछ फर्क नहीं पड़ने वाला। पति तो गया सो गया। मगर यह हिस्टीरिया, यह जो इतना तूने तनाव इकट्ठा कर लिया है, जिसे अब झेलना मुश्किल हो रहा है, तेरे मस्तिष्क के तंतु झेल नहीं पा रहे, मूर्च्छित हो जाते हैं, यह चला जाएगा।

तीन दिन तक वह हृदयपूर्वक रोयी। सारी बुद्धिमत्ता छोड़कर रोयी। मूरख बनकर रोयी। और तीन दिन के बाद सारी बीमारी चली गयी। तीन साल, चार साल हो गए इस बात को घटे, फिर एक बार भी मूर्च्छा नहीं आयी, न हिस्टीरिया का कोई फिट आया।

सीधी-सीधी बात है, अगर घाव भर सके तो बहुत अच्छा, अगर न भर सके तो फिर मवाद को भीतर रखना ठीक नहीं, बाहर निकाल देना ठीक है। और फिर तुम छिपाओ कितना ही, छिपा न पाओगे, कहीं न कहीं से निकलेगा; हिस्टीरिया में निकलेगा, सपने में निकलेगा, क्रोध में निकलेगा, कहीं न कहीं से निकलेगा।

आदमी गाए न गाए दर्द कैसे चुप रहेगा

आंख से जो अश्रु छलका वेदना का गीत होगा

मौन हाहाकार उर का प्राण का संगीत होगा

रुद्ध स्वर चाहे न चाहे प्राण कैसे चुप रहेगा

स्वर न जगते हैं सुखों में पीर ही कविता जगाती

कसक कोई गीत बनती सांस घायल गीत गाती

साज चाहे रूठ जाए कंठ कैसे चुप रहेगा

अधर सी दो लाख चाहे पर नयन वाचाल होंगे

अधर सी दो लाख चाहे पर नयन वाचाल होंगे

मौन ही भाषा प्रणय की शब्द सब कंगाल होंगे

रूप कुछ बोले न बोले मौन कैसे चुप रहेगा

आदमी गाए न गाए दर्द कैसे चुप रहेगा

जो है, उसे प्रगट कर दो। उसे छिपाए मत रखो। उसे दबाए मत रखो। उसे आ जाने दो, किसी भी रूप में आ जाने दो, चाहे गीत बनकर फूटे, चाहे आंसू बनकर फैले, चाहे हाहाकार उठे, उसे आ जाने दो, उसे निकल जाने दो।

मगर मैं यह नहीं कह रहा हूं कि यह परमविधि है। इससे सिर्फ तुम सामान्य रूप से स्वस्थ रहोगे। परमविधि तो है, समझो क्यों दुख है! और तुम परमविधि का भी उपयोग कर सकते हो और दुख को व्यक्त भी कर सकते हो। दोनों साथ-साथ चल सकते हैं, दोनों में तालमेल है। अगर तुमने दुख को छिपाया तो तुम परमविधि का उपयोग भी न कर सकोगे, क्योंकि जो छिपाया है, उसको तुम देखने में भी डरोगे। क्योंकि कहीं देखने में ही उभर न आए, निकल न आए। तुम उस बात को ही हटाते रहोगे, तुम मन के किसी अंधेरे कोने में सरकाते रहोगे।

तो पूछा है, "क्या उसे छिपाएं या प्रगट करें?"

प्रगट करो। और प्रगट करने को ही परमविधि मत मान लेना। इससे तुम स्वस्थ तो रहोगे, लेकिन आत्मवान न हो सकोगे। इस प्रगट करने में साथ-साथ बोध को भी जोड़ दो। इस प्रगट करने में साथ-साथ ध्यान को भी जोड़ दो। आंसुओं को भी बहने दो और तुम भीतर जागरूक होकर देखो भी--यह दुख हुआ क्यों? निंदा मत करना। यह मत कहना कि दुख बुरा है। यह मत कहना कि दुख नहीं होना चाहिए था। निर्णय मत लेना। तुम तो सिर्फ निरीक्षण करना कि दुख क्यों हुआ है?

अगर पति के मरने से दुख हुआ है, तो उसका अर्थ इतना ही हुआ, बहुत मोह लगा लिया होगा, बहुत नाता जोड़ लिया होगा, तो दुख हो रहा है। तो आगे सावधान रहना। नाते जोड़ने में दुख है। मोह बनाने में दुख है। तो फिर मोह की रचना और मत करना। रहो संसार में, लेकिन रहो ऐसे जैसे संसार से बिल्कुल अलिप्त। रहो कमलवत--पानी में, पर पानी छुए न। फिर कोई दुख नहीं है।

मैंने कभी न चाहा जग को दुख का साझीदार बनाऊं

पर अनजाने ही गीतों में मन का दर्द उभर आता है

नयनों का हर मोती मेरा पर सुख के पल सदा विराने

अनुभव सागर में डूबा तो सत्य लगा मुझको अपनाने

विरहाकुल हो जब भी भटका कण-कण में तुमको ही देखा
पर यदि पास हुए तुम मेरे परिचित भी सब लगे अजाने
मैंने कभी न चाहा तुमको पलकों में ही सीमित कर लूं
पर अनजाने ही अंतर में कोई रूप निखर आता है,
मन का दर्‌द उभर आता है।
कुछ कहते हैं इन गीतों में कोई शाश्वत सार नहीं है
दुख का ही सरगम है इनमें सुख की मधु मनुहार नहीं है
कण-कण में पीड़ा मुस्काती अंबर की पलकें भीगी हैं
धरती रोए पर मैं गाऊं मुझको यह स्वीकार नहीं है
मैंने कभी न चाहा जग को इन गीतों से विह्वल कर दूं
पर अनजाने विकल स्वरों में दर्द स्वयं मुझको गाता है,
मन का दर्द उभर आता है।
मैंने कभी न चाहा जग को दुख का साझीदार बनाऊं
पर अनजाने ही गीतों में मन का दर्द उभर आता है

यह भी एक अहंकार है कि मैं किसी को अपने दुख में साझीदार न बनाऊं। यह भी अस्मिता है। अहंकारी आदमी अपने दुख को प्रगट नहीं करता है।

इसे तुमने देखा, स्त्री और पुरुषों में एक फर्क। स्त्रियां अपने दुख को सरलता से प्रगट कर देती हैं--कुछ दुख हुआ, रो लिया। इसलिए स्त्रियां हल्की हैं, पुरुष बहुत भारी हैं। यह तुम जानकर चकित होओगे कि दोगुने पुरुष पागल होते हैं दुनिया में और दोगुने पुरुष आत्महत्या करते हैं दुनिया में। और अगर इसमें हम उन सब पुरुषों को भी जोड़ लें जो युद्धों में जाकर कटते हैं और काटते हैं, तब तो संख्या बहुत हो जाएगी, क्योंकि वे भी पागल हैं। और हर दस साल के बाद कोई बड़ा महायुद्ध चाहिए, ताकि पुरुषों में से पागल छंट जाएं।

क्या कारण होगा? पुरुष रोने की कला भूल गया है। पुरुष का अहंकार--मर्द कैसे रो सकता है! छोटा बच्चा रोने लगता है तो तुम कहते हो, अरे, मर्द बच्चे हो, रोते हो! लड़की बन रहे हो, लड़कियाना काम कर रहे हो! रोओ मत। छोटे-छोटे लड़कों तक को नहीं रोने देते। धीरे-धीरे रोने की कला भूल जाती है। और रोने की कला बड़ी है। वह मन को सहज हल्का करने की प्राकृतिक विधि है। इसलिए स्त्रियां ज्यादा स्वस्थ हैं--मानसिक रूप से। स्त्रियां पांच-सात साल ज्यादा जीती हैं पुरुषों से, उनकी औसत उम्र ज्यादा है। स्त्रियों की सहनशीलता ज्यादा है।

तुम जरा सोच लो, किसी पुरुष को अगर नौ महीना बच्चा पेट में रखना पड़े, तो दुनिया में आदमी पैदा होना ही बंद हो गए होते, कभी के बंद हो गए होते। या फिर पुरुष को बच्चे को पालना पड़े, जरा सोचो! तो रोज अदालतों में मुकदमे होते कि बाप ने बेटे की गर्दन दबा दी। रात में न सोने दे बेटा, कब चीखे, कब पुकारे, कब रोए! एकाध दिन तुम जरा घर में अपने बच्चे की देखभाल करके सोचना तब तुम्हें पता चलेगा, कि पागल कर देगा वह तुम्हें।

स्त्री की क्षमता बड़ी है, सहनशीलता बड़ी है। और उस सबके पीछे मनोवैज्ञानिक कहते हैं, कारण है--क्योंकि स्त्री अपने दुख को छिपाती नहीं, प्रगट हो जाने देती है। इसलिए दुख बह जाता है।

पुरुष रोकता है। तुमको न मालूम किसने यह पागलपन समझा दिया है कि रोना मत, क्योंकि तुम पुरुष हो! प्रकृति ने तो दोनों की आंखों में बराबर आंसू की ग्रंथियां बनायी हैं, उसमें जरा भी भेद नहीं है। पुरुष की आंख में उतनी ही आंसू की क्षमता है जितनी स्त्री की आंख में। इसलिए प्रकृति ने तो भेद नहीं किया है। प्रकृति ने तो चाहा है कि तुम भी कभी-कभी रोना। लेकिन आदमी की सभ्यता ने भेद कर लिया है। आदमी को खूब अकड़ दे दी है, पुरुष को, कि नहीं, यह सब स्त्रियों का काम है, यह काम तुम करना ही मत। स्त्री रो लेती है, हल्की हो जाती है, ज्वार निकल जाता है, ज्वर निकल जाता है। इसलिए स्त्री में एक कोमलता है, एक सौंदर्य है। पुरुष में एक कठोरता है। यह कठोरता कम हो सकती है, अगर तुम्हारी आंखें थोड़ा आंसू बहाने की कला सीख लें।

तो मैं तो तुमसे कहूंगा, अगर छिपाने और प्रगट करने में ही चुनाव करना हो, तो प्रगट करना। लेकिन चुनाव तीन के बीच हैः छिपाना, प्रगट करना, जागकर देखना। बड़ी बात तो जागकर देखना है। उससे छुटकारा होगा, उससे जड़मूल से क्रांति होगी।

आखिरी प्रश्नः ओशो,

अंतर मम विकसित करो,
अंतरतर हे!
निर्मल करो
उज्ज्वल करो
सुंदर करो, हे!
जाग्रत करो
उद्धत करो
निर्भय करो, हे!
मंगल करो
निर्लस
निःसंशय करो, हे!
अंतर मम विकसित करो,
अंतरतर हे!
युक्त करो हे साबार संगे
मुक्त करो हे बंध
संचार करो सकल कर्म
शांत तोमार छंद
चरण पद में मम चित्त
निष्पंदित करो, हे!
नंदित करो
नंदित करो
नंदित करो, हे!
अंतर मम विकसित करो,

अंतरतर हे!

तरु ने भेजीं ये पंक्तियां। ऐसा भाव, ऐसी प्रार्थना तुम्हें घेरे रहे, तो जो चाहा है वह होगा। प्रार्थना अपूर्व शक्ति है। और मांगना हो परमात्मा से तो कुछ क्षुद्र मत मांगना। मांगना हो तो यही मांगना--

"अंतर मम विकसित करो,

अंतरतर हे!"

मांगना हो, तो चैतन्य की कुछ बात मांगना। मांगना हो, तो मुक्ति की कुछ बात मांगना। और यह प्रार्थना तुम्हें घेरे रहे, तुम्हारी श्वास-श्वास में समा जाए, तो इसके परिणाम होंगे। यह प्रार्थना परमात्मा को बदल देगी, ऐसा नहीं है, यह प्रार्थना तुम्हें बदल देगी।

इसको ख्याल में रखना, बहुत लोग सोचते हैं कि हम प्रार्थना करेंगे तो परमात्मा बदल जाएगा और हम जो मांगते हैं, वह कर देगा। ऐसा कोई परमात्मा कहीं नहीं है। और तुम्हारी प्रार्थना से परमात्मा नहीं बदलने वाला, लेकिन प्रार्थना करने से प्रार्थी बदल जाता है। अगर तुम यह रोज-रोज गुनगुनाते रहेः

"अंतर मम विकसित करो,

अंतरतर हे!

निर्मल करो

उज्ज्वल करो

सुंदर करो, हे!

जाग्रत करो

उद्धत करो

निर्भय करो, हे!

मंगल करो

निर्लस

निःसंशय करो, हे!

अंतर मम विकसित करो,

अंतरतर हे!"

यह तुम्हारी श्वास-श्वास में गूंज पैदा हो जाए, यह तुम्हारी धड़कन-धड़कन में रम जाए, यह तुम्हारे रोएं-रोएं का कंपन बन जाए, तो ऐसा होने लगेगा। नहीं कि कोई परमात्मा कर देगा, कहीं कोई करने वाला नहीं है, लेकिन तुम्हारी प्रार्थना तुम्हें बदलेगी। तुम्हारे भाव तुम्हें बदलेंगे, तुम्हारी भावना तुम्हें बदलेगी।

"युक्त करो हे साबार संगे

मुक्त करो हे बंध"

इस तरह की प्राणों में निरंतर एक ज्योति जलती रहे, तो तुम जैसे हो वैसे ही रह न जाओगे। छोटी-छोटी भाव की तरंग बड़ी क्रांति लाती है।

"युक्त करो हे साबार संगे

मुक्त करो हे बंध

संचार करो सकल कर्म

शांत तोमार छंद

चरण पद में मम चित्त

निष्पंदित करो, हे!

नंदित करो

नंदित करो

नंदित करो, हे!

अंतर मम विकसित करो,

अंतरतर हे!"

ऐसा सोचते-सोचते, विचारते-विचारते, गुनगुनाते-गुनगुनाते तुम नंदित हो उठोगे। तुम आनंदित हो उठोगे। तुम्हारे भीतर वीणा बजने लगेगी। वीणा तो है ही भीतर, तुम ऐसा गुनगुनाओगे तो वीणा भी तुम्हारे साथ गुनगुनाने लगेगी। तार तो मौजूद हैं, स्पंदित करना है।

प्रार्थना प्रार्थी को बदलती है, परमात्मा को नहीं। प्रार्थना प्रार्थी को एक दिन परमात्मा बना देती है। और तो कोई परमात्मा है भी नहीं। इसलिए प्रार्थना को तुम यह मत सोच लेना कि हमने प्रार्थना कर दी और बात समाप्त हो गयी, अब तू जान! ऐसा उत्तरदायित्व नहीं छोड़ देना है परमात्मा पर। उससे तो आलस्य पैदा होता है; और जीवन रूपांतरित तो होता नहीं, और-और गड्ढों में गिर जाता है। जो प्रार्थना करो, उस प्रार्थना पर अपने जीवन को रूपांतरित करने की दिशा में भी प्रयास करना। प्रार्थना प्रयास बने तो ही गवाही तुम देते हो कि तुमने सच में ऐसा मांगा।

तुमने अगर सच में मांगा है--

"अंतर मम विकसित करो,

अंतरतर हे!

निर्मल करो

उज्ज्वल करो

सुंदर करो, हे!"

--तो फिर जो-जो कुरूप हो, उसे छोड़ते जाना। क्योंकि परमात्मा से जो मांगा है, वह कम से कम तुम तो अपने को दो, परमात्मा जब देगा तब देगा। तो जो-जो कुरूप हो, छोड़ते जाना। जो-जो उज्ज्वल न हो, छोड़ते जाना। जो-जो उज्ज्वल हो, उसे अंगीकार करना। जो-जो निर्मल हो, उसके सामने अपने को गतिमान करना।

"जाग्रत करो

उद्धत करो

निर्भय करो, हे!"

तो अपने को जगाना। प्रार्थना करने पर प्रार्थना समाप्त नहीं होती, प्रार्थना तुमने सच में की है, इसका प्रमाण भी देना। और जो प्रमाण भी देता है, उसकी प्रार्थना पूरी हो जाती है।

आज इतना ही।

उन्यासीवां प्रवचन

सत्य सहज आविर्भाव है

असज्झायमला मंता अनुट्ठानमला घरा।
मलं वण्णस्स कोसज्जं पमादो रक्खतो मलं।। 201।।

ततो मला मलंतरं अविज्जा परमं मलं।
एतं मलं पहत्वान निम्मला होथ भिक्खवे।। 202।।

सुजीवं अहिरिकेन काकसूरेन धंसिना।
पक्खन्दिना पगब्भेन संकिलिट्ठेन जीवितं।। 203।।

हिरिमता च दुज्जीवं निच्चं सुचिगवेसिना।
अलीनेनप्पगब्भेन सुद्धाजीवेन पस्सता।। 204।।

एवं भो पुरिस! जानाहि पापधम्मा असां◌ंता।
मा तं लोभो अधम्मो च चिरं दुक्खाय रन्धयु।। 205।।

भगवान बुद्ध श्रावस्ती में ठहरे थे। नगरवासी उपासक सारिपुत्र और मौदगल्लायन के पास धर्म-श्रवण करके उनकी प्रशंसा कर रहे थे। अपूर्व था रस उनकी वाणी में, अपूर्व था भगवान के उन दो शिष्यों का बोध; अपूर्व थी उनकी समाधि, और उनके वचन लोगों को जगाते थे--सोयों को जगाते थे, मुर्दों को जीवित करते थे। उनके पास बैठना अमृत में डुबकी लगाना था।

एक भिक्षु जिसका नाम था लालूदाई, यह सब खड़ा हुआ बड़े क्रोध से सुन रहा था। उसे बड़ा बुरा लग रहा था। वह तो अपने से ज्यादा बुद्धिमान किसी को मानता ही नहीं था। भगवान के चरणों में ऐसे तो झुकता था, पर ऊपर ही ऊपर। भीतर तो वह भगवान को भी स्वयं से श्रेष्ठ नहीं मानता था। उसका अहंकार अति प्रज्वलित अहंकार था। और मौका मिलने पर वह प्रकारांतर से, परोक्ष रूप से भगवान की भी आलोचना-निंदा करने से चूकता नहीं था। कभी कहता, आज भगवान ने ठीक नहीं कहा; कभी कहता, भगवान को ऐसा नहीं कहना था; कभी कहता, भगवान होकर ऐसा नहीं कहना चाहिए; आदि-आदि।

उस लालूदाई ने उपासकों को कहा, क्या व्यर्थ की बकवास लगा रखी है? क्या रखा है सारिपुत्र और मौदगल्लायन में? कंकड़-पत्थरों को हीरे समझ बैठे हो! परख करनी है तो पारखियों से पूछो। जवाहरात पहचनवाने हैं तो जौहरियों से पूछो। मुझसे पूछो। और प्रशंसा ही करनी है तो मेरे धर्मोपदेश की करो।

उसकी दबंग आवाज, उसका जोर से ऐसा कहना, नगरवासी तो बड़े सकते में आ गए। सोचा उन्होंने, कि हो न हो लालूदाई एक बड़ा धर्मोपदेशक है। उन्होंने लालूदाई से धर्मोपदेश की प्रार्थना की। लेकिन लालूदाई बार-बार टाल जाते। कहते, ठीक समय पर, ठीक ऋतु में बोलूंगा। ज्ञानी हर कभी और हर किसी को उपदेश

नहीं करता। प्रथम तो सुनने वाले में पात्रता चाहिए। अमृत हर पात्र में नहीं डाला जाता है। बात तो पते की थी। लोगों में प्रभाव बढ़ता गया।

फिर तो वह यह भी कहने लगे कि ज्ञानी मौन रहता है। लिखा नहीं है शास्त्रों में कि जो बोलता है, वह जानता कहां है? जो चुप रहता है वही जानता है। परमज्ञानी क्या बोलते हैं! नगरवासियों में तो धाक बढ़ती गयी। और बड़ी उत्सुकता भी पैदा हो गयी। वे और-और प्रार्थना करने लगे। इस बीच लालूदाई अपना व्याख्यान तैयार करने में लगे थे।

व्याख्यान शब्द-शब्द कंठस्थ हो गया तो एक दिन धर्मासन पर आसीन हुए। पूरा गांव सुनने आया। तीन बार बोलने की चेष्टा की, पर अटक-अटक गए। बस संबोधन ही निकलता--उपासको! ... और वाणी अटक जाती। खांसते-खखारते, लेकिन कुछ न आता। पसीना-पसीना हो गए। चौथी बार चेष्टा की तो संबोधन भी न निकला। सब सूझ-बूझ खो गयी। याद किया, कुछ याद न आया। हाथ-पैर कांपने लगे और घिग्घी बंध गयी। तब तो गांव वाले असलियत पहचान गए।

लालूदाई मंच छोड़कर भागे। गांव वाले यह कहते हुए कि यह सारिपुत्र और मौदगल्लायन की प्रशंसा को सुन नहीं सकता और भगवान तक की आलोचना करने में पीछे नहीं रहता है और अपने से कुछ कह नहीं रहा है, उसका पीछा किए। लालूदाई भागते में मल-मूत्र के एक गड्ढे में गिर पड़े और गंदगी से लिपट गए।

भगवान के पास खबर पहुंची। भगवान ने कहा, भिक्षुओ, अभी ही नहीं, यह लालूदाई जन्मों-जन्मों से ऐसी ही गंदगी में गिरता रहा है। भिक्षुओ, अहंकार गंदगी है, मल है। भिक्षुओ, अल्पज्ञान घातक है, शब्द-ज्ञान घातक है, शास्त्र-ज्ञान घातक है। इस लालूदाई ने थोड़े से शब्द सीख रखे हैं। अनुभव के बिना शब्द मुक्ति नहीं लाते, बंधन लाते हैं। इस लालूदाई ने थोड़ा सा धर्म सीख रखा है। लेकिन उसका भी ठीक-ठीक स्वाध्याय नहीं किया है। उसे भी पचाया नहीं है, नहीं तो आज ऐसी दुर्गति न होती। भिक्षुओ, इससे सीख लो। आलोचना सरल, आत्मज्ञान कठिन है। विध्वंस सरल, सृजन कठिन है। और आत्मसृजन तो और भी कठिन है। अहंकार प्रतिस्पर्धा जगाता है, प्रतिस्पर्धा से ईर्ष्या पैदा होती, ईर्ष्या से द्वेष और शत्रुता निर्मित होती। और फिर अंतर्बोध जगे कैसे? दूसरे का विचार ही न करो, समय थोड़ा है, स्वयं को जगा लो, बना लो, अन्यथा मल-मूत्र के गड्ढों में बार-बार गिरोगे। भिक्षुओ, तुम्हीं कहो, बार-बार गर्भ में गिरना मल-मूत्र के गड्ढे में गिरना नहीं तो और क्या है!

और तब भगवान ने ये गाथाएं कहीं--

असज्झायमला मंता अनुट्ठानमला घरा।
मलं वण्णस्स कोसज्जं पमादो रक्खतो मलं।।

"स्वाध्याय न करना मंत्रों का मैल है, झाड़-बुहार न करना घर का मैल है। आलस्य सौंदर्य का मैल है, प्रमाद पहरेदारों का मैल है।"

ततो मला मलंतरं अविज्जा परमं मलं।
एतं मलं पहत्वान निम्मला होथ भिक्खवे।।

"इन सब मैलों से भी बढ़कर अविद्या परम मैल है। भिक्षुओ, इस मैल को छोड़कर निर्मल बनो।"

सुजीवं अहिरिकेन काकसूरेन धंसिना।

पक्खन्दिना पगब्भेन संकिलिट्ठेन जीवितं।।

"निर्लज्ज, कौवे जैसा शूर, लूटपाट करने वाले, पतित, बकवादी, पापी मनुष्य का जीवन सुख से बीतता लगता है।"

हिरिमता च दुज्जीवं निच्चं सुचिगवेसिना।

अलीनेनप्पगब्भेन सुद्धाजीवेन पस्सता।।

"लज्जाशील, नित्य पवित्रता के गवेषक, सजग, मितभाषी, शुद्ध जीविका वाले और ज्ञानी मनुष्य का जीवन कष्ट से बीतता लगता है।"

एवं भो पुरिस! जानाहि पापधम्मा असांंता।

मा तं लोभो अधम्मो च चिरं दुक्खाय रन्धयु।।

"हे पुरुष! संयमरहित पापकर्म ऐसे ही होते हैं, इसे जानो। (उनमें ऊपर-ऊपर तो सुख मालूम होता है, भीतर बहुत दुख है)। तुम्हें लोभ और अधर्म चिरकाल तक दुख में न डाले रहें (इसलिए सजग हो जाओ, जागो)।"

इसके पहले कि हम सूत्रों में प्रवेश करें, इस कथा को ठीक-ठीक समझ लेना जरूरी है। कथा तो सीधी-सादी है, जटिल जरा भी नहीं, पर ऐसे बहुत महत्वपूर्ण है। सत्य होता भी सीधा-सादा ही है। आदमी सत्य को जटिल बनाता, अन्यथा सत्य बड़ा सरल है। इसलिए सत्य को कहने के लिए सदा ही छोटी-छोटी कथाएं सहयोगी बनी हैं। जो बड़े-बड़े शास्त्र नहीं कह पाते, दर्शन की बड़ी-बड़ी उलझी हुई धारणाएं नहीं कह पातीं, वह छोटी-छोटी कथाएं--जिन्हें बच्चे भी समझ लें--कहने में समर्थ हो जाती हैं।

इस छोटी सी सीधी-सादी कथा को एक-एक पर्त उघाड़कर समझो--

श्रावस्ती नगरवासी उपासक सारिपुत्र और मौदगल्लायन के पास धर्म-श्रवण कर उनकी प्रशंसा कर रहे थे।

ये बुद्ध के दो परम शिष्य थे--सारिपुत्र और मौदगल्लायन। ये दोनों स्वयं महापंडित थे। जब ये बुद्ध के पास आए थे तो इन दोनों के भी पांच-पांच सौ शिष्य थे। इनकी देश में बड़ी ख्याति थी। और जब बुद्ध के पास आए, तो दोनों को शास्त्र का अपूर्व ज्ञान था। लेकिन जब बुद्ध ने कहा, यह ज्ञान शास्त्र का है, सारिपुत्र, मौदगल्लायन! यह ज्ञान तुम्हारा नहीं। तो अपूर्व हिम्मत के लोग रहे होंगे, बुद्ध के चरणों में सिर ही नहीं रखा, अपना सारा ज्ञान भी डाल दिया। और कहा कि अब हम अज्ञानी होने को राजी हैं। तुम्हारा साथ रहे, तो हम अज्ञानी होने को राजी हैं। हम भी जानते हैं अपने अनुभव से कि इस ज्ञान से हमने कुछ पाया नहीं।

शिष्य तो बहुत चौंके थे सारिपुत्र के और मौदगल्लायन के, क्योंकि वे तो सोचते थे--महापंडित; इन जैसा पंडित नहीं है। वे तो इसी आशा में आए थे कि बुद्ध को ये पराजित कर देंगे और बुद्ध को भी रूपांतरित कर लेंगे अपने शिष्य में।

एक ही शब्द में ये चरणों में सिर रख दिए। बड़े विवादी थे। सारे देश में घूमते थे विवाद करते, न-मालूम कितने पंडितों को हराया था। लेकिन बुद्ध के पास आकर बात चोट कर गयी। बुद्ध ने कहा, यह तुम्हारा जाना हुआ नहीं है। तुम जो भी कह रहे हो, सब उधार है। उधार से कोई कभी पहुंचा है? यह सब बासा है। मैं तुम्हें उस तरफ ले चलता हूं जहां तुम्हारे भीतर का शास्त्र निनादित होने लगे। एक क्षण में झुक गए थे। बड़ी हिम्मत चाहिए झुकने के लिए। और पंडित होने के बाद झुकने के लिए तो बहुत हिम्मत चाहिए। क्योंकि पंडित का मन तो कहता है, मैं खुद ही जानता हूं, झुकना कैसा! किसके सामने झुकना है! पांडित्य तो अहंकार को बड़ा मजबूत कर देता है, दुर्ग बना देता है अहंकार के चारों तरफ।

उस झुकने में ही क्रांति घटित हो गयी। बुद्ध ने कहा, पहले ज्ञान को भूल जाओ। ज्ञान बाधा है ध्यान में। जो सीखा है, उसे अनसीखा कर दो। स्लेट साफ कर लो, कागज को कोरा करना है। क्योंकि उस कोरे में ही उतरता है सत्य; यह गुदा हुआ कागज सत्य के काम का नहीं है। तुम खाली स्लेट हो जाओ, तुम शून्यवत हो जाओ, उसी शून्य में पूर्ण उतरेगा।

दोनों ने वर्षों तक बुद्ध के चरणों में बैठकर ध्यान लगाया। दोनों परम ज्ञान को बुद्ध के जीते-जी उपलब्ध हो गए थे। फिर जो परम ज्ञान को उपलब्ध हो जाए, उसकी वाणी में अमृत हो, यह स्वाभाविक है। उसकी वाणी में अमृत सिर्फ उन्हें नहीं दिखायी पड़ेगा जिन्होंने न देखने की कसम खा ली है। जो थोड़े भी पुलकित होने को राजी हैं, जो हृदय की खिड़की थोड़ी खोलने को राजी हैं, जो उस वाणी को भीतर जाने देने को राजी हैं, उनके मन तो नाच उठेंगे। उनके हृदयों में तो फूल खिल जाएंगे।

श्रावस्ती के अनेक उपासक दोनों का धर्म-प्रवचन सुनकर लौटे होंगे, वे प्रशंसा कर रहे थे। कह रहे थे, अपूर्व था रस उनकी वाणी में।

रस वहीं है, जहां सत्य है। रसो वै सः। उस परमात्मा का स्वभाव रसरूप है। जहां अनुभव नहीं है उसका, वहां तुम कितने ही शब्दों का उपयोग करो, शब्द खाली होंगे, नपुंसक होंगे। उनके भीतर कुछ भी न होगा। खाली म्यान, जहां तलवार है नहीं। कितनी ही चमके, खाली म्यान कितनी ही सुंदर मालूम पड़े, वक्त पर काम न आएगी। शब्द कोरे के कोरे तो चली हुई कारतूस जैसे हैं, उन्हें तुम सम्हालकर रखे रहो, कुछ काम के नहीं हैं। मौके पर रक्षा न होगी। रक्षा तो उसी शब्द से होती है जिसके भीतर सत्य का अंगारा जलता हो। रस होता ही है वहां जहां अनुभव है।

तो कह रहे थे--अपूर्व था रस उनकी वाणी में, अपूर्व था भगवान के उन दो शिष्यों का बोध, अपूर्व थी उनकी समाधि।

गांव के सीधे-सादे लोग, आंदोलित हो उठे थे। गांव के सीधे-सादे लोग, उनकी श्रद्धा में अंकुरण हुआ था। गांव के सीधे-सादे लोग, बुद्ध के इन शिष्यों की बात सुनकर सूरज की तरफ आंखें उठाने की कोशिश कर रहे थे। रोशनी को तलाश रहे थे।

लेकिन उनके वचन पास में ही खड़े एक भिक्षु, जो बुद्ध का ही शिष्य था, नाम था उसका लालूदाई--रहा होगा लालबुझक्कड़--उसे बड़ी चोट लग रही थी।

वह भी शिष्य था बुद्ध का, उसकी कोई प्रशंसा नहीं करता। इस भांति कोई कहता नहीं कि रस तुम्हारी वाणी में, बोध तुम्हारे जीवन में, समाधि तुम्हारे हृदय में; ऐसा कोई कहता नहीं कि तुम्हारे शब्द मुर्दों को जगा देते हैं। उससे न सहा गया। उसे बड़ी बेचैनी होने लगी। उसके बर्दाश्त के बाहर हो गया।

वह तो अपने से बुद्धिमान किसी को मानता ही नहीं था। औरों की तो बात ही छोड़ दो, वह भगवान को भी अपने से ज्यादा बुद्धिमान नहीं मानता था। गहरे में तो वह यही जानता था कि मैं अद्वितीय हूं, मेरा कोई मुकाबला!

ऐसे ही तो सभी जानते हैं। कहो, न कहो, कहने से क्या फर्क पड़ता है! न कहने से भी कोई फर्क नहीं पड़ता। जो तुम भीतर मानते हो वही फर्क लाती है बात। तुम कितनी बार चरणों में झुक जाते हो किसी के और फिर भी तुम्हारा अहंकार तो अकड़ा खड़ा रहता है, झुकता नहीं। तुम कितनी बार दर्शाते हो कि आप महान हैं, लेकिन भीतर तुम जानते हो कि मुझसे महान और कौन! अहंकार अपने से ऊपर कभी किसी को रखता ही नहीं। जो अहंकार अपने से ऊपर किसी को रख ले, वही शिष्य हो गया।

जो अहंकार अपने से ऊपर किसी को रखता ही नहीं है, वह कभी शिष्य नहीं हो सकता। शिष्यत्व की कला तो इतनी सी है--अपने अहंकार को किसी से नीचे रख लेना।

इसी कला के कारण इस देश में गुरु के चरणों में झुकने का मूल्य बना। वह तो प्रतीक है। वह तो बाह्य प्रतीक है भीतर की घटना का। भीतर को कैसे कहें? तो बाहर के किसी प्रतीक से कहते हैं। दुनिया के किसी देश ने पैरों में झुकने की कला नहीं खोजी। एक अपूर्व संपदा से वे वंचित रह गए।

पश्चिम में कोई किसी के पैर छूने को राजी नहीं--ख्याल भी नहीं उठता, बात ही गलत मालूम पड़ती है, बात ही अपमानजनक मालूम पड़ती है। पश्चिम जीता अहंकार से, पूरब जीता समर्पण से। पश्चिम जीता संघर्ष से, पूरब जीता विनम्रता से। पूरब ने एक कला खोजी है--सीखने की कला हमला नहीं है, सीखने की कला झुक जाना है। और जो जितना ज्यादा झुक जाता है, उतना ही भर जाता है।

तुम नदी के किनारे खड़े हो। नदी बह रही है, तुम प्यासे हो। तुम झुको न, अंजुली न बनाओ, तो प्यासे के प्यासे रह जाओगे। नदी तुम्हारे ओंठों तक आने से रही। तुम्हें झुकना होगा, तुम्हें हाथ की अंजुली बनानी होगी, तुम्हें जल भरना होगा, तो नदी तुम्हारी तृप्ति करने को तैयार है।

बुद्धपुरुष तो नदी की भांति हैं। तुम अगर प्यासे हो सत्य के, तो झुको। नहीं कि तुम्हारे झुकने से बुद्धपुरुषों को कुछ मिलता है। तुम्हारे झुकने से क्या मिलेगा, तुम्हारे पास ही कुछ नहीं है, तुमसे मिलना क्या है! तुम यह मत सोचना कि तुमने कोई आभार किया किसी बुद्धपुरुष के चरणों में झुककर; नहीं, उसने तुम्हें झुकने दिया, उसने ही आभार किया। क्योंकि झुककर तुम्हें ही मिलेगा। झुककर तुम कुछ खोने को नहीं हो--खोने को तुम्हारे पास कुछ है भी नहीं।

मगर बड़े मजे की बात है, जिन लोगों के पास खोने को कुछ नहीं है, बिल्कुल नहीं है, वे भी झुकने में बड़े अकड़े खड़े रहते हैं। लेने में, सीखने में बड़ी चोट मालूम पड़ती है, दंभ को बड़ी पीड़ा मालूम पड़ती है।

तो यह लालूदाई--यह लालबुझक्कड़--बुद्ध के चरणों में झुक गया होगा, मगर झुका नहीं था। और जब तुम अधूरे मन से किसी के चरणों में झुक जाते हो, तो तुम इधर-उधर बदला लेते हो। बदला लेना ही पड़ेगा, वह मनोवैज्ञानिक है। अगर तुम्हारी श्रद्धा अपने गुरु में अधूरी है, थोथी है, छिछली है, उथली है, तो तुम बदला लोगे। तुम किसी बहाने से गुरु का अपमान करने का उपाय खोजोगे, गुरु की निंदा करोगे, आलोचना करोगे--कोई रास्ता तुम खोज लोगे। अगर सीधा रास्ता खोजने में डरोगे तो प्रकारांतर से।

अब सारिपुत्र और मौदगल्लायन की आलोचना प्रकारांतर से बुद्ध की ही आलोचना है। क्योंकि बुद्ध ने घोषणा की है कि ये दोनों समाधि को उपलब्ध हो गए। यह बुद्ध की घोषणा है कि इन दोनों ने पा लिया, अब ये लौटेंगे नहीं, ये उस सीमा के पार हो गए जहां से आदमी लौटता है। इनका पुनरागमन समाप्त हो गया है। ये

अनागामी हो गए। अब नहीं आएंगे। ये फूल आखिरी हैं, इनकी सुगंध आखिरी है। जिसे पीनी हो पी ले, जिसे लेनी हो ले ले। ये एक बार उड़ गए तो ये पक्षी फिर दुबारा इस संसार में लौटने को नहीं हैं। इस संसार के वृक्ष पर अब ये दुबारा डेरा न बनाएंगे, ऐसी घोषणा भगवान ने कर दी है।

शायद इस घोषणा के कारण ही लालूदाई को और भी पीड़ा हो रही होगी। कि मेरे रहते और कोई दूसरा अनागामी हो गया!

मेरे पास लोग आते हैं, मेरे पास संन्यासी आते हैं, वे कहते हैं, जिन लोगों को आपके पास ध्यान उपलब्ध हो गया है, आप उनके नाम की घोषणा क्यों नहीं करते? मैं कहता हूं, इसीलिए नहीं करता हूं, क्योंकि बड़ी जलन होगी, बड़ी ईर्ष्या पैदा होगी। अगर मैं एक के नाम की घोषणा करूंगा कि यह ध्यान को उपलब्ध हो गया, तो बाकी सब उसके दुश्मन हो जाएंगे, और बड़ी राजनीति पैदा होगी, और बड़ी खींचातान मच जाएगी, वह नाहक कष्ट में पड़ जाएगा। ध्यान की घोषणा उसे बहुत उपद्रव में डाल देगी। और दूसरे, जो ध्यान की चेष्टा में लगे थे, वे तो चेष्टा छोड़ देंगे, वे किसी भांति यह सिद्ध हो जाए कि इस आदमी को ध्यान नहीं मिला है, इस चेष्टा में लग जाएंगे।

यह सदा हुआ। जब भी बुद्ध ने घोषणा की, महावीर ने घोषणा की, जीसस ने घोषणा की, बड़ी राजनीति पैदा हो गयी। इसलिए मैंने तय किया है कि घोषणा करूंगा ही नहीं। जिनको हो जाएगा, वे जानते हैं। जिनको हो जाएगा, मैं जानता हूं। बात मेरे और उनके बीच हो गयी, समाप्त हो गयी। किसी और को पता चलने की कोई जरूरत नहीं, नहीं तो लालूदाई पैदा होंगे। और उनसे कुछ सार नहीं है। घोषणा से कुछ बढ़ता नहीं है, जिसको मिल गया है मिल गया, घोषणा से क्या बढ़ता है!

घोषणा फिर बुद्ध ने क्यों की? करने का कारण था। अगर लोग भले हों तो करने में लाभ है। शायद जितने लोग आज विकृत हैं उतने विकृत नहीं थे, इसलिए की। शायद सौ आदमी सुनते तो एकाध लालबुझक्कड़ हो जाता था, निन्यानबे को तो हिम्मत बढ़ती थी। निन्यानबे को तो लगता था, अगर इसको हो गया तो हमें भी हो सकता है, अब हम लगें जोर से। अगर सारिपुत्र को हो गया, तो हमें क्यों न होगा! निन्यानबे को तो इससे प्रेरणा मिलती थी, इसलिए घोषणा की। निन्यानबे को तो बल मिलता था, आश्वासन बढ़ता था, श्रद्धा बढ़ती थी कि हो सकता है।

और बुद्ध की बिना घोषणा के निन्यानबे को पता नहीं चल सकता था। बुद्ध को पता चलेगा, जो जाग गया उसको पता चलेगा कि किसको हो गया। लेकिन शेष जो सोए हुए हैं, उन्हें कैसे पता चलेगा? उन्हें तो कोई जागा हुआ घोषणा करेगा तभी पता चलेगा।

तो बुद्ध ने, महावीर ने घोषणा की, वह भी कारण से की। सौ में निन्यानबे लोगों को लाभ होता था, एकाध को नुकसान होता था। एकाध कोई लालूदाई झंझट में पड़ जाता था। मगर एक के लिए निन्यानबे का नुकसान नहीं किया जा सकता।

आज की हालत बिल्कुल उलटी है--आज एकाध को लाभ होगा, निन्यानबे लालूदाई हैं। लाभ तो एकाध को होगा। एकाध को इस बात से श्रद्धा बढ़ेगी, निन्यानबे के भीतर तो ईर्ष्या की आग जलेगी। इसलिए मुझसे मत पूछना आकर कि किसको ध्यान की उपलब्धि हो गयी या नहीं, मैं कहने वाला नहीं हूं। आज की हालत और भी खराब है। और तुम यह मत सोचना कि लालूदाई यहां नहीं हैं। बड़ी संख्या में हैं। उनसे बचना ही मुश्किल है, उनकी संख्या रोज बढ़ती ही गयी दुनिया में।

तो लालूदाई ऐसे तो चरणों में झुका था, लेकिन सच में नहीं झुका था। और जो थोड़ा-बहुत झुका था, उसका बदला लेता था।

तुम समझो। जिसको तुम प्रेम करते हो, उसी को तुम घृणा करते हो। क्योंकि तुम्हारा प्रेम पूरा नहीं है। तुमने कभी इस बात को गौर से देखा! जिसको तुम प्रेम करते हो, उसी को घृणा करते हो। और जिसको तुम श्रद्धा करते हो, उसी पर तुम्हारी भीतर-भीतर अश्रद्धा और संदेह भी चलते रहते हैं। तुम प्रतीक्षा में रहते हो, कब मौका मिल जाए कि इस श्रद्धा को फेंक दें उठाकर। सिद्ध हो जाए कि अश्रद्धा सही है, तो तुम ऐसा मौका चूकोगे नहीं, तुम झपटकर ले लोगे।

तुमने एक बात ख्याल की, सारी दुनिया में, सारे समाजों ने, सारी सभ्यताओं ने सदा से बच्चों को यह सिखलाया--अपने मां-बाप का आदर करो। इसकी शिक्षा इतनी पुरानी है, इसका संस्कार इतना गहरा है, लेकिन फिर भी तुम देखते हो, कौन बच्चा अपने मां-बाप का आदर करता है! शायद इसीलिए सभी सभ्यताओं ने तय किया कि बच्चों को सिखाओ कि मां-बाप का आदर करो, अन्यथा बच्चे तो अगर नहीं सिखाए गए तो शायद आदर बिल्कुल न करेंगे। सिखाए-सिखाए भी आदर नहीं करते। लाख समझाओ आदर करो, वे नहीं करते। भीतर एक अनादर की धारा बहती रहती है। अहंकार आदर कर नहीं सकता। अहंकार किसी का सम्मान नहीं कर सकता, क्योंकि सम्मान में झुकना होता है। अहंकार सिर्फ अपमान ही कर सकता है। अहंकार सिर्फ गाली ही दे सकता है, प्रशंसा नहीं कर सकता।

तो लालूदाई झुका, ऊपर-ऊपर झुका था, भीतर-भीतर बदले की तलाश में था। आखिर कैसे क्षमा करो उस आदमी को जिसने तुम्हें मजबूर कर दिया पैरों में झुकने को, कैसे क्षमा करो उस आदमी को! बहुत कठिन हो जाता है क्षमा करना।

मैं इधर रोज अनुभव करता हूं। लोग आकर पैर में झुकते हैं, मैं जानता हूं--एक और झंझट बढ़ी। क्योंकि अब यह आदमी बदला लेगा, यह मुझे कभी क्षमा नहीं करेगा। यह पैर में झुक तो गया, लेकिन अब यह बदला किससे लेगा इस बात का? यह घड़ी इसके जीवन में आयी मेरे कारण, तो मुझ ही से बदला लेगा! यह आज नहीं कल मुझे गाली देगा। यह मेरे खिलाफ कुछ खोजेगा। यह कोई न कोई बहाना निकालेगा और बदला लेगा।

तुम अगर इतिहास से परिचित हो, तो महावीर का ही एक शिष्य गोशालक महावीर के साथ बदला लिया। वह महावीर का ही शिष्य था। वह महावीर को ही छोड़कर चला गया और महावीर के खिलाफ जितना काम उसने किया, किसी और आदमी ने नहीं किया।

महावीर का एक दूसरा विरोधी उनका ही दामाद था। वह भी शिष्य हुआ था, वह भी विरोध में चला गया, महावीर के पांच सौ शिष्यों को अपने साथ लेकर निकल गया। अब हमारे देश में तो ऐसा है कि दामाद का पैर छूते हैं। तो जब शादी हुई होगी, तो महावीर ने उसके पैर छुए होंगे। और फिर जब महावीर संन्यस्त हो गए, ज्ञान को उपलब्ध हुए, और दामाद भी संन्यस्त हुआ, तो उसे महावीर के पैर छूने पड़े। वह बदला लिया, वह क्षमा नहीं कर सका। उसने महावीर के संघ में पहला उपद्रव खड़ा किया, पहली राजनीति खड़ी की।

बुद्ध का चचेरा भाई देवदत्त बुद्ध से दीक्षा लिया, संन्यस्त हुआ। लेकिन यह देखकर उसे बड़ी पीड़ा होने लगी--क्योंकि वह चचेरा भाई था, तो वह सोचता था, बुद्ध के बाद नंबर दो कम से कम मेरा होना चाहिए, लेकिन उसका तो कोई नंबर ही नहीं लग रहा था। वहां तो और लोग आते गए और ज्ञान को उपलब्ध होते गए और देवदत्त पीछे पड़ता गया, कतार में दूर होने लगा। उसको चोट भारी लगी। वह भिक्षुओं को लेकर, गिरोह को लेकर अलग हो गया।

फिर उसने बुद्ध को मारने के बड़े उपाय किए। बुद्ध के ऊपर पागल हाथी छोड़ा। बुद्ध ध्यान करते थे तो एक चट्टान उनके ऊपर सरकाकर गिरायी। जब चट्टान बुद्ध के पास से सरकती हुई गयी--इंच-इंच बचे, बाल-बाल बचे--तो किसी ने पूछा कि संयोग की बात कि आप बच गए। बुद्ध ने कहा, संयोग की बात नहीं, चट्टान कोई मेरी चचेरा भाई तो नहीं! चट्टान को मुझसे क्या लेना-देना है! जब पागल हाथी बुद्ध पर छोड़ा देवदत्त ने और पागल हाथी आकर उनके चरणों में झुक गया बजाय उनको मार डालने के, रौंद डालने के, तब भी किसी ने कहा कि अपूर्व चमत्कार! बुद्ध ने कहा, कुछ भी चमत्कार नहीं, पागल हाथी कोई मेरा शिष्य तो नहीं! मुझसे बदला लेने का कोई कारण तो नहीं।

बड़ी गहरी मनोविज्ञान की बात है, ख्याल में रखना--जिसके प्रति तुम श्रद्धा करते हो, उससे तुम बदला लेने की आकांक्षा रखोगे, खोज करोगे।

तो लालूदाई को बहुत बुरा लगा। वह तो मौका मिलने पर प्रकारांतर से, परोक्ष रूप से भगवान की भी आलोचना करता था। कहता--आज भगवान ने ठीक नहीं कहा; भगवान को ऐसा नहीं कहना था; भगवान होकर ऐसा नहीं कहना चाहिए था; आदि-आदि।

तुम्हें ऐसे संन्यासी भी यहां मिल जाएंगे, गैर-संन्यासी भी यहां मिल जाएंगे, जो ठीक यही कहते हैं। यह कहानी फिर दोहर रही है। यह कहानी सदा दोहरती रही है। इस संसार में नया कुछ होता नहीं। इस संसार में करीब-करीब जो हो चुका है, वही फिर-फिर होता है। यह संसार बड़ी पुनरुक्ति है। तुम्हें कहते हुए लोग मिल जाएंगे कि भगवान ने ऐसा कहा, नहीं कहना था, यह गलत बात कह दी, यह उचित नहीं था कहना, इस बात में राजनीति की झलक आ गयी, यह आलोचना क्यों की किसी की, यह किसी का खंडन क्यों किया?

एक जैन मुझसे आकर कहे कि और सब तो ठीक है, आप साईंबाबा की आलोचना न करें। क्योंकि भगवान होकर... !

तो मैंने उनसे पूछा, तुमने महावीर के वचन पढ़े? उन्होंने कहा, निश्चित पढ़े। फिर तुमने गोशालक की महावीर के द्वारा की गयी आलोचना पढ़ी? तब वह जरा हैरान हुए। मैंने उनसे पूछा, तुमने बौद्धों के शास्त्र पढ़े? बुद्ध के द्वारा की गयी आलोचनाएं पढ़ीं? वेलट्ठी, संजय, प्रकुद्ध, इनकी आलोचना पढ़ी बुद्ध के द्वारा की गयी? मैं अगर साईंबाबा के विरोध में कुछ कहा हूं, तो साईंबाबा का विरोध नहीं है, सिर्फ उनको जगाना जरूरी है जो गलत राह पर जा सकते हैं। जो इस तरह की उलझनों में पड़ सकते हैं, उन्हें सचेत करना जरूरी है।

नहीं, लेकिन वह कहने लगे, भगवान होकर किसी की आलोचना! तो मैंने कहा, तुम यह कहो न कि मैं भगवान नहीं हूं, सीधी बात कहो! तो महावीर भगवान हैं कि नहीं? तब उन्हें पसीना आने लगा। क्योंकि महावीर ने तो बड़ी कठोर आलोचना की है। करनी पड़ी है। करुणा से की है, करनी ही चाहिए थी। महावीर की उस आलोचना के कारण बहुत लोग गोशालक के चक्कर में पड़ने से बचे। अन्यथा महावीर जिम्मेवार होते।

समझो कि उन्होंने आलोचना न की होती, उन्होंने कुछ न कहा होता, मौन साधे रखा होता, तो जो लोग गोशालक के चक्कर में पड़ते और नहीं पड़े उनकी आलोचना से, उनके जीवन को भ्रष्ट करने की जिम्मेवारी किसकी होती? उनके जीवन को भ्रष्ट करने की जिम्मेवारी महावीर की होती। और महावीर ने वह जिम्मेवारी नहीं लेनी चाही। उससे ज्यादा बेहतर यही था कि जैसा है वैसा कह दिया जाए। आलोचना में कुछ रस नहीं है, आलोचना में कोई किसी का विरोध नहीं है, कोई वैयक्तिक दुश्मनी नहीं है।

लेकिन तुम्हें यहां भी लोग मिल जाएंगे, वे कहेंगे, आज भगवान ने ठीक नहीं कहा। दो-चार को इकट्ठा करके, गिरोह बनाकर वे समझाएंगे कि ठीक नहीं कहा, यह बात नहीं कहनी थी, यह बात उनके योग्य नहीं है।

ये प्रकारांतर से बदला ले रहे हैं। ये झुके, इस बात को भूल नहीं पाते। ये किसी न किसी तरह से चोट पहुंचाएंगे। इनसे तुम सावधान रहना, ये लालूदाई हैं।

उस लालूदाई ने उपासकों से कहा, क्या व्यर्थ की बकवास लगा रखी है? क्या रखा है सारिपुत्र और मौदगल्लायन में? कंकड़-पत्थरों को हीरे समझ बैठे हो! परख करनी हो तो पारखियों से पूछो, मुझसे पूछो। और प्रशंसा करनी है तो मेरे धर्मोपदेश की करो।

एक दुनिया में बड़ी सरल बात है, उसे ख्याल में रखना। कोई आदमी कह रहा है, गुलाब का फूल बड़ा सुंदर है। इसे सिद्ध करना बहुत कठिन है कि गुलाब का फूल सुंदर है। कैसे सिद्ध करोगे? तुम भी राजी हो जाते हो, यह बात दूसरी है। लेकिन अगर तुम कह दो कि नहीं, मैं राजी नहीं होता, प्रमाण दो कि गुलाब का फूल सुंदर क्यों है--क्यों सुंदर है? किस कारण सुंदर है? तो वह जो कह रहा था गुलाब का फूल सुंदर है, मुश्किल में पड़ जाएगा।

तुर्गनेव की एक बड़ी प्रसिद्ध कथा है। एक गांव में एक महामूर्ख था, लोग उस पर बहुत हंसते थे। गांव का महामूर्ख, सारा गांव उस पर हंसता था। आखिर गांव में एक फकीर आया और उस महामूर्ख ने उस फकीर से कहा कि और सब पर तुम्हारी कृपा होती है, मुझ पर भी करो, क्या जिंदगीभर मैं लोगों के हंसने का साधन ही बना रहूंगा? लोग मुझे महामूर्ख समझते हैं और मैं हूं नहीं।

फकीर ने कहा, एक काम कर, जहां भी कोई किसी ऐसी चीज की बात कर रहा हो जिसको सिद्ध करना कठिन हो, तू विरोध में हो जाना। जैसे कोई कह रहा हो कि ईश्वर की कृपा, तू फौरन पकड़ लेना शब्द कि कहां है ईश्वर, कैसा ईश्वर, सिद्ध करो! कोई कहता हो, चांद सुंदर है, फौरन पकड़ लेना, जबान पकड़ लेना कि क्या प्रमाण है? मैं कहता हूं, कहां है सौंदर्य? कैसा सौंदर्य? कोई कहता हो, गुलाब का फूल सुंदर है; कोई कहता हो, यह स्त्री जा रही है, देखो कितनी प्रसादपूर्ण है, कितनी सुंदर--पकड़ लेना जबान उसकी, छोड़ना मत। जहां भी सौंदर्य की, सत्य की, शिवम की कोई चर्चा हो रही हो, तू पकड़ लेना। क्योंकि न सत्य सिद्ध होता, न सौंदर्य सिद्ध होता, न शिवम सिद्‍ध होता, ये चीजें सिद्ध होती ही नहीं। इनके लिए कोई प्रमाण नहीं है। और कोई जब सिद्ध नहीं कर पाएगा, तो तू सात दिन में देखना, गांवभर तुझे पंडित मानने लगेगा।

उसने, महामूर्ख तो था ही, वह उसके पीछे पड़ गया लाठी लेकर। वह गांव में घूमने लगा, उसने लोगों की बोलती बंद कर दी। उसको लोग देखकर चुप हो जाते कि कुछ मत कहो। कोई कह रहा है कि शेक्सपियर की किताब बड़ी सुंदर है, वह खड़ा हो जाता कि किसने कहा? कोई कहता, यह चित्र देखते हो, चित्रकार ने बनाया है, कितना प्यारा! वह कहता, इसमें है क्या? रंग पोत दिए हैं। कोई मूरख पोत दे, इसमें रखा क्या है? इसमें तुम्हें दिखायी क्या पड़ रहा है?

उसने सारे गांव को चौकन्ना कर दिया। सात दिन के भीतर गांव में यह अफवाह फैलने लगी कि यह आदमी महापंडित हो गया है। महामूर्ख नहीं है, यह ज्ञानी है। हमने अब तक इसे पहचाना नहीं। वह वही का वही आदमी है। लेकिन गांव की दृष्टि उसके बाबत बदल गयी।

लालूदाई ने कहा, क्या व्यर्थ की बकवास लगा रखी है?

गांव के सीधे-सादे लोग, वे सिद्ध भी तो क्या करेंगे? कि सारिपुत्र की वाणी में अमृत है। कह रहे थे, सिद्ध तो न कर सकेंगे।

तुम भी जितनी बातें कहते हो, सिद्ध तो न कर सकोगे। छोटी-छोटी बातें सिद्ध नहीं हो सकतीं। तुम कहते हो, मेरा किसी स्त्री से प्रेम हो गया। और कोई अगर पूछे, कहां है प्रेम, दिखलाओ? रोज होता है प्रेम, सदा से

होता रहा है प्रेम, लेकिन सिद्ध तो न कर सकोगे। वैज्ञानिक की टेबल पर निकालकर तो न रख सकोगे कि तुम जांच-पड़ताल कर लो। और अगर तुम कहो कि मेरे हृदय में है, वह कहेगा, चलो, कार्डियोग्राम करवा देते हैं, आएगा प्रेम कार्डियोग्राम में? नहीं आया, फिर? चलो, डाक्टर से स्टेथोस्कोप लगवाकर जांच करवा देते हैं, धड़कन में है? तुम मुश्किल में पड़ जाओगे। हृदय भी खोलकर जांच की जाए तो भी कुछ प्रेम तो पाया न जाएगा। प्रेम कोई वस्तु तो नहीं है, भाव है।

जब उन लोगों ने कहा कि सारिपुत्र के वचनों में अमृत है, तो वे सारिपुत्र की कम कह रहे थे, उनके हृदय में जो घटा था वही कह रहे थे। यह वचन उनके भीतर गया, अमृत जैसा घुल गया; यह वचन उनके भीतर गया और उनके भीतर कुछ मिठास छोड़ गया, कोई सुगंध छोड़ गया। यह सुगंध सूक्ष्म है, स्थूल के जगत में इसके लिए कोई प्रमाण नहीं है। असल में वे सारिपुत्र के संबंध में थोड़े ही कह रहे थे, वे अपने संबंध में कह रहे थे।

लालूदाई ने भी सारिपुत्र का वचन सुना, उसके भीतर तो सिर्फ जलन फैल गयी, आग फैल गयी; उसके भीतर तो कांटे ही कांटे उग गए। और ये कहते हैं, कमल खिल गए हैं हमारे भीतर! कहां खिले हैं?

जीवन में जो भी श्रेष्ठ है, वह सिद्ध नहीं होता। इसलिए जो लोग सिद्ध करने में लगे हैं, उन्हें निकृष्ट से राजी होना पड़ेगा। वे श्रेष्ठ की यात्रा पर नहीं जा सकते। इसलिए नास्तिक निकृष्ट से राजी हो जाता है। श्रेष्ठ सिद्ध होता नहीं, जो सिद्ध होता नहीं, उसे वह मानता नहीं। जो सिद्ध हो सकता है, उसे वह मानता है। जो सिद्ध हो सकता है, वह स्थूल है। प्रेम सिद्ध नहीं होता, पत्थर सिद्ध हो जाता है। तुम पत्थर को इनकार करो तो तुम्हारी खोपड़ी पर पत्थर मारा जा सकता है--पता चल जाएगा कि है या नहीं। लेकिन तुम प्रेम को इनकार करो तो तुम्हारी खोपड़ी पर प्रेम तो मारा नहीं जा सकता। उसकी तो कोई चोट न लगेगी।

इस बात को ख्याल रखना, जितनी ऊंची बात है, उतनी ही इनकार करनी आसान। जितनी नीची बात है, उतनी इनकार करनी कठिन।

यह लालूदाई बोला, क्या व्यर्थ की बकवास लगा रखी है? कैसा अमृत-रस? कैसा बोध? कैसी समाधि? कहां की बातें कर रहे हो, होश में हो? गांव के सीधे-सादे लोग, चौंक गए होंगे। और तब उसने कहा कि कंकड़-पत्थरों को हीरे समझ बैठे हो। परख करनी है तो पारखियों से पूछो। जवाहरातों को जंचवाना है तो जौहरियों से पूछो। तुम गांव के गंवार, खेती-बाड़ी करते जिंदगी बीती, ऊंची बातों के लिए निर्णय ले रहे हो!

गांव के सीधे-सादे लोग, भौचक्के खड़े रह गए होंगे। क्या कहें! और तुम ख्याल रखना, गांव के लोग ही भौचक्के रह जाएंगे ऐसा नहीं, कितना ही सुसंस्कृत व्यक्ति हो, श्रेष्ठ को सिद्ध तो किया ही नहीं जा सकता, वह भी चुप रह जाएगा। जो भगवान को जानते हैं, उनके सामने भी अगर तुम तर्क करने खड़े हो जाओगे, तो वे भी चुप रह जाएंगे।

इसीलिए तो सारे संतों ने कहा है कि श्रेष्ठ को जानना हो तो श्रद्धा द्वार है। संदेह से तो श्रेष्ठ के द्वार बंद हो जाते हैं। जहां संदेह है फिर तुमने तय कर लिया कि तुम क्षुद्र के जगत में ही जीओगे, तुमने विराट का द्वार बंद कर दिया।

मुझसे पूछो, उसने कहा। अरे, मेरी सुनो! मैं हूं भिक्षु, मैं जानता हूं क्या समाधि, क्या ध्यान, क्या बोध, क्या अमृत, क्या रस; जीवन इसमें लगाया है। और अगर प्रशंसा ही करनी है तो मेरे धर्मोपदेश की करो।

उसकी बात से गांव के लोग प्रभावित हो गए। उन्होंने कहा, हो न हो लालूदाई छिपा हुआ हीरा है। गुदड़ी का लाल है। अभी तक पता ही नहीं था! यह तो अच्छा हुआ कि इसने हमें याद दिला दी, नहीं तो हम कभी इसकी बात ही न सुनते। इसकी तो किसी को खबर ही नहीं है।

गांव के लोग प्रार्थना करने लगे कि धर्मोपदेश दें हमें, समझाएं हमें। लालूदाई जरा मुश्किल में पड़े।

आलोचना सरल थी कि क्या बकवास लगा रखी है! लेकिन धर्मोपदेश देना तो--कभी दिया भी नहीं था। धर्म का कुछ पता भी नहीं था। धर्म हो, तो उपदेश देना थोड़े ही पड़ता है, उपदेश होता है। धर्म हो, तो सोचना-विचारना थोड़े ही पड़ता है। धर्म का अनुभव हो तो उस अनुभव से ही बातें बहती हैं। और जो बातें अनुभव से सहज बहती हैं, वे ही सच्ची होती हैं।

लालूदाई बड़ी मुश्किल में पड़े होंगे, लेकिन रहे तो भिक्षुओं के पास थे। ऊंची बातें सुनते थे, बुद्ध के पास थे, बड़ी-बड़ी बातें सुनते थे, उन्हीं बड़ी-बड़ी बातों में उन्होंने अपना संरक्षण खोज लिया होगा। ख्याल रखना, आदमी इतना बेईमान है कि बड़ी-बड़ी बातों में भी अपने क्षुद्र अहंकार के लिए संरक्षण खोज लेता है। तो लालूदाई ने क्या कहा, सुनते हैं!

लालूदाई ने कहा, ठीक समय पर, ठीक ऋतु में बोलूंगा। ज्ञानी हर कभी और हर किसी को उपदेश नहीं करता। प्रथम तो सुनने वाले में पात्रता चाहिए। अमृत हर पात्र में नहीं ढाला जाता है।

सुने होंगे ये शब्द, शायद बुद्ध से सुने होंगे, या और ज्ञानियों से सुने होंगे। खूब बढ़िया तरकीब निकाली। उसने कहा कि तुम पहले पात्र तो बनो। सुनने आ गए! जो तुम्हें सुनाते हैं वे अज्ञानी हैं। क्योंकि ज्ञानी तो पहले पात्र देखेगा। अमृत को ढालने के लिए पात्र तो चाहिए। यह मिट्टी का ले आए पात्र! इसमें ढालूंगा मैं अमृत! स्वर्णपात्र तैयार करो। खूब तरकीब निकाली! असल में वह व्याख्यान तैयार कर रहे थे। मगर तब तक लोगों को समझाए रखना था, लोगों को चुप रखना था। तो उन्होंने कैसे बड़े सूत्रों का सहारा लिया!

फिर तो वह यह भी कहने लगे कि ज्ञानी मौन रहता है।

बुद्ध तो रोज बोल रहे थे, सुबह-सांझ बोल रहे थे! यह भी बदला है। यह भी वह प्रकारांतर से कह रहा है कि बुद्ध भी बुद्ध हो नहीं सकते।

ज्ञानी तो चुप रहते हैं! अरे, तुमने सुना नहीं, शास्त्रों में साफ-साफ लिखा है, उपनिषद कहते हैं कि परमज्ञानी बोलते नहीं।

अब यह बड़े मजे की बात है! अगर उपनिषद परमज्ञानियों के वचन हैं, तो परमज्ञानी बोले। नहीं तो उपनिषद लिखते कैसे? अगर परमज्ञानी बोलते नहीं हैं, तो उपनिषद जिन्होंने लिखे वे परमज्ञानी नहीं थे। साक्रेटीज कहता है कि बोलता नहीं ज्ञानी; लेकिन यह तो कम से कम बोलना पड़ता है, इतना तो बोलना पड़ता है कि ज्ञानी मौन रहते हैं। यह कौन बोलता है? यह कौन कहता है? ये अपूर्व उपनिषद किसने लिखे हैं? और उपनिषद में लिखा है कि जो बोलता, वह जानता नहीं; और जो जानता, वह बोलता नहीं। तो हम उपनिषद के ऋषियों के संबंध में क्या सोचें? ये जानते थे कि नहीं जानते थे?

दो ही बातें हो सकती हैं। या तो ये जानते थे। अगर ये जानते थे तो चुप रहना था, बोलना नहीं था, उपनिषद होने नहीं थे। या ये नहीं जानते थे। और नहीं जानने वालों ने जो बातें लिखी हैं, वे सच कैसे हो सकती हैं? और उन्होंने लिखा कि जो जानता है, वह बोलता नहीं। न जानने वालों ने लिखा है कि जो जानता है, वह बोलता नहीं; और जो नहीं बोलता, वही जानता है। तो न जानने वालों की बातों का कोई मूल्य तो नहीं हो सकता।

लेकिन बात कुछ और ही है। बात ऐसी नहीं है कि जानने वाला बोलता नहीं। जानने वाला बोल सकता है। लेकिन जो उसने जाना है, वह कभी बोला नहीं जा सकता। जानने वाला खूब बोल सकता है, लेकिन जो उसने जाना है, उसकी तरफ इशारे ही कर सकता है, जो जाना है, वह बोल नहीं सकता। जो जाना है, उसे कैसे

बोलोगे? वह तो गूंगे का गुड़ है। लेकिन गूंगा गुड़ की तरफ इशारा तो कर सकता है, इसके लिए तो नहीं रोक सकते।

समझो मैं गूंगा हूं, मैंने गुड़ खा लिया और मैं मिठास से भरा हूं और मस्त हो रहा हूं। और तुम आए और पूछने लगे, क्या हो रहा है? मैं गूंगा हूं, बोल नहीं सकता, लेकिन इशारा तो बता सकता हूं कि यह रखा है--यह माणिक बाबू की दुकान, यहां से गुड़ खरीद लो--इतना तो कर सकता हूं। इशारा तो कर सकता हूं कि गुड़ यहां मिल जाएगा, यह जो चीज रखी है, यह खा लो। गुड़ तो नहीं बोला जा सकता, सीधी-सीधी बात है, साफ-साफ बात है, मेरे बोलने से कैसे गुड़ बोला जाएगा! मेरे शब्द को खाकर थोड़े ही स्वाद मिलेगा। गुड़ शब्द में थोड़े ही गुड़ का रस है--तो गुड़ को कैसे बोलोगे--लेकिन गुड़ शब्द इशारा तो कर सकता है, गुड़ की तरफ इशारा कर सकता है। उपनिषद ब्रह्म को बोलते नहीं, ब्रह्म की तरफ इशारा करते हैं, गुड़ की तरफ इशारा करते हैं।

तो ठीक कहते हैं उपनिषद कि जो जाना गया है, वह बोला नहीं जा सकता। लेकिन फिर भी जिसने जाना है, वह बहुत बोलता है, हजार तरह से बोलता है, जिंदगीभर लगा रहता है बोलने में कि चलो इधर से इशारा नहीं पहुंचा तो इधर से पहुंच जाए, बाएं से नहीं तो दाएं से, दाएं से नहीं तो इधर से, उधर से, किसी भी तरह से तुम्हें पहुंचा दें वहां तक जहां उस अमृत का ढेर लगा है, जहां तुम उस स्वाद को ले लो।

असल में ज्ञान जिसको हो गया है, वह बिना बोले कैसे चुप रहेगा? ऐसा समझो कि जिस आदमी को जल का स्रोत मिल गया है और तुम प्यासे भटक रहे मरुस्थल में, प्यास से तुम्हारी आंखें निकली आ रही हैं, तुम्हारी सांस टूटी जा रही है, तुम्हारे पैर डगमगा रहे हैं, धूल-धूसरित, धूप में, जलते मरुस्थल में तुम भटक रहे हो और मुझे पता है कि जलस्रोत पास ही है, और मैं चुप रहूंगा! मैं चिल्लाऊंगा।

जीसस ने अपने शिष्यों से कहा है, चढ़ जाओ घरों की मुंडेर पर और चिल्लाओ वहां से। क्योंकि तुम्हें जो मिला है, बहुतों को उसकी जरूरत है; और उन्हें उसका कोई पता नहीं, और इतने पास है!

नहीं तो उपनिषद पैदा न होते, वेद पैदा न होते, कुरान-बाइबिल पैदा न होते। यह धम्मपद कैसे पैदा होता? यह मुंडेर पर कुछ लोग चढ़ गए और चिल्लाए। यह जानते हुए चिल्लाए कि चिल्लानेभर से तुम्हारी प्यास नहीं बुझ जाएगी। लेकिन चिल्लाने से शायद तुम्हें पता चल जाए कि किस दिशा में स्रोत है जल का। तुम शायद चल पड़ो।

बुद्ध ने कहा है, बुद्धपुरुष इशारा करते हैं, चलना तो तुम्हें पड़ता है, पहुंचना तुम्हें पड़ता है। झेन फकीर कहते हैं, हम अंगुली बताते हैं चांद की तरफ, कृपा करके अंगुली मत पकड़ लेना, अंगुली में चांद नहीं है। लेकिन अंगुली चांद की तरफ इशारा तो कर सकती है--अंगुली में चांद नहीं है, जाना, लेकिन अंगुली इशारा कर सकती है। मगर आदमी बेईमान है, बड़ी तरकीबें हो सकती हैं।

एक दफे ऐसा हुआ। एक सज्जन मेरे साथ यात्रा किए। एक आदमी के वह बड़े भक्त थे। एक दफे मुझे भी खींचकर उनके पास ले गए कि आप देख तो लें एक बार, वह बिल्कुल परमहंस हैं। मैंने देखा, वह परमहंस इत्यादि कुछ भी न थे, उन्हें सिर्फ मिरगी की बीमारी थी। मिरगी आ जाती थी तो मुंह से फसूकर गिरने लगता था, लोग कहते, समाधि लग गयी। और आधे शरीर में उन्हें लकवा लग गया था, तो वह बोल भी नहीं सकते थे। बोलते थे तो सब अस्तव्यस्त हो जाता था। थोड़े-बहुत बोलते तो वह भी समझ में नहीं आता था, क्या कह रहे हैं। फिर भी लोग उसमें से मतलब निकाल लेते। उसमें से मतलब निकालना आसान भी था। कोई लाटरी के टिकिट का नंबर निकाल लेता उनके बोलने से--वह जो बोलते उसमें कुछ साफ तो होता ही नहीं था, क्या बोल रहे हैं, सब गड्ड-बड्ड था--कोई लाटरी का नंबर निकाल लेता, कोई कुछ निकाल लेता, कोई कुछ निकाल लेता,

कोई लड़के-लड़की के विवाह की तारीख निकाल लेता--तुम्हारी मौज, तुम जो निकालना चाहो। उसमें तो कुछ था ही नहीं, वह जो कहते थे, उसमें तो कुछ था ही नहीं मामला, प्रलाप था। और वह आदमी करीब-करीब पागल अवस्था में थे। मगर भक्त उनको भोजन कराते, उनका जूठा भोजन कर लेते; चाय पिलाते, आधा कप खुद पी लेते फिर।

यह सज्जन भी उनके भक्त थे। मैंने उनसे कहा कि यह आदमी पागल है, इनका इलाज होना चाहिए, इनको तुम नाहक अटकाए हुए हो। इस आदमी के पास कुछ भी नहीं है। इसे कुछ हुआ भी नहीं है। वह कहने लगे, ऐसा कैसे हो सकता है! फिर इतने लोग इनकी पूजा कैसे करते हैं! तो मैंने कहा, तुम मेरे साथ चलो। मैं तुम्हारी पूजा तीन दिन के भीतर करवा दूं, फिर तो मानोगे? वह बोले, फिर मान लूंगा। मेरी कौन पूजा करेगा? मैंने कहा, तुम एक काम करना, तुम चुप रहना, बोलना भर नहीं तीन दिन। उन्होंने कहा, ठीक।

वह मेरे साथ कलकत्ता गए। जिस घर में हम ठहरे थे, वह एक बड़े प्यारे आदमी थे--सोहनलाल दूगड़। अब तो चल बसे। मैंने उनसे कहा कि तुम बोलना ही मत। जैसे ही सोहनलाल ने मेरे साथ इनको देखा, पूछा, आप कौन हैं? मैंने कहा, आप एक बड़े परमहंस हैं। वह बिचारे बड़े घबड़ाए, सीधे-सादे आदमी! तो इनकी खूबी क्या है? मैंने कहा, यह बोलते नहीं, आपने तो सुना है न कि ज्ञानी बोलते नहीं। वह एकदम उनके पैरों में गिर पड़े, सोहनलाल उनके पैरों में गिर पड़े कि गुरुदेव, अच्छे आए!

वह तो बड़े हैरान हुए, सज्जन तो बड़े हैरान हुए कि मामला क्या है! और सीधे-सादे आदमी हैं, छोटी-मोटी दुकान है। और ये सोहनलाल तो करोड़पति थे, यह तो वह सोच ही नहीं सकते थे कि सोहनलाल के घर में भी जगह, उनको प्रवेश मिलेगा, इसकी भी संभावना नहीं थी। सोहनलाल उनके पैरों में गिर पड़े, सोहनलाल उनको भोजन कराएं, हाथ से पंखा झलें, वह बड़े बेचैन! रात को मुझसे बोलते थे--जब हम दोनों एकांत में रह जाएं--वह कहें कि मुझे छुड़ाओ, यह बात ठीक नहीं है, यह बात उचित नहीं हो रही है।

और भी लोग आने लगे। जब सोहनलाल किसी के चरण छूते हों, तो वह तो राजस्थान के बड़े प्रसिद्ध आदमी थे, तो कलकत्ते के और मारवाड़ी आने लगे, स्त्रियां आने लगीं, लोग फूल चढ़ाने लगे। वह रात मुझसे कहें, मुझे बचाओ। यह बात ठीक नहीं, यह पाप हो रहा है। मैंने कहा, अभी यह तीन दिन का मामला है, अगर तुम तीन साल रह जाओ तो पूरा कलकत्ता तुम्हें पूजेगा, तुम तो चुप भर रहो!

आदमी बड़ा नासमझ है। आदमी की नासमझी का कोई अंत नहीं। तीन दिन में तो हालत यह हो गयी उनकी कि भीड़ रोकना मुश्किल हो गयी। तीन दिन के बाद जब हम वापस लौटे, तो ट्रेन पर उनको कई लोग छोड़ने आए थे, फूलमालाएं पहनायी गयीं और उनसे लोग प्रार्थना कर रहे थे--गुरुदेव, आप आना। किसी को उनके सान्निध्य में बड़ा लाभ हुआ, किसी की बीमारी चली गयी, किसी को कुछ हो गया, किसी को कुछ हो गया, किसी की कुंडलिनी जगी, किसी को कुछ... । जैसे ही ट्रेन चली, वह मेरे पैर पकड़ लिए, वह बोले कि मेरी कुंडलिनी अभी जगी नहीं, और इन लोगों की जग गयी!

सौ में निन्यानबे तुम्हारे संत-महात्मा ऐसे महात्मा हैं। तुम्हारी मान्यता के हैं। और शास्त्रों से सभी के लिए सहारा खोजा जा सकता है। कोई अड़चन नहीं है। थोड़ा चालाक तर्क चाहिए। मगर उनको बड़ा लाभ हुआ, इससे उन सज्जन को बड़ा लाभ हुआ। फिर नहीं गए वह दुबारा उन महात्मा के पास। जब उन्होंने देखा कि उन्हीं की जूठी मिठाई लोग खाने लगे, तो उन्होंने कहा, अब कोई सार नहीं, मैं समझ गया, यह हो सकता है, लोग बिल्कुल अंधे हैं।

लालूदाई की ये बातें सुनकर गांव के लोग खूब प्रभावित होने लगे। लालूदाई ने कहा कि हर कभी, हर मौसम में थोड़े ही; ठीक समय की प्रतीक्षा; अनुकूल समय पर जरूरत हुई, तुम पात्र हुए, तो कहूंगा। और इस बीच लालूदाई अपना व्याख्यान तैयार करने में लगे थे। व्याख्यान शब्द-शब्द कंठस्थ हो गया तो फिर उन्होंने कहा, अब मौसम आ गया है, ऋतु आ गयी और अब लोग पात्र हो गए। वही के वही लोग! अब ये मिट्टी के पात्र थे, अब सोने के हो गए। जब तुम्हारे पास बोलने को कुछ आ गया, तो अब कौन फिकर करता है पात्र इत्यादि की। और अभी तक कहते थे, ज्ञानी बोलता ही नहीं, ज्ञानी तो चुप रहते हैं। अब वह बात छोड़ दी, अब ज्ञानी बोलने लगा। अब ज्ञानी तैयार था बोलने के लिए।

ख्याल रखना, तैयारी से तुम जो बोलोगे, वह झूठ होगा। सहजता से जो आएगा, वही सच होगा। सत्य सहज आविर्भाव है। उसका कोई आयोजन थोड़े ही करना पड़ता। और जब तुम आयोजन करोगे तो मुश्किल में पड़ोगे। लालूदाई अकारण मुश्किल में नहीं पड़ गए। ऐसे तो बातचीत कर ही लेते थे! बोलते ही थे!

तुमने देखा, हर आदमी बात कर लेता है। और काफी मजे से बात कर लेता है। साधारण आदमी भी रसदायी बातें करते हैं। उनके साथ भी बात करने में मजा आ जाए, उनकी बात सुनने में मजा आ जाए। साधारण आदमियों में भी बड़ी कला होती है बोलने की। लेकिन उनको मंच पर बिठा दो तो मुश्किल खड़ी हो जाती है। यही मंच के नीचे इतने मजे से बोल रहे थे, बात कर रहे थे, मंच पर बैठते ही कुछ गड़बड़ हो जाती है। क्या बात हो गयी? इनके पास जबान वही, कंठ वही, यह आदमी वही, जरा सी ऊंचाई पर बैठ गए, इससे फर्क क्या पड़ सकता है!

फर्क यह पड़ जाता है कि जब तक साधारण बातचीत कर रहे थे, तब तक इन्हें इस बात का अहंकार-बोध नहीं था कि मुझे लोगों को प्रभावित करना है। तब तक सीधी-सीधी बात हो रही थी, बातचीत हो रही थी। अब ऊपर मंच पर बैठते ही से हजार आदमी दिखायी पड़े, दो हजार आंखें इनकी तरफ टकटकी लगाकर देख रही हैं। अब ये घबड़ाए, कि कहीं ऐसा न हो कि मैं प्रभावित न कर पाऊं! और जैसे ही यह ख्याल पैदा हुआ कि कहीं ऐसा न हो कि मैं प्रभावित न कर पाऊं कि अड़चन आ जाती है, बाधा आ जाती है।

लालूदाई का व्याख्यान तैयार हो गया, शब्द-शब्द कंठस्थ हो गया, तो आसीन हुए धर्मासन पर। पूरा गांव सुनने आया। तीन बार बोलने की चेष्टा की, पर अटक-अटक गए।

बड़ी आकांक्षा थी प्रभावित करने की, वही अटकाव बन गयी। नहीं तो लालूदाई ऐसे तो बोलते ही थे। तुम ख्याल रखना, तुम्हारे जीवन में जितने उपद्रव खड़े होते हैं, वे प्रभावित करने की आकांक्षा से खड़े होते हैं। तुम अगर प्रभावित न करना चाहो तो तुम प्रभावशाली हो। तुम प्रभावित करने जाओ, तुम सारा प्रभाव खो दोगे।

तुमने देखा है, एक स्त्री साधारण बैठी अपने घर में, अपने बच्चे के साथ खेल रही है, सुंदर होती है। और जब वही स्त्री सब तरह का रंग-रोगन इत्यादि करके, आभूषण लादकर और सुंदर साड़ियां पहनकर सड़क पर निकलती है, तो अचानक बेहूदी हो जाती है। वह जो सरलता थी, वह जो सौंदर्य था, वह गया। अब वह प्रभावित करने में उत्सुक है। अब वह साधारण स्त्री नहीं है, अब वह अभिनय कर रही है। यह सड़क, दर्शकों की भीड़ है यहां। यह सब सड़क जो है, समझो थिएटर है, जहां सारे लोग देखने को उत्सुक हैं। अब उसने खूब रंग-रोगन कर लिया है, चेहरे पर पाउडर पोत लिया है, भड़काने वाली साड़ी पहन ली है, चमकने वाले गहने पहन लिए हैं, इन सबके बीच वह फूहड़ हो गयी।

फूहड़ता प्रभावित करने की आकांक्षा से पैदा होती है। और इस प्रभावित करने की आकांक्षा में वह स्त्री स्त्री न रही, वेश्या हो गयी। वेश्या का मतलब क्या होता है? इतना ही कि दूसरे को प्रभावित करने की बड़ी

प्रबल आकांक्षा है। इस स्त्री ने अपना सतीत्व खो दिया, क्योंकि अपनी सहजता खो दी। सौंदर्य तभी सुंदर होता है जब कोई बिल्कुल सहज होता है। जैसे ही जटिलता आयी कि सौंदर्य में बाधाएं पड़ जाती हैं।

लालूदाई ऐसे तो बोलते ही थे। इन्हीं लोगों को प्रभावित कर दिया था कहकर कि क्या बकवास लगा रखी है? इन्हीं को चौंका दिया था कि क्या रखा है सारिपुत्र में! अरे, जवाहरात की परख करनी हो तो जौहरी से पूछो, मैं रहा जौहरी, मुझसे पूछो। इन सबको मैं जानता हूं, कुछ भी नहीं है इनमें। यही गांव प्रभावित हुआ था। यही गांव इकट्ठा हो गया सुनने। आज भीड़ के सामने खड़े होकर मुश्किल खड़ी हो गयी।

तीन बार बोलने की चेष्टा की, अटक-अटक गए। बस संबोधन ही निकलता, उपासको! और वाणी अटक जाती।

यह कहानी पढ़कर मुझे एक याद आयी। ऐसी घटना घटी। जब मैं विश्वविद्यालय में विद्यार्थी था, तो मुझे काफी शौक था वाद-विवाद में जाने का। अब भी चला गया, ऐसा नहीं है। तो मैं सारे मुल्क में कहीं भी विवाद हो, किसी यूनिवर्सिटी में हो, चला जाता। इतने मैंने मेडल और इतनी ट्राफी इकट्ठी कर ली थीं कि मेरी मां कहने लगी कि इस घर में अब जगह बचने दोगे कि नहीं? कि हम रहें कहां? इकट्ठा ही करता गया। जहां कहीं खबर मिलती, मैं पहुंच जाता। और मेरा कालेज बहुत उत्सुक था, क्योंकि उनका नाम बढ़ता।

एक संस्कृत महाविद्यालय में एक प्रतियोगिता थी। तो मैं गया वहां भाग लेने। संस्कृत महाविद्यालय था, तो स्वभावतः संस्कृत महाविद्यालय के विद्यार्थी अंग्रेजी तो ठीक से जानते नहीं, पढ़ाई भी नहीं जाती थी उन्हें; थोड़ा-बहुत, ऐसा एक औपचारिक विषय की तरह पढ़ते थे। और यह भी ख्याल रखना कि संस्कृत पढ़ने वाला विद्यार्थी जब किसी को प्रभावित करना चाहे तो वह अंग्रेजी का उपयोग करेगा।

तो संस्कृत कालेज का जो विद्यार्थी भाग ले रहा था प्रतियोगिता में, तीन-चार शब्द तो उसने हिंदी में बोले और इसके बाद उसने बर्ट्रेंड रसल का एक उद्धरण अंग्रेजी में उद्‌धृत किया। वह प्रभावित करने के लिए सोचा होगा कि इससे प्रभाव पड़ेगा, कि हम संस्कृत के विद्यार्थी कोई गांव के गंवार नहीं हैं। हम भी अंग्रेजी जानते हैं और बर्ट्रेंड रसल को भी जानते हैं। उसी में वह झंझट में पड़ गया। दो-तीन शब्द तो बोला, चौथे पर अटक गया।

मैं उसके पास ही बैठा था, उसकी दुर्दशा देखकर--वह इतनी मुश्किल में पड़ गया! अब उसने रटा होगा बिल्कुल क्रम से। रटने की एक खराबी यह होती है कि उसमें क्रम नहीं बदल सकते, क्योंकि एक शब्द के बाद दूसरा शब्द, जैसा रेलगाड़ी में डिब्बे के बाद डिब्बा आता है, अब वह आए ही नहीं। एक अटक गया तो पूरी अटक गयी, तो मैंने तो उसको सहायता देने के लिए धीरे से कहा कि तू फिर से शुरू कर, शायद आ जाए। वह भी हद्द नासमझ था, उसने फिर से शुरू कर दिया, उसने फिर कहा, भाइयो एवं बहनो! तो लोग बहुत चौंके कि यह मामला--और फिर वही शब्द दोहराए, फिर वही बर्ट्रेंड रसल का उद्‌धरण, और वह फिर वहीं अटक गया। अब तो वह घबड़ा गया।

अब तो मुझे भी आनंद आया। मैंने कहा, फिर से! अटका हुआ आदमी, मुश्किल में पड़ा क्या करे? कुछ सूझे भी नहीं, आगे कोई गति भी नहीं, उसने फिर शुरू कर दिया कि भाइयो एवं बहनो! तब तो सारा विद्यार्थियों का समूह ताली पीटने लगा, लोग नाचने लगे कि हद्द हो गयी! वह वहां से आगे नहीं बढ़ा। उसके दस मिनिट--वह भाइयो एवं बहनो, तीन-चार शब्द, फिर बर्ट्रेंड रसल ने क्या कहा उसके तीन-चार शब्द, और वहीं आकर बस फुलस्टाप। वहां आकर एकदम गाड़ी उसकी रुक जाए। उनका पूरा व्याख्यान वही रहा।

लालूदाई की कुछ वैसी हालत हुई होगी। संबोधन निकला तीन बार, उपासको! ... उपासको! ... उपासको! ... और फिर अटक गए। चौथी बार तो संबोधन भी नहीं निकला। पसीना-पसीना हो गए। सब सूझ-बूझ खो गयी। याद किया, कुछ याद न आया। हाथ-पैर कंपने लगे और घिग्घी बंध गयी। तब तो गांव वाले असलियत पहचान गए।

यह भी खूब बोध हुआ, समाधि हुई! और यह धर्मोपदेश करने चले थे लालूदाई! और सारिपुत्र और मौदगल्लायन को कहते थे, क्या रखा है इनमें। और भगवान की भी आलोचना करने से चूकते नहीं थे। तो गांव के ही तो लोग थे, उन्होंने कहा, हटाओ इसको, भगाओ इसको। वे उनके पीछे दौड़ने लगे। लालूदाई भागे। गांव के लोग चिल्लाने लगे कि यह भी खूब रहा, यह आदमी सारिपुत्र और मौदगल्लायन की निंदा करता, प्रशंसा नहीं सुन सकता, और अपने आप से कुछ कह ही नहीं रहा है, कुछ निकलता ही नहीं इससे, यह खूब धर्मोपदेश हुआ!

लालूदाई भागते हुए मल-मूल के एक गड्ढे में गिर पड़े और गंदगी में लिपट गए।

आदमी अहंकार से जीए तो गंदगी में ही जीता। आदमी ईर्ष्या से जीए तो गंदगी में ही जीता। तुम तभी निर्मल होते हो, जब न भीतर कोई अहंकार होता है, न बाहर कोई ईर्ष्या होती है। तब तुम स्वच्छ होते हो--सद्यःस्नात, अभी-अभी नहाए हुए। तब तुम कमल के फूल की तरह होते हो, सदा नहाए हुए, तुम पर धूल का एक कण भी नहीं जमता। धूल बाहर से नहीं आती, धूल भीतर से आ रही है।

भगवान के पास खबर पहुंची और भगवान ने कहा, भिक्षुओ, अभी ही नहीं, यह लालूदाई जन्मों-जन्मों से ऐसे ही गंदगी में गिरता रहा है। भिक्षुओ, अहंकार गंदगी है, मल है। भिक्षुओ, अल्पज्ञान घातक है। इस लालूदाई ने थोड़ा सा धर्म सीखा है, लेकिन उसका भी स्वाध्याय नहीं किया, उसे भी पचाया नहीं।

शब्द सीख लिए हैं इसने कुछ, लेकिन शब्दों का अर्थ भी नहीं जानता। ऊपर-ऊपर की कुछ जानकारी इकट्ठी कर ली है, भीतर का इसे कुछ पता नहीं है। और इसने कभी स्वाध्याय नहीं किया। स्वाध्याय का अर्थ होता है--शब्द सुन लिया, शब्द में अर्थ नहीं होता, अर्थ तो स्वाध्याय से आता है।

जैसे समझो, बुद्ध ने ध्यान के संबंध में कुछ समझाया, तुमने सुन लिया कि ध्यान की प्रक्रिया क्या है, विधि क्या है; ये तो सिर्फ शब्द हैं। तुम ध्यान करोगे तो इनमें अर्थ पड़ेगा। मैंने प्रेम के संबंध में कुछ कहा, तुमने सुन लिया; तुमने ये शब्द लिख लिए अपनी मन की किताब पर, मगर इनमें अर्थ नहीं है, ये तो सिर्फ शब्द हैं, तुम प्रेम करोगे तो जानोगे अर्थ। अर्थ तो तुम्हें डालना होता है। अर्थ स्वाध्याय से आता है। स्वाध्याय का अर्थ होता है, जो सुना, उसे जीओ। जो सुना, उसे करो। जो सुना, वैसे चलो। थोड़ा अनुभव में उतारो।

स्वाध्याय शब्द बड़ा अदभुत है। इसके भी हमने बड़े गलत अर्थ कर लिए हैं। स्वाध्याय का लोग अर्थ समझते हैं, अध्ययन। अगर अध्ययन ही कहना था तो स्वाध्याय काहे के लिए कहते, अध्ययन शब्द तो उन्हें पता था। एक आदमी बैठ जाता है शास्त्र खोलकर और कहता है, स्वाध्याय कर रहे हैं। इसमें स्व शब्द को देखते हो कि नहीं? किताब का अध्ययन होता है, स्वाध्याय कैसे किताब से होगा? किताब का अध्ययन करो और फिर किताब में जो पाया है, उसे स्वयं में खोजो, तब स्वाध्याय होगा। किताब क्या करेगी? किताब में सब लिखा पड़ा है। किताब में लिखा पड़ा है, किताब मुक्त तो नहीं हो गयी है, किताब को निर्वाण तो नहीं मिल गया है, किताब को समाधि तो नहीं लग गयी है! किताब में जो लिखा है, उसे तुम भीतर की किताब में लिख लो, इससे क्या होगा? उसकी फोटो-कापी कर ली, ठीक-ठीक कंठस्थ कर लिया, वेद दोहराने लगे, शब्दशः दोहराने लगे, तो इससे तुम्हारी स्मृति अच्छी है इसका तो सबूत मिलेगा, लेकिन इससे बोध का कोई जन्म नहीं होगा। स्वाध्याय

का अर्थ होता है, जो सुना, जो पढ़ा, अब उसको परखो भी। उसको कभी जीवन में उतारो, उस किरण के साथ थोड़ा चलो भी।

मैंने तुमसे कहा कि दो मील दूर चलकर बाएं अगर तुम चलते रहे, तो सागर पर पहुंच जाओगे। तुम यहीं बैठे इसी का अध्ययन करते रहे। ऐसा समझो कि मील के पत्थर के पास बैठ गए, उस पर तीर लगा है, लिखा है कि सागर दो मील दूर है। उसी पत्थर की पूजा कर रहे हैं, यह अध्ययन। उस पत्थर की मान ली और चल पड़े जिस तरफ तीर था। पत्थर तो सागर नहीं है, पत्थर को पीकर प्यास थोड़े ही बुझेगी। पत्थर तो सागर की तरफ ले जाने वाला है। अगर चल पड़े, तो स्वाध्याय। अगर बैठकर गुनगुनाते रहे शब्दों को तो अध्ययन, अगर अध्ययन तुम्हारा जीवन बन गया तो स्वाध्याय।

तो बुद्ध ने कहा, इसने स्वाध्याय नहीं किया और पचाया नहीं। देखो, भोजन कर लेने से पुष्टि नहीं मिलती। भोजन कर लेने मात्र से थोड़े ही कोई पुष्ट होता है। भोजन जब तक पचे न, तब तक पुष्टि नहीं मिलती है।

तुमने भोजन कर लिया और अगर पचे न, तो तुम और कमजोर हो जाओगे। अगर अपच हो जाए, अगर उल्टी हो जाए, वमन हो जाए, तो तुम जितने शक्तिशाली थे भोजन करने के पहले, उससे कम शक्तिशाली रह जाओगे। तुम और कमजोर हो जाओगे। असली बात तो पचना है। थोड़ा भोजन भी हो, लेकिन पचे तो ऊर्जा देगा, शक्ति देगा, पुष्टि देगा, बल देगा।

थोड़ा जानो, लेकिन पचाओ। अक्सर ऐसा हो जाता है कि तुम बहुत जान लेते हो, पचता ही नहीं। पांडित्य एक तरह का अपच है। पांडित्य एक तरह का अपने भीतर बहुत भोजन ले लेना है, जिसको शरीर पचा नहीं सकता। प्रज्ञा पचाने का नाम है।

तो बुद्ध ने कहा, यह लालूदाई कुछ ज्यादा जानता नहीं, जो थोड़ा-बहुत जानता है, वह भी इसे पचा नहीं। भिक्षुओ, इससे सीख लो। आलोचना सरल।

कोई दूसरा क्या कह रहा है, इसे गलत सिद्ध करना बहुत सरल। सत्य क्या है, उसे सिद्ध करना बहुत कठिन है। सच तो यह है, निंदक और आलोचक वे ही लोग बन जाते हैं, जो पाते हैं कि सत्य के सृजन करने की उनकी क्षमता नहीं। जो कवि कविता करने में असफल हो जाता है वह आलोचक बन जाता है। तुम जब कुछ नहीं कर पाते, तो कम से कम इतना तो कर ही सकते हो कि दूसरे जो कर रहे हैं, गलत कर रहे हैं। यह तो बड़ा आसान है।

तुम ध्यान करने आओ, अगर ध्यान न कर पाओ, तो इतना तो तुम कर ही सकते हो कि ये जो लोग कर रहे हैं, ये सब पागल हैं। इसमें तो कुछ अड़चन नहीं है। यह तो बड़ी सरलता से कह सकते हो, इसमें तो कुछ खर्च भी नहीं लगता। न रंग लगे न फिटकरी। कुछ लगता ही नहीं। यह तो मजे से कह दो, इसे कहने में क्या अड़चन है! अधिक लोग इसीलिए जीवन में बांझ रह जाते हैं, उनके जीवन में कोई सृजन नहीं हो पाता। क्योंकि उनकी ऊर्जा व्यर्थ की बातों की दिशा में संलग्न हो जाती है।

विध्वंस सरल, सृजन कठिन है। कुछ बनाओ, तो जीवन में उल्लास होगा, तो जीवन में उत्सव होगा। यह लालूदाई ने बनाया तो कुछ भी नहीं है, सारिपुत्र को देखकर जलता है, मौदगल्लायन को देखकर जलता है। जिन्होंने कुछ बनाया है, उनसे जलता है और खुद कुछ बनाया नहीं।

दो बातों का फर्क समझना। दुनिया में दो तरह के लोग हैं। पहले तरह के लोग, जिनकी संख्या बहुत है, वे अपने को तो बड़ा नहीं करते, दूसरे को छोटा करने की कोशिश में लगे रहते हैं। वे सोचते हैं, जब दूसरा छोटा हो जाएगा तो तुलना में हम बड़े मालूम पड़ने लगेंगे। तर्क तो एक अर्थ में ठीक ही है।

तुमने अकबर की कहानी सुनी है, उसने एक लकीर खींच दी आकर दरबार में, और अपने दरबारियों से कहा, इसे छूना मत और इसे छोटा कर दो। तो उन दरबारियों को बड़ी मुश्किल हुई, उन्होंने बहुत सोचा, सिर-माथा पटका, लेकिन कुछ रास्ता न मिला। फिर बीरबल उठा, उसने एक बड़ी लकीर उस लकीर के नीचे खींच दी, वह छोटी हो गयी।

अब इसका मतलब यह हुआ कि दुनिया में बड़े होने के दो उपाय हैं। एक उपाय कि तुम दूसरे को छोटा कर दो, तो उसकी तुलना में तुम बड़े दिखायी पड़ने लगो। अधिक लोग यही उपाय करते हैं, यह सस्ता उपाय है, यह कहीं ले जाता नहीं। इसीलिए तुम किसी की प्रशंसा नहीं सुन पाते हो। कोई कहे कि फलां आदमी बड़ी अच्छी बांसुरी बजाता है, तुम कहते हो, क्या खाक बांसुरी बजाएगा! उसको मैं जानता हूं, अरे, पर-स्त्रीगामी है!

अब पर-स्त्रीगामी से बांसुरी बजाने में कौन सी अड़चन पड़ती है! कि चोर, वह क्या बांसुरी बजाएगा! अब चोरी से बांसुरी बजाने में कौन सी बाधा पड़ती है! चोर भी बांसुरी बजा सकता है, इसमें असंगति क्या है?

तुम्हें कोई, तुमने ख्याल किया है कि जब कोई किसी की प्रशंसा करता है तो तुम्हारे मन में एकदम खुजलाहट होती है--खंडन कर दो। कि अरे, देख लिए सब महात्मा! सब पाखंड है! कितने महात्मा देखे तुमने? देख लिए सब महात्मा!

तुम यह मान ही नहीं सकते कि कोई तुमसे बेहतर हालत में हो सकता है। क्योंकि अगर कोई तुमसे बेहतर हालत में है, तो फिर तुम्हें कुछ करना पड़ेगा। फिर तुम्हें उठना पड़ेगा, तुम्हें अपने को बदलना पड़ेगा, रूपांतरण करना होगा।

तो दुनिया में अधिक लोग बांझ मर जाते हैं, उनके जीवन में कुछ पैदा नहीं होता, कोई फूल नहीं खिलते और कोई संगीत पैदा नहीं होता, कोई सुगंध नहीं बिखरती, कभी दीया नहीं जलता। और जिम्मेवार वे ही हैं, क्योंकि वे दीया जलाते ही नहीं। वे तो दूसरे का दीया फूंकने में लगे रहते हैं, कि जब किसी का जला हुआ नहीं दिखायी पड़ेगा तो अपनी ही अड़चन क्या है! इसलिए लोग सुबह से उठकर अखबार पढ़ते हैं। और अखबार पढ़कर बड़ी शांति मिलती है, गीता पढ़ो तो शांति नहीं मिलती। गीता पढ़ो तो अशांति मिलती है।

समझ लेना मेरी बात, क्या मैं कह रहा हूं! नहीं तो तुम कहोगे, भगवान ने गलत बात कह दी। गीता पढ़ो तो अशांति मिलती है, क्योंकि गीता पढ़ो तो यह पता चलता है कि तुम कहां कीड़े-मकोड़ों की तरह सरक रहे हो, उठो! पहाड़ खड़ा हो जाता है सामने। इसको चढ़ना पड़ेगा। अर्जुन चढ़ गया, तुम क्यों नहीं चढ़ रहे हो? बेचैनी होती है, गीता पढ़कर शांति नहीं मिलती। जिनको मिलती है, उन्होंने गीता पढ़ी नहीं। गीता पढ़ोगे तो अशांत हो जाओगे। तब दुकानदारी नहीं कर सकोगे इतनी आसानी से जैसी कर रहे हो, क्योंकि फिर अर्जुन कब बनोगे? फिर यह कृष्ण-चेतना का अनुभव कब करोगे? फिर यह छोटी-छोटी बातों में उलझे हो, इसमें नहीं उलझे रह सकोगे। फिर भगवान को कब पुकारोगे? फिर समर्पण कब होगा? फिर अर्पण कब होओगे? यह समय बहा जा रहा है।

गीता तो बेचैन कर देगी, झकझोर देगी। गीता तो कहेगी, उठो, अब बहुत समय तो बीत ही चुका है, थोड़ा जो बचा है, उसका कुछ उपयोग कर लो। एक बेचैनी, एक दिव्य बेचैनी, एक दिव्य असंतोष तुम्हारे भीतर पैदा हो जाएगा।

तो मैं तुमसे कहता हूं, गीता पढ़ोगे तो अशांत हो जाओगे। अखबार पढ़ने से बड़ी शांति मिलती है। इसीलिए लोग अखबार पढ़ते हैं, गीता नहीं पढ़ते। अखबार पढ़ने से क्या शांति मिली? पढ़ा अखबार--फलां आदमी फलां आदमी की स्त्री को ले भागा। तुम्हें मन में बड़ी शांति मिलती है कि देखो, हम पत्नीव्रती। हम तो कभी किसी की स्त्री लेकर नहीं भागे। फलां आदमी ने हत्या कर दी। हम बेहतर। सोचते कभी-कभी हत्या करने की, मगर कर थोड़े ही देते! फलां जगह दंगा-फसाद हो गया, इतने लोग मारे गए। चित्त शांत होता है कि चलो, अपन तो नहीं झंझट में पड़ते। तुम अखबार पढ़कर एक बात से निश्चिंत हो जाते हो कि तुम दुनिया के सबसे बेहतर आदमी हो। अखबार पढ़कर बड़ी शांति मिलती है।

और जिस दिन अखबार में बुरी खबरें नहीं होती हैं, उस दिन तुम कहते हो, आज कोई खबर ही नहीं। क्योंकि असली खबर तो तुम जिसकी तलाश करते हो वह यह कि कितने लोग भाग गए, कितने लोग किनकी स्त्रियां ले भागे, कितनों ने चोरी की, कितनों ने हत्या की, कितनों ने बुरा किया!

अखबार में सनसनीखेज बात कौन सी होती है? सनसनीखेज बात वही होती है जिससे तुम्हारे भीतर यह सिद्ध होता है कि तुम बेहतर आदमी हो। अरे, इन सबसे तो तुम्हीं बेहतर! इनसे तो हम ही बेहतर! जब भी दूसरा छोटा हो जाता है... ।

इसलिए तुम देखना, निंदा में रस होता है। अगर कोई आदमी आए और किसी की निंदा करने लगे, तो तुम हजार काम छोड़कर कहते हो, हां भाई, और कुछ सुनाओ। फिर क्या हुआ? फिर इसके आगे क्या हुआ? फिर तुम्हें एक खुजलाहट पैदा होती है। तुम हजार काम छोड़ देते हो। तुम भगवान की प्रार्थना कर रहे थे, तुम छोड़ देते हो। कोई निंदक आ गया, तुम कहते हो छोड़ो, प्रार्थना फिर कर लेंगे, ये निंदक महाराज मिलें, न मिलें। इनको वैसे काम भी काफी रहता है, क्योंकि जो मिल जाता है वही इनको घंटों रोक लेता है कि कहो भाई, क्या खबर?

चलते-फिरते अखबार भी हैं, जीते-जागते अखबार भी हैं। और स्वभावतः, जीते-जागते अखबार जैसी खबरें लाते हैं, छपे अखबार नहीं ला सकते। छपे अखबारों पर कुछ सरकारी नियंत्रण भी होता है। ये जीते-जागते अखबार, इन पर कोई नियंत्रण नहीं, ये क्या बोलते, इन पर कोई मुकदमा नहीं चलता है, कोई अदालत में नहीं घसीटा जाता, कोई इनको प्रमाण नहीं जुटाना पड़ता।

एक स्त्री एक दूसरी स्त्री को किसी तीसरी स्त्री के संबंध में निंदा की बातें कह रही थी। पहली स्त्री बड़ी प्रसन्नता से सुन रही थी। जब पूरी बात हो गयी तो उसने कहा, अरे, कुछ और सुनाओ! थोड़ा कुछ और बताओ! फिर क्या हुआ? उस स्त्री ने कहा, अब छोड़ो भी, जितना मैं जानती थी, उससे दुगुना तो बता ही चुकी।

आदमी बढ़ा-चढ़ाकर निंदा कर रहा है। और निंदक तुम्हें अच्छे लगते हैं। कबीर ने तो किसी और मतलब से कहा था, निंदक नियरे राखिए आंगन कुटी छवाय। तुम भी रखते हो, लेकिन किसी और मतलब से। कबीर ने तो कहा था, अपना निंदक आंगन-कुटी छवाकर अपने पास ही रख लेना चाहिए कि अपनी निंदा करता रहे। तुम भी निंदक को पसंद करते हो, अपने को नहीं, दूसरों का निंदक। तुम उसके लिए आंगन-कुटी छवाकर रख लेते हो। तुम कहते हो, आओ हमारे घर में ही विराजो महाराज। यहीं भोजन कर लेना आज, और फिर कुछ गपशप होगी!

जब कोई किसी की निंदा करता है तो तुम्हें अच्छा लगता है, क्योंकि वह सारी दुनिया को छोटा करके दिखला रहा है। उसकी तुलना में अचानक तुम्हारी लकीर बड़ी होने लगती है। यह दुनिया के अधिकतम लोगों की व्यवस्था है बड़े होने की। यह बड़े होने का कोई मार्ग नहीं है। यह थोथी बात है।

तुम ख्याल रखना कि जो दूसरों की निंदा तुमसे कर रहा है, वह उनके पास जाकर तुम्हारी निंदा करता है। करेगा ही। तुमसे और दूसरों से उसे क्या लेना-देना है! वह तो निष्पक्ष भाव से निंदा करता है। वह तो जिसके पास चला जाता है, दूसरों की निंदा कर देता है, और प्रसन्नता से एक कप चाय पी लेता है, सिगरेट पी लेता है, अपना आगे बढ़ जाता है।

दूसरा जो वर्ग है, बहुत अल्प, छोटा सा वर्ग है। हजार में एक, लाख में एक। जो दूसरे को छोटा करके बड़ा नहीं होना चाहता, जो स्वयं ही बड़ा होना चाहता है। वही व्यक्ति साधना में उतरता है, जो स्वयं ही बड़ा होना चाहता है। जिसको परमात्मा ने सीधा-सीधा पुकारा है, जो दूसरे के बहाने नहीं। वह जाकर भगवान से यह नहीं कहेगा कि मैं अच्छा आदमी हूं, क्योंकि मेरे पड़ोसी मुझसे भी ज्यादा बुरे आदमी थे। नहीं, वह भगवान के सामने कहना चाहेगा कि देखो मेरे भीतर, दूसरे की तुलना में अच्छा-बुरा नहीं हूं, मैं जैसा हूं यह सामने खड़ा हूं। तुलना से जो बड़प्पन पैदा होता है, वह झूठा है। तुम्हारे स्वयं के निखार से जो बड़प्पन पैदा होता है, वही सच्चा है।

तो बुद्ध ने कहा, विध्वंस सरल, सृजन कठिन। और आत्मसृजन तो और भी कठिन है। अहंकार स्पर्धा जगाता। स्पर्धा में ईर्ष्या होती, ईर्ष्या से द्वेष, द्वेष से शत्रुता और फिर तो अंतर्बोध जगे कैसे? सारी शक्ति तो इसी में व्यय हो जाती है। इसी मरुस्थल में खो जाती है नदी, सागर तक पहुंचे कैसे? दूसरे का विचार ही न करो, समय थोड़ा है, स्वयं को जगा लो, बना लो, अन्यथा मल-मूत्र के गड्ढों में बार-बार गिरोगे। भिक्षुओ, तुम्हीं कहो, बार-बार गर्भ में गिरना मल-मूत्र के गड्ढे में गिरना नहीं तो और क्या है!

यह बात बड़ी गजब की कही बुद्ध ने। मां का पेट है क्या? मल-मूत्र का गड्ढा है। वहां और है क्या? बच्चा मल-मूत्र में लिपटा ही पड़ा रहता है नौ महीने तक। बार-बार जन्म लेना मल-मूत्र के गड्ढे में बार-बार गिरना है।

बुद्धपुरुष छोटी-छोटी घटना से बड़े गहरे इशारे ले लेते हैं। अब कहां लालूदाई का मल-मूत्र के गड्ढे में गिरना और कहां बुद्ध ने खींचा उस बात को। किस अपूर्व तल पर ले गए! और उन्होंने कहा, यह लालूदाई जन्म-जन्म में गिरता रहा है। वह इसी की बात कर रहे हैं कि यह बार-बार ऐसे ही भटकता रहा। इसने कभी अपने को बनाया नहीं, दूसरों की निंदा में लगा दी, वही शक्ति आत्मसृजन बन सकती थी। उसी शक्ति की छेनी बनाकर अपनी मूर्ति का निर्माण कर सकता था, भगवान हो सकता था। वह तो किया नहीं और बार-बार गड्ढों में गिरा। गड्ढे--गर्भ के गड्ढे।

यह अकेला देश है पृथ्वी पर जहां हमने गर्भ को मल-मूत्र का गड्ढा जाना। बड़ी सच्ची बात है। दुनिया में कहीं नहीं कही गयी यह बात। क्योंकि यह बात ही घबड़ाती है हमको कि मल-मूत्र का गड्ढा मां का पेट! लेकिन है तो मल-मूत्र का गड्ढा; घबड़ाए, चाहे न घबड़ाए, लेकिन सच तो सच है। सच को झूठ तो किया नहीं जा सकता। दुबारा जन्म लेने का मतलब फिर नौ महीने मल-मूत्र के गड्ढे में पड़ोगे।

और फिर जीवनभर भी क्या है। मल-मूत्र ही पैदा करते हैं अधिक लोग, और तो कुछ पैदा करते ही नहीं। इधर भोजन किया, उधर मल-मूत्र किया। अगर उनका पूरा काम तुम समझो तो ऐसा ही है जैसे एक नली--एक तरफ से भोजन डालो, दूसरे तरफ से भोजन निकालते रहो। कुछ और पैदा करते हो! आत्मा जैसी कोई चीज पैदा होती है! चेतना जैसी कोई चीज पैदा होती है!

इस फर्क को ख्याल में लेना। भोजन तुम भी करते हो, भोजन रवींद्रनाथ भी करते हैं, भोजन कालिदास भी करते हैं, भोजन महावीर भी करते हैं, बुद्ध भी करते हैं। लेकिन उसी भोजन से रवींद्रनाथ के जीवन में गीत लगते हैं, उसी भोजन से कालिदास के जीवन में काव्य लगता, उसी भोजन से महावीर के जीवन में अहिंसा

लगती, उसी भोजन से बुद्ध के जीवन में समाधि फलती, तुम्हारे जीवन में क्या फलता? सिर्फ मल-मूत्र पैदा होता है।

यह कुछ अजीब सी बात है। इस ऊर्जा को रूपांतरित करो।

तो बुद्ध ने ये सूत्र कहे--

"स्वाध्याय न करना मंत्रों का मैल है।"

मंत्र तो सीख लिया, दोहरा दिया तोते की तरह और उसका स्वाध्याय न किया, तो मंत्र पर धूल जम जाती है। फिर मंत्र मैला हो गया। मंत्र को साफ करो, निखारो। मंत्र में जरूर शक्ति है--जैसे दर्पण में चित्र बन सकता तुम्हारा, लेकिन धूल तो हटाओ। जैसे दर्पण पर धूल जम जाती है, ऐसा बुद्ध कहते हैं, मंत्र पर भी धूल जम जाती है, शास्त्र पर भी धूल जम जाती है, शब्द पर भी धूल जम जाती है, उसे झाड़ो। झाड़ोगे कैसे? स्वाध्याय से। जो कहा है शब्द ने, उसे जीवन में उतारो, निखारो, पहचानो, परीक्षा करो, प्रयोग करो।

"झाड़-बुहार न करना घर का मैल है।"

और जैसे घर में कोई झाड़ू-बुहारी न लगाए, तो घर में मैल, धूल इकट्ठी होती जाती है। ऐसे ही भीतर कोई झाड़ू-बुहारी न लगाए तो भीतर के घर में भी धूल इकट्ठी होती चली जाती है। जिनको तुम विचार कहते हो, वे धूल के अतिरिक्त और कुछ भी नहीं हैं।

एक झेन कथा है।

एक युवक अपने गुरु के पास वर्षों रहा, और गुरु कभी उसे कुछ कहा नहीं। बार-बार शिष्य पूछता कि मुझे कुछ कहें, आदेश दें, मैं क्या करूं? गुरु कहता, मुझे देखो। मैं जो करता हूं, वैसा करो। मैं जो नहीं करता हूं, वह मत करो, इससे ही समझो। लेकिन उसने कहा, इससे मेरी समझ में नहीं आता, आप मुझे कहीं और भेज दें। झेन-परंपरा में ऐसा होता है कि शिष्य मांग सकता है कि मुझे कहीं भेज दें, जहां मैं सीख सकूं। तो गुरु ने कहा, तू जा, पास में एक सराय है कुछ मील दूर, वहां तू रुक जा, चौबीस घंटे ठहरना और सराय का मालिक तुझे काफी बोध देगा।

वह गया। वह बड़ा हैरान हुआ। इतने बड़े गुरु के पास तो बोध नहीं हुआ और सराय के मालिक के पास बोध होगा! धर्मशाला का रखवाला! बेमन से गया। और वहां जाकर तो देखी उसकी शकल-सूरत रखवाले की तो और हैरान हो गया कि इससे क्या बोध होने वाला है! लेकिन अब चौबीस घंटे तो रहना था। और गुरु ने कहा था कि देखते रहना, क्योंकि वह धर्मशाला का मालिक शायद कुछ कहे न कहे, मगर देखते रहना, गौर से जांच करना।

तो उसने देखा कि दिनभर वह धूल ही झाड़ता रहा, वह धर्मशाला का मालिक; कोई यात्री गया, कोई आया, नया कमरा, पुराना, वह धूल झाड़ता रहा दिनभर। शाम को बर्तन साफ करता रहा। रात ग्यारह-बारह बजे तक यह देखता रहा, वह बर्तन ही साफ कर रहा था, फिर यह सो गया। सुबह जब उठा पांच बजे, तो भागा कि देखें वह क्या कर रहा है; वह फिर बर्तन साफ कर रहा था। साफ किए ही बर्तन साफ कर रहा था। रात साफ करके रखकर सो गया था।

इसने पूछा कि महाराज, और सब तो ठीक है, और ज्यादा ज्ञान की मुझे आपसे अपेक्षा भी नहीं, इतना तो मुझे बता दें कि साफ किए बर्तन अब किसलिए साफ कर रहे हैं? उसने कहा, रातभर भी बर्तन रखे रहें तो धूल जम जाती है। उपयोग करने से ही धूल नहीं जमती, रखे रहने से भी धूल जम जाती है। समय के बीतने से धूल जम जाती है।

यह तो वापस चला आया। गुरु से कहा, वहां क्या सीखने में रखा है, वह आदमी तो हद्द पागल है। वह तो बर्तनों को घिसता ही रहता है, रात बारह बजे तक घिसता रहा, फिर सुबह पांच बजे से--और घिसे-घिसायों को घिसने लगा। उसके गुरु ने कहा, यही तू कर, नासमझ! इसीलिए तुझे वहां भेजा था। रात भी घिस, घिसते-घिसते ही सो जा, और सुबह उठते ही से फिर घिस। क्योंकि रात भी सपनों के कारण धूल जम जाती है। समय के बीतते ही धूल जम जाती है।

विचार और स्वप्न हमारे भीतर के मन की धूल हैं।

तो बुद्ध ने कहा, "झाड़-बुहार न करना... ।"

असज्झायमला मंता अनुट्ठानमला घरा।
मलं वण्णस्स कोसज्जं पमादो रक्खतो मलं।।

"और आलस्य सौंदर्य का मैल है।"

सौंदर्य यानी जीवंतता। जितने तुम जीवंत हो, उतने तुम सुंदर हो। जितने तुम जीवंत हो, उतने तुम परमात्मा के निकट हो, क्योंकि जीवन की धारा उतनी ही तुमसे बहेगी, उतने ही तुम सुंदर हो।

"आलस्य सौंदर्य का मैल है।"

तो बुद्ध कहते हैं, आलसी न बनो।

"और प्रमाद पहरेदारी का मैल है।"

मूर्च्छा, सो जाना, झपकी खा जाना, वह पहरेदारी का मैल है। जागे रहो; होश को जगाए रहो, भीतर एक ज्योति जलती रहे होश की, जो भी करो होश से करो।

"इन सब मैलों से भी बढ़कर अविद्या का परम मैल है।"

स्वयं को न जानने का नाम है, अविद्या।

"भिक्षुओ, इस मैल को छोड़कर निर्मल बनो।"

ततो मला मलंतरं अविज्जा परमं मलं।
एतं मलं पहत्वान निम्मला होथ भिक्खवे।।

और कहते हैं कि हे भिक्खुओ, हे भिक्षुओ, जब तुम स्वयं को जान लोगे, तभी वस्तुतः निर्मल हो पाओगे। फिर तुम कभी भी मल-मूत्र के गड्ढों में न गिरोगे। फिर तुम्हारा कोई आवागमन न होगा।

"निर्लज्ज, कौवे जैसे कांव-कांव करने में बड़े शूरवीर होते हैं... ।"

और किसी काम में नहीं, सिर्फ कांव-कांव करने में, शोरगुल मचाने में।

"निर्लज्ज और कौवे जैसे शूर, लूटपाट करने वाले, पतित, बकवादी, पापी मनुष्य का जीवन सुख से बीतता है।"

यह बड़ी अनूठी बात बुद्ध ने कही। बुद्ध ने कहा, अगर सुविधा से जीना हो तो पापी आदमी का जीवन सुविधा से बीतता है। सुख यानी सुविधा। बेईमान आदमी का जीवन सुविधा से बीतता है। चोर का जीवन सुविधा से बीतता है। यह बात बड़ी अजीब कही।

सुजीवं अहिरिकेन काकसूरेन धंसिना।
पक्खन्दिना पगब्भेन संकिलिट्ठेन जीवितं।।

पाखंडियों का जीवन सुविधा से बीतता है। सच्चे आदमियों का जीवन असुविधा से बीतता है। लेकिन बुद्ध कहते हैं, वही असुविधा परम सुख पर ले जाती है। इतने लोगों ने अगर पाखंडियों का जीवन बिताना तय किया है तो अकारण नहीं किया होगा, इसमें कुछ सुख मालूम होता है, सुविधा मालूम होती है। कौन झंझट में पड़े! सच कहे कि झंझट में पड़े। यहां झूठ का चलन है; यहां झूठ करो, सब ठीक चलता है; यहां बेईमान रहो, सब ठीक चलता है; ईमानदार हुए कि झंझट में पड़े।

मैं एक विश्वविद्यालय में नौकर हुआ। तो मेरे विश्वविद्यालय के और अध्यापक थे, उन्होंने दो-चार दिन बाद मुझसे कहा कि आप जरा ठीक नहीं कर रहे हैं। मैंने कहा, क्या बात है? कहने लगे कि आप चार-चार पीरियड रोज ले रहे हैं! यह सरकारी नौकरी है, यहां चार-चार पीरियड रोज लेने की जरूरत नहीं है। और आप चार-चार लेंगे तो हमको भी अड़चन होगी। यहां तो एक ले लिया, दो लिया, बस बहुत है! कभी यह बहाना, कभी वह बहाना! और स्टाफ रूम में बैठकर गपशप करना, यह उनका सबका काम! वे मुझसे नाराज थे कि यह बात ठीक नहीं है। जैसे हम हैं, वैसे आप चलो। काम कर रहे हैं, कर रहे हैं--करने का दिखावा कर रहे हैं; काम करने-वरने की कोई जरूरत नहीं है।

अगर तुम किसी दफ्तर में काम करते हो और ईमानदारी से काम करो, दूसरे तुम्हें समझाएंगे कि भई, ऐसा नहीं चलता! तुम अगर रिश्वत नहीं लेते तो दूसरे तुम्हें समझाएंगे कि भई, ऐसे नहीं चलता, तुम अड़चन खड़ी कर दोगे! तुम हम सबके बीच में झंझट खड़ी कर रहे हो! यहां जो चलता है, वैसे ही चलो। इस संसार में झूठ का चलन है।

इसलिए बुद्ध कहते हैं, निर्लज्ज का जीवन सरल है, सुगम है, सुविधापूर्ण है। उसे लज्जा ही नहीं है। वह जैसा मौका देखता है वैसा हो जाता है। अवसरवादी का जीवन बड़ा सुविधापूर्ण है। अगर तुम्हारे जीवन में कोई सिद्धांत है और तुम्हारे जीवन में अगर कोई साधना है, तो तुम हमेशा अड़चन पाओगे। हमेशा कठिनाई पाओगे।

कोई साधना नहीं है, कोई सिद्धांत नहीं है, निर्लज्ज का जीवन है, अवसरवादी का जीवन है; जिसने जहां देखी जैसी हवा बह रही है वैसे ही चल पड़े; जिसके साथ जैसा लगता है कि ठीक चलेगा वैसा ही चला लिया; कौवे जैसे कांव-कांव करने वाले लोग--इशारा है वही भिक्षु की तरफ, लालबुझक्कड़ की तरफ, लालूदाई की तरफ--कौवे की तरह कांव-कांव करने वाले लोग, जिनके जीवन में सत्य की कोई किरण नहीं, सिर्फ शब्द मात्र है, उनका जीवन सुविधापूर्ण है। पंडितों का जीवन सुविधापूर्ण है।

"... लूटपाट करने वाले, पतित, बकवादी, पापी मनुष्य का जीवन सुख से बीतता है।"

"लज्जाशील, नित्य पवित्रता के गवेषक, सजग, मितभाषी, शुद्ध जीविका वाले और ज्ञानी मनुष्य का जीवन कष्ट से बीतता है।"

हिरिमता च दुज्जीवं निच्चं सुचिगवेसिना।
अलीनेनप्पगब्भेन सुद्धाजीवेन पस्सता।।

जितनी शुद्धता से जीना चाहोगे, उतनी कठिनाई होगी। क्योंकि पहाड़ पर चढ़ना कठिन है। चढ़ाव सदा कठिन होता है। ऊंचाई पर उठना कठिन, नीचाई में उतरना सदा आसान। बुरा करना सदा आसान, भला करना सदा कठिन।

इसलिए कठिनाई से मत बचना। क्योंकि कठिनाई ही उठाती है। इसलिए तो हम साधना को तप कहते हैं, तपश्चर्या कहते हैं, खड्ग की धार कहते हैं। तलवार की धार पर चलने जैसा है। इसलिए केवल साहसी ही सत्य की यात्रा और खोज में निकलते हैं, गवेषणा में निकलते हैं।

"हे पुरुष, संयमरहित पापकर्म ऐसे ही होते हैं, इसे जानो। तुम्हें लोभ और अधर्म चिरकाल तक दुख में न डाले रहें।"

इस सूत्र में दोनों सूत्रों का सार आ गया है।

बुद्ध ने कहा, ऊपर से जब सुख मालूम पड़ता है, सम्हलना, क्योंकि इसी सुख के कारण तुम जन्मों-जन्मों तक दुख में पड़े रहे हो और दुख में पड़े रहोगे। और जब ऊपर से दुख मालूम पड़े, कठिनाई मालूम पड़े, हिम्मत करना, गुजर जाना इस बीहड़ वन से, चढ़ जाना इस पर्वत-शिखर पर, आज जो कठिन है, वही तुम्हारे जीवन में सदा-सदा शाश्वत सुख की वर्षा का कारण बनेगा। उन ऊंचाइयों पर ही रोशनी है। उन ऊंचाइयों पर ही प्रकाश है। अंधेरी घाटियों में सरकना अभी कितना ही सुविधापूर्ण मालूम पड़े... ।

तुमने कभी ख्याल किया, झूठ बोलना सदा सुविधापूर्ण मालूम पड़ता है। लंबे अर्थों में, लंबे अर्से में झंझट में डालता है, लेकिन बोलते वक्त बड़ा सुविधापूर्ण मालूम पड़ता है, बचाव हो जाता है। सत्य बोलते समय कठिनाई में डालता है, लेकिन अंततः वही सुख सिद्ध होता है।

अंततः सत्य जीतता है और झूठ हारता है। सत्यमेव जयते। जो जीतता है अंततः, वही सत्य है। सत्य की विजय सुनिश्चित है। लेकिन लंबी यात्रा है सत्य की। झूठ जल्दी-जल्दी जीत जाता है। झूठ कहता है, अभी, नगद मैं तुम्हें सुख देता हूं। सत्य का सुख लंबा है। इसीलिए तो हम कहते हैं, जीवन के बाद, मोक्ष में। बड़ा दूर दिखता है शिखर। कल, कभी मिलेगा, मिलेगा कि नहीं मिलेगा।

बुद्ध ने कहा है, दुख सुख का धोखा दे देता है। मैं निरंतर कहता हूं कि अगर तुम्हें कहीं स्वर्ग की तख्ती लगी मिले, तो जल्दी मत प्रवेश कर जाना। क्योंकि शैतान बहुत होशियार है, उसने नर्क पर स्वर्ग की तख्ती लगा दी है। जल्दी मत प्रवेश कर जाना, नहीं तो बहुत दिक्कत में पड़ोगे। अक्सर नर्क बाहर से देखने पर बड़ा सुखदायी मालूम होता है; भीतर जाकर झंझट खड़ी होती है।

एक आदमी मरा। वह नर्क गया। शैतान ने उसका स्वागत किया, वह तो बड़ा हैरान हुआ। वह तो सोचता था कि मार-पिटाई होगी शुरू में, उसका स्वागत हुआ। उसने कहा, भई, हम तो कुछ उलटी ही सुलटी खबरें सुनते रहे नरक के संबंध में, और तुम ऐसा स्वागत कर रहे हो! गले लगाया, फूलमालाएं पहनायीं और शैतान के शिष्य नाचे और कूदे और ढोल बजाए। वह तो बहुत ही खुश हुआ, उसने कहा, बढ़िया! और चारों तरफ देखा तो बड़ा सौंदर्य भी है! और उसने शैतान से पूछा, अब हमें क्या करना पड़ेगा?

शैतान ने कहा, तुम चुन लो। हमारे संबंध में बड़ी झूठी खबरें फैलायी गयी हैं, क्योंकि हमें बोलने का मौका ही नहीं मिला। ईश्वर के इतने अवतार हुए, तुम्हीं बताओ, शैतान का कहीं कोई अवतार हुआ! ईश्वर तो बोलता रहा--इकतरफा बात चल रही है--वही समझाता रहा, हमारी किसी ने सुनी भी नहीं, मौका भी नहीं मिला। तुम अपनी आंख से देख लो। उस आदमी को भी लगा कि बात तो ठीक ही है, सब सुंदर था--सब सुंदर था, स्वर्ग जैसा सुंदर था। फिर अंदर ले गया। फिर उसने कहा, अब तुम चुन लो, ये तीन स्थान हैं, इसमें से तुम्हें

जो चुनना हो। उसने कहा, चुनाव की भी स्वतंत्रता है यहां? यहां बिल्कुल स्वतंत्रता है, यहां परम स्वतंत्रता है, तुम चुन लो, जहां तुम्हें रहना हो, तीन खंड हैं नर्क के।

पहले खंड में ले गया, तो घबड़ाया वह आदमी। वहां कोड़ों से बड़ी पिटाई हो रही थी, लहूलुहान लोग हो रहे थे। उसने कहा, भई, यह हमें न जंचेगा, अब दूसरे खंड में ले चलो। दूसरे खंड में ले गया, तो वहां आग में कड़ाहे जल रहे थे--अब असलियत प्रगट होनी शुरू हुई, वह जो दिखावा और स्वागत इत्यादि था, सब खतम हो गया--उन कड़ाहों में लोग डाले जा रहे थे, भूने जा रहे थे, जलाए जा रहे थे, चिल्ला रहे थे, रो रहे थे। उसने कहा, नहीं भाई, यह भी हमें न जमेगा। लेकिन अब वह घबड़ाने लगा कि पता नहीं तीसरे में क्या हो! और तीन ही हैं और तीन में से चुनना है। तीसरे में गया तो उसे यह कुछ बात जंची। घुटना-घुटना मल-मूत्र भरा हुआ था और लोग खड़े हुए कोई चाय पी रहा, कोई काफी पी रहा--जिसको जो पीना हो। सिर्फ यह था कि मल-मूत्र घुटने-घुटने तक था।

तो उसने कहा कि यह चलेगा। ये सब गपशप भी कर रहे हैं लोग, कोई चाय पी रहे हैं, कोई काफी पी रहा है, कोई कोकाकोला पी रहा है, सब, यह ठीक है। तकलीफ तो है थोड़ी, घुटने-घुटने तक मल-मूत्र है, लेकिन यह तो हो जाएगा, कम से कम आग और कोड़ों से तो बेहतर है।

उसको भी एक चाय दे दी गयी, वह भी चाय पीने लगा, बड़ा प्रसन्न। और तभी एक जोर की घंटी बजी और एक आवाज आयी कि अब बस, अपने-अपने सिर के बल खड़े हो जाओ। वह चाय पीने के लिए थोड़ी छुट्टी मिली थी। उसने कहा, मारे गए। सिर के बल! वह मल-मूत्र के गड्ढे में अब सिर के बल खड़े होने का असली वक्त आ गया।

बुद्ध ने कहा है, नर्क स्वर्ग का धोखा देता है। दुख सुख के आवरण पहनकर आते हैं। उनसे सावधान रहना। जो बात अभी सुख की मालूम पड़े, उसी पर चुनाव मत कर लेना। देखना, दूरदृष्टि होना। आज कठिनाई भी हो पहाड़ चढ़ने में तो घबड़ाना मत। सच अगर आज मुश्किल में भी डाले तो पड़ जाना। और सत्य की खोज में असुरक्षा हो, कठिनाई हो, कांटे मिलें, कंटकाकीर्ण पथ मिले, गुजर जाना; क्योंकि एक दिन यही कठिनाई तुम्हें उन शिखरों पर ले जाएगी जहां शाश्वत शांति है, जहां वस्तुतः स्वर्ग है।

एवं भो पुरिस! जानाहि पापधम्मा असांंता।

मा तं लोभो अधम्मो च चिरं दुक्खाय रन्धयु।।

"हे पुरुष, संयमरहित पापकर्म ऐसे ही होते हैं... ।"

सुख का धोखा देते हैं, मिलता दुख है।

"इसे जानो। तुम्हें लोभ और अधर्म चिरकाल तक दुख में ही डाले न रहें।"

जागो! और यह जागरण केवल शब्दों को सुनने से नहीं आने वाला है। इस जागरण के लिए चेतना की सारी मूर्च्छा की ग्रंथियां काटनी पड़ें। जहां-जहां मूर्च्छा है, मोह है, वहां-वहां से मुक्त अपने को करो, निर्ग्रंथ करो।

इन सूत्रों पर ध्यान करना, स्वाध्याय करना। क्यों? क्योंकि स्वाध्याय न करना मंत्रों का मैल है।

असज्झायमला मंता अनुट्ठानमला घरा।

ये भी मंत्र हैं। इन पर स्वाध्याय करना, अन्यथा इन पर भी मैल जम जाएगा, ये किसी काम न आ सकेंगे। पंडित मत बनना इन बातों को सुनकर, प्रज्ञा को जगाना, होश को जगाना। ये बातें तुम्हारा अनुभव बन जाएं, तो ही मुक्तिदायी हैं।

आज इतना ही।

अस्सीवां प्रवचन

शब्दों की सीमा, आंसू असीम

पहला प्रश्नः इस देश में बुद्धपुरुषों के उपासक के घर में भोजनोपरांत सदा से ही बुद्धपुरुष कुछ न कुछ उपदेश अवश्य करते रहे हैं। क्या इस परंपरा के पीछे कोई सूत्र है? कृपा करके समझाएं।

सूत्र सीधा और साफ है। तुम वही दे सकते हो, जो तुम्हारे पास है। तुम शरीर का भोजन दे सकते हो। बुद्धपुरुष वही दे सकते हैं, जो उनके पास है। वे आत्मा का भोजन दे सकते हैं। तुम जो देते हो, वह तो न कुछ है। बुद्धपुरुष जो देते हैं, वह सब कुछ है। जो समझदार हैं, वे यह सौदा कर ही लेंगे। यह सौदा बड़ा सस्ता है।

बुद्ध को, महावीर को लोग भोजन देते, तो भोजन के बाद वे दो वचन उपदेश के कहते थे। तुमने कुछ दिया, उससे बहुत ज्यादा तुम्हें देते थे। तुमने जो दिया, उसका क्या मूल्य है? कितना मूल्य है? उन्होंने जो दिया, वह अमूल्य है। वे दो पंक्तियां कभी किसी के जीवन के अंधेरे मार्ग पर रोशनी बन जातीं। वे दो पंक्तियां कभी किसी के सूखे मरुस्थल जैसे हृदय में फूल बनकर खिल जातीं। वे दो पंक्तियां जहां गीतों का पैदा होना बंद हो गया था, वहां गीतों को जन्म देने लगतीं। उन थोड़े-थोड़े उपदेशों ने लोगों का आमूल जीवन बदल डाला है।

फिर भोजन प्रतीकात्मक है। भोजन प्रेम का सबूत है।

इसे समझना चाहिए। जब पहली दफा बच्चा पैदा होता है तो वह मां से प्रेम और भोजन साथ-साथ पाता है। उसी स्तन से प्रेम पाता है, उसी स्तन से भोजन पाता है। इसलिए भोजन और प्रेम का एक गहरा नाता है, गहरा एसोसिएशन है। तभी तो जब तुम्हें किसी से प्रेम होता है, तुम उसे घर भोजन के लिए बुला लाते हो। जब कोई स्त्री तुम्हें प्रेम करेगी तो तुम्हारे लिए भोजन बनाने को आतुर हो उठेगी। वह सूचक है। वह खबर देता है। वह प्रेम का प्रतीक है।

बुद्ध को तुम अपने घर भोजन के लिए बुला लाए, वह तुम्हारे प्रेम का प्रतीक है। तुम्हारे पास जो है, वह तुम भेंट कर रहे हो--वह न कुछ है, उसका कोई मूल्य नहीं, लेकिन तुम्हारे प्रेम का बड़ा मूल्य है। और जहां भी प्रेम हो, वहां पुरस्कार मिलता ही है। जहां भी प्रेम दिया जाए, वहां प्रेम हजारगुना होकर लौटता ही है। वह जीवन का शाश्वत नियम है। तुम जो दोगे, हजारगुना होकर तुम्हें मिलेगा। गाली दोगे, तो हजार गालियां लौट आएंगी। प्रेम दोगे तो प्रेम हजारगुना होकर लौट आएगा। और यह जीवन का शाश्वत नियम कहीं और काम करे या न करे, बुद्धपुरुषों के सान्निध्य में तो काम करेगा ही। तुमने भोजन दिया, तुमने बुद्ध को घर बुलाया... तुम तो चकित होओगे, बुद्ध का जिस भोजन के कारण अंत हुआ, उनके जीवन का अंत हुआ, उस दिन भी वे उपदेश करना नहीं भूले।

आखिरी भोजन जो उन्होंने किया, वह विषाक्त था। जिसने बुलाया था, वह बहुत गरीब आदमी था। इतना गरीब आदमी था कि बाजार से हरी सब्जियां भी खरीद नहीं सकता था। तो बिहार में गरीब आदमी कुकुरमुत्ते सुखाकर रख लेते हैं, उनको फिर गीला करके सब्जी बना लेते हैं। कुकुरमुत्ता ऐसे ही ऊग आता है, कहीं भी ऊग आता है। लकड़ी पर, गंदगी पर, कहीं भी ऊग आता है। इसलिए उसका नाम कुकुरमुत्ता है, जहां-जहां कुत्ते पेशाब करते हैं, वहीं ऊग आता है। कुकुरमुत्ते इकट्ठे कर लेते हैं गरीब और उनको सुखाकर रख लेते हैं, फिर

सालभर उनसे भोजन का काम चला लेते हैं। कभी-कभी कुकुरमुत्ते विषाक्त होते हैं, अगर विषाक्त भूमि में, या किसी विष के करीब पैदा हो गए।

इस गरीब आदमी ने बुद्ध को निमंत्रण दिया। उसके पास कुछ भी न था। कुकुरमुत्ते की ही सब्जी बनायी थी। बुद्ध ने चखी तो वह कड़वी थी। बात तो साफ हो गयी कि वह विषाक्त है। लेकिन वह सामने ही पंखा झल रहा है और उसकी आंखों से आनंद के अश्रु बह रहे हैं और उसके पास कुछ और है भी नहीं, और उसे यह कहना कि तेरा भोजन विषाक्त है, उसके हृदय को बुरी तरह तोड़ देना होगा। इसलिए बुद्ध चुपचाप, बिना कुछ कहे वह विषाक्त भोजन कर लिए। भोजन के करते ही विष फैलने लगा, लेकिन उस दिन, उस आखिरी दिन भी वे उपदेश देना नहीं भूले। और पता है, उन्होंने उपदेश क्या दिया?

उन्होंने अपने भिक्षुओं को इकट्ठा कर लिया, गांव के लोगों को इकट्ठा कर लिया और कहा, सुनो, दुनिया में दो व्यक्ति महाधन्यशाली हैं--वह मां, जो पहली बार बुद्ध को भोजन कराती; और वह व्यक्ति, जो बुद्ध को अंतिम बार भोजन कराता है। यह बहुत धन्यशाली व्यक्ति है जो सामने बैठा है। इसने इतना पुण्य अर्जन किया है, तुम कल्पना न कर सकोगे।

और जब भिक्षुओं को पता चला बाद में, जब वैद्य आया और उसने बताया कि यह तो विषाक्त भोजन था, बचना मुश्किल है। तो आनंद ने बुद्ध को कहा कि आपने यह किस तरह की बात कही कि यह अत्यंत धन्यभागी है? इसने जहर दे दिया! भला अनजाने दिया हो, मगर इसकी मूढ़ता का परिणाम भारी है।

बुद्ध ने कहा, इसीलिए मैंने कहा, अन्यथा मेरे मर जाने के बाद तुम पागल हो जाते और उसे मार डालते। उसकी पूजा करना, क्योंकि अंतिम जिससे भोजन ग्रहण किया बुद्ध ने, वह उतना ही धन्यभागी है जितना जिससे प्रथम किया। ये दो भोजन--पहला और अंतिम। तुम उसकी पूजा करना, आनंद। उसने तो प्रेम से दिया है। प्रेम से दिया गया जहर भी अमृत है। और अप्रेम से दिया गया अमृत भी जहर है। प्रेम से मौत भी आ जाए तो महाजीवन के द्वार खुलते हैं, और अप्रेम से जीवन भी बढ़ता चला जाए तो राख ही राख हाथ लगती है। तुम उसका प्रेम देखो, जो हुआ है वह बात तो गौण है।

और फिर कौन यहां सदा जीने को आया है! किसी दिन तो मरता। मरना तो निश्चित था। मरना तो होने ही वाला था। इस आदमी का कोई कसूर नहीं, यह तो निमित्त मात्र है। फिर मैं देखो बूढ़ा भी हो गया, बुद्ध ने कहा। अच्छा ही है कि अब विदा हो जाऊं, अब इस देह को और खींचना कठिन भी होता जाता है।

अंतिम दिन भी, मरने के पहले भी, भोजन जो दिया गया था, उसके धन्यवाद में उन्होंने उपदेश दिया था।

सूत्र सीधा-साफ है। तुम इतने प्रेम से बुलाकर भोजन दिए हो बुद्ध को, वे तुम्हारे भीतर अगर अपना सारा प्रेम उंडेल दें तो कुछ आश्चर्य नहीं। और उनका प्रेम एक ही अर्थ रखता है कि सोया जाग जाए, कि अंधेरे में दीया जले, कि जहां अनंत-अनंत जन्मों की दुर्गंध है, वहां थोड़ी सी सुवास आत्मा की फैल जाए। उपदेश का यही अर्थ होता है।

उपदेश का अर्थ भी समझना। उपदेश का अर्थ आदेश नहीं होता। बुद्ध ऐसा नहीं कहते कि ऐसा करो। बुद्ध इतना ही कहते हैं, ऐसा-ऐसा करने से मुझे ऐसा-ऐसा हुआ। बुद्ध यह नहीं कहते हैं कि तुम भी ऐसा करो; करोगे तो पुण्य पाओगे, नहीं करोगे तो पापी, नरक में सड़ोगे। बुद्ध कोई कमांडमेंट नहीं देते।

बाइबिल में टेन कमांडमेंट हैं, दस आदेश। वे उपदेश नहीं हैं, उनमें आज्ञा है। जहां आज्ञा है, वहां राजनीति झलक आती है। और जहां आज्ञा है, वहां दूसरे पर मालकियत की घोषणा हो जाती है--तुम ऐसा करो ही; करना ही पड़ेगा; किया तो ठीक, नहीं किया तो खतरा है।

बुद्धपुरुष उपदेश देते हैं। उपदेश और आदेश में फर्क है।

आदेश में आज्ञा है, उपदेश में मनुहार। उपदेश में सिर्फ फुसलावा है। उपदेश में सिर्फ इस बात की खबर है कि ऐसा करने से मुझे कुछ हुआ है, अगर तुम्हें भी करना हो, तुम कर सकते हो, तुम मालिक हो। तुम अगर दुखी हो, तो इसलिए दुखी हो कि तुम कुछ कर रहे हो जिससे दुख पैदा हो रहा है। यह लो कुंजी, इससे मेरे आनंद के मंदिर का द्वार खुला है। अगर खोलना चाहो, तो तुम यह न कह सकोगे कि कुंजी किसी ने तुम्हें बतायी न थी।

फिर उपदेश का यह भी अर्थ होता है, जो अत्यंत पास बैठकर ग्रहण किया जाए। उपदेश का अर्थ होता है, पास बैठना, निकट होना। उपदेश का अर्थ होता है, जिसके साथ तुम्हारे भीतरी देश का मेल हो जाए। जो अंतर-आकाश है, वह अंतर-आकाश एक हो जाएं। देश यानी आकाश, स्थान; उप यानी पास। दो व्यक्तियों के अंतर-आकाश जब इतने पास हो जाते हैं कि उनकी सीमा गिर जाती है, वहां उपदेश है।

तो उपदेश केवल शिष्य के लिए हो सकता है। उसके लिए हो सकता है जो इतना झुककर करीब आ गया है कि अब अपने को अलग मानता ही नहीं। जो इतने निकट आ गया है कि तुम अगर न भी बोलो तो सुन लेगा। तुम्हारा मौन भी सुनायी पड़ेगा जिसे, उसे ही उपदेश दिया जा सकता है।

फिर छोटी-छोटी बातें क्रांति कर जाती हैं। ये जो बुद्ध की हम गाथाएं पढ़ रहे हैं, छोटी-छोटी बातें हैं--कभी दो वचन कहे, कभी चार वचन कहे। इन छोटे-छोटे वचनों ने लोगों के जीवन में निर्वाण का स्वाद दे दिया है।

तुम चकित होओगे कि हम तो सुनते हैं, हमें तो वैसा निर्वाण का स्वाद नहीं होता, धम्मपद पढ़ लेने से हमें तो कुछ भी नहीं होता। और धम्मपद में कथा आती है कि यह मरता हुआ आदमी बुद्ध के दो शब्द सुनकर स्रोतापन्न हो गया, या अनागामी हो गया, अब दुबारा कभी लौटेगा नहीं संसार में। यह कैसे हुआ होगा! ये छोटे से दो शब्द! यह सुनने के ढंग पर निर्भर है।

तुम्हारे लिए धम्मपद एक किताब है। पढ़ ली, जैसे और किताबें पढ़ लीं। धम्मपद के शब्द तुम्हारे लिए शब्द हैं, जैसे और शब्द हैं। जिस व्यक्ति के जीवन में इसको सुनकर क्रांति घटी थी, उसने इसे उपदेश की तरह स्वीकार किया था; यह बुद्ध के पास, निकट, निकट बैठ-बैठकर उनके रंग में रंग गया था। फिर यह तो बहाना बन गया। इसने अपने हृदय के सारे द्वार खोल दिए थे, इसने बुद्ध को भीतर आने दिया था।

बुद्ध के पास और कुछ देने को है भी नहीं। उनके पास देने को है वह प्रेम, जो तुम्हें शाश्वत से जोड़ दे। वह हवा का झोंका, जो तुम्हारी जन्मों-जन्मों की जमी हुई धूल को झाड़ ले जाए। जो तुम्हारे दर्पण को निर्मल कर दे। ऐसा निर्मल कि उस दर्पण में सत्य का प्रतिबिंब बनने लगे।

अगर गुरु के पास होने की कला तुम्हें आ गयी, तो क्रांति सुनिश्चित है।

दूसरा प्रश्नः आदमी चलता ही रहता है--हार में, जीत में; सफलता में, असफलता में; प्रेम में, विरह में। वह क्या है जो उसे चलाए रखता है?

दो चीजें--अहंकार और आशा। एक तो अहंकार चलाए रखता है। क्योंकि अहंकार कहता है, टूट जाना मगर झुकना मत, मिट जाना मगर रुकना मत। एक तो अहंकार चलाए रखता है। कुछ भी हो जाए, अहंकार कहता है, चले चले जाओ। लड़ते रहो, जूझते रहो। अगर हार ही बदी है किस्मत में, तो भी लड़ते-लड़ते ही हारना। हार स्वीकार मत करना। अहंकार हार को स्वीकार नहीं करने देता। और उसी कारण हम बुरी तरह हार जाते हैं।

जो हार को स्वीकार कर लेता है, उसकी तो जीत शुरू हो गयी। कहते हैं न--हारे को हरिनाम। जिसने हार को अंगीकार कर लिया, उसके जीवन में तो हरि उतरना शुरू हो जाता है। संसार में जीत तो होती ही नहीं, हार ही होती है। जीत हो ही नहीं सकती। जीत संसार का स्वभाव नहीं है। वह छोटी-मोटी जीत, जो तुम्हें दिखायी पड़ती है, बड़ी हारों की तैयारी है और कुछ भी नहीं। वह वैसे ही है जैसे जुआरी जुआ खेलने जाता है। कभी-कभी जीत भी जाता है। वह जीत सिर्फ बड़ी हार के लिए आकर्षण है।

एक आदमी के संबंध में मैं पढ़ रहा था। उसे दस हजार डालर वसीयत में मिल गए। उसने सोचा कि एक बार जुआ खेलकर जितने बढ़ सकें ये डालर उतना बढ़ा लेना उचित है, ताकि जिंदगीभर के लिए फिर झंझट ही काम करने की मिट जाए। वह अपनी पत्नी को लेकर जुआघर गया। वह सब हार गया, सिर्फ दो डालर बचे। वह भी इसलिए बचा लिए थे कि होटल में लौटकर जाने के लिए रास्ते में टैक्सी का किराया भी तो चुकाना पड़ेगा।

वह बाहर आया, बाहर उसने पत्नी से कहा कि सुन, आज पैदल ही चल लेंगे, यह दो और लगा लेने दे। नहीं तो मन में एक बात खटकती रह जाएगी कि कौन जाने, यह दो के लगाने से जीत हो जाती! पत्नी ने कहा, अब तुम जाओ, मैं तो चली।

वह आदमी भीतर गया। उसने दो डालर दांव पर लगाए और जीत गया। और जीतता चला गया। दस हजार डालर तो दूर, उसके पास एक लाख डालर थे आधी रात होते-होते। फिर उसने सोचा, अब आखिरी दांव लगा लूं। उसने वह एक लाख डालर भी दांव पर लगा दिए--अगर जीत जाता तो बीस लाख हो जाते--मगर वह हार गया।

आधी रात पैदल ही होटल वापस लौटा, दरवाजा खटखटाया, पत्नी ने पूछा, क्या हुआ? उसने कहा, वह दो डालर हार गया। वह दो डालर हार गया। उसने सोचा, अब एक लाख की बात कहने का कोई मतलब ही नहीं। इतनी देर कहां रहे फिर? उसने कहा, वह पूछ ही मत! अब वह दुख छेड़ ही मत! इतना तू जान कि दो डालर जो थे, वह भी हार गया हूं।

जुए का खेल जैसा है जगत। यहां कभी-कभी जीत भी होती है--ऐसा नहीं है कि नहीं होती, जीत होती--मगर हर जीत किसी और बड़ी हार की सेवा में नियुक्त है। हर जीत किसी बड़ी हार की नौकरी में लगी है। यहां कभी-कभी सुख भी मिलता है, नहीं कि नहीं मिलता, लेकिन हर सुख किसी बड़े दुख का चाकर है। हर सुख तुम्हें किसी बड़े दुख पर ले आएगा। सुख भरमाता है। सुख कहता है, सुख हो सकता है, घबड़ाओ मत, भागो मत। तो आशा बनी रहती है कि शायद अभी हुआ, कल फिर होगा, परसों फिर होगा।

तो एक तो आशा चलाती, एक अहंकार चलाता।

निराश्रित भी चलेंगे,

पर कहां तक?

कह नहीं सकते।

कहां तक?

कह नहीं सकते।

फिर वही मधुकण झरेंगे

निशि-दिवस पुलकित करेंगे

फिर सरस ॠतुपति धरा को

फूल से फल से भरेंगे

पर न अब तुम दुख हरोगे

मन सुमन पुलकित करोगे,

ध्वंस में भी पलेंगे,

पर कहां तक?

कह नहीं सकते।

फिर वही सरगम सजेंगे

राग में नूपुर बजेंगे

फिर सजग हृद्‌तंत्रियों के

गीत में सप्तक मंजेंगे

पर न अब तुम फिर बजोगे

श्लोक बन-बनकर सजोगे

मौन में भी ढलेंगे,

पर कहां तक?

कह नहीं सकते।

फिर वही दीपक जगेंगे

ज्योति के मेले लगेंगे

फिर सजीली घाटियों को

किरण कंचन से भरेंगे

पर न तुम अब फिर जगोगे

ज्योति बन जीवन रंगोगे

धूम्र में भी जलेंगे,

पर कहां तक?

कह नहीं सकते।

आदमी बहुत बार जागने-जागने के करीब आ जाता है। तुम्हारा कोई प्रियजन मर गया। बड़े करीब होते हो तुम बुद्धत्व के उस घड़ी में। जब तुम मौत के दुख में होते हो, बुद्धत्व बहुत करीब होता है। अगर पकड़ लो सूत्र तो छलांग लग जाए।

लेकिन तुम सूत्र पकड़ नहीं पाते, तुम दुख को झुठला लेते हो। तुम अपने को समझा लेते हो, मना लेते हो। तुम फिर नयी-नयी आशाओं के सपनों पर सवार हो जाते हो। दुख झकझोरता है, लेकिन तुम उस झकोरे को भी समा लेते हो अपने में। सांत्वना बांध लेते हो, सोचते हो, फिर सब ठीक हो जाएगा, फिर वसंत आएगा, फिर फूल लगेंगे।

यह भी सच है कि जो चल बसा है, अब दुबारा तुम्हें न मिल सकेगा, लेकिन इस पर ही कोई जीवन थोड़े ही समाप्त हो जाता है। और भी लोग हैं, और भी प्रियजन हैं, और जो आज प्रिय नहीं हैं कल प्रिय हो सकते हैं। जो हो गया, भूलो, बिसारो-- आशा कहती है--छोड़ो उसे, अभी बहुत कुछ हो सकता है, भविष्य को देखो, अतीत पर अटके मत रहो। और अहंकार कहता है, क्या इतनी जल्दी हार मान लोगे? क्या इतने कमजोर हो?

अहंकारी व्यक्ति धार्मिक व्यक्ति को बड़ी दया से देखता है। उसकी दया यही होती है कि बेचारे ने हार मान ली। संन्यस्त हो गया! तो छोड़ दिया संघर्ष। समर्पण कर दिया! हथियार डाल दिए! अहंकारी मान ही नहीं पाता यह बात कि कोई आदमी क्यों समर्पण करेगा! अहंकारी तो कहता है, आखिरी दम तक लड़ते रहना। अहंकारी तो लड़ने में जीवन मानता है। जब कि लड़ने में जीवन नहीं है, सिर्फ पीड़ा है। जीवन तो इस विराट के साथ एक हो रहने में है। लड़ने में तो हम विभाजित हो जाते हैं, अलग हो जाते हैं, टूट जाते हैं। लड़ने में तो हम एक द्वीप बन जाते हैं, अलग-थलग। लड़ने में तो छोटा सा टुकड़ा इस विराट के खिलाफ खड़ा हो जाता है। धारा के विपरीत बहने की चेष्टा है लड़ना।

समर्पण का अर्थ है, धारा के साथ बह जाना। हारे को हरिनाम। स्वीकार कर लेते हैं कि मैं तो जीत ही नहीं सकता। क्योंकि यह मैं की बात ही जीत नहीं सकती, यह मैं का भाव ही जीत नहीं सकता। यह मैं ही हार लिए हुए है। मैं असत्य है, इसलिए मैं जीत कैसे सकता है? न-मैं जीतता है। लेकिन न-मैं का मतलब यह होता है, हार को परिपूर्णरूप से स्वीकार कर लेना। इसलिए हार में हार नहीं है, हार में जीत है और जीत में हार है। जब तक तुम जीतते रहोगे, हारते रहोगे। जिस दिन तुमने हार स्वीकार कर ली, फिर कैसी हार? फिर तुम जीत गए। यहां जो झुक गए, उन्होंने पा लिया, जो अकड़े रहे, वे वंचित रह गए।

पूछते हो, "क्या चलाए रखता है?"

तो एक तो आशा, कि जो आज नहीं हुआ, कल शायद हो जाए। शायद! क्यों न हो, औरों को हुआ है, मुझे क्यों न होगा?

न औरों को हुआ है, न तुम्हें होगा। किसको हुआ है? इस संसार में कोई कभी जीता है!

सिकंदर जब मरा, तो उसने कहा, मेरे हाथों को अर्थी के बाहर लटके रहने देना। उसके वजीरों ने पूछा कि आपका मन-मस्तिष्क तो ठीक है? ऐसा कभी हुआ नहीं। यह तो कोई परंपरा भी नहीं है कि अर्थी के बाहर हाथ लटके रहें, क्या मतलब है? क्या चाहते हैं आप? सिकंदर ने कहा, मैं चाहता हूं, ताकि लोग देख लें कि मैं भी खाली हाथ जा रहा हूं, हारा हुआ। और अकेली एक ही अर्थी इस पृथ्वी पर निकली है, सिकंदर की, जिसमें हाथ अर्थी के बाहर लटके हुए थे। सभी अर्थियां ऐसी ही निकलनी चाहिए, ताकि लोग देख लें कि हाथ खाली जा रहे हैं।

मजे की बात तो यह है कि बच्चा जब आता है तो बंधे हाथ आता है। जब मरते हो, तब और जो लाए थे वह भी लुट गया, हाथ और खाली हो गया--हाथ बिल्कुल खुले जाते हैं। शायद बच्चा कुछ लेकर भी आता है--उस जगत की कोई गंध, उस जगत का कुछ आनंद, अहोभाव!

तुमने एक बात ख्याल की, कोई बच्चा कुरूप नहीं होता। फिर ये सारे सुंदर बच्चे कहां खो जाते हैं? यह सौंदर्य कहां तिरोहित हो जाता है? बाद में तो मुश्किल से कभी कोई आदमी सुंदर होता है, अधिक लोग कुरूप हो जाते हैं। यह सौंदर्य उस लोक का है, दूसरे लोक का है, यह छाया दूसरे लोक की है। ये बच्चे के निर्मल प्रतिबिंब बन रहे हैं, बच्चे के निर्मल मन पर, निर्मल दर्पण पर, अभी धूल नहीं जमी है। इसलिए बच्चे सुंदर हैं, साधु हैं, प्रीतिकर हैं। धीरे-धीरे धूल जमेगी और सब खो जाएगा। धीरे-धीरे धूल जमेगी, अहंकार अकड़ेगा। और हमारे

सारे शिक्षालय-- स्कूलों से लेकर विश्वविद्यालयों तक--सिर्फ अहंकार की शिक्षा देते हैं, महत्वाकांक्षा जगाते हैं, एम्बीशन पैदा करते हैं। कुछ बनो, कुछ करके दिखा दो।

इसी कुछ बनने और करने की शिक्षा का परिणाम है कि सारी दुनिया कलह और संघर्ष में लगी है। हर आदमी एक-दूसरे के गले को दबा रहा है, और हर आदमी के हाथ दूसरे के खीसों में पड़े हैं, और हर आदमी एक-दूसरे के साथ झपटने की कोशिश में लगा है। यहां मित्रता तो हो ही नहीं सकती, क्योंकि जिनको तुम मित्र कहते हो, वे भी तुम्हारे प्रतियोगी हैं। यहां मित्रता नाममात्र को है, यहां सभी शत्रु हैं। यहां कौन मित्र है! यहां कैसे कोई मित्र हो सकता है!

बुद्ध ने कहा है, मित्रता तो उसी से हो सकती है जिसके साथ तुम्हारा कोई प्रतिस्पर्धा का संबंध न हो। मैत्री तो उसी से हो सकती है जिसने महत्वाकांक्षा गिरा दी हो। इसलिए बुद्ध ने कहा है कि सिर्फ बुद्धपुरुष ही मित्र हो सकते हैं। उनकी कोई महत्वाकांक्षा नहीं, तुमसे कुछ लेना नहीं, तुमसे कुछ देना नहीं। तुमसे कोई संघर्ष ही नहीं, उनका संघर्ष ही नहीं रहा है। उन्होंने हथियार फेंक दिए, और उन्होंने धारा को स्वीकार कर लिया है। अब वे गंगोत्री की तरफ नहीं बहते, गंगासागर की तरफ जा रहे हैं। धारा जहां ले जाएगी, वहीं उनका गंतव्य है। ऐसी हार में ही जीत है।

क्यों? क्योंकि ऐसा हारा हुआ आदमी पूर्ण के साथ एक हो जाता है।

इसे मुझे इस तरह कहने दो, तुम जब तक हो तब तक हार है। जैसे ही तुम मिटे और परमात्मा हुआ कि फिर जीत ही जीत है।

तीसरा प्रश्नः क्या कारण है कि विश्व की लगभग सभी संन्यास की परंपराओं ने भिक्षावृत्ति और अगृही होने को सनातन रूप से महत्व दिया है?

यह धारणा गलत है। ऐसा सच नहीं है। ऐसा दिखायी पड़ता है, लेकिन ऐसा सच नहीं है। विश्व की लगभग सभी संन्यास की परंपराओं ने भिक्षावृत्ति और अगृही होने को सनातन महत्व नहीं दिया है। जरा भी नहीं दिया है।

हिंदू, अगर तुम उनके मूलभाव को समझो, तो ऋषि-मुनियों को अगृही होने का उपदेश नहीं देते थे। और ऋषि-मुनि, वशिष्ठ या विश्वामित्र, या उपनिषद के सारे मनीषी गृहस्थ ही थे। भला जंगल में रहते हों, उनकी पत्नियां थीं, उनके बच्चे थे, उनका परिवार था। उपनिषद अगृही भिखारियों ने नहीं लिखे हैं। उपनिषद संन्यस्त पुरुषों ने लिखे हैं, यह बात सच है; लेकिन वे संन्यस्त गृहस्थ ही थे।

तो हिंदू परंपरा मौलिक रूप से सब छोड़कर भाग जाने के पक्ष में नहीं है। और यहूदी परंपरा भी सब छोड़कर भाग जाने के पक्ष में नहीं है। यहूदी रबाई, उनका धर्मगुरु, उनका धर्मोपदेष्टा परिवार में रहता है। पत्नी है, बच्चे हैं, परिवार है।

दुनिया की दो बड़ी परंपराएं हैं--यहूदी और हिंदू। इन दोनों परंपराओं का जो मूलस्रोत है, वह अगृही संन्यासी के पक्ष में नहीं है। दुनिया के तीन बड़े धर्म--यहूदी, इस्लाम और ईसाइयत--यहूदी परंपरा से पैदा हुए हैं। और दूसरे तीन बड़े धर्म--हिंदू, जैन और बौद्ध--हिंदू परंपरा से पैदा हुए हैं। दोनों के स्रोत गृहस्थ को स्वीकार करते हैं, अगृही को नहीं। गृही को स्वीकार करते हैं। तो न तो यहूदी, न इस्लाम, न ईसाई--ईसाई भी भिक्षावृत्ति पर भरोसा नहीं करता।

फिर अगृही संन्यास कहां से पैदा हुआ? अगृही संन्यास पैदा हुआ जैन और बौद्धों से। और जैन और बौद्धों का अनुकरण करके शंकराचार्य ने भी हिंदू परंपरा में अगृही संन्यास को प्रवेश करवाया। फिर जब इस्लाम भारत आया, तो अगृही संन्यासी को देखकर इस्लाम में भी उसका परिणाम हुआ और सूफी फकीर पैदा हुए।

लेकिन, अधिकतम परंपराएं, बहुमत परंपराएं अगृही संन्यास के पक्ष में नहीं हैं। मगर इसका प्रभाव पड़ा। जैन और बौद्धों का प्रभाव पड़ा। उसका कारण भी समझने जैसा है।

अगर तुम्हारे सामने जैन-मुनि खड़ा हो और हिंदू-मुनि खड़ा हो, तो तुम जैन-मुनि से प्रभावित होओगे। तुम चाहे हिंदू ही क्यों न होओ। तुम जैन-मुनि से प्रभावित होओगे, हिंदू-मुनि से नहीं। क्योंकि हिंदू-मुनि तो तुम्हारे जैसा ही मालूम पड़ेगा। प्रभाव तो विपरीत का पड़ता है। प्रभाव तो उसका पड़ता है जो तुमसे कुछ भिन्न कर रहा हो। तुम्हारा ही जैसा! हिंदू-मुनि की पत्नी होगी, बच्चे होंगे, घर-द्वार होगा। तुम कहोगे, इसमें और मुझमें फर्क क्या है? यह तो हमीं जैसा है। अब इसको ज्ञान हुआ है कि नहीं, उसका तो हमें कुछ भी पता नहीं चल सकता। ज्ञान तो कुछ भीतरी बात है, बाहर तो कुछ उसका हिसाब लगता नहीं। लेकिन जैन-मुनि को कुछ हुआ है, यह बाहर से हिसाब लग जाता है। नग्न खड़ा है, घर-द्वार छोड़ दिया है, इसको कुछ हुआ है!

फिर भोगी मन को त्याग का बड़ा प्रभाव पड़ता है। यह तुम समझना। भोगी ही त्याग से प्रभावित होते हैं। क्योंकि जिसको तुम पकड़ते हो, उसको इस आदमी ने छोड़ दिया; इसी में तो प्रभाव है। तुम धन के दीवाने हो, तुम रुपए गिनते रहते हो, और यह आदमी लात मारकर चला गया। तुम कहते हो, चमत्कार है! यह आदमी पूज्य है। तुम्हारे मन में होता है, कभी हमारी भी इतनी हिम्मत हो कि हम भी लात मारकर चले जाएं, अभी तो नहीं है हिम्मत, लेकिन कम से कम इस आदमी के चरण तो छू सकते हैं। इसको तो कह सकते हैं कि तुमने मारकर दिखाया।

तुम स्त्री के पीछे दीवाने हो, कामवासना तुम्हें घेरे रखती है; और तुमने देखा एक आदमी सारे जाल को छोड़कर अलग-थलग खड़ा हो गया है ब्रह्मचर्य का व्रत लेकर; तुम प्रभावित होते हो। क्योंकि प्रत्येक कामी को कभी न कभी मन में यह बात उठती है कि कामवासना में परतंत्रता है।

इसीलिए तो कोई पति पत्नी से प्रसन्न नहीं, कोई पत्नी पति से प्रसन्न नहीं। प्रसन्न हो नहीं सकते। क्योंकि हम उससे कभी प्रसन्न नहीं हो सकते जिस पर हमें निर्भर रहना पड़ता है। उसी में तो हमारी गुलामी छिपी है। पति जानता है कि पत्नी में मेरी गुलामी है, इसके बिना मैं नहीं रह सकता। यह चार दिन मायके चली जाती है तो मुझे मुश्किल हो जाती है। इसके बिना मेरा क्या होगा? तो स्वभावतः इस पर क्रोध भी आता है। क्योंकि मैं इसके बंधन में पड़ा हूं।

इसीलिए तो तुम्हारे अनेक शास्त्रों में स्त्रियों के प्रति बड़ी भद्दी और अभद्र बातें लिखी हैं। जिन ने ये लिखी हैं, इनका मन स्त्रियों में बहुत ज्यादा लगाव से भरा रहा होगा। सीधा-साफ है। गणित बिल्कुल सीधा है। इनके मन में स्त्रियों के प्रति प्रबल आकर्षण रहा होगा, इसीलिए ये नाराज हैं।

इसलिए तुम्हारे साधु-संन्यासी दो चीजों के बड़े खिलाफ हैं, कामिनी और कांचन। क्योंकि ये दो ही चीजें खींचती हैं। या तो धन, या रूप। तो साधु-संन्यासी समझाते रहते हैं, कामिनी-कांचन से सावधान! उनको भी घबड़ाहट है। और तुमको भी घबड़ाहट है, तुमको भी बात तो जंचती है कि बात तो ठीक है, ये ही तो दो झंझट के कारण हैं। जर, जोरू, जमीन। ये ही तीन तो उपद्रव के कारण हैं।

फिर कोई आदमी तुम्हारे बीच से, तुम्हारे जैसा आदमी एक दिन अचानक छोड़कर चला जाता है। तुम बड़े चकित हो जाते हो! तुम अवाक रह जाते हो। तुम कहते हो, है, मर्द हो तो ऐसा! तुम्हारे मन में भी आकांक्षा

तो यही है कि कभी ऐसा मैं भी कर सकूं, अभी नहीं कर पा रहा हूं, तो भी कम से कम इस आदमी के चरण छूकर इसकी पूजा तो कर सकता हूं।

तो जब जैन और बौद्ध संन्यासी पैदा हुए तो हिंदू संन्यासी एकदम फीका पड़ गया। उसकी कोई पूछ ही न रही। क्योंकि लोग कहने लगे कि तुम काहे के संन्यासी! किस बात के संन्यासी हो?

तुम चकित होओगे कि हिंदू-मुनि, उपनिषद का ऋषि-मुनि, बिल्कुल तुम जैसा ही गृहस्थ था। उसके भीतर कुछ हुआ था, लेकिन वह भीतरी था। अब भीतरी की जांच तो उन्हें हो, जिन्हें भीतरी हो। बाहर से तो वह तुम जैसा था। कभी-कभी तो ऐसा होता था, तुमसे भी ज्यादा अच्छी हालत में था। क्योंकि राजा, सम्राट उसके चरणों में आते, धन भेजते, धान्य भेजते; तुमसे अच्छी हालत में था। देशभर के बड़े-बड़े परिवारों के बेटे उसके पास पढ़ने आते, उनके साथ धन भी आता।

तो गुरुकुल बड़े संपन्न थे। वहां वर्षा हो रही थी धन की। तो तुम्हें यह बात तो दिखायी ही पड़ती होगी कि हमारे ही जैसे लोग, बातें भर ऊंची करते हैं, जीवन में कहां ऊंचाई है? और बातें तो तुम्हारी समझ में भी नहीं आ सकती हैं, लेकिन जीवन तुम्हारी भी समझ में आ सकता है। वह तो अंधे को भी दिखायी पड़ता है।

तो जब जैन और बौद्ध भिखारी खड़े हुए, भिक्षु खड़े हुए, संन्यासी खड़े हुए-- अगृही, सब छोड़कर खड़े हो गए--तो स्वभावतः, उनका प्रभाव पड़ा। तुम ऐसा समझो कि एक हिंदू-मुनि, तुम्हारे जैसा, पत्नी के साथ खड़ा है, बच्चों के साथ खड़ा है। फिर एक श्वेतांबर मुनि सफेद वस्त्रों में, अलग-थलग, न कोई पत्नी, न कोई बच्चे, अकेला खड़ा है। फिर एक दिगंबर-मुनि, नग्न, वस्त्र भी नहीं। तीनों में किसके प्रति तुम्हारे मन में ज्यादा समादर पैदा होगा? स्वभावतः, दिगंबर के प्रति पैदा होगा। इसलिए दिगंबर नहीं मानते कि श्वेतांबर-मुनि में कुछ भी रखा है। क्या रखा है! कपड़े तो पहने ही हुए हो! ऊनी कपड़े का भी उपयोग कर लेते हो सर्दी होती है तो। दिगंबर-मुनि को देखो, कपड़े का उपयोग ही नहीं करता। सर्दी हो कि गर्मी हो, नग्न रहता है, नग्न ही जीता है। तो दिगंबर तुम्हें भी प्रभावित करेगा। नंबर दो पर श्वेतांबर आएगा। नंबर तीन पर हिंदू आएगा।

तो हिंदू साधु-संन्यासी की प्रतिष्ठा गिर गयी एकदम, बौद्ध और जैनों के प्रभाव में। हिंदू धर्म विलुप्त होने लगा। इसलिए शंकराचार्य ने अनुकरण किया। शंकराचार्य ने हिंदुओं में नयी परंपरा डाली ठीक बौद्धों और जैनों जैसे संन्यासी की। सब त्यागकर हिंदू-संन्यासी भी खड़ा हो।

जब मुसलमान हिंदुओं के संपर्क में आए, जैनों के, बौद्धों के संपर्क में आए, तब उनको भी लगा कि संन्यास तो असली यही है। संन्यासी हो तो ऐसा हो।

यह बात समझने जैसी है कि भोगी के मन में त्याग का बड़ा प्रभाव पड़ता है। यह तुम्हारा भोगी का मन है जो त्याग से प्रभावित होता है, फिर त्यागी में कुछ हो या न हो। क्योंकि नग्न खड़े हो जाने से कुछ नहीं होता है। और लोग जीवन के बड़े विरोधी हैं। यह भी एक संघर्ष की प्रक्रिया है। एक आदमी ठंड में खड़ा है नग्न, तुम्हें प्रभावित करता है। क्यों? क्योंकि यह भी एक तरह का संघर्ष कर रहा है। सर्दी को नहीं मानता। जूझ रहा है। यह भी एक तरह के अहंकार की प्रक्रिया है। तुम संसार में लड़ रहे हो, यह संन्यास में लड़ रहा है। मगर लड़ाई जारी है।

अब एक आदमी मजे से बैठा है दुशाला ओढ़कर शांति से, यह तुम्हें न जंचेगा कि इसमें क्या संघर्ष है! दुशाला ओढ़कर तो हम भी शांति से बैठ जाते हैं। एक आदमी छप्पर के नीचे शांति से बैठा है, यह तुम्हें प्रभावित न करेगा। एक आदमी धूप में खड़ा है, यह तुम्हें प्रभावित करेगा। एक आदमी अपने पैर पर खड़ा है, यह तुम्हें

प्रभावित न करेगा। एक आदमी सिर के बल खड़ा है, बीच बाजार में, भीड़ लग जाएगी। उलटे आदमी बहुत प्रभावित करते हैं।

इसलिए जैनों और बौद्धों का बड़ा प्रभाव पड़ा। मैं यह नहीं कह रहा हूं कि जैनों और बौद्धों के संन्यास में कुछ भी नहीं है, मैं सिर्फ प्रभाव का कारण बता रहा हूं। जैनों और बौद्धों के संन्यास में भी वही घटा जो हिंदुओं के ऋषि और मुनि को घट रहा था। क्योंकि उसका कोई संबंध नहीं है इस बात से कि घर में हो कि बाहर हो, वह कहीं भी घट जाता है। परमात्मा ने कोई शर्त नहीं लगा रखी है कि मैं यहीं घटूंगा। कपड़े पहनोगे तो नहीं घटूंगा, कपड़े नहीं पहनोगे तो घटूंगा। कि पत्नी होगी पास तो नहीं घटूंगा, कि पत्नी नहीं होगी पास तो घटूंगा। परमात्मा बेशर्त उपलब्ध है।

इसलिए उनको भी उपलब्ध हुआ है जो परिवार में थे। जनक जैसे व्यक्ति को भी उपलब्ध हो गया है, जो सम्राट था। और उनको भी उपलब्ध हुआ है जो सब छोड़कर जंगल में चले गए। क्योंकि परमात्मा बाजार में भी उतना है जितना जंगल में। परमात्मा सब जगह है, उसके अतिरिक्त कोई है ही नहीं। इसलिए उसे पाने के लिए कोई शर्त नहीं है।

यह मौज की बात है, किसी को नग्न होने में मौज आती है, वह नग्न हो जाए। मगर नग्नता को त्याग मत कहना, मौज कहना। कहना कि इस आदमी को नग्न होने में मजा आता है, यह प्रसन्न होता है। नग्न होने की भी मौज है। वस्त्रों में एक तरह का बंधन है। एक तरह का अटकाव है।

तुमने कभी देखा, एकांत में जाकर अगर नदी के किनारे तुम नग्न हो गए हो, सूरज की धूप तुम पर पड़ी है, हवाओं ने तुम्हें छुआ है, तो एक तरह की स्वतंत्रता का बोध होगा। इसलिए सारी दुनिया में जहां-जहां संस्कृति विकसित होती है, वहां-वहां नग्नता बढ़ने लगती है। नग्न क्लब बनते हैं। नग्न स्नान के लिए मुक्त बीच हो जाते हैं। बढ़ती जाती है। क्योंकि नग्नता में एक तरह की पुलक है। नग्नता में फिर तुम छोटे बच्चे के जैसे हो गए। जब वस्त्रों का आवरण भी न था, जब कुछ भी छिपाते न थे। जब सब सीधा-साफ था। तुम खुले-खुले थे, निष्कपट थे।

तो मैं नग्नता को त्याग नहीं कहता। मैं तो नग्नता को मौज कहता हूं। वह भी भोग का एक ढंग है। बहुत सामान तुम्हारे घर में हो, इससे तुम्हारी स्वतंत्रता कम होती है। क्योंकि जितना सामान हो उतनी चिंता होती है। सामान जितना कम हो, उतनी स्वतंत्रता होती है। जिसके पास सिर्फ जरूरत का है, उसकी स्वतंत्रता बड़ी होती है। तो त्याग नहीं कहता मैं त्याग को, मैं समझदारी कहता हूं। वह बुद्धिमानी है। त्याग कहने से गड़बड़ पैदा होती है। त्याग कहने से भोगी प्रभावित होता है। मैं उसे परमभोग कहता हूं। वह तुमसे ज्यादा समझदारी की बात है। क्यों झंझट पालो? क्यों बहुत तरह की झंझट में रहो? अगर झंझट के बिना रह सकते हो, तो खूब मजे की बात है। अगर झंझट में कोई नहीं है, तब तो फिर कोई बात ही नहीं है।

इसलिए मैं नहीं कहता जनक को कि तुम छोड़कर जाओ। और मैं नहीं कहता महावीर को कि तुम छोड़कर मत जाओ। मैं कहता हूं, महावीर की यह मौज है कि वह छोड़कर जाएं और नग्न होकर आनंद लें, यह उनका ढंग। मजे से लें। उन पर किसी का कोई बंधन नहीं होना चाहिए। और यह जनक की मौज कि उसे कोई अड़चन ही नहीं आ रही है राजमहल में, तो वह जाए क्यों? वह राजमहल में भी उसी परमदशा को उपलब्ध हो रहा है। तो ठीक है, वहीं उपलब्ध हो जाए।

अलग-अलग ढंग के लोग हैं। दुनिया में एक जैसे लोग नहीं हैं। अब तुम समझो इस बात को। एक सूफी कहानी है।

दो फकीर साथ-साथ रहते हैं। दोनों में बड़ा विवाद होता है। विवाद इस बात का था कि एक आदमी पैसा पास रखने में मानता था। वह कहता था, कुछ पैसे तो पास होने ही चाहिए। वक्त-बेवक्त जरूरत पड़ जाती है। उसकी बात भी गलत तो नहीं थी। दूसरा कहता है कि पैसे पास रखने से झंझट रहती है, रात ठीक से सो भी नहीं सकते, ख्याल बना रहता है, कोई चुरा न ले! कोई गठरी न ले जाए! और फिर पैसे पास रहते हैं तो यह ख्याल बना रहता है कि खर्च न हो जाएं। तो बचाए रखो, बचाए रखो। ये सब फिजूल की चिंताएं हैं। और फिर परमात्मा पक्षियों को दे रहा है, पौधों को दे रहा है, तो हमारी फिक्र न करेगा?

और वह दूसरा फकीर कहता कि परमात्मा ने तुम्हारी फिक्र की, तुमको बुद्धि दे दी, अब बुद्धि का मतलब यह है कि बुद्धि से चलो। बुद्धि कहती है, पैसा सम्हालकर रखो, थोड़ा पैसा पास रखो। पशु-पक्षियों को बुद्धि नहीं दी है, इसलिए उनकी फिक्र सीधी करता है। तुम्हारी सीधी फिक्र की कोई जरूरत नहीं। छोटा बच्चा है, तो बाप उसका हाथ पकड़कर चलता है। जवान हो गया, फिर हाथ पकड़कर चले तो बात भद्दी लगती है। आदमी जवान हो गया, आदमी प्रौढ़ हो गया। पशु-पक्षियों की सीधी फिक्र करता है, नहीं तो ये तो मर ही जाएंगे। आदमी की सीधी फिक्र नहीं करता है, क्योंकि आदमी अब अपनी फिक्र करने में खुद समर्थ हो गया। ऐसा उनमें विवाद चलता रहता।

पहला फकीर कहता कि यह सब अविश्वास है, परमात्मा पर तुम्हारी श्रद्धा नहीं है। अगर उस पर भरोसा है, तो जिसने आज तक फिक्र की, कल भी करेगा। आखिर मुझे देखो न! तुम्हीं तो नहीं जी रहे, मैं भी जी रहा हूं। बिना पैसे के भी जी रहा हूं।

एक दिन ऐसी घटना घटी कि दोनों यात्रा करके आए, जंगल में रास्ता भूल गए, एक नदी के किनारे पहुंचे। इस तरफ बड़ा खतरा था, रात रुकना बहुत मुश्किल था और नाव वाला रुपया मांगता था। एक रुपए से कम में उतारने को तैयार नहीं था। वह कहता, अब मैं घर जा रहा हूं, दिनभर से थक गया हूं, अब अगर चलना हो तो एक रुपया लूंगा। ऐसे तो दो पैसे में उतारता था! और जिसके पास पैसा था, उसने कहा, कहो, अब क्या इरादा है! उतरना कि नहीं उतरना? जो पैसे के खिलाफ था, वह सिर्फ मुस्कुराया, उसने कुछ कहा नहीं।

दोनों नाव में बैठे, पैसे वाले ने एक रुपया मांझी को दिया, दोनों उस तरफ उतर गए। तब उस पैसा देने वाले फकीर ने कहा, आज तो मानोगे कि हार गए! उसने कहा कि नहीं। उसने कहा, हद्द हो गयी, आज मेरे पास रुपया न होता तो हम मरते, उस तरफ जंगल खतरनाक था, जंगली जानवर थे, रात रुकना खतरे से खाली नहीं था। रुपया था तो हम पार हुए। उस दूसरे फकीर ने कहा, रुपए के होने की वजह से पार नहीं हुए, रुपया तुम दे सके, इसलिए पार हुए। रुपया छोड़ सके, इसलिए पार हुए। अगर तुम पकड़े रहते तो हम मरते उसी तरफ। विवाद अपनी जगह रहा।

दोनों बातें अर्थपूर्ण हैं। दोनों बातों की गहराइयां हैं। अमरीका में लोग सोचते हैं कि धन स्वतंत्रता लाता है। उस बात में भी सचाई है। धन एक तरह की स्वतंत्रता लाता है। धन पास न हो तो एक तरह की परतंत्रता होती है। तुम एक बड़े मकान में रहना चाहते हो, धन नहीं है तो नहीं रह सकते, तो परतंत्रता हो गयी। तुम एक बड़ी कार खरीदना चाहते हो, धन नहीं है तो नहीं खरीद सकते, तो परतंत्रता हो गयी। तुम आज इस होटल में जाकर भोजन करना चाहते थे, जेब खाली है तो नहीं जा सकते, तो परतंत्रता हो गयी। तो अमरीकन दलील में भी सार तो है। वह उस दूसरे फकीर की दलील है, जो कहता था, पैसे पास होने चाहिए, तो आदमी में बल होता है, स्वतंत्रता होती है। तो अमरीका में एक पकड़ है कि पैसा हो तो स्वतंत्रता होती है।

लेकिन महावीर और बुद्ध की बात भी गलत नहीं है। वे कहते हैं, पैसा हो तो चिंता होती है। और उनकी बात के लिए अमरीका में काफी प्रमाण हैं। चालीस साल की उम्र होते-होते जिस आदमी के पास पैसा है, या तो उसके पेट में अल्सर हो जाते हैं, या मस्तिष्क खराब होने लगता है, या हार्ट अटैक पड़ने लगते, कुछ न कुछ गड़बड़ शुरू हो जाती। अमरीका में तो कहा जाता है कि चालीस साल के हो गए और अगर हार्ट अटैक न हुआ तो इसका मतलब है, जिंदगी बेकार गयी। इसका मतलब है कि तुम असफल आदमी हो। सफल आदमी को तो होता ही है, चालीस-बयालीस साल, मतलब होना ही चाहिए। सफल आदमी का मतलब यह होता है कि इतना तनाव होगा कि हृदय दुर्बल हो जाएगा। क्या खाक सफलता मिली!

भिखमंगों को नहीं होता, यह बात सच है। चालीस-बयालीस साल क्या, उनको अस्सी साल तक भी नहीं होता। वे इस बीमारी को जानते ही नहीं। हमारे देश में भी यह ख्याल तो था, इसलिए हम इस तरह की बीमारियों को जैसे टुबरकोलेसिस को, क्षयरोग को राजरोग कहते थे। वह सिर्फ कभी राजाओं को होता था। फिर राजा तो रहे नहीं--सभी लोग राजा हो गए--इसलिए अब सभी को होने लगा।

सफलता की एक तकलीफ तो है, चिंता लाती है। तो महावीर और बुद्ध की बात में भी बल है। दोनों तर्क सही हैं।

मेरा ख्याल यह है कि दोनों तर्क अलग-अलग लोगों के लिए लागू हैं। अगर जनक को कितना ही धन दे दो तो भी अल्सर नहीं होगा, यह पक्का है। और हार्ट अटैक भी नहीं होगा, यह भी पक्का है। तुम्हें अगर अड़चन हो तो तुम लाकर धन मुझे दे सकते हो और परीक्षा ले सकते हो! लेकिन महावीर को तकलीफ होगी, बुद्ध को तकलीफ होगी, शंकर को तकलीफ होगी। तकलीफ होती हो तो छोड़ ही देना चाहिए। तकलीफ होती हो तो धन धन न रहा, मौत हो गयी।

दो तरह के लोग हैं दुनिया में। एक, जिन्हें वस्तुओं के कारण अड़चन होती है। तो उन्हें छोड़ ही देना चाहिए। एक, जिन्हें वस्तुओं के कारण कोई अड़चन नहीं होती। जो वस्तुओं का सरलता से उपयोग कर सकते हैं और जिससे उन्हें कोई अड़चन नहीं आती। उन्हें मजे से उपयोग करना चाहिए।

हिंदू, यहूदी, ईसाई, इस्लाम अगृही संन्यासी के पक्ष में नहीं हैं, गृही संन्यासी के पक्ष में हैं। जैन, बौद्ध और शंकर को मानने वाले हिंदू अगृही संन्यासी के पक्ष में हैं। मैं दोनों के पक्ष में हूं। किसी के विरोध में नहीं हूं। मैं मानता हूं, जो तुम्हें उचित लगता हो, उस तरफ से चल पड़ना। जिसमें तुम्हारा तालमेल बैठता हो, तुम्हारा सरगम जुड़ जाता हो, वही कर लेना।

लेकिन यह प्रश्न ठीक नहीं है पूछना कि "क्या कारण है कि विश्व की सभी संन्यास-परंपराओं में भिक्षावृत्ति और अगृही होने को सनातन रूप से महत्व दिया है?"

नहीं। सनातन रूप से तो दो परंपराएं हैं, यहूदी और हिंदू। ये बड़ी प्राचीन परंपराएं हैं। इन दोनों ने ही अगृही को कोई मूल्य नहीं दिया है। इन्होंने गृही संन्यासी को मूल्य दिया है। और मेरी दृष्टि यह है कि दुनिया में बहुत लोग अगृही नहीं हो सकते। व्यवस्थागत रूप से भी नहीं हो सकते। क्योंकि अगर बहुत लोग अगृही हो जाएं, तो अगृही को निर्भर तो गृही पर होना पड़ता है!

इसलिए अगर जैनों की बहुत संख्या नहीं बढ़ी तो कोई आश्चर्य नहीं है। बढ़ नहीं सकती। आखिर जैनों की संख्या ज्यादा कैसे बढ़ सकती है? अगर समझो कि हिंदुस्तान में बीस करोड़ जैन-मुनि हो जाएं, तो क्या करोगे? तब एक ही उपाय रहेगा कि मुनियों को मारो। जैसे अभी बर्थ-कंट्रोल के लिए फिक्र करनी पड़ती है, नसबंदी

करते हो, उनकी गलाबंदी करो। फिर उनके गले में फांसी लगाओ। क्योंकि बीस करोड़ अगर चालीस करोड़ के मुल्क में भिक्षावृत्ति करने लगें, तो भिक्षा देगा कौन?

ऐसा हो रहा है। थाइलैंड में चार करोड़ आबादी है, पचास लाख बौद्ध भिक्षु हैं। चार करोड़ की आबादी में पचास लाख भिक्षु! हर आठ आदमी में एक आदमी भिक्षु। सरकार को नियम बनाना पड़ रहा है कि अब भिक्षुओं को काम करना पड़ेगा। काम करना ही पड़ेगा उनको। करना ही चाहिए। नहीं तो यह एक आदमी महंगा पड़ रहा है। और यह संख्या रोज बढ़ती जाती है।

दुनिया में व्यवस्थागत रूप से भी अगृही संन्यासी योग्य नहीं है। कुछ लोग अगृही हो जाएं, ठीक है। उनको हम चला सकते हैं। जैसे कुछ लोग कवि हो जाते हैं, ठीक है। ऐसे कुछ लोग संन्यासी हो जाते हैं, ठीक है। इनसे समाज में सौरभ बढ़ता है। हां, कभी एकाध महावीर नग्न खड़े हो जाते हैं, बिल्कुल ठीक है। इससे समाज में कुछ कमी नहीं होती, समाज की गरिमा बढ़ती है। लेकिन अगर बीस करोड़ आदमी नग्न खड़े हो जाएं, तो समाज ही खो जाएगा, गरिमा की तो बात ही छोड़ दो।

इसलिए हिंदू और यहूदियों की पकड़ ज्यादा साफ है। ज्यादा व्यावहारिक है कि संन्यास ऐसा होना चाहिए जो जीवन की सहजता में फलित हो। जीवन के कोई अतिरिक्त ढांचे उसके लिए बनाने न पड़ें। आदमी घर में, दुकान पर बैठे-बैठे, काम करते-करते धीरे-धीरे संन्यस्त हो जाए। मरने की घड़ी आते-आते इस स्थिति में आ जाए कि जीवन को सरलता से छोड़ दे।

भविष्य में भी जैन और बौद्ध परंपरा का कोई बहुत बड़ा भविष्य नहीं है। भविष्य भी बौद्ध और जैन परंपरा को पाल नहीं सकेगा, सम्हाल नहीं सकेगा। यहूदी और हिंदू परंपरा भविष्य में भी सम्हाली जा सकती है। किसी भी स्थिति में सम्हाली जा सकती है।

लेकिन फिर भी मैं यह कहूंगा कि कुछ लोग सदा ही आनंदित होंगे सब छोड़कर। जो सब छोड़कर आनंदित हों, उनको भी मौका होना चाहिए, लेकिन यह शिक्षण बहुत गहरा नहीं होना चाहिए कि छोड़े बिना कोई परमात्मा को नहीं पहुंचता। क्योंकि इस कारण बड़ा उपद्रव होता है। जिनको छोड़कर कोई आनंद नहीं उपलब्ध होता, वे भी परमात्मा को पाने के लोभ में छोड़ देते हैं।

तुम देखो, महावीर की प्रतिमा है, कैसी प्रफुल्लित! कैसी स्वस्थ! कैसी शांत! तुम जैन-मुनि की कतार लगाकर देखो, वह बिल्कुल उदास, थका-मांदा, सुस्त, जीवन-ऊर्जा क्षीण। ऐसा नहीं लगता कि वह किसी आनंद को उपलब्ध हुआ है, सौंदर्य को उपलब्ध हुआ है, किसी अहोभाव को उपलब्ध हुआ है। वह हो भी नहीं सकता अहोभाव को उपलब्ध। भोजन पूरा लेता नहीं... ।

अभी वैज्ञानिक खोज करते हैं कि अगर तुम एक दिन भी सुबह का नाश्ता न लो, तो उस दिन तुम्हारी बौद्धिक क्षमता पैंतीस प्रतिशत कम हो जाती है। अब इस सबके लिए वैज्ञानिक प्रमाण हैं कि तुम्हारी बौद्धिक क्षमता तुम्हारे भोजन की पुष्टता पर निर्भर करती है। कितना पौष्टिक भोजन तुम लेते हो! क्योंकि तुम्हारा मस्तिष्क आत्मा से नहीं चलता है, तुम्हारा मस्तिष्क शरीर का हिस्सा है। और शरीर से रस बहते रहें तो ही चलता है।

अब अगर जैन-मुनि की प्रतिभा क्षीण हो जाती है, दुर्बल हो जाती है-- प्रतिभाशून्य हो जाता है, थोड़ा जड़ मालूम होने लगता है, कोई आश्चर्य नहीं है। होगा ही ऐसा, होना ही चाहिए। यह बिल्कुल वैज्ञानिक है। उपवास, एक बार भोजन, वह भोजन भी बहुत पौष्टिक नहीं--क्योंकि पौष्टिक भोजन से घबड़ाहट है। पौष्टिक भोजन का अर्थ है, वह तुम्हारे भीतर वीर्य-ऊर्जा को बनाएगा। और ब्रह्मचारी उससे घबड़ाता है, कि जैसे-जैसे

वीर्य बनेगा, वैसे-वैसे कामना उठेगी। तो वह ऐसा भोजन लेता है जिससे वीर्य न बने। मगर यह कोई ब्रह्मचर्य हुआ! यह तो कोई ब्रह्मचर्य न हुआ। और जब वीर्य-ऊर्जा नहीं बनती, तो जीवन से सारा तेज खो जाता है। ये भयभीत लोग हैं। इनको संन्यस्त कहो ही मत।

इसलिए मैं यह बात तुम्हें साफ करना चाहता हूं कि अगर किसी को आनंद आता हो छोड़ देने में, उदासी न आती हो, तो ठीक है, जरूर छोड़े। हम कुछ ऐसे लोग चाहेंगे दुनिया में जो सब छोड़कर जीएं। वे प्यारे लोग हैं। उनकी जगह होनी चाहिए। उनका सम्मान होना चाहिए। उनकी फिकर होनी चाहिए। लेकिन कोई आदमी अगर सिर्फ इसलिए छोड़ देता हो कि बिना छोड़े भगवान मिलने वाला नहीं, तो गड़बड़ खड़ी हो गयी। तो यह आदमी उदास होगा, क्षीण होगा, दीन होगा। इसकी प्रतिभा मरेगी। इस पर धूल जम जाएगी।

एक जैन-मुनि को मेरे पास लाया गया। उनके भक्त कहें कि बड़े तपस्वी हैं, आप तो देखते ही से प्रसन्न हो जाएंगे, स्वर्ण जैसी काया। मैंने कहा कि जरूर लाओ। स्वर्ण-कायाओं में मेरी उत्सुकता है। तुम जरूर ले जाओ। वे लाए। मैंने कहा, इसको तुम स्वर्ण-काया कहते हो? इसको पीतल की काया भी कहना ठीक नहीं। वह सिर्फ बिचारे रुग्ण हो गए हैं, पीले पड़ गए हैं। पीले पत्ते को स्वर्ण-काया कहते हो! इनको तुम मारे डाल रहे हो, स्वर्ण-काया कह-कहकर इनकी जान ले रहे हो। क्योंकि जब लोग स्वर्ण-काया कहते हों, तो यह और उसको स्वर्ण-काया बनाए जा रहे हैं। इनको तुम खाने नहीं देते, सोने नहीं देते, बैठने नहीं देते, उठने नहीं देते। तुम्हारा सारा सम्मान दुखवादी का सम्मान है।

तुम ख्याल रखना, जब तुम किसी को सम्मान देते हो तो सोचकर देना। कहीं तुम्हारे सम्मान के कारण उसके जीवन में कुछ गलत तो नहीं हो रहा है? अब अगर तुम उपवास करने वाले को सम्मान देते हो, तो सोचकर देना। कहीं ऐसा न हो कि वह तुम्हारे सम्मान पाने के लिए उपवास करता चला जाए। तो तुमने उस आदमी को भूखा मारा। उसका जिम्मा तुम्हारे ऊपर है। तुम हिंसक हो। तुम अगर किसी आदमी को इसलिए सम्मान देते हो कि यह खड़ा ही रहता है... ।

एक सज्जन, एक गांव में मैं गया, उनका नाम खड़ेश्वरी बाबा! वह खड़े ही हैं दस साल से। बैसाखियां लगा रखी हैं, हाथ ऊपर बांध रखे हैं उनके--पैर तो हाथी-पांव हो गए, सूज गए हैं--और लोग भीड़ लगाए हैं, रुपए चढ़ा रहे हैं, फूल चढ़ा रहे हैं। वह आदमी बिल्कुल ऐसा, ऐसा लटका है, जैसे कि तुम कभी-कभी कसाई-घर में बकरे इत्यादि को लटके हुए देखो। हालत उसकी खराब है। सारा शरीर रुग्ण हो गया है। क्योंकि दस साल से बैठा नहीं, लेटा नहीं, सोया नहीं। बस ऐसा रात में हाथ को रस्सी पकड़े हुए और शिष्य भी सहारा दिए रहते हैं, वह रात किसी तरह झपकी ले लेते हैं। पैर सूज गए हैं--अब तो वह बैठ भी नहीं सकते, अब तो पैर मुड़ भी नहीं सकते। और लोग पूजा किए जा रहे हैं।

और उन पूजा करने वालों को किसी को भी यह ख्याल नहीं है कि तुम सब पापी हो। तुम्हारा जिम्मा है, तुमने इस आदमी को बरबाद किया है। और यह किसी काम का नहीं है। सिर्फ खड़ेश्वरी होने से काम क्या है? प्रयोजन क्या है? इस आदमी ने कोई गीत लिखा, कोई चित्र बनाया, कोई मूर्ति खोदी, कोई सत्य खोजा? इस आदमी ने किया क्या है? नहीं, वे कहते हैं, यह सिर्फ खड़े हैं दस साल से। थोड़ा सृजनात्मक भी हो जीवन। सिर्फ खड़े होने का क्या मूल्य है? झाड़ खड़े हैं, पहाड़ खड़े हैं। मैं यह पूछता हूं, इसने किया क्या? वे कहते हैं, नहीं, करने की तो कोई बात ही नहीं है, बस महाराज खड़े हैं।

और तुम इनकी पूजा कर रहे हो कि महाराज खड़े हैं! थोड़ा सोचकर सम्मान देना। क्योंकि सम्मान बड़ा घातक हो सकता है। सम्मान अहंकार को भरता है। और जब अहंकार भरने लगे, तो आदमी कुछ भी करने को राजी हो जाता है। तुम किसी का अहंकार भरो, वह कुछ भी करने को राजी हो जाएगा।

इसलिए मैं मानता हूं कि कुछ लोग जरूर छोड़कर आनंदित होते हैं, उनको छोड़कर आनंदित होना चाहिए। कुछ लोग जरूर जंगल में जाकर परम प्रसाद को उपलब्ध होते हैं, उन्हें जंगल जाना चाहिए।

लेकिन ये थोड़े से लोग होंगे, इक्के-दुक्के, कभी-कभी। और ये होते रहें, अच्छा है। लेकिन यह संन्यास की सहज धारणा नहीं बननी चाहिए। बड़े पैमाने पर अधिक लोग तो संन्यस्त तभी हो सकेंगे जब जीवन की सहजता में संन्यास उतरे। दुकान जाते, घर काम करते, बेटे-बच्चों को पालते, पत्नी-पति की फिक्र करते, इस जीवन के घनेपन में संन्यास उतरे।

इसलिए मैंने संन्यास को एक नया रूप दिया। नया सिर्फ इसलिए कि पुराना खो गया, अन्यथा बहुत पुराना है। मैं जिसको संन्यासी कहता हूं... मेरे पास हिंदू आ जाते हैं, वे कहते हैं, यह कैसा संन्यास? मैं उनसे कहता हूं, तुम पागल हो गए हो! तुम अपने ऋषि-मुनियों को बिल्कुल भूल ही गए हो! वे घर में थे। कथाएं उपनिषद में पढ़ो।

जनक ने एक बहुत बड़ा शास्त्रार्थ का आयोजन करवाया और एक हजार गाएं खड़ी कर दीं महल के द्वार पर। उनके सींगों पर सोना मढ़ दिया और हीरे-जवाहरात जड़ दिए और कहा, जो शास्त्रार्थ में जीत लेगा, वह इन एक हजार गायों को ले जाएगा। याज्ञवल्क्य अपने विद्यार्थियों को लेकर आया गुरुकुल से। दोपहरी हो गयी थी और गाएं पसीने में खड़ी थीं, धूप पड़ रही थी। याज्ञवल्क्य ने अपने विद्यार्थियों से कहा, बेटे, गायों को तुम खदेड़कर ले जाओ आश्रम में, विवाद मैं निपटा लूंगा। जनक भी थोड़ा घबड़ाया। इतना भरोसा! कि जीत का इतना भरोसा!! किसी ने कहा भी कि महाराज, पहले विवाद तो आप जीत लें। उसने कहा, छोड़ो, गाएं धूप में बहुत थकी जा रही हैं! उसने तो अपने विद्यार्थियों को आज्ञा दे ही दी। और विद्यार्थी गाएं खदेड़कर ले भी गए। विवाद उसने बाद में जीत लिया।

अब यह जो आदमी एक हजार गाएं खदेड़कर ले गया आश्रम में, सोने से मढ़े थे उनके सींग, हीरे-जवाहरात लगे थे उनके सींगों पर, यह आदमी सीधा-सादा आदमी है। यह कोई त्यागी नहीं है। यह भोगी नहीं है यह बात पक्की है, लेकिन यह त्यागी भी नहीं है। यह एक और ही दशा है। यह साक्षीभाव की दशा है। यह सिर्फ द्रष्टामात्र है। यह सिर्फ देख रहा है।

जनक को यह बात जंची। जनक खुद भी द्रष्टाभाव में ही ठहरे हुए थे।

तो दो उपाय हैं। या तो छोड़कर भाग जाओ, या साक्षी हो जाओ। या तो भागो, या जागो। मेरा जोर जागने पर है। मैं मानता हूं कि कुछ लोग भागते रहें, उचित है। कुछ फूल अनूठे भी खिलते रहने चाहिए। लेकिन अनूठे फूलों के लिए सारी बगिया खराब नहीं की जा सकती। गुलाब भी खिले, ठीक है; गेंदा भी खिले, ठीक है; चंपा भी खिले, ठीक है; सब तरह के फूल खिलें। इस पृथ्वी पर सब तरह की संभावनाएं वास्तविक बनें। धर्म सभी तरह की संभावनाओं के द्वार खोलता है। और जो धर्म भी एक संभावना का द्वार खोलता है और शेष के बंद कर देता है, वह सभी के हित में नहीं है। उससे सबका हित नहीं हो सकता है।

चौथा प्रश्नः ओशो, यह घटना अत्यंत सच है। कल सुबह छह बजे टेप से आपका आधा प्रवचन सुना। तीन साल से सोचता था और सुनने के बाद मैंने निश्चय किया कि कल मुझे आपसे एक प्रश्न पूछना है। प्रश्न नीचे है।

प्रश्न की पहली पंक्ति थी--"अभी मैं आपकी नजर के सामने नहीं हूं, परंतु गत बारह वर्षों से आप निरंतर मेरी नजर के सामने हैं। आपसे मुझे सिर्फ एक प्रश्न पूछना है... "। यह निश्चित कर मैं कल प्रवचन में उपस्थित हुआ; तीन साल दरम्यान नहीं हुआ, सो हुआ। आपने प्रवचन में मेरा नाम लेकर मुझे आश्चर्य से भर दिया। मेरे पहले प्रश्न की पहली पंक्ति खंडित हो गयी। घटना अत्यंत छोटी लगती है, परंतु अत्यंत अदभुत है। अब प्रश्नः

1 दिसंबर 1971 को आप हमारे घर मेहमान थे। उस समय आपने मुझसे कहा था--"माणिक बाबू, आप इस झंझट से मुक्त हो जाओ।" आपका वचन वहीं छूट गया। 72-74 में स्वास्थ्य, वित्त, कुटुंब व समाज के तलों पर अच्छी उपलब्धि रही; यह सब आपके आशीर्वाद से हुआ, हम यही मानते हैं। 17 जून 1976 को मेरे पचास वर्ष पूरे हुए और मैंने संन्यास लिया। इसके बाद मैंने सामाजिक व्यवहार बहुत कम कर दिया। स्वास्थ्य की बात रही, तो 19 फरवरी को मुझे ज्ञात हुआ कि मुझे हृदय-रोग है। 21 मार्च को मालूम हुआ कि संजय गांधी हार गए, जिससे उनको दिया गया बड़ा धन--पांच लाख रुपए--झंझट में पड़ गया। परसों सुबह अग्निकांड में काफी नुकसान हुआ। और इन घटनाओं को मैं अपनी संन्यास की आंखों से देखता हूं--और अविचलित चित्त से देखता हूं। कष्ट तो है, पर क्या चित्त की शांति उससे अलग नहीं है?

पूछा है माणिक बाबू ने।

तो पहली तो बात, अगर मैं तुम्हारी आंखों के सामने सदा हूं, तो यह असंभव है कि तुम मेरी आंखों के सामने सदा न होओ। सच तो यह है, तुम मुझे अपनी आंखों के सामने सदा तभी रख सकते हो, जब मैंने तुम्हें अपनी आंखों के सामने सदा रखना शुरू कर दिया हो। तुम मेरी याद तभी कर सकते हो, जब मैं तुम्हारी याद कर रहा हूं।

लेकिन, बहुत बार तुम्हें ऐसा लगेगा कि शायद मैं भूल गया हूं। क्योंकि मेरे तुम्हें याद करने के अपने ढंग हैं। और वे स्थूल नहीं हैं। सच में तो स्थूल में मैं तभी तक याद तुम्हें दिलाता हूं कि मुझे तुम्हारी याद है, जब तक मैं देखता हूं अभी सूक्ष्म काम शुरू नहीं हुआ। जैसे ही सूक्ष्म काम शुरू हो जाता है, फिर स्थूल तल पर याद करने की कोई जरूरत नहीं रह जाती। जब तुम्हारा मुझसे मिलना भीतर शुरू हो गया, तो बाहर मिलना, न मिलना गौण हो जाता है। हो ही जाना चाहिए।

तो माणिक बाबू के मन में यह ख्याल उठना कि अभी मैं आपकी नजर के सामने नहीं हूं, परंतु गत बारह वर्षों से आप निरंतर मेरी नजर के सामने हैं, स्वाभाविक है। लेकिन मैं कहना चाहता हूं, तुम्हें तो कभी-कभी मेरी याद आती होगी, भूल-भूल भी जाते होओगे--स्वाभाविक है, और हजार काम हैं तुम्हें--मुझे तो और कोई काम ही नहीं है। मुझे तो सिर्फ जिनके जीवन में मेरे द्वारा काम शुरू हुआ है, उनको याद रखने के सिवाय और कोई काम ही नहीं है। मेरे पास और तो कोई झंझट नहीं है--न कोई दुकान है, न कोई बाजार है, न कोई बच्चे हैं, न कोई पत्नी है--मेरी तो सारी जीवन ऊर्जा उनको उपलब्ध है जो मेरे साथ चलने को राजी हुए हैं उस अनंत की यात्रा पर।

इसलिए तुम्हें आश्चर्य हुआ होगा, क्योंकि मैंने नाम लिया कल। लेकिन नाम लूं या न लूं, याद में फर्क नहीं पड़ता। नाम लेना पड़ा इसीलिए कि तुम्हारे मन में यह ख्याल आ गया था कि शायद मैं तुम्हें भूल ही गया हूं। तीन साल से नहीं लिया था नाम, यह बात सच है। इसलिए इस बात को, जो छोटी लगती है, छोटी मत समझना। उसमें तुम्हारे लिए बड़ा इशारा है। औरों के लिए भी इशारा है।

प्रश्न जो है, वह भी महत्वपूर्ण है।

कभी सब ठीक चला--धन, परिवार, स्वास्थ्य--तो तुमने माना था कि मेरी कृपा से हुआ। फिर संजय गांधी डूबे और तुम्हारे भी पांच लाख ले डूबे--वह औरों के भी ले डूबे, वह अपनी माताजी को भी ले डूबे--इसको भी तुम ऐसा ही समझना कि यह भी मेरी कृपा से हुआ। क्योंकि पांच लाख मिलें तो तुम मुझे धन्यवाद दो और पांच लाख खो जाएं तो तुम मुझे धन्यवाद न दो, तो फिर संग-साथ पूरा न हुआ। सुख आए तो तुम समझो मेरी कृपा से आया और दुख आए तो तुम मेरी कृपा न समझो, तो बात अधूरी रह जाएगी, बेईमानी की हो जाएगी।

ख्याल करना कि सुख से भी बड़ी संभावना दुख में है। क्योंकि आदमी सुख में तो सो जाता है, दुख में जागता है। घर बन जाए, तो स्वभावतः हम कहते हैं, हमारे गुरु की कृपा। घर जल जाए, तब भी तुम हिम्मत रखना कहने की कि हमारे गुरु की कृपा। जो घर बारै आपना चलै हमारे संग, कबीर ने कहा है, जो सब जला-जलूकर तैयार हो जाए वह हमारे साथ चल सकता है।

तो ठीक ही हुआ, माणिक बाबू! आग भी लग गयी, अग्निकांड में जल भी गया, संजय गांधी भी डूबे, पांच लाख भी ले गए, स्वास्थ्य को भी नुकसान पहुंचा है, हृदय भी दुर्बल हुआ है, यह सब भी ठीक है। इस सबको भी वरदान में बदला जा सकता है। सिर्फ जागकर इसे देखना, इससे तादात्म्य मत बनाना।

जो घर जल गया, वह अपना था ही नहीं। और जो हृदय दुर्बल हो गया है, वह भी तुम्हारा असली हृदय नहीं है। और जो शरीर बूढ़ा होने लगा है, वह भी तुम नहीं हो। और जो रुपए तुम्हारे डूब गए, उसमें तुम्हारा क्या था! किसका क्या है! हम ऐसे ही आते बिना कुछ लिए और बिना कुछ लिए जाते।

इसमें अगर हम साक्षी हो पाएं, जागकर देख पाएं, तो परमप्रसाद उपलब्ध होता है। और ध्यान रखना, दुख में जागने की संभावना ज्यादा है। सुख में तो आदमी सो जाता है। सुख में जागना ही कौन चाहता है! जब तुम कोई सुखद सपना देख रहे हो, फिर कोई जगाने लगे, तो तुम कहते हो, ठहरो भी, ठहरो भी! अभी पूरा सपना तो हो जाने दो! लेकिन दुखद सपने में कोई जगाए तो तुम धन्यवाद देते हो।

फिर ख्याल करना, कहते हैं न हम कि दुख में भगवान की याद आती है। दुख में हमें दिखायी पड़ना शुरू होता है इस जगत का सत्य। सुख में तो आंखों पर पर्दे पड़ जाते हैं और झूठ सच मालूम होने लगता है। दुख में असलियत दिखायी पड़ती है। बुद्ध के चार आर्य सत्य--कि दुख है, पहला आर्य सत्य अनुभव में आना शुरू होता है। बुद्ध के वचन सार्थक होने शुरू होते हैं कि दुख है, जरूर दुख है।

अब इस दुख के साथ अपना तादात्म्य मत करना, ऐसा मत सोचना कि मैं दुख हूं--तो सौभाग्य की घटना घट जाएगी। दूर खड़े रहना, देखते रहना, जो हो रहा है, वह दृश्य है, मैं देखने वाला हूं। अगर हम द्रष्टा होकर खड़े हो जाएं, तो फिर कोई विचलित कर नहीं पाती बात; फिर हम असंग मन, निर्लिप्त मन, अकंप मन अपने भीतर इतने दूर बने रहते हैं इस जगत में होकर, जितने दूर हुआ जा सकता है। जगत में होना और जगत में न होना एक साथ घट जाते हैं। और जब दोनों बातें एक साथ घटती हैं, तभी कुछ घटा, तभी जानना कुछ घटा, तभी जानना कि मेरा संन्यास फलित हुआ।

तो माणिक बाबू, ठीक ही हुआ है। इस सबको सौभाग्य मानना। इस सबके बीच शांतभाव से देखते रहना। यह भी चला जाएगा।

एक सूफी कहानी है। एक सम्राट बूढ़ा हुआ। उसने अपने वजीरों को कहा कि मुझे कुछ ऐसा सूत्र चाहिए जो हर हालत में काम आ जाए। वजीरों ने बहुत सोचा-- ऐसा सूत्र जो हर हालत में काम आ जाए! उनकी कुछ समझ में न पड़ा, वे एक फकीर के पास गए। उस फकीर ने एक सूत्र लिखा एक कागज पर, एक अंगूठी में बंद किया और सम्राट को लाकर अंगूठी दे दी और कहा, इसे खोलना तभी जब और कोई सहारा न रह जाए। जब

सब तुम जो कर सकते हो कर चुके होओ और कुछ सहारा न रह जाए, तभी खोलना, जल्दी मत खोलना। यह सूत्र ऐसा है कि कठिनाई की आखिरी घड़ी में ही इसका अर्थ प्रगट होगा।

सम्राट ने अंगूठी पहन ली। कई बार उत्सुकता भी जगी, लेकिन वचन दे दिया था तो खोला नहीं। फिर देश पर हमला हुआ कोई दस साल बाद, सम्राट हार गया, भागा अपने घोड़े पर; जंगल में दुश्मन पीछा कर रहे हैं, दुश्मन करीब आते जाते हैं, उसकी घबड़ाहट बढ़ती जाती है, तभी उसे अचानक अपने हाथ में अंगूठी की याद आयी। और तभी वह घड़ी भी आ गयी, लेकिन उसने सोचा कि अभी भी ऐसी घड़ी कहां आयी है, अभी भी बच सकता हूं, अभी भी कुछ कर सकता हूं। लेकिन वह घड़ी भी आ गयी। आगे जाकर रास्ता समाप्त हो गया, नीचे खाई थी, पीछे लौट नहीं सकता था, दुश्मन करीब आता जा रहा है, घोड़ों की टाप और भी करीब आने लगी, और भी करीब आने लगी। उसने आखिरी क्षण तक धीरज रखा, जब उसे लगा कि बस अब क्षणभर की देर है कि दुश्मन आ जाएंगे, उसने अंगूठी खोली, कागज निकाला। कागज में कुछ भी न था, एक छोटा सा वाक्य लिखा था--दिस टू विल पास, यह भी बीत जाएगा।

एक क्षण में जैसे बिजली एक कौंध गयी। एक क्षण में उसे दिखायी पड़ा अपना सब जीवन; सब बीत गया, तो स्वभावतः यह भी बीत जाएगा, रुकता क्या है? बचपन नहीं रुका, जवानी नहीं रुकी; पिता नहीं रुके, पत्नी नहीं रुकी, बेटे नहीं रुके; कुछ नहीं रुका। आया और गया; गंगा कितनी बह गयी! जीवन के इस चित्र को देखते ही वह तो भूल ही गया क्षणभर को कि दुश्मन पास हैं। और जब वह जागा, इस जीवन की कथा से, तो अचानक उसने पाया--घा.ेड़ों की टाप सुनायी नहीं पड़ती। वे किसी और दिशा में मुड़ गए थे।

सात दिन बाद वह पुनः जीत गया। वापस अपने महल में आ गया। जब महल में आया तो बड़ा उसका स्वागत हुआ। अशर्फियां लुटायी गयीं, फूल फेंके गए, सारे गांव में दीपमालिका जलायी गयी, सारा गांव पागल होकर नाचा, उत्सव मनाया। जब यह सारे उत्सव में अपने हाथी पर सवार उसकी शोभायात्रा निकल रही थी, तब एक क्षण को फिर उसने अंगूठी खोली। ये सुख! उसने फिर वह कागज पढ़ा--यह भी बीत जाएगा। उसने अंगूठी वापस कर ली, जैसा वह अलिप्त हो गया था दुख की घड़ी में, वैसा ही अलिप्त हो गया सुख की घड़ी में भी।

कहते हैं, वह सम्राट बिना कुछ किए समाधि को उपलब्ध हो गया।

तो माणिक बाबू, इन घड़ियों का उपयोग करना। जो हो, होता है, बीत जाता है। एक ही चीज है हमारे भीतर जो कभी नहीं बीतती, वह हमारा साक्षीभाव है। वही है शाश्वत, सनातन, सदैव। उस एक को पकड़कर ही आदमी परमात्मा के द्वार तक पहुंच जाता है।

आखिरी प्रश्नः आपको सुनकर आंसू ही आंसू बहते हैं, रोके नहीं रुकते। मैं क्या करूं?

इससे शुभ और क्या होगा? आंसू बहते हैं अर्थात आंसू कुछ कहते हैं।

आंसू दुख के ही थोड़े होते हैं, आंसू आनंद के भी होते हैं। और आंसू सदा उदासी का ही थोड़े प्रमाण लाते हैं, आंसू उत्सव की भी खबर लाते हैं। आंसू का तो एक ही अर्थ होता है--कुछ, जो हम शब्दों से नहीं कह पाते, वह आंसुओं से कहना पड़ता है। आंसू तो बड़ी गहरी अभिव्यक्ति है।

आंसू का अर्थ पूछते हो?

आंसू के अर्थ यदि भाषा में समा पाते

तो फिर मैं रोता क्यों,

कविता और कहानी न लिखता!

जब भाषा असमर्थ हो जाती है

आंख से आंसू बहते हैं,

जो बात हम किसी भी विधा में नहीं कह पाते

उसे रो-रोकर कहते हैं।

आंसू कुछ कहते हैं। कुछ ऐसा कहते हैं जो और किसी विधा में कहा नहीं जा सकता। कुछ ऐसा कहते हैं जो शब्दों में अंटता नहीं, बंधता नहीं। शब्दों की सीमा है, आंसू असीम हैं।

तो आंसू के संबंध में एक बात समझना, जब भी तुम्हारे मन में कोई भाव इतना घना हो जाएगा--चाहे दुख, चाहे सुख; चाहे शांति, चाहे अशांति; चाहे उदासी, चाहे उत्सव--कोई भी भाव जब इतना घना हो जाएगा कि तुम उसे सम्हाले न सम्हाल सकोगे, तो वही भाव आंसुओं में बहता है। आंसू निर्भार करते हैं।

और इनको कुछ रोकना मत। कभी-कभी मेरी बात सुनकर आनंद के आंसू बहेंगे। और कभी-कभी मेरी बात सुनकर तुम्हें अपने सारे जीवन का दुख याद आ जाएगा, सारे जीवन की व्यर्थता याद जा जाएगी, सारे जीवन का घाव जैसे मैंने छू दिया हो, पीड़ा बहने लगेगी, तब भी आंसू बहेंगे। दोनों हालत में शुभ हैं। आंसू तो इतना ही कह रहे हैं कि तुमसे मेरे हृदय का नाता हो गया, अब नाता बुद्धि का न रहा। और बुद्धि का जब तक नाता है, तुम विद्यार्थी; जिस दिन हृदय का हो गया, उस दिन शिष्य। जब तक बुद्धि का नाता है, तब तक मैं तुम्हारा शिक्षक; जिस दिन हृदय का हो गया, उस दिन गुरु। जिस दिन तुमने आंसुओं से सेतु बना लिया, जिस दिन तुमने आंसुओं में पातियां लिखकर मेरी तरफ भेज दीं... ।

दर्द स्वयं ही मचल गया है

गीतों का अपराध नहीं है।

जो कुछ भी मुझको मिल पाया

उतने से संतोष मुझे था

घिरा अभावों की सीमा में

फिर भी तो परितोष मुझे था

पर अब अकुलाया-सा धीरज

असहयोग करने को आतुर

अश्रु स्वयं ही ढलक गए हैं

पलकों का अपराध नहीं है।

गीतों का अपराध नहीं है।

बादामी नयनों से प्रतिपल

दिया तुम्हीं ने नेह निमंत्रण

समझ-बूझ आंचल उलझाया

फिर क्यों मुझ पर दोषारोपण

रतनारे सपनों ने पढ़ ली

मिलनातुर मंत्रों की भाषा

सोम स्वयं ही छलक गया है

अधरों का अपराध नहीं है।

गीतों का अपराध नहीं है।

प्यार भरे दो शब्द कहे थे

पर तुमने रच दिए कथानक

ज्ञात नहीं था बदनामी के

विहग उड़ेंगे कभी अचानक

आकर्षण की विषकन्या से

अनजाने ही ब्याह रचाया

सुरभि स्वयं ही बिखर गयी है

भ्रमरों का अपराध नहीं है।

गीतों का अपराध नहीं है।

अश्रु स्वयं ही ढलक गए हैं

पलकों का अपराध नहीं है।

गीतों का अपराध नहीं है।

दर्द स्वयं ही मचल गया है

गीतों का अपराध नहीं है।

जो स्वयं हो, शुभ। जो सहज हो, शुभ। आंसू बहें तो रोकना मत। न बहें तो बहाने की चेष्टा मत करने लगना। जो सहज हो, शुभ। जो असहज हो, अशुभ। आंसू बहें तो बह जाने देना, संकोच मत करना। यहां कोई लोकलाज थोड़े ही करनी है! कहा न मीरा ने--सब लोकलाज खोयी। यहां भी रोके रखोगे आंसुओं को तो फिर कहां रोओगे?

और अगर आंसू रोक लिए, तो फिर मुस्कुराहट भी रुक जाएगी। क्योंकि उसी द्वार से मुस्कुराहट भी आती है, जहां से आंसू आते हैं। वहीं से गीत भी पैदा होते हैं, जहां से आंसू पैदा होते हैं। वहीं से उत्सव भी झरता है, जहां से उदासी पैदा होती है।

तुम हल्के बनो, तुम सहज बनो। जो आए, उसे आने दो। जैसा आए, वैसा ही आने दो। तुम जरा भी हेर-फेर न करना।

दोनों तरह की संभावनाएं हैं। कुछ लोग जो नहीं रो सकते, वे भी चेष्टा कर सकते हैं रोने की, वह गलत हो जाएगी। अभी अपने से नहीं आए हैं तो प्रतीक्षा करो। और कुछ लोग जो रो सकते हैं, उनको भी भय लगता है कि रोना कि नहीं! कोई क्या कहेगा! पास-पड़ोस के लोग क्या सोचेंगे! गांव में खबर होगी तो लोग समझेंगे पागल! बुद्धि खराब हो गयी? तो तुम भी प्रभावित हो गए, सम्मोहित हो गए? लोग कुछ-कुछ कहेंगे। तो आदमी रोकता है।

नहीं, रोकना मत। क्योंकि यहां अगर हम कुछ भी काम करने इकट्ठे हुए हैं, तो वह काम सहजता में ही हो सकता है। यहां तो मैं एक गीत गा रहा हूं। यहां तो मैं तुम्हारे हृदय के तारों को छेड़ने की कोशिश कर रहा हूं। यहां कुछ सिद्धांत थोड़े ही दिए जा रहे हैं, यहां तो एक साधना की जा रही है।

मधुर-मधुर कुछ गा दो मालिक।

प्रणय-प्रलय की मधुसीमा में

जी का विश्व बसा दो मालिक।

रागें हैं लाचारी मेरी

तानें बान तुम्हारी मेरी

इन रंगीन मृतक खंडों पर

अमृतरस ढुलका दो मालिक

मधुर-मधुर कुछ गा दो मालिक।

संस्कृति का बोझ न छू

छू मत इतिहास लोक

छू मत माया न ब्रह्म

छू मत तू हर्ष-शोक

सिर पर मत रख अतीत

एक गीत,

एक गीत,

मधुर-मधुर कुछ गा दो मालिक।

प्रणय-प्रलय की मधु सीमा में

जी का विश्व बसा दो मालिक।

गीत हो

कि जी का हो

जी से मत फीका हो

आंसू के अक्षर हों

स्वर अपने ही का हो

प्रलय हार,

प्रलय गीत,

एक गीत,

एक गीत,

मधुर-मधुर कुछ गा दो मालिक।

प्रणय-प्रलय की मधु सीमा में

जी का विश्व बसा दो मालिक।

यहां तो प्रभु का गीत तुम सुन सको, इसका प्रयास चल रहा है। मैं तुम्हारे हृदय के तार छेड़ सकूं, इसके लिए तुम्हें राजी कर रहा हूं। ये सारी बातें, कि गीता की, कि धम्मपद की, कि जिन-सूत्रों की, बहाने हैं। इन बहानों से तुम्हारे हृदय के तार किसी तरह छिड़ जाएं, उनमें झंकार उठे। तुम सहज होओगे तो ही झंकार उठ सकेगी। मैं चाहता हूं, तुम रोमांचित हो जाओ, तुम्हारा रोआं-रोआं कंपने लगे प्रभु के लिए पुकार से, सत्य की आकांक्षा से, अभीप्सा से। उस यात्रा में सहजता पाथेय है--पुण्य-पाथेय। वही कलेवा है उस यात्रा में मार्ग का।

तो जिनकी आंखें सक्षम हैं रोने को, रोकना मत। उन्हीं आंखों से अभी आंसू बहते हैं, उन्हीं आंखों से रोशनी भी बहेगी। आंसू साफ कर देंगे रास्ते को, ताकि रोशनी बह सके।

और यह जो घटना घटती है, यह बुद्धि की नहीं है, हृदय की है। यह जी की है, ही की है। इसे तो वे ही पा सकते हैं जो पागल होने को तैयार हैं। यह मतवालों की दुनिया है। यहां तुम्हें मैं थोड़ी शराब पिला सकूं, तो काम पूरा हो गया। यहां से तुम थोड़े डगमगाते लौटो, तो मैं सफल हुआ। तुम कहीं पैर रखो और कहीं पड़ने लगें, तो बात हो गयी। एक तरफ तुम बेहोश हो जाओ तो दूसरी तरफ होश जगता है। इस संसार के प्रति बेहोशी आ जाए तो परमात्मा के प्रति होश आता है। यहां तुम अगर बहुत ज्यादा होश में जीए, सम्हल-सम्हलकर जीए, नियंत्रण से जीए, तो परमात्मा में कभी भी न जाग सकोगे।

और ध्यान रखना, धन्यभागी हैं वे, जो यहां सो जाएं और वहां जाग जाएं।

तो लोकलाज की फिकर छोड़ो।

पूछा है, "आपको सुनकर आंसू ही आंसू बहते हैं, रोके नहीं रुकते, अब मैं क्या करूं?"

रोओ! करने को क्या है! कर-करके तो तुमने सब खराब किया है। करने से ही तो कर्म पैदा हुआ है। करो मत। अब होने में बहो।

आज इतना ही।

इक्कासीवां प्रवचन

ध्यान की खेती संतोष की भूमि में

ददाति वे यथासद्धं यथापसादनं जनो।
तत्थ यो मङ्कु भवति परेसं पानभोजने।
न सो दिवा वा रत्तिं वा समाधिं अधिगच्छति।। 206।।

यस्स च तं समुच्छिन्नं मूलघच्चं समूहतं।
सवे दिवा वा रत्तिं वा समाधिं अधिगच्छति।। 207।।

नत्थि रागसमो अग्गि नत्थि दोससमो गहो।
नत्थि मोहसमं जालं नत्थि तण्हासमा नदी।। 208।।

सुदस्सं वज्जमोंंसं अत्तनोपन दुदृशं।
परेसं हि सो वज्जानि ओपुणात यथाभुसं।
अत्तनोपन छादेति कलिं"व कितवा सठो।। 209।।

परवज्जानुपस्सिस्स निच्चं उज्झानसिंंनो।
आसवातस्स बड्ढन्ति आरा सो आसवक्खया।। 210।।

आकासे च पदं नत्थि समणो नत्थि बाहिरे।
पपंचाभिरता पजा निप्पपंचा तथागता।। 211।।

आकासे च पदं नत्थि समणो नत्थि बाहिरे।
संखारा सस्सता नत्थि नत्थि बुद्धानमिंजतं।। 212।।

सूत्र-संदर्भ--पहला दृश्यः

भगवान जेतवन में विहरते थे। पास के किसी गांव से आए एक युवक ने संन्यास की दीक्षा ली। वह सबकी निंदा करता था। कारण हो तब तो चूकता ही नहीं था, कारण न हो तब भी निंदा करता था। कारण न हो तो कारण खोज लेता था। कारण न मिले तो कारण निर्मित कर लेता था। कोई दान न दे तो निंदा करता और कोई दान दे तो कहता--अरे, यह भी कोई दान है! दान देना सीखना हो तो मेरे परिवार से सीखो। वह अपने परिवार की प्रशंसा में लगा रहता। शेष सारे संसार की निंदा, अपने परिवार की प्रशंसा, यही उसका पूरा काम था।

अपनी जाति, अपने वर्ण, अपने कुल, सभी की अतिशय प्रशंसा में लगा रहता। उसके अहंकार का कोई अंत न था। शायद इसीलिए वह संन्यस्त भी हुआ था।

एक बार कुछ भिक्षु उसके गांव गए तो पाया कि जैसे वह व्यर्थ ही दूसरों की निंदा करता था, वैसे ही व्यर्थ ही अपने कुल-परिवार की प्रशंसा भी करता था। उसके परिवार की तो कोई स्थिति ही न थी। वह तो अत्यंत हीनवृत्तियों वाले परिवार से आया था।

भिक्षुओं ने यह बात भगवान को कही। भगवान ने कहा, हीनभाव ही श्रेष्ठता का दावेदार बनता है। जो श्रेष्ठ हैं, उन्हें तो अपने श्रेष्ठ होने का पता भी नहीं होता है। वही श्रेष्ठता का अनिवार्य लक्षण भी है। फिर यह भिक्षु न केवल इसी समय ऐसा करता घूमता है, पहले भी ऐसा ही करता था--और-और जन्मों में भी ऐसा ही करता था। जन्म-जन्म इसने ऐसे ही गंवाए हैं। जितनी शक्ति इसने दूसरों की निंदा और स्वयं की प्रशंसा में व्यय की है, उतनी शक्ति से तो यह कभी का निर्वाण का अधिकारी हो गया होता। उतनी शक्ति से तो न-मालूम कितनी बार भगवत्ता उपलब्ध कर ले सकता था। भिक्षुओ, इससे सीख लो। दूसरों की निंदा, दूसरों का नहीं, अपना ही अहित करती है। यह दूसरों के बहाने अपनी ही छाती में छुरा भोंकना है। अपने पर दया करो और अपने अकल्याण से बचो, क्योंकि मनुष्य अपना ही शत्रु और अपना ही मित्र है।

उस युवक ने अत्यंत क्रोध से पूछा, कोई दान न दे तो हम कैसा भाव रखें? कोई दुतकारे तो हम कैसा भाव रखें? और कोई हमें तो दान न दे और दूसरों को दान दे, तो हम कैसा भाव रखें? उस दिन उसने भगवान को भगवान कहकर भी संबोधित नहीं किया। मनुष्य की श्रद्धाएं भी कितनी छिछली हैं!

इस पृष्ठभूमि में भगवान ने आज की पहली दो गाथाएं कहीं।

"लोग अपनी श्रद्धा-भक्ति के अनुसार देते हैं। जो दूसरों के खान-पान को देखकर सहन नहीं कर सकता, वह दिन या रात कभी भी समाधि को प्राप्त नहीं कर पाएगा।"

"जिसकी ऐसी मनोवृत्ति उच्छिन्न हो गयी है, समूल नष्ट हो गयी है, वही दिन या रात कभी भी समाधि को प्राप्त करता है।"

ददाति वे यथासद्धं यथापसादनं जनो।
तत्थ यो मङ्कु भवति परेसं पानभोजने।
न सो दिवा वा रत्तिं वा समाधिं अधिगच्छति।।
यस्स च तं समुच्छिन्नं मूलघच्चं समूहतं।
सवे दिवा वा रत्तिं वा समाधिं अधिगच्छति।।

पहले तो इस पृष्ठभूमि का ठीक-ठीक विश्लेषण समझें। कथा छोटी, सीधी- सादी है, पर अत्यंत मनोवैज्ञानिक है।

भगवान के पास एक युवक ने दीक्षा ली। और कथा कहती है कि शायद इसीलिए दीक्षा ली कि वह युवक अत्यंत अहंकारी था।

यह बात पहले समझ लेने जैसी है। लोग धन भी जोड़ते अहंकार के लिए और त्याग भी करते अहंकार के लिए। पहले अकड़कर चलते हैं कि कितना उनके पास है, फिर अकड़कर चलते हैं कि कितना उन्होंने छोड़ दिया। जितना उनके पास है, उसे भी बहुत-बहुत गुना करके बतलाते हैं। जो छोड़ा है, उसे भी बहुत-बहुत गुना करके

बतलाते हैं। लेकिन हर हालत में आदमी अपने अहंकार को ही भजता है। मैं कुछ विशिष्ट हूं; मैं कुछ अनूठा हूं, अद्वितीय हूं; मैं कुछ अलग हूं, औरों जैसा नहीं हूं; मैं असाधारण हूं, सामान्य नहीं; इसी चेष्टा में आदमी लगा रहता है। कभी धन कमाकर, कभी बड़ी दुकान चलाकर, कभी किसी बड़े पद पर प्रतिष्ठित होकर, कभी सबको लात मारकर, लेकिन सबके पीछे मूल आधार एक ही है कि मैं कोई साधारण आदमी नहीं।

आदमी साधारण से बड़ा डरता है। सोचो, यह भाव ही कि मैं साधारण हूं, छाती पर पत्थर जैसा रख जाता है। यह ख्याल ही कि मैं असाधारण हूं, विशिष्ट हूं, कुछ अनूठा हूं, और तुम्हें पंख लग जाते हैं।

लेकिन अगर तुम असाधारण हो, तो सभी कुछ असाधारण है। पत्ते, फूल, पत्थर, चांद-तारे, सभी कुछ असाधारण है। और अगर सभी कुछ असाधारण है, तो फिर साधारण-असाधारण का भेद ही क्या! जिन्होंने जाना है, उन्होंने कहा है, न तो कोई साधारण है, न कोई असाधारण। अस्तित्व एक है, इसलिए कौन साधारण होगा, कौन असाधारण होगा।

तो या तो कहो, सभी साधारण हैं, तब भी सच; या कहो, सभी असाधारण हैं, तब भी सच; लेकिन एक को साधारण और एक को असाधारण करने में भूल हो जाती है। कोटियां बांटीं कि भूल हो जाती है, वर्ग बांटे कि भूल हो जाती है, वर्ण बनाए कि भूल हो जाती है। कहा कि ब्राह्मण-शूद्र, भूल हो गयी; कहा कि ऊंचा-नीचा, भूल हो गयी; कहा कि शुभ-अशुभ, भूल हो गयी। जहां तक भेद है और जहां तक द्वंद्व है, वहां तक संसार है

तो एक आदमी कहता है कि देखो, मैं कितना बुद्धिमान; और एक आदमी कहता है, देखो मेरे पास कितना धन; और एक आदमी कहता है, देखो मेरे पुण्य, मैंने कितना पुण्य किया--इनमें कोई फर्क है? इनमें कोई भी फर्क नहीं। जब तक आदमी कहता है, देखो, मैं विशिष्ट, तब तक कोई फर्क नहीं है।

इस जगत में जो आदमी साधारण होने को राजी है, वही असाधारण है। जो यह कहने को राजी है कि मैं अति साधारण हूं, उसकी ही असाधारणता सुनिश्चित है। क्यों? क्योंकि प्रत्येक को असाधारण होने का ख्याल है, इसलिए असाधारण का भाव तो बड़ा साधारण है। तुम अगर कुत्ते से पूछो, घोड़े से पूछो, पशु-पक्षियों से पूछो, अगर वे बोल सकते तो वे भी कहते कि तुम हो क्या! आदमी मात्र! असाधारण हम हैं। तुम पत्थर से पूछो, अगर पत्थर बोल सकता तो वह भी कहता कि तुम तो बस आदमी हो, आज हुए, कल गए, हम सदा रहते हैं, हम असाधारण हैं। कोई न कोई बात खोज ही लेगा जिसके कारण असाधारण की घोषणा हो सके। असाधारण की घोषणा में अहंकार है। साधारण होने के भाव में अहंकार विसर्जित हो गया।

और मजा यह है कि साधारण होते ही तुम असाधारण हो जाते हो। क्योंकि साधारण होने की भावदशा बड़ी असाधारण भावदशा है। कभी कोई बुद्ध, कभी कोई कृष्ण, कभी कोई क्राइस्ट उस दशा को उपलब्ध होते हैं।

यह कथा कहती है, उस युवक ने अहंकार के कारण ही शायद संन्यास लिया।

यदि कोई अहंकार के कारण ही संन्यास ले तो संन्यास व्यर्थ हो गया। अहंकार से जागकर कोई संन्यास ले तो संन्यास की सार्थकता है। कोई यह देखकर संन्यास ले कि अहंकार व्यर्थ है, दुख लाता है, नर्क है, और अहंकार को छोड़कर जागे, तो संन्यास है। नहीं तो संसार से संन्यासी हो गए, अहंकार वैसा का वैसा रहा, तो रोग पुराना रहा, नाम बदल लिया। भीतर तो पुराना ही कचरा रहा, ऊपर रंग-रोगन कर लिया। यह झूठ चल नहीं सकता। इस झूठ का कोई ज्यादा अर्थ नहीं है, यह प्रगट हो जाएगा।

इसलिए युवक संन्यासी तो हो गया, लेकिन पुरानी आदत न छूटी। पुरानी आदत थी अपने को विशिष्ट मानने की। अब अपने को विशिष्ट मानना हो, तो दूसरे कुछ भी नहीं हैं, यह सिद्ध करना जरूरी है। दूसरों की

निंदा जरूरी है। अहंकार की छाया की तरह दूसरों की निंदा चलती है। दूसरे कुछ भी नहीं हैं, यह बताना ही पड़ेगा। यह रोज-रोज बताना पड़ेगा।

तो वह युवक निंदा करने में संलग्न रहता। और अब निंदा कर भी सुविधा से सकता था, क्योंकि संन्यासी था।

तुम जाओ मंदिरों में, आश्रमों में, तुम्हारे तथाकथित साधु-संन्यासी को सुनो, वह निंदा कर रहा है। वह उन चीजों की निंदा कर रहा है, जिनका तुम भोग करने में आतुर-उत्सुक हो। और शायद वह भी तुम्हें इसीलिए प्रभावित करता है कि उन्हीं बातों की निंदा करता है, जिनमें तुम्हारा रस है। तुम भी जानते हो कि तुम्हारा रस है। उसका भी रस है, नहीं तो निंदा कभी की खो गयी होती। जब कोई साधु-संन्यासी समझाता हो कि धन मिट्टी है, तो जानना कि उसे धन में अभी भी धन दिखायी पड़ता है। क्योंकि वह यह तो नहीं समझाता कि मिट्टी मिट्टी है। धन मिट्टी है!

जब कोई साधु-संन्यासी समझाता हो कि स्त्री के शरीर में क्या है, हड्डी, मांस-मज्जा, मल-मूत्र, और कुछ भी नहीं है, जब वह तुम्हें ऐसा समझाता हो तो जान लेना, उसे अभी स्त्री का रूप आकर्षित करता है। वह तुम्हें नहीं समझा रहा है, तुम्हारे बहाने अपने को समझा रहा है। जब वह सांसारिक जीवन की निंदा करता हो, तो वह यह कह रहा है कि देखो, हम संन्यासी कैसे पवित्र, कैसे पुण्य को उपलब्ध! कैसे साधु, कैसे सरल! और देखो तुम अपना पाप और अपना नर्क! वह अपने को ऊपर रख रहा है। वह तुम्हें नीचे रख रहा है।

वस्तुतः जब किसी व्यक्ति के जीवन में साधुता का प्रकाश होता है, तो वह तुम्हें नीचे नहीं रखता। वह तो कहता है, तुम भी भगवान हो, तुम भी आत्मवान हो, तुम भी वहीं हो जहां मैं हूं। मुझे पता चल गया, तुम्हें पता नहीं चला, इतना सा भेद है। यह भी कोई खास भेद है! तुम्हारी जेब में हजार रुपए पड़े हैं, मेरी जेब में हजार रुपए पड़े हैं, मुझे पता चल गया, मैंने जेब में हाथ डाल लिया, तुमने हाथ नहीं डाला; यह भी कोई बड़ा भेद है! हजार रुपए तुम्हारी जेब में भी पड़े हैं, तुम जब हाथ डाल लोगे, तभी उपलब्ध हो जाएंगे। न भी हाथ डालो तो भी उपलब्ध हैं ही।

जानने में फर्क हो सकता है, होने में कोई फर्क नहीं है। बोध में फर्क हो सकता है, अस्तित्व में कोई फर्क नहीं है। तुममें वही है जो बुद्ध में है, तुममें वही है जो कृष्ण में है, रत्तीभर कम नहीं; तुममें वही है जो मुझमें है, रत्तीभर कम नहीं। सिर्फ तुमने कभी अपनी गांठ खोलकर देखी नहीं। तुमने कभी अपने भीतर टटोला नहीं। बस टटोलने का फर्क है, जिस दिन टटोल लोगे उसी दिन हो जाएगा।

ऐसा नहीं कि तुम पापी हो। परमात्मा पापी कैसे हो सकता है! ऐसा नहीं कि तुम नारकीय हो, परमात्मा कैसे नारकीय हो सकता है! तुम हो तो परम अवस्था में, लेकिन तुम लौटकर अपनी तरफ देखते नहीं। तुम्हारी आंखें बाहर भटक रही हैं। बाहर भटकती आंखें भीतर के खजाने से अपरिचित रह जाती हैं, बस, इतना ही फर्क है। फिर अगर साधु को भी यह न दिखायी पड़े कि फर्क न के बराबर है, न कुछ है, तो फिर किसको दिखायी पड़ेगा?

बुद्ध से किसी ने पूछा कि जब आप ज्ञान को उपलब्ध हुए, फिर क्या हुआ? बुद्ध ने कहा, फिर एक बात घटी--जिस दिन मैं ज्ञान को उपलब्ध हुआ, उसी दिन सारा संसार मेरे लिए ज्ञान को उपलब्ध हो गया। उस दिन से मैंने अज्ञानी नहीं देखा।

बुद्ध का सारा जीवन लोगों को यही समझाने में बीता कि तुम अज्ञानी नहीं हो। तुम जिद्द करते हो कि हम अज्ञानी हैं। और बुद्धों का सारा प्रयास यही है समझाना कि तुम नहीं हो; तुम्हारी भ्रांति तोड़नी है। तुम मालिक

हो, तुमने गुलाम समझा हुआ है। तुम विराट हो, तुमने छोटे के साथ अपना संबंध बना लिया। आंखें आकाश की तरफ उठाओ, सारा आकाश तुम्हारा है, तुम आंखें जमीन पर गड़ाए खड़े हो। इससे यह नहीं होता कि आकाश तुम्हारा नहीं रहा, सिर्फ तुम्हारी आंखें छोटे में उलझ गयी हैं। मगर आंखों की क्षमता आकाश को भी समा लेने की है। कितने ही छोटे में उलझे रहो, जिस दिन आंख उठाओगे, उस दिन पूरा आकाश तुम्हारी आंखों में प्रतिबिंबित हो उठेगा।

बुद्ध ने कहा, जिस दिन मैं ज्ञान को उपलब्ध हुआ, सारा संसार ज्ञान को उपलब्ध हुआ। आदमियों की तो छोड़ ही दो, पशु-पक्षी, पौधे, सब आत्मज्ञान को उपलब्ध हो गए। आत्मज्ञानी जब अपने खजाने को देखता है, उसी क्षण उसे दिखायी पड़ जाता है--सब खजाना लिए चल रहे हैं; सबके भीतर दीप्त है वह दीया, सबके भीतर रोशनी जल रही है। अजीब है हालत कि लोग अपनी रोशनी नहीं देखते और भागे चले जा रहे हैं रोशनी की तलाश में; भागे चले जा रहे हैं धन की तलाश में और धन भीतर पड़ा है, ऐसा धन जिसे तुम चुकाओ तो भी चुके नहीं। जिसे तुम उलीचो तो उलीच न पाओ। जिसे तुम फेंकते जाओ और बढ़ता चला जाए, ऐसा धन है। ऐसा परम धन भीतर पड़ा है।

बुद्धपुरुष तुम्हें पापी से पुण्यात्मा नहीं बनाते। तुमने अपने को देखा नहीं है, बस, तुम्हें अपने को देखने की सूझ, सीख देते हैं।

यह युवक सबकी निंदा में संलग्न रहता। कारण हो तब तो चूकता ही नहीं था--तब तो चूके ही कैसे। जिसको निंदा करनी है, वह कारण होगा तब तो चूकेगा ही नहीं। कारण नहीं होगा तब कारण निर्मित करेगा। जिसको निंदा नहीं करनी है, वह कारण तो निर्मित करेगा ही नहीं, जब कारण होगा, तब भी दया करेगा। तब भी वह कहेगा, तुम्हारी मर्जी! तुम्हें जैसा जीना हो, तुम जीओ, मैं कौन! मैं हस्तक्षेप करूं, ऐसा मैं कौन! मैं बाधा डालूं, मैं कहूं कि बुरा-भला, ऐसा मैं कौन! तुम्हारा जीवन है, तुम अपने जीवन के मालिक हो, तुमने जैसा उसे जीना चाहा है, तुम जीओ। निंदा नहीं होगी।

जीसस के पास एक स्त्री को लाया गया। गांव स्त्री के खिलाफ है, क्योंकि स्त्री ने व्यभिचार किया है। और पुरानी बाइबिल कहती है कि जो स्त्री व्यभिचार करे, उसे पत्थरों से मार डालना चाहिए। जीसस नदी के किनारे रेत पर बैठे हैं। सारा गांव इकट्ठा हो गया है और उन्होंने कहा, इससे, जीसस से पूछ लो, यह बहुत ज्ञान की बातें करता है। और इससे एक बात यह भी पता चल जाएगी कि पुराने धर्म के पक्ष में है या विरोध में। तो उन्होंने पूछा कि तुम क्या कहते हो? पुराने पैगंबरों ने कहा है कि जो स्त्री अनाचार करे, व्यभिचार में पड़े, उसे पत्थर मारकर मार डालना चाहिए; तुम क्या कहते हो? क्योंकि जीसस तो हमेशा ऐसा ही कहते थे, पुराने पैगंबरों ने ऐसा कहा है, लेकिन मैं ऐसा कहता हूं। तो अब तुम क्या कहते हो?

जीसस ने कहा कि पुराने पैगंबरों ने कहा है कि जो तुम्हें ईंट मारे, उसे तुम पत्थर मारना, और जो तुम्हारी एक आंख फोड़े, तुम उसकी दूसरी भी फोड़ देना। लेकिन मैं तुमसे कहता हूं कि जो तुम्हारे एक गाल पर चांटा मारे, तुम दूसरा गाल भी उसके सामने कर देना; और जो तुम्हारा कोट छीन ले, कमीज भी उसे दे देना; और जो तुमसे कहे, एक मील तक इस बोझ को ढोओ, तुम दो मील तक उसके साथ चले जाना; मैं तुमसे ऐसा कहता हूं।

तो उन्होंने कहा, अब तुम क्या कहते हो? पुराने पैगंबर कहते हैं, पत्थर मारकर इसे मार डालना। उन्होंने एक उपाय खोजा था जीसस को फांसने का। या तो जीसस कहेंगे, पुराने पैगंबर गलत कहते हैं, तो भी वे जीसस पर नाराज होते--तो एक तुम्हीं पैगंबर हो! अब तक सब नासमझ ही हुए! या जीसस कहेंगे, पुराने पैगंबर ठीक

कहते हैं; तो हम कहेंगे, फिर क्या हुआ तुम्हारे उस प्रेम के सिद्धांत का कि कोई एक गाल पर चांटा मारे तो दूसरा सामने कर देना। पत्थर मारकर मार डालने को कहते हो? हत्या के लिए कहते हो? दोनों हालत में जीसस फंस जाएंगे। गांव बड़ा उत्सुक था। गांव का जो रबाई था, जो धर्मगुरु था, वह भी आगे खड़ा था आकर कि पूछो इस युवक से, यह क्या कहता है?

और जीसस ने एक क्षण सोचा और कहा, आप पत्थर उठा लें--नदी का किनारा था, पत्थर तो पड़े ही थे, ढेर लगे थे, लोगों ने पत्थर उठा लिए--और जीसस ने कहा, अब मैं कहता हूं, जिस आदमी ने कभी व्यभिचार न किया हो, या व्यभिचार का विचार न किया हो, वह पहला पत्थर मारे। वे जो आगे खड़े बड़े-बुजुर्ग थे, धीरे-धीरे भीड़ में पीछे हट गए। धर्मगुरु भी भीड़ में भीतर सरक गया। धीरे-धीरे भीड़ छंट गयी, जीसस और वह स्त्री अकेले वहां छूट गए।

वह स्त्री तो उनके पैरों में गिर पड़ी। उसने कहा, तुमने मुझे जीवनदान दिया, तुमने मुझे बचा लिया, अन्यथा आज वे मुझे मार डालते। लेकिन पाप तो मैंने किया है। उनसे तो मैं इनकार भी करती रही, तुमसे मैं इनकार भी कैसे करूं, पाप तो मैंने किया है। अब तुम मुझे जो सजा देना चाहो, दो।

जीसस ने कहा, मैं तुझे सजा देने वाला कौन? यह तेरे और तेरे परमात्मा के बीच की बात है, मैं बीच में आने वाला कौन? अगर तुझे लग गया कि पाप है, तो अब मत करना; और अगर तुझे लगता हो कि पाप नहीं है, तो तेरी मर्जी! जो तुझे पाप न लगे तो जरूर करना। रही बात निर्णय की, तो तेरा परमात्मा और तेरे बीच निर्णय होगा, मैं कौन हूं बीच में!

उस स्त्री के जीवन में क्रांति घट गयी। क्रांति घट गयी इसीलिए कि इस आदमी ने निंदा नहीं की। इसने कहा, मैं कौन हूं! इस आदमी ने कोई वक्तव्य ही न दिया। इसने यह भी न कहा कि यह पाप है! इसने कहा कि तुझे पाप लगता हो तो छोड़ देना।

जब तुम्हें पाप लगता है तो छूट ही जाता है, छोड़ना भी नहीं पड़ता। दूसरे के कहने से कोई छोड़ता है! और निंदा तो करना ही मत, निर्णय तो लेना ही मत। दूसरे आदमी के हम मालिक नहीं हैं। उसकी स्वतंत्रता परम है, उसकी गरिमा परम है। उसके ऊपर निंदा का एक शब्द भी उठाना सिर्फ अपनी हीनता की घोषणा है।

लेकिन वह युवक कारण होता तब तो चूकता ही कैसे--कारण को खूब बढ़ा-चढ़ा लेता होगा--कारण न हो तब भी कारण खोज लेता था, निर्मित कर लेता था। कोई दान न दे तो निंदा करता कि देखो कृपण, देखो कंजूस, मरेगा पापी, नरकों में सड़ेगा, इसी धन की ढेरी पर सांप बनकर बैठेगा जब मरेगा--तो निंदा करता। और कोई दान देता, तो कहता, अरे, यह भी कोई दान है! दान देना सीखना हो तो मेरे परिवार से सीखो। यह क्या मुट्ठी-मुट्ठी दे रहे हो! अगर कोई किसी दूसरे को दान देता, तब तो वह बहुत ही निंदा करता। उसको देता तब भी नहीं छोड़ पाता था निंदा करना, लेकिन दूसरे को देता तब तो वह बहुत ही निंदा करता।

इसके साथ ही साथ उसका दूसरा काम था, अपने परिवार की प्रशंसा, अपनी जाति की प्रशंसा, अपने वर्ण की प्रशंसा।

ख्याल करना, तुम जब अपने देश की प्रशंसा करते, अपनी जाति की, अपने वर्ण की, अपने धर्म की, अपने कुल-परिवार की, तो तुम वस्तुतः क्या कर रहे हो? तुम प्रकारांतर से अपनी प्रशंसा कर रहे हो। जब तुम कहते हो, भारत देश धन्य है, तो तुम क्या कह रहे हो? तुम यह कह रहे हो कि मैं भारतवासी हूं। अगर तुम चीन में पैदा हुए होते तो तुम कभी न कहते, भारत देश धन्य है। तुम कहते, चीन देश धन्य है! तुम जहां पैदा होते, वही देश धन्य होता। यह देश की प्रशंसा नहीं है, यह बड़ी तरकीब से अपनी प्रशंसा है। यह आत्म-प्रशंसा है।

तुम कहते हो, हिंदू-कुल धन्य है! जैन से पूछो। वह कहता है, जैन-कुल धन्य है! बौद्ध से पूछो। वह कहता है, बौद्ध-कुल धन्य है। यह संयोग की बात है कि तुम जैन-घर में पैदा हो गए, इसलिए जैन-कुल धन्य हो गया। यह संयोग की बात है कि तुम हिंदू-घर में पैदा हो गए, इसलिए हिंदू-कुल धन्य हो गया। ये विष भरी बातें हैं। लेकिन इनको तुम इस तरह दोहराते हो कि तुमने जैसे विचार ही नहीं किया इन पर।

अब यह बड़े मजे की बात है कि जो लोग निर-अहंकार की शिक्षा देते हैं, वे भी इन बातों में पड़े हैं। तुम जैन-मुनि से जाकर पूछो तो वह कहेगा, जैन-कुल में पैदा होना बड़े पुण्यों से होता है। बाकी आदमी कोई आदमी थोड़े! बाकी आदमी तो बस नाममात्र के आदमी हैं। जैन-कुल में पैदा होना बड़े पुण्यों से होता है, जन्म-जन्म के पुण्यों से होता है। अब यही आदमी रोज समझाता है निरहंकार; अहंकार छोड़ो; और बड़ी गहराई में अहंकार को पोषण दे रहा है।

तुम ब्राह्मण से पूछो, वह कहता है, ब्राह्मण होना कोई साधारण बात थोड़े! असाधारण बात है! तुम पुरुष से पूछो, पुरुष कहता है, पुरुष होने में धन्यता है, स्त्री होने में दुर्भाग्य है। शास्त्रों में लिखा है कि पहले तो मनुष्य होना बहुत दुर्लभ है, फिर पुरुष होना बहुत दुर्लभ है। फिर ब्राह्मण होना और भी दुर्लभ! फिर इस भारत देश में पैदा होना, यह तो धर्म-देश है, यहां तो सदा धर्म की धारा बहती रही, यहां पैदा होना और भी दुर्लभ है! बाकी सब तो मलेच्छ। मगर यही धारणा उनकी भी है। और तुम यह मत सोचना कि बड़े-बड़े मुल्कों की है, छोटे से छोटे मुल्क की भी धारणा यही है।

यह धारणा मनुष्य के अहंकार की है। दुनिया में तीन सौ धर्म हैं और सभी धर्मों के मानने वालों की यही धारणा है। और दुनिया में कितने देश हैं! और सभी देशों की यही धारणा है। और अब तो स्त्रियों ने भी घोषणा करनी शुरू कर दी है--और ठीक किया है, क्योंकि बहुत हो गया--अब पश्चिम में स्त्रियां घोषणा कर रही हैं कि स्त्री होना धन्यभाग है। पुरुष होने में क्या रखा है!

पूरब के देशों में बूढ़ों के हाथों से शास्त्र लिखे गए, तो ब.ूढे कहते हैं, बूढ़ों का आदर करो। क्योंकि बूढ़ों ने शास्त्र लिखे। पश्चिम में जवान किताबें लिख रहे हैं, वे कहते हैं कि तीस साल के ऊपर के किसी आदमी का भरोसा ही मत करना।

मैं एक बड़ी मजेदार घटना कल पढ़ रहा था। जेरी रूबिन, जिसने इस बात का नारा दिया अमरीका में कि तीस साल के ऊपर के आदमी पर भरोसा मत करना, तीस साल के बाद आदमी बेईमान हो ही जाता है, वह यह भूल ही गया यह कहने में कि तीस साल के ऊपर उसको भी एक दिन होना पड़ेगा। जब उसने यह कहा था, तब वह छब्बीस साल का था। भूल ही गया होगा जोश-खरोश में।

फिर वह बत्तीस साल का हो गया। अमरीका में उसके पीछे एक आंदोलन चला--इप्पी। और इप्पियों ने सारे अमरीका में तहलका मचा दिया कि तीस साल के ऊपर जितने लोग हैं, सब बेईमान हैं। फिर एक दिन ऐसा आया कि वह तीस साल के ऊपर हो गया।

एक दिन वह होटल से बाहर निकला, जहां ठहरा हुआ था, बाहर आया तो देखा कि उसकी कार में किसी ने आग लगा दी। वह बहुत हैरान हुआ कि किसने यह किया है! जब पास गया तो पता चला वहां एक तख्ती लगी है, उस पर लिखा है कि जेरी रूबिन, अब तुम तीस साल के ऊपर के हो गए, अब हमारे नेता नहीं रहे। जिनका उसने आंदोलन खड़ा किया था, वे ही उसके विरोध में हो गए, क्योंकि वह तीस साल के ऊपर हो गया। तब उसको पता चला--अभी मैं उसकी किताब पढ़ रहा था, उसने लिखा है कि तब मुझे पता चला कि तीस साल के ऊपर एक दिन मुझे भी होना पड़ेगा, तब मैं ही झंझट में पडूंगा।

पश्चिम में युवक किताबें लिख रहे हैं, तो बूढ़ों का सम्मान नहीं। पूरब में बूढ़ों ने किताबें लिखीं तो युवकों का सम्मान नहीं। किसी दिन अगर बच्चे किताबें लिखेंगे तो जवानों का भी सम्मान नहीं रह जाएगा। पुरुषों ने किताबें लिखीं तो स्त्रियों का अपमान। स्त्रियां किताबें लिखती हैं तो पुरुषों का अपमान। आदमी किस-किस भांति अपने अहंकार की पूजा किए चला जाता है।

हम जो हैं, हम प्रकारांतर से उसकी प्रशंसा करते हैं। इससे जागना। ये अहंकार के सूक्ष्म सहारे हैं। मत भूलकर कहना कि तुम हिंदू हो तो बड़ा कोई पुण्य हो गया। मत भूलकर कहना कि तुम ईसाई हो तो कोई बड़ा पुण्य हो गया। पुण्य तो उस दिन होगा, जिस दिन तुम न-कुछ हो जाओगे। उसके पहले कोई पुण्य नहीं हैं। न तुम्हारा कोई देश रहेगा, न कोई जाति रहेगी, न कोई कुल रहेगा, न स्त्री-पुरुष का भाव रहेगा, पुण्य तो उस दिन होगा। धन्यता तो उस दिन होगी, जिस दिन तुम्हारे ऊपर कोई रोग न रह जाएंगे, कोई तादात्म्य न रह जाएगा; तुम यह कह ही न सकोगे कि मैं हिंदू, कि मुसलमान, कि ईसाई, कि जैन, तभी तुम धन्य होओगे। उसके पहले तो धन्यता झूठी है।

वह युवक शायद इसीलिए संन्यस्त भी हुआ था, ताकि वह कह सके कि देखो मैं संन्यस्त हूं! सारा जगत पापी है। संन्यास का मजा ही यही है। उससे तुम्हें बड़ी सुगम सुविधा मिल जाती है सारी दुनिया की निंदा करने की। संन्यस्त होते से ही तुम एकदम शिखर पर विराजमान हो जाते हो। एक क्षण पहले सड़क पर थे, एक क्षण बाद शिखर पर विराजमान हो जाते हो।

तुम देखते हो, जब दीक्षाएं होती हैं, तो कितना शोर-शराबा, जुलूस निकलता और बड़ा उत्सव मनाया जाता कि कोई सज्जन दीक्षा ले रहे हैं। इसमें उत्सव की क्या बात है! मैं संन्यास देता हूं तो जरा भी आहट नहीं होने देता, क्योंकि आहट की क्या बात है! इसमें उत्सव की क्या बात है! उत्सव तो अहंकार की ही पूजा है। उत्सव का तो मतलब यह हुआ कि तुमने दीक्षा लेने वाले का खूब अहंकार पोषित कर दिया, अब यह अकड़कर चलेगा।

देखते हैं, जैन-मुनि हाथ जोड़कर किसी को नमस्कार नहीं करता। कर नहीं सकता, क्योंकि वह कहता है, मुनि और नमस्कार करे! गृहस्थों को, श्रावकों को, गैर-संन्यासियों को नमस्कार करे, मुनि! मुनि सिर्फ आशीर्वाद दे सकता है, नमस्कार नहीं कर सकता। यह तो हद्द हो गयी! और उनसे जिनसे कि निर-अहंकार की बात करते हैं, ये हाथ जोड़कर नमस्कार भी नहीं कर सकते। इन्हें दूसरे में सिर्फ गृहस्थ दिखायी पड़ रहा है, दूसरे में छिपा परमात्मा दिखायी नहीं पड़ता। ये सब अहंकार के ही नए-नए रूप हैं, नए-नए ढंग हैं।

तो संन्यस्त हो गया युवक--कथा बड़ी मीठी है, कहती है कि शायद इसीलिए संन्यस्त हुआ कि यह अहंकार में एक और नया पंख लग जाएगा, एक नया रंग लग जाएगा।

एक बार कुछ भिक्षु उसके गांव गए तो पाया कि वह व्यर्थ ही दूसरों की निंदा करता है, और व्यर्थ ही अपने कुल की प्रशंसा करता है। उसके कुल में तो कुछ था ही नहीं, कुछ खास बात ही न थी। वे तो साधारण लोग थे, साधारण से भी गए-बीते लोग थे। बड़े हीनकुल से वह आया था। बड़ी हीनवृत्तियों वाले कुल से आया था।

भिक्षुओं ने यह बात भगवान से कही।

पच्चीस सौ साल पहले बुद्ध ने जो वक्तव्य दिया, उस पर फ्रायड और जुंग को ईर्ष्या हो! एडलर परेशान होता अगर इस वक्तव्य का उसे पता चल जाता। क्योंकि एडलर ने अभी जो मनोविज्ञान विकसित किया है,

उसका मौलिक आधार इनफिरिआरिटी कांप्लेक्स है, हीनता की ग्रंथि। वह कहता है, जो लोग जितने ही हीन होते हैं, उतने ही श्रेष्ठ होने का दावा करते हैं।

काश, उसे बुद्ध की यह कथा पता होती, तो उसे यह ख्याल पैदा नहीं होता कि उसने कोई अनूठी बात खोज ली है। तुम अगर पुराने शास्त्रों में गहरे उतरो तो तुम चकित हो जाओगे, शायद कोई अनूठी बात खोजने को बची नहीं है। होना भी ऐसा ही चाहिए। कितने अनंत काल से आदमी सोचता रहा है! सब पहलू देख लिए गए हैं, सब पर्तें उलट ली गयी हैं, सब द्वार खोल लिए गए हैं।

मगर वहां भी अहंकार का एक खेल चलता है। हर युग कहता है कि जो हमने खोजा, वह किसी ने नहीं खोजा। और हर आदमी कहता है कि जो मैं जानता हूं, वह कोई नहीं जानता। मैं मौलिक हूं। यह सदियों से आदमी सोचता रहा है। हजारों वर्षों से आदमी चिंतन करता रहा है। बड़े-बड़े मनीषी हुए। बचा कैसे होगा कुछ तुम्हारे लिए मौलिक होने को!

जैसे कृष्णमूर्ति के अनुयायी कहते हैं कि कृष्णमूर्ति जो कहते हैं, मौलिक है। तो उन्होंने अष्टावक्र नहीं पढ़ा। नहीं तो वे बड़े हैरान हो जाएंगे। कृष्णमूर्ति का एक भी वक्तव्य नहीं है जो अष्टावक्र के वक्तव्य से आगे जाता हो। खैर, कृष्णमूर्ति तो शास्त्र पढ़ते नहीं, उनकी जिद्द है कि वे पुराने शास्त्र पढ़ेंगे नहीं, चलो, उनको क्षमा किया जा सकता है। मगर उनके शिष्य, जो दावा करते हैं, उनको तो कम से कम इधर-उधर देखना चाहिए इसके पहले कि मौलिक होने का दावा हो।

ऐसा एक वक्तव्य नहीं है जो आदमी दे सके, जो कि पहले नहीं दिया गया हो। यह हो सकता है कि समय ने बहुत धूल जमा दी हो, दूरी हो गयी हो, हम भूल भी गए हों। लेकिन जो भी आज है, वह कल भी था, परसों भी था, कल भी होगा, परसों भी होगा। हमारी मूढ़ता वैसी ही है जैसे गुलाब का एक फूल जो आज खिला है, वह खिलते ही से कहे, ऐसा फूल पृथ्वी पर कभी नहीं खिला। या सूरज आज ऊगा है, वह कहे कि ऐसा सूरज पहले कभी नहीं ऊगा। कि रात तारे आकाश में फैले हों और घोषणा कर दें कि ऐसी तारों-भरी रात पहले कभी नहीं हुई।

जो आज हो रहा है, वह सदा होता रहा है। आज अनूठा नहीं है। सूरज के तले नया कुछ भी नहीं है। हां, बहुत बार बातें खोजी जाती हैं, फिर खो जाती हैं। समय की धारा में भूल जाती हैं। फिर-फिर खोज ली जाती हैं। इसलिए हर खोज पुनर्खोज है। कोई खोज नयी नहीं है।

बुद्ध ने कहा, हीनभाव ही श्रेष्ठता का दावेदार बनता है।

एडलर का पूरा मनोविज्ञान इस वचन में आ गया। तुम देखना, आदमी के व्यक्तित्वों में झांकना, तो तुम पाओगे, जहां-जहां हीनता की गं्रथि होती है वहां-वहां श्रेष्ठ होने का भाव पैदा होता है।

चोर सिद्ध करने की कोशिश करता है कि मैं चोर नहीं हूं। चोर बड़ी जोर से कोशिश करता है कि मैं चोर नहीं हूं। क्योंकि वह डरा हुआ है भीतर से, हूं तो चोर ही। सिद्ध तो करूंगा, नहीं सिद्ध कर पाऊंगा तो पकड़ लिया जाऊंगा। चोर अगर चुप रहे तो उसे डर लगता है कि मेरी चुप्पी कहीं मेरी चोरी का प्रमाण न बन जाए।

झूठ बोलने वाला सिद्ध करता है कि मैं जो कह रहा हूं, वह सच है। जो लोग बहुत कसमें खाते हैं, समझ लेना कि वे झूठ बोलने वाले लोग हैं। नहीं तो कसमें नहीं खाएंगे। हर बात पर कसम, कि भगवान की कसम, कि तुम्हारी कसम। जो आदमी कसमें खाता है, यह झूठ बोलने वाला आदमी है। क्योंकि इसे सच अपने आप में काफी है, ऐसा नहीं मालूम पड़ता। इसे लगता है, कसम जोड़ो साथ में; अपने आप में तो कुछ है नहीं; कसम की बैसाखी लग जाए तो शायद झूठ थोड़ा चल जाए। सच बोलने वाला आदमी कसम नहीं खाएगा। कसम का

मतलब ही होता है--झूठ का तुम्हें पता है, अब तुम झूठ को लीपा-पोती कर रहे हो। अब तुम किसी तरह से प्रमाण जुटा रहे हो कि सच हो जाए।

हीनभाव ही श्रेष्ठता का दावेदार बनता है।

तुमने दुनिया में देखा, अगर तुम बड़े-बड़े राजनीतिज्ञों की जीवन-कथा पढ़ो तो तुम बहुत चकित हो जाओगे। उन में कोई न कोई हीनता की ग्रंथि थी, इसीलिए वे पदों की तरफ भागे।

नेपोलियन की ऊंचाई कम थी--पांच फीट दो इंच। मनोवैज्ञानिक कहते हैं, यही कारण था। वह हमेशा बेचैन था इस बात से कि उसकी ऊंचाई बहुत कम है। वह दुनिया को बताना चाहता था, मेरी ऊंचाई कितनी है! वह यह दिखाना चाहता था कि मेरे शरीर से मुझे मत तौलो। शरीर में क्या रखा है! मेरी असली ऊंचाई देखो, मेरे सिंहासन से देखो। उसने दुनिया का सबसे बड़ा सिंहासन बनवाया था, ताकि उसके ऊपर बैठकर वह दिखला सके। वह चाहता था, सारी दुनिया को जीत लूं, ताकि मैं बता सकूं कि मेरी ऊंचाई कितनी है।

एक दिन वह घड़ी ठीक करना चाहता था--घड़ी जरा ऊंची लगी थी दीवाल पर और उसका हाथ नहीं पहुंच रहा था। तो उसका जो अंगरक्षक था, उसने कहा, रुकिए महानुभाव, मैं आपसे ऊंचा हूं, मैं ठीक कर दूंगा। उसने कहा कि चुप, भूलकर इस तरह का शब्द मत प्रयोग करना। मुझसे ऊंचा! मुझसे लंबा है, ऊंचा नहीं। उसने तत्काल सुधार करवा दिया। लंबाई और ऊंचाई में फर्क होता है। मुझसे लंबा तू जरूर है, लेकिन ऊंचा क्या है, ऊंचा कैसे होगा! मेरा अंगरक्षक और मुझसे ऊंचा!

नेपोलियन ने सिद्ध करने की कोशिश की।

कहते हैं कि लेनिन जब बैठता था तो उसके पैर बहुत छोटे थे--ऊपर का शरीर तो ठीक था, पर पैर बहुत छोटे थे--कुर्सी से लटक जाते थे, पैर उसके जमीन से नहीं लगते थे। इससे वह बड़ा पीड़ित था, वह छिपाकर बैठता था अपने पैरों को। और मनोवैज्ञानिक कहते हैं कि वह पैरों की कमजोरी ही उसकी दौड़ थी--कि जमाकर बता देगा पैर। ऐसे जमाकर बता देगा कि कोई भी उखाड़ न सके।

तुम इसे अगर खोजोगे तो पा लोगे, दूसरों में नहीं, अपने में भी पा लोगे। तुम अपने में भी पा लोगे कि कौन सी चीज तुम्हें बेचैन किए जा रही है। कौन सी बात तुम्हें घाव की तरह खटक रही है। उसी के कारण तुम दौड़ रहे हो। जिसके सब घाव भर गए, उसकी कोई पदाकांक्षा नहीं रह जाती, कोई महत्वाकांक्षा नहीं रह जाती। उसके जीवन से राजनीति विसर्जित हो जानी चाहिए। हो ही जाएगी।

राजनीति का अर्थ ही होता है, हीनग्रंथियों से पीड़ित लोगों की दौड़। राजनीति का अर्थ होता है, विक्षिप्तता। एक तरह का पागलपन।

धन की दौड़ भी एक तरह का पागलपन है। महत्वाकांक्षा ही पागलपन का सार है। सूत्र पागलपन का महात्वाकांक्षा है--कुछ होकर दिखा दूं। क्यों? क्या तुम नहीं हो? कुछ बनकर बता दूं। क्यों? क्या तुम जैसे हो वैसे परिपूर्ण, पर्याप्त नहीं हो?

विन्सेंट वानगाग--पश्चिम का बहुत बड़ा चित्रकार--बहुत कुरूप था। और मनोवैज्ञानिक कहते हैं, उसकी कुरूपता के कारण ही वह सौंदर्य का आराधक हो गया। और उसने बड़े सुंदर चित्र बनाए। सुंदरतम चित्र बनाए। वह चित्रों से सिद्ध करना चाहता था कि मेरी छोड़ो, मेरे हाथ के सौंदर्य को देखो। चेहरा उसका कुरूप था। कुरूप आदमी सौंदर्य में उत्सुक हो गया।

तुमने कभी किसी सुंदर स्त्री को चित्र बनाते देखा? सुंदर स्त्री को कविता लिखते देखा?

मैं एक घर में मेहमान था एक बार एक गांव में। वहां एक कवयित्री सम्मेलन हो रहा था। अखिल भारतीय कवयित्री-सम्मेलन! तो मेरे मित्र ने मुझे भी कहा, आप भी चलिए। सारे देश की महिला कवयित्रियां इकट्ठी हो रही हैं। मैंने कहा, तुम जाओ, सिर्फ एक बात मुझे बताना, उनमें कोई एकाध सुंदर भी है? उन्होंने कहा, क्यों, आप ऐसा प्रश्न क्यों उठाते हैं? मैंने कहा, तुम जाकर फिर मुझे बताना।

वह जब रात बारह बजे लौटे, मैं तो सो गया था, मुझे आकर उठाया, उन्होंने कहा कि मैं रातभर रख नहीं सकूंगा इस बात को, मुझे आपने हैरान कर दिया! उनमें एक भी सुंदर नहीं थी। मगर आपने यह प्रश्न क्यों पूछा? मैंने कहा कि प्रश्न मैंने इसलिए पूछा था कि सुंदर स्त्री कुछ और करती नहीं; सौंदर्य काफी है। असुंदर स्त्रियां कुछ करती देखी जाती हैं--समाज-सेविकाएं बन जाएंगी, कवयित्रियां बन जाएंगी, चित्रकार बनेंगी, क्योंकि सौंदर्य की कमी है, कुछ खटक रहा है। जो खटक रहा है, उसे किसी तरह भरना होगा। तो कुछ करके उसे भर लिया जा सकता है। कुछ और पैदा करके वह जो कमी है, वह पूर्ति हो जाएगी।

मनोवैज्ञानिक कहते हैं कि जो कुछ दुनिया में आदमी ने किया है, वह आदमी का है, स्त्रियों ने कुछ खास नहीं किया। और जिस कारण को वे कहते हैं कि क्यों ऐसा हुआ, वह कारण सुनने और समझने जैसा है।

मनोवैज्ञानिक कहते हैं कि स्त्रियां बच्चे पैदा कर लेती हैं, यह इतना बड़ा कृतित्व है--मां बनना--कि अब और क्या बनाना है! एक मूर्ति बनाने से क्या होगा, एक जिंदा मूर्ति पैदा कर दी। एक चित्र बनाने से क्या होगा, एक जिंदा तस्वीर पैदा कर दी, एक जिंदा चेहरा पैदा कर दिया। जीवित आंखें, चलता-फिरता बच्चा पैदा कर दिया। इससे बड़े सौंदर्य का और क्या जन्म होगा! स्त्रियां तृप्त हैं एक बच्चे को जन्म देकर।

पुरुष बड़ा बेचैन है। स्त्रियों के सामने वह अपने को जरा असहाय पाता है, वह किसी चीज को जन्म नहीं दे सकता। तो उसकी परिपूर्ति करता है--वह एक मूर्ति बनाएगा, एक चित्र बनाएगा, कविता लिखेगा, काव्य रचेगा--कुछ करके वह सृजनात्मक होता है, सिर्फ इसीलिए ताकि स्त्री के साथ प्रतिस्पर्धा कर सके, वह कह सके, मैंने भी कुछ बनाया है। और धीरे-धीरे उसने इतनी चीजें बना डाली हैं कि स्त्री बेचैनी अनुभव करती है, उसे लगने लगा कि मैं कुछ भी नहीं कर रही हूं, मुझसे कुछ नहीं हो रहा है, पुरुष ने इतना बना डाला!

तुम चकित होओगे, जिन कामों में स्त्रियों को ही खोज करनी चाहिए, उनमें भी पुरुष ही खोज करता है। पाकशास्त्र भी पुरुष लिखते हैं, स्त्रियां नहीं लिखतीं। और दुनिया की बड़ी होटलों के जो बड़े से बड़े भोजन बनाने वाले लोग हैं, रसोइए हैं, वे पुरुष हैं, स्त्रियां नहीं हैं।

क्यों? स्त्री तृप्त है। पुरुष अतृप्त है। कुछ बात खटक रही है, कुछ कम-कम है। कुछ खाली जगह है। तो कुछ करके इसे पूरा कर लेना है। कुछ भी करने से पूरा नहीं होता। क्योंकि कमी कैसे पूरी हो सकती है! कमी तो स्वीकार करने से विसर्जित होती है।

इसीलिए जब तक कोई व्यक्ति धार्मिक जगत में प्रवेश नहीं करता, उसकी हीनता नहीं मिटती। वह लाख उपाय कर ले, धन इकट्ठा कर ले, पद इकट्ठा कर ले, प्रतिष्ठा बना ले, कमी नहीं मिटती।

तो बुद्ध ने कहा, हीनभाव ही श्रेष्ठता का दावेदार बनता है। जो श्रेष्ठ हैं, उन्हें तो अपने श्रेष्ठ होने का पता भी नहीं होता है। वही श्रेष्ठता का अनिवार्य लक्षण भी है।

साधु को पता चले कि मैं साधु, कि मैं साधु, कि मैं साधु, तो यह घाव है, यह असलियत नहीं।

तुमने कभी ख्याल किया, स्वास्थ्य का तुम्हें कभी पता चलता है? बीमारी का पता चलता है। सिर में दर्द है तो पता चलता है। जब सिर में दर्द नहीं होता तब सिर का पता चलता है? अगर दर्द बिल्कुल नहीं है तो सिर

का पता चलेगा ही नहीं। पैर में कांटा गड़ा तो पैर का पता चलता है, कांटा नहीं है तो पैर का पता नहीं। जब तुम बीमार होते हो तब देह का पता चलता है।

इसलिए आयुर्वेद में स्वास्थ्य की परिभाषा बड़ी महत्वपूर्ण है। एलोपैथी के पास वैसी कोई परिभाषा नहीं है। अगर तुम एलोपैथी से पूछो कि स्वास्थ्य की क्या परिभाषा है, तो वह कहता है, बीमारी न हो तो स्वास्थ्य। यह बड़ी नकारात्मक परिभाषा हुई। बीमारी से स्वास्थ्य की परिभाषा! बीमारी न हो! लेकिन आयुर्वेद कहता है, स्वास्थ्य का अर्थ है, देह का पता न चले, विदेह भाव रहे। यह बड़ी महत्वपूर्ण बात है, देह का पता न चले तो स्वास्थ्य। क्योंकि देह का पता बीमारी में चलता है। ठीक-ठीक स्वस्थ आदमी विदेह हो जाता है। इसलिए हमने जनक को विदेह कहा है। अगर परिपूर्ण स्वस्थ हो गए तो देह का बिल्कुल ही पता नहीं चलेगा, कि देह है भी, कि मैं देह हूं, ऐसा भी पता नहीं चलेगा। सिर दर्द के कारण सिर का पता चलता है, कांटे के कारण पैर का पता चलता।

तुमने देखा, श्वास में तकलीफ हो तो श्वास का पता चलता, नहीं तो श्वास चल रही है वर्षों से, उसका पता ही नहीं चलता। पेट में पाचन होता है, इतना काम चलता है--खून बनता, मांस-मज्जा बनती--पता ही नहीं चलता। हां, जरा सी तकलीफ हो जाए तो पता चलता है।

बुद्ध कहते हैं, श्रेष्ठता का यह अनिवार्य लक्षण है कि उसका पता न चले। साधु वही, जिसे साधु होने का पता न चले। सत्य उसी को मिला, जिसे मिलने का भी पता न चले। सहज हो।

यह भिक्षु... बुद्ध सदा ऐसा कहते थे, जब भी किसी का प्रश्न उठता था तो वह सदा उसके अतीत जन्मों को भी ख्याल में लाते थे। बुद्ध की अनिवार्य प्रक्रियाओं में वह भी एक प्रक्रिया थी। जब भी वह किसी आदमी को देखते, तो गौर से उसकीशृंखला को भी देखते। क्योंकि बुद्ध कहते, जो आज हो रहा है, उसके बीज कल रहे होंगे, उसके बीज परसों रहे होंगे। फसल आज कट रही है, तो आज ही थोड़े बीज बो होंगे, बीज तो जन्मों-जन्मों में बो होंगे। तो वे कहते कि यह भिक्षु न केवल ऐसा करता आज घूम रहा है, पहले भी ऐसा ही करता था। यह इसके जन्मों-जन्मों की आदत है। हर आदत के पीछे आदत होती है।

हर आदत के पीछे पुरानी आदतें होती हैं। आदत के पीछे आदत का क्यू लगा होता है। तो हम जो भी कर रहे होते हैं, वह आज ही अचानक नहीं कर रहे होते हैं; उसके पीछे करने की बड़ीशृंखला होती है। इसलिए तुम अगर उसे आज ही बदलना चाहो, छोड़ना चाहो, तो न छोड़ सकोगे, जब तक तुम पूरीशृंखला को समझकर न छोड़ने को राजी हो जाओ।

एक आदमी सिगरेट पी रहा है। हम उससे कहते हैं, छोड़ दो। वह भी जानता है कि बुरा है। और वह कहता है, छोड़ना भी चाहता हूं, छूटती नहीं। तुमशृंखला नहीं देख रहे हो। सिगरेट पीने के पीछेशृंखला होगी बहुत सी और बातों की। उन सारी बातों का जब तक बोधपूर्वक विश्लेषण न हो, जब तक यह जागरूक न हो जाए, तब तक सिगरेट न छूटेगी।

यह तो ऐसे ही है जैसे कोई आदमी फूल को काट दे और वृक्ष तो बना रहे। फिर फूल आ जाएगा। शायद पहले फूल से बड़ा फूल आ जाएगा, क्योंकि वृक्ष भी जवाब देगा। तुम पत्ता काट दो; पत्ते काटने से क्या होगा, एक पत्ते की जगह तीन पत्ते आ जाएंगे। तुम शाखा काट दो, वृक्ष बदला लेगा, वृक्ष दो शाखाएं पैदा कर देगा। आखिर उसको भी अपने अस्तित्व के लिए लड़ना पड़ता है! ऐसे जल्दी से मान ले हर किसी की कि एक आदमी शाखा काट गया और वह चुपचाप हो जाए और फिर शाखा न उगाए, तो क्या जीएगा, खाक जीएगा! संघर्ष

करना होगा। वह दो शाखा पैदा करेगा कि काटने वाले को अब काटना हो तो दुगुनी मेहनत करनी पड़ेगी। दो काटो तो चार पैदा करेगा।

इसीलिए तो माली जब वृक्ष को घना करना चाहता है तो काटता है। कलम करता है। क्योंकि जैसे-जैसे काटता है, वृक्ष घना होता जाता है। अगर तुम्हें बड़ा फूल चाहिए तो जिस वृक्ष पर सौ फूल लगते हैं, निन्यानबे काट दो, एक को छोड़ दो, तो वृक्ष सौ ही फूलों में जो रस बहाता वह एक में ही बहा देगा। वह जवाब देगा, वह कहेगा कि समझा क्या है!

अगर तुम्हारी कोई आदत है, तो उसके पीछेशृंखला है। उसकी जड़ें हैं, पत्ते हैं, डालें हैं, वृक्ष है। और जड़ें छिपी हैं भूमि के अंदर गर्भ में। ऐसे ही मनुष्य के पिछले जन्मों में मनुष्य की जड़ें छिपी हैं।

तो बुद्ध सदा कहते थे कि आज ही ऐसा करता है, ऐसा नहीं, आज ही तो कैसे करेगा! अकस्मात कुछ भी नहीं होता, अनायास कुछ भी नहीं होता। सब चीजें सकारण हैं। उनके पीछे कारण कीशृंखला है।

पहले भी ऐसा ही करता था। जन्म-जन्म इसने ऐसे ही गंवाए हैं। जितनी शक्ति इसने दूसरों की निंदा और स्वयं की प्रशंसा में व्यय की है, उतनी शक्ति से यह कभी का निर्वाण का अधिकारी हो गया होता। भिक्षुओ, इससे सीख लो। दूसरों की निंदा, दूसरों का नहीं, अपना ही अहित है।

क्योंकि दूसरों की निंदा में तुम जो शक्ति व्यय कर रहे हो, उससे कुछ भी तुम्हारा लाभ होने वाला नहीं। और जो शक्ति गयी, गयी। व्यर्थ गयी। उसका कुछ सृजनात्मक उपयोग करो। जितनी बात तुम निंदा करने में व्यय कर रहे हो, उतने में भजन भी हो सकता था। उतनी ही शक्ति से ओंकार का नाद भी हो सकता था। जितनी देर तुमने गालियां दीं, उतनी देर जप भी हो सकता था। और जिस हाथ की ऊर्जा से तुमने किसी पर पत्थर फेंका, वही हाथ की ऊर्जा माला के मनके भी फेर सकती थी। ऊर्जा तो वही है। ऊर्जा में तो कोई भेद नहीं है।

मैं एक उल्लेख पढ़ रहा था। एक मनोवैज्ञानिक एक मित्र से मिला और मित्र को अल्सर हो गया था। मित्र एक राजनीतिज्ञ है। अब राजनीतिज्ञ को अल्सर न हो यह बड़ी कठिन बात है! तो मनोवैज्ञानिक ने कहा, तुम ऐसा करो, निक्सन का तुम्हारा जो विरोध है, वही इस अल्सर का कारण है--वह निक्सन विरोधी था, वह निक्सन को उखाड़ने में लगा था--तो तुम एक काम करो कि तुम रोज रात एक तकिए पर बड़े-बड़े अक्षरों में निक्सन लिख लो, फोटो लगा दो निक्सन की, और मारो, अच्छी पिटाई करो। जब तुम्हारा मन भर जाए, तब सो गए। इससे काफी राहत मिलेगी। नहीं तो तुम्हारे भीतर घुमड़ता रहता है, घुमड़ता रहता है, घुमड़ता रहता है, वही अल्सर बन रहा है।

वह राजनीतिज्ञ हंसा, उसने कहा, तुमने समझा क्या है? यह मुझे पता है कि तकिया निक्सन नहीं है। मैं तो असली निक्सन को जब तक न पीट लूं, तब तक तृप्ति नहीं हो सकती, अल्सर रहे कि जाए। तकिया तकिया है, तुम किसको धोखा दे रहे हो? तो उस मनोवैज्ञानिक ने कहा, फिर ऐसा, अगर ऐसा ही है तो फिर लकड़ी काटना शुरू कर दो।

यह बात आयी-गयी हो गयी। चार महीने बाद, संयोग की बात, उस राजनीतिज्ञ ने लकड़ी तो काटी भी नहीं, लेकिन चार महीने बाद किसी मित्र के साथ पहाड़ पर विश्राम को गया। और उस पहाड़ी स्थान पर जहां वे रुके थे, न बिजली का इंतजाम था, न कुछ। तो लकड़ियां काटनी पड़ीं। लकड़ियां काटकर ही घर को गरम भी करना, पानी भी उबालना, खाना भी बनाना, तो उसने लकड़ियां काटीं। वह एक महीने पहाड़ पर था, लकड़ियां काटता रहा। जब लौटकर आया और डाक्टरों को दिखाया तो उन्होंने कहा, चमत्कार! तुम्हारे अल्सर खो गए। तब उसे याद आया कि उस मनोवैज्ञानिक ने, मेरे मित्र ने कहा था कि फिर लकड़ियां काटने लगो।

तो लकड़ियां काटने से अल्सर कैसे खो गए। ऊर्जा तो वही है। अगर भीतर घुमड़ती रहे तो अल्सर बन सकती है, बाहर निकल जाए तो लकड़ी काट सकती है। तुम्हारे पास ऊर्जा एक ही है। इससे ही तुम गाली देते हो, इसी से तुम प्रभु-स्मरण करते हो। यही ऊर्जा धन की तलाश में जाती है, यही ऊर्जा ध्यान की तलाश करती है। यही ऊर्जा संसार बनती, यही ऊर्जा निर्वाण बन जाती।

इसलिए बुद्ध ने कहा, इतनी शक्ति अगर इसने अपनी खोज में लगायी होती तो अब तक भगवत्ता को उपलब्ध हो गया होता, भगवान हो गया होता।

इससे कुछ सीख लो, अपने पर दया करो।

बुद्ध सदा कहते थे, अपने पर दया करो। वह नहीं कहते थे, दूसरों पर दया करो। दूसरों पर तुम कैसे दया करोगे, जब तक अपने पर ही दया नहीं की! जो आदमी अपने पर ही नाराज है, वह पूरे संसार से नाराज रहेगा। और जो आदमी अपने पर दया करता है, वह किसी पर नाराज न रहेगा। जिसने अपने को प्रेम करना सीख लिया, वह सारे संसार को प्रेम करना सीख लेगा।

मैं भी तुमसे यही कहता हूं कि अपने को प्रेम करो, अपने पर दया करो। तुमने अपनी खूब हानि की है। और अक्सर तुम सोचते हो, दूसरों की हानि कर रहे हो, तभी तुम अपनी हानि कर रहे होते हो। तुमने जो-जो पत्थर दूसरों पर फेंके हैं, वे तुम्हारी छाती में ही चुभ गए हैं। और तुमने जो तीर दूसरों को मिटाने के लिए चलाए हैं, उन्हीं का विष तुम्हें खाए जा रहा है। तुमने जो गड्ढे दूसरों के लिए खोदे हैं, उन्हीं में तुम गिर गए हो। इस जगत में तुम जो गड्ढे दूसरों के लिए खोदते हो, वे अंततः तुम्हारी ही कब्र सिद्ध होते हैं।

अपने पर दया करो और अपने अकल्याण से बचो। मनुष्य अपना ही शत्रु और अपना ही मित्र है। अगर तुम अपनी ऊर्जा का सम्यक उपयोग कर लो तो मित्र, असम्यक उपयोग करो तो शत्रु।

उस युवक ने बड़े क्रोध से कहा, कोई दान न दे तो हम कैसा भाव रखें?

उसको लगा होगा, यह क्या फिजूल बात कर रहे हैं! कोई दान न दे तो हम कैसा भाव रखें? जैसे कि दान देना दूसरों का कर्तव्य ही है। देना ही चाहिए।

तुमने देखा, कभी भिखारी दरवाजे पर आकर खड़ा हो जाता है, अगर न दो तो वह तुम्हें पापी समझता है। न दो, तो वह इस तरह जाता है जैसे तुम जैसा जघन्य अपराधी उसने कभी नहीं देखा। जैसे कि यह तो बड़ी कृपा थी उसकी कि उसने तुम्हारे द्वार पर भिक्षा मांगी। तुम पर बड़ा अनुग्रह किया था उसने। धीरे-धीरे लोग भिक्षा मांगने तक को, तुम पर अनुग्रह कर रहे हैं, ऐसी धारणा बना लेते हैं।

कोई दान न दे तो हम कैसा भाव रखें? कोई दुतकारे तो हम कैसा भाव रखें? और कोई हमें दान न दे और दूसरों को दे तो हम कैसा भाव रखें? उस दिन उसने भगवान को भगवान कहकर भी संबोधित नहीं किया। मनुष्य की श्रद्धाएं भी कितनी छिछली हैं।

जब तुम्हारे अनुकूल हो तुम्हारा गुरु तो भगवान, जब तुम्हारे प्रतिकूल पड़ जाए तो फिर कैसा भगवान! इधर मुझे रोज ऐसे मौके आते हैं। अगर मैं जो कहूं वह तुम्हारे अनुकूल पड़ता हो, तुम बड़े खुश! तुम मुझसे खुश नहीं, तुम इस बात से खुश कि तुम्हारे अहंकार के अनुकूल पड़ गयी कोई बात। और निरंतर मुझे ऐसी बातें कहनी पड़ेंगी जो तुम्हारे अहंकार के अनुकूल नहीं पड़ सकती हैं, नहीं पड़नी चाहिए। वह तो भूल-चूक से कोई बात तुम्हारे अहंकार के अनुकूल पड़ जाती है। संयोग की बात समझना। वह प्रयोजन नहीं था।

यहां इतने लोग बैठे हैं, तो किसी के अनुकूल पड़ जाती है। मगर प्रयोजन तो यही कि तुम्हारा अहंकार सब तरह से भस्मीभूत हो जाए। धूल-धूसरित हो जाए, खंडित हो जाए, ऐसा गिरे कि फिर कभी उठ न सके।

निष्प्राण हो जाए। तो जब भी तुम्हें चोट लगती है तो नाराज हो जाते हो। तुम्हारी नाराजगी में फिर कौन गुरु! फिर कोई गुरु नहीं।

उस दिन उसने भगवान को भगवान भी नहीं कहा। मनुष्य की श्रद्धाएं कितनी छिछली हैं!

इस पृष्ठभूमि में बुद्ध ने ये गाथाएं कहीं--

"लोग अपनी श्रद्धा-भक्ति के अनुसार देते हैं।"

बुद्ध ने कहा, तुझे देना ही चाहिए किसी को, ऐसा नहीं है। उनकी जितनी श्रद्धा, उनकी जितनी भक्ति, उस हिसाब से देते हैं। उनके पास कितना है, उस हिसाब से देना चाहिए, यह भी सवाल नहीं है। तू कौन है इस तरह के सवाल उठाने वाला! किसी के पास करोड़ हैं और एक पैसा देता है, तो तू यह नहीं कह सकता कि यह कृपण है, क्योंकि करोड़ों रुपए हैं और एक पैसा देता है। एक पैसा दिया, इतना भी क्या कम है! इसके लिए भी अनुगृहीत होना चाहिए कि उसने एक पैसा भी दिया। न देता, तो कोई कानूनी अधिकार थोड़े ही है उसके ऊपर। एक पैसा भी दिया तो बहुत है।

बुद्ध के जीवन में एक उल्लेख है। वह एक द्वार पर भिक्षा मांग रहे हैं और उस द्वार का दरवाजा खुला और गृहिणी ने कहा, आगे हटो! तो वह आगे हट गए। पास का एक पड़ोसी ब्राह्मण यह देख रहा है। दूसरे दिन फिर उसी द्वार पर उन्होंने भिक्षा मांगी, और वह स्त्री अब तो बहुत ही गुस्से में आ गयी। वह कचरा साफ करके कचरा फेंकने जा रही थी, उसने सारा कचरा बुद्ध पर फेंक दिया और कहा कि तुझे कुछ बुद्धि नहीं है! समझ नहीं है! कल मैंने भगाया, फिर आ गया, अब यह ले! बुद्ध आगे बढ़ गए।

अब उस ब्राह्मण को भी दया आयी इस पर। ऐसे दया कारण नहीं थी, आनी नहीं थी, क्योंकि ब्राह्मण तो बुद्ध पर बहुत नाराज थे। मगर उसे दया आयी कि बेचारा! मगर यह है क्या बात? कल इसने हटा दिया, मैंने सुना; और आज इस पर कचरा भी फेंक दिया, यह है कैसा आदमी!

और जब उसने तीसरे दिन फिर बुद्ध को उस दरवाजे पर खड़ा देखा तो वह घबड़ाया। उसने कहा, अब तो वह स्त्री कहीं अंगारा न फेंक दे, या कोई और तरह की चोट न कर दे। वह आया, उसने कहा कि महाशय! आपको समझ नहीं है? मैं तीन दिन से देख रहा हूं। पहले दिन उसने इनकार करके हटा दिया अपमानपूर्वक, आप चुपचाप चले गए, दूसरे दिन कचरा फेंका; आज आप फिर आ गए? कचरा फेंका तब आपको कुछ समझ में नहीं आया कि इससे कुछ मिलने वाला नहीं है?

बुद्ध ने कहा, उससे ही तो ख्याल आया कि चलो कुछ तो दिया, कचरा दिया! पहले दिन भी तो कुछ दिया था--नाराज हुई थी, वह भी तो कुछ देना है। अन्यथा नाराज होने का भी क्या कारण है! कुछ न कुछ लगाव होगा। नाराज ही सही, जो आज नाराज है, कल शायद न नाराज भी रह जाए। आदमी बदलते हैं।

और वह ब्राह्मण तो चकित रह गया। उस स्त्री ने दरवाजा खोला, उसने भी चौंककर देखा! उसने कहा, भिक्षु, कल कचरा फेंका, तुम्हें समझ नहीं आया?

बुद्ध ने कहा, समझ में आया, इतनी मेहनत की कचरा फेंकने की, तो किसी दिन शायद कुछ मिल ही जाए। उस स्त्री की आंखों में आंसू आ गए। उस दिन वह भोजन ले आयी।

तो बुद्ध कहते थे, कोई कुछ न भी दे तो भी धन्यवाद देना। क्योंकि किसी पर हमारा कोई अधिकार तो नहीं है। दिया तो धन्यवाद, नहीं दिया तो धन्यवाद। जो दे उसका भला, जो न दे उसका भला, ऐसी भावदशा चाहिए।

"लोग अपनी श्रद्धा-भक्ति के अनुसार देते हैं। जो दूसरों के खान-पान को देखकर सहन नहीं कर सकता... ।"

और उस युवक से कहा कि अगर दूसरों को देते हैं, तो तुझे क्या परेशानी है? किसी को तो दिया! अगर तू दूसरों का खान-पान देखकर सहन नहीं कर सकता कि दूसरे को भोजन मिल गया, तुझे नहीं मिला, दूसरे को वस्त्र मिल गए, तुझे नहीं मिले, तो एक बात तू पक्की समझ कि दिन या रात तुझे कभी भी समाधि उपलब्ध न हो सकेगी। तू कभी समाधान को उपलब्ध न होगा, तेरे जीवन में कभी ध्यान की किरण न उतरेगी।

ध्यान की किरण उनके जीवन में उतरती है, जो सब भांति संतुष्ट हैं। जो कहते हैं, जो है, शुभ है। जैसा है, शुभ है। सुख में, दुख में, सफलता-असफलता में, हार-जीत में जो कहते हैं, जो है, ठीक है, शुभ है, उनके जीवन में समाधि फलती है।

"जिसकी ऐसी मनोवृत्ति उच्छिन्न हो गयी है, समूल नष्ट हो गयी है... ।"

असंतोष की मनोवृत्ति।

"वही दिन या रात कभी भी समाधि को प्राप्त करता है।"

इस सूत्र में बहुमूल्य बात है। अगर तुम ध्यान को उपलब्ध होना चाहते हो तो संतोष की भूमि तैयार करो। ध्यान की खेती संतोष की भूमि में ही फलती है, लगती है। खूब सींचो संतोष से प्राणों को, ताकि असंतोष जड़ से नष्ट हो जाए।

यस्स च तं समुच्छिन्नं मूलघच्चं समूहतं।

आमूल से उखाड़ दो असंतोष को।

सवे दिवा वा रत्तिं वा समाधिं अधिगच्छति।।

फिर दिन और रात न देखेगी समाधि, कभी भी आ जाएगी--कभी-कभी आ जाएगी, हर कभी आ जाएगी, ध्यान लगने लगेगा। पहले झलकें आएंगी, फिर लहरें आएंगी, एक दिन तुम पाओगे, बाढ़ आ गयी समाधि की--अधिगच्छति--फिर तो आकर तुम्हें ऊपर से पूरा का पूरा घेर लेगी, तुम्हें डुबा देगी।

दूसरा दृश्यः

एक दिन कुछ उपासक भगवान के चरणों में धर्म-श्रवण के लिए आए। उन्होंने बड़ी प्रार्थना की भगवान से कि आप कुछ कहें, हम दूर से आए हैं। बुद्ध चुप ही रहे। उन्होंने फिर से प्रार्थना की, तो फिर बुद्ध बोले। जब उन्होंने तीन बार प्रार्थना की तो बुद्ध बोले। उनकी प्रार्थना पर अंततः भगवान ने उन्हें उपदेश दिया, लेकिन वे सुने नहीं। दूर से तो आए थे, लेकिन दूर से आने का कोई सुनने का संबंध! शायद दूर से आए थे तो थके-मांदे भी थे। शायद सुनने की क्षमता ही नहीं थी। उनमें से कोई बैठे-बैठे सोने लगा और कोई जम्हाइयां लेने लगा। कोई इधर-उधर देखने लगा। शेष जो सुनते से लगते थे, वे भी सुनते से भर ही लगते थे, उनके भीतर हजार और विचार चल रहे थे। पक्षपात, पूर्वाग्रह, धारणाएं, उनके पर्दे पर पर्दे पड़े थे। उतना ही सुनते थे जितना उनके अनुकूल पड़ रहा था, उतना नहीं सुनते थे जितना अनुकूल नहीं पड़ रहा था।

और बुद्धपुरुषों के पास सौ में एकाध ही बात तुम्हारे अनुकूल पड़ती है। बुद्ध कोई पंडित थोड़े ही हैं। पंडित की सौ बातों में से सौ बातें अनुकूल पड़ती हैं। क्योंकि पंडित वही कहता है जो तुम्हारे अनुकूल पड़ता है। पंडित की आकांक्षा तुम्हें प्रसन्न करने की है। तुम्हें रामकथा सुननी है तो रामकथा सुना देता है। तुम्हें सत्यनारायण की कथा सुनना है तो सत्यनारायण की कथा सुना देता है। उसे कुछ लेना-देना नहीं--तुम्हें क्या सुनना है? उसका ध्यान तुम पर है, तुम्हें जो ठीक लगता है, कह देता है। उसकी नजर तो पैसे पर है, जो तुम दोगे उसे कथा कर देने के बाद।

लेकिन बुद्धपुरुष तुम्हें देखकर, तुम्हारा जो भाव है उसे देखकर--तुम जो चाहते हो उसे देखकर नहीं बोलते। बुद्धपुरुष, जिससे तुम्हारा कल्याण होगा।

बड़ा फर्क है दोनों में। सत्यनारायण की कथा से तुम्हारा कल्याण होगा कि नहीं होगा, इससे कुछ लेना-देना नहीं है पंडित को। किसका हुआ है! कितने तो लोग सत्यनारायण की कथा सुनते रहे हैं। और सत्यनारायण की कथा में न सत्य है, और न नारायण हैं, कुछ भी नहीं है। बड़े मजे की कथा है!

यह जो पंडित है, इसने लोगों को एक धारणा दे दी है कि सत्य तुम्हारे अनुकूल होता है। सत्य तुम्हारे अनुकूल हो ही नहीं सकता है! अगर तुम्हारे अनुकूल होता तो कभी का तुम्हें मिल गया होता। तुम सत्य के प्रतिकूल हो। इसीलिए तो सत्य मिला नहीं है। और जब सत्य आएगा तो छुरे की धार की तरह तुम्हें काटेगा। पीड़ा होगी।

तो जो सुन रहे थे, वे भी बस सुनते से लगते थे। उनकी हजार धारणाएं थीं। वे अपनी धारणाओं के हिसाब से सुनने आए थे। उनके अनुकूल पड़ती है बात कि नहीं पड़ती। यह बुद्ध जो कहता है, इससे इनके सिद्धांत सिद्ध होते कि नहीं सिद्ध होते। अर्थात वहां कोई भी नहीं सुन रहा था। कोई शरीर से ही बस वहां मौजूद था, मन कहीं और था--दुकान में, बाजार में, हजार काम में।

यहां भी मैं देखता हूं, कुछ मित्र आ जाते हैं, जम्हाई ले रहे हैं, कोई झपकी भी खा जाता है। मैं कभी-कभी चकित होता हूं, आते क्यों हैं? कोई बीच से उठ जाता है। कभी-कभी हैरानी होती है कि इतनी तकलीफ क्यों की? इतनी दूर अकारण आए क्यों? लेकिन कारण है।

लोगों की पूरी जिंदगी ऐसे ही जम्हाई लेते बीत रही है। उसी तरह की जिंदगी को वे लेकर यहां आते हैं, नयी जिंदगी लाएं भी कहां से! ऐसे ही सोते-सोते, झपकी खाते-खाते जिंदगी जा रही है। उसी जिंदगी में वे यहां भी सुनने आते हैं। वे नयी जिंदगी लाएं भी कहां से! कोई काम कभी जिंदगी में पूरा नहीं किया है, सब अधूरा छूटता रहा है, बीच में यहां से भी उठ जाते हैं, पूरी बात सुनने का बल कहां! इतनी देर थिर होकर बैठना भी मुश्किल है। डेढ़ घंटा भारी लगता है। हजार तरह की अड़चनें आने लगती हैं। हजार तरह के ख्याल आने लगते हैं कि बाजार ही चले गए होते, इतनी देर में इतना कमा लिया होता, फलां आदमी से मिल लिए होते, वकील से मिल आए होते, अदालत में परसों मुकदमा है, ऐसा है, वैसा है; हजार बात भीतर उठती रहती है। लेकिन कुछ आश्चर्य की बात नहीं है, यही तो चौबीस घंटे उनके भीतर चल रहा है। यहां अचानक आकर वे इसे एकदम छोड़ भी नहीं दे सकते हैं।

आनंद ने यह दशा देखी।

बुद्ध के भिक्षु आनंद ने यह दशा देखी कि पहले तो इन लोगों ने तीन बार प्रार्थना की, भगवान टालते रहे, टालते रहे, फिर बोले। अब इनमें से कोई सुन नहीं रहा है।

आनंद को बड़ी हैरानी हुई, उसने कहा, भगवान, आप किससे बोल रहे हैं? यहां सुनने वाला तो कोई है ही नहीं। भगवान ने कहा, मैं संभावनाओं से बोल रहा हूं। जो हो सकता है, जो हो सकते हैं, उनसे बोल रहा हूं। मैं बीज से बोल रहा हूं। और मैं बोल रहा हूं इसलिए भी कि मैं नहीं बोला, ऐसा दोष मेरे ऊपर न लगे। रही सुनने वालों की बात, सो ये जानें। सुन लें, इनकी मर्जी। न सुनें, इनकी मर्जी। फिर जबर्दस्ती कोई बात सुनायी भी कैसे जा सकती है!

बुद्ध ने कहा, मैं संभावनाओं से बोल रहा हूं।

बुद्ध का एक बड़ा शिष्य बोधिधर्म चीन गया तो नौ साल तक दीवाल की तरफ मुंह करके बैठा रहा। वह लोगों की तरफ मुंह नहीं करता था। अगर कोई कुछ पूछता भी तो दीवाल की तरफ ही मुंह रखता और वहीं से जवाब दे देता। लोग कहते कि महाराज, बहुत भिक्षु देखे, भारत से और भी भिक्षु आए हैं, मगर आप कुछ अनूठे हैं। यह कोई बैठक का ढंग है! कि हम जब भी आते हैं, तब आप दीवाल की तरफ मुंह किए रहते हैं। शायद बोधिधर्म ने पाठ सीख लिया होगा। उसने कहा है कि इसीलिए कि मैं तुम्हारा अपमान नहीं करना चाहता। क्योंकि जब मैं तुम्हारी आंखों में देखता हूं, मुझे दीवाल दिखायी पड़ती है। उससे कहीं मैं कुछ कह न बैठूं, सो मैं दीवाल की तरफ देखता रहता हूं।

वह आदमी जरा तेज-तर्रार था। उसने कहा कि जब कोई आदमी आएगा, जिसकी आंखों में मैं देख सकूं और मैं पाऊं कि दीवाल नहीं है, तब मैं देखूंगा। उसके पहले नहीं।

नौ साल बैठा रहा। तब उसका एक पहला शिष्य आया--हुईकोजो। और हुईकोजो पीछे खड़ा रहा--चौबीस घंटे खड़ा रहा, हुईकोजो कुछ बोला ही नहीं। बर्फ गिर रही थी, उसके हाथ-पैर पर बर्फ जम गयी, वह ठंड में सिकुड़ रहा है, वह खड़ा ही रहा, वह बोला ही नहीं। चौबीस घंटे बीत गए और बोधिधर्म बैठा रहा, दीवाल की तरफ देखता ही रहा, देखता ही रहा। आखिर बोधिधर्म को ही पूछना पड़ा कि महानुभाव, मामला क्या है? क्यों खड़े हैं? क्या मुझे लौटना पड़ेगा? क्या मुझे लौटकर तुम्हारी तरफ देखना पड़ेगा? तो हुईकोजो ने कहा, जल्दी करो, नहीं तो पछताओगे। और हुईकोजो ने अपना एक हाथ काटकर उसको भेंट कर दिया। यह एक सबूत, कि मैं कुछ कर सकता हूं। और दूसरा सबूत मेरी गर्दन है।

कहते हैं, बोधिधर्म तत्क्षण घूम गया। उसने कहा, तो तुम आ गए। तुम्हारी मैं प्रतीक्षा करता था। तुम्हारे लिए ही दीवाल को देख रहा था।

ऐसा अनुभव मुझे रोज होता है। आनंद की बात ठीक ही लगती है कि भगवान आप किससे बोल रहे हैं! यहां सुनने वाला तो कोई है ही नहीं। मैं भी संभावनाओं से बोल रहा हूं। जो हो सकता है, उससे बोल रहा हूं। जो हो गया है, उससे तो बोलने की जरूरत भी नहीं। वह तो बिन बोले भी समझ लेगा। वह तो चुप्पी को भी समझ लेगा। वह तो मौन से भी अर्थ निकाल लेगा। जो नहीं हुआ है अभी, उसी के लिए काफी चिल्लाने की, मकानों के मुंडेर पर चढ़कर चिल्लाने की जरूरत है। उसे सब तरफ से हिलाने की जरूरत है, शायद जग जाए। सौ में से कभी कोई एकाध जगेगा, लेकिन वह भी बहुत है। क्योंकि एक जग जाए तो फिर एक और किसी एक को जगा देगा। ऐसे ज्योति से ज्योति जले। ऐसे दीए से दीए जलते जाते हैं। और बोधि की परंपरा संसार में चलती रहती है।

और बुद्ध ने ठीक कहा कि इसलिए भी बोल रहा हूं कि नहीं बोला, ऐसा दोष मुझ पर न लगे। नहीं सुना, यह तुम्हारी बात रही, यह तुम जानो; मैं नहीं बोला, ऐसा दोष न लगे।

तब आनंद ने पूछा, भंते, आपके इतने सुंदर उपदेश को भी ये सुन क्यों नहीं रहे हैं?

सुंदर उपदेश या असुंदर उपदेश तो सुनने वाले की दृष्टि है। आनंद को लग रहा है सुंदर, उसके हृदय-कमल खिल रहे। यह बुद्ध की मधुर वाणी, ये उनके शब्द, उसके भीतर वर्षा हो रही है, अमृत की वर्षा हो रही है। वह चकित है कि इतना सुंदर उपदेश और ये मूढ़ बैठे हैं, कोई झपकी खा रहा है, कोई जम्हाई ले रहा है, किसी का मन कहीं भाग गया है, किसी का मन सोच रहा है कि यह ठीक है कि नहीं है, गलत है कि सही है, शास्त्र में लिखा है उसके अनुकूल है या नहीं, कोई विवाद में पड़ा है! एक भी सुन नहीं रहा है। इतना सुंदर उपदेश! ये सुन क्यों नहीं रहे हैं?

भगवान ने कहा, आनंद, श्रवण सरल नहीं। श्रवण बड़ी कला है। आते-आते ही आती है। राग, द्वेष, मोह और तृष्णा के कारण धर्म-श्रवण नहीं हो पाता। पूर्वाग्रहों के कारण धर्म-श्रवण नहीं हो पाता। भय के कारण धर्म-श्रवण नहीं हो पाता। पुरानी आदतों के कारण धर्म-श्रवण नहीं हो पाता। लेकिन सबके मूल में राग है। राग की आग के समान आग नहीं है। इसमें ही संसार जल रहा है। इसमें ही मनुष्य का बोध जल रहा है। उसके कारण ही लोग बहरे हैं, अंधे हैं, लूले हैं, लंगड़े हैं।

और तब उन्होंने ये गाथाएं कहीं--

नत्थि रागसमो अग्गि नत्थि दोससमो गहो।
नत्थि मोहसमं जालं नत्थि तण्हासमा नदी।।
सुदस्सं वज्जमों◌ंसं अत्तनोपन दुदृशं।
परेसं हि सो वज्जानि ओपुणात यथाभुसं।
अत्तनोपन छादेति कलिं"व कितवा सठो।।
परवज्जानुपस्सिस्स निच्चं उज्झानसिं◌ंनो।
आसवातस्स बड्ढन्ति आरा सो आसवक्खया।।

"राग के समान आग नहीं, द्वेष के समान ग्रह नहीं, मोह के समान जाल नहीं और तृष्णा के समान नदी नहीं।"

"राग के समान आग नहीं।"

क्योंकि राग मनुष्य को जलाती है। तीक्ष्ण अग्नि की लपटों की भांति जलाती है। तो इसमें से कोई तो राग में जल रहा है--कोई अपनी पत्नी की सोच रहा है, कोई अपने धन की सोच रहा है, कोई दुकान की सोच रहा है--इनमें से कुछ तो आग की लपटों में जल रहे हैं, राग की लपटों में जल रहे हैं।

"द्वेष के समान ग्रह (पिशाच, भूत-प्रेत) नहीं।"

कुछ के पीछे द्वेष लगा है, जैसे किसी के पीछे भूत लग जाता है। तो द्वेष फिर सोने नहीं देता, बैठने नहीं देता। यहां कुछ हैं जो किसी की हानि की सोच रहे हैं। यहां मैं उनके कल्याण की बात कर रहा हूं, उसमें उनकी कोई उत्सुकता नहीं। कोई सोच रहा है कि दुश्मन को मार डालें। कोई सोच रहा, उसके खलिहान में आग लगवा दें। कोई कहता है, मुकदमे में ऐसी चाल चलें कि सदा के लिए सजा हो जाए। यहां कोई द्वेष के पिशाच से परेशान हो रहा है।

"मोह के समान जाल नहीं।"

कोई मोह में पड़ा है। किसी को अपने बेटे की याद आ रही है, किसी को अपनी बेटी की याद आ रही है, किसी की आंख में आंसू झलक आए हैं किसी की याद में; किसी की पत्नी मर गयी, वह उसके ख्याल में बैठा है। कोई किसी नयी स्त्री के प्रेम में पड़ गया है, वह उसका विचार कर रहा है। तो कोई मोह के जाल में उलझा है।

"और तृष्णा के समान नदी नहीं।"

और कुछ हो जाऊं, कुछ पा लूं, कहीं पहुंच जाऊं, ऐसी जो वासना है, वह तो नदी की तरह बाढ़ है। कोई उसमें बहा जा रहा है। इनके कारण ये नहीं सुन पा रहे हैं।

श्रवण बड़ी कला है, बुद्ध ने कहा। आते-आते ही आती है।

तो इन पर नाराज मत हो जाना, आनंद। क्यों? क्योंकि दूसरों का दोष देखना आसान है, अपना दोष देखना कठिन है। तुझे इनका दोष दिखायी पड़ रहा है, तुझे अपने दोष दिखायी नहीं पड़ेंगे। इनको अपना दोष दिखायी नहीं पड़ रहा है। इनको दूसरों के, सारी दुनिया के दोष दिखायी पड़ते हैं। दूसरों का दोष देखना आसान है, अपना दोष देखना कठिन है। यह बड़ी अदभुत बात आनंद से कही।

बुद्धपुरुष को मौका मिले कुछ खींच लेने का तुम्हारे पैर के नीचे से, तो वह चूकते नहीं। अब आनंद तो उनके लिए पूछ रहा था, फंस गया बीच में! वह तो शायद यह भी सोच रहा होगा कि देखो, कितनी बढ़िया बात कह रहा हूं कि इनमें कोई नहीं सुन रहा और आप नाहक सुना रहे हैं। मगर उसे यह ख्याल नहीं था कि दूसरे का दोष मैं देख रहा हूं।

अब यहां तुम ख्याल करना, आनंद भी नहीं सुन रहा है, वह इनको देख रहा है। जिन सज्जन की मैंने परसों तुमसे बात कही, जो कलकत्ता मेरे साथ गए और जिनको मैंने कहा कि तीन दिन के लिए परमहंस हो जाओ और वे चुप होकर बैठ गए और उनकी बड़ी पूजा हुई और लोग आए और पैर छुए, वह मेरे साथ कई दफे यात्राओं पर जाते थे। उन्होंने मुझे कभी नहीं सुना। क्योंकि उनको सुनने की फुर्सत कहां! वह यह देख रहे कि लोगों में कौन सुन रहा है, कौन नहीं सुन रहा है। अगर लोग सुनते मालूम पड़ते तो वह बड़े प्रभावित होते। अगर लोग सुनते न मालूम पड़ते तो वह कहते कि आज क्या हुआ, लोग सुन नहीं रहे हैं! मैंने उनसे एक दिन पूछा कि तुम कब सुनोगे? अगर लोग प्रभावित होते तो वह प्रभावित होते, वह मेरी बात सुनकर प्रभावित नहीं होते। वह यही कहते कि लोग बिल्कुल सकते में आ गए हैं, सुन रहे हैं, बिल्कुल सुई भी गिर जाए तो सुनायी पड़ेगी। वह बड़े खुश होते। वह ऐसी जगह बैठते जहां से उनको सब दिखायी पड़ते रहें। ताकि वह देख लें कि सब सुन रहे हैं? वह दुनिया के कल्याण में बड़े उत्सुक थे।

उनको अपनी कोई फिकर नहीं। मैंने उनसे कहा, तुम कब सुनोगे? कौन सुनता है, नहीं सुनता है, इससे क्या लेना-देना है! जहां तक मैं जानता हूं, तुमने सबसे ज्यादा मुझे सुना और सबसे कम सुना। वर्षों तुम मेरे साथ रहे, जगह-जगह तुम गए, मगर तुमने मुझे सुना नहीं है। तुम्हारी बेचैनी उन पर अटक गयी है--कोई सुन रहा है कि नहीं सुन रहा है? जैसे उनके सुन लेने से तुम्हें कुछ लाभ हो जाएगा।

अब आनंद बुद्ध के निकटतम शिष्यों में था, लेकिन बुद्ध के मरने के बाद समाधि को उपलब्ध हुआ, जीते जी समाधि को उपलब्ध नहीं हुआ। अनेक शिष्य आए और समाधिस्थ हो गए, अर्हत्व को पा लिया, अरिहंत हो गए--पीछे आए। आनंद सबसे पहले आया था; वह बुद्ध का चचेरा भाई था। बयालीस साल बुद्ध के साथ छाया की तरह रहा, एक क्षण को साथ नहीं छोड़ा। रात उसी कमरे में सोता था, जहां बुद्ध सोते थे, दिनभर छाया की तरह लगा रहता था।

जब उसने दीक्षा ली थी बुद्ध से तो उसने एक शर्त करवा ली थी, वह शर्त यह थी कि तुम मुझे कभी भी आज्ञा मत देना--वह बड़ा भाई था, चचेरा भाई था, तो दीक्षा के पहले उसने कहा कि सुनो, अभी तुम मेरे छोटे भाई हो, दीक्षा के बाद तो मैं शिष्य हो जाऊंगा, फिर तो तुम जो कहोगे मुझे करना ही पड़ेगा, इसलिए दीक्षा के पहले कुछ शर्तें रख लेता हूं, बड़े भाई के लिए इतना करो--एक, कि तुम मुझे कभी भी, किसी भी स्थिति में यह नहीं कह सकोगे कि आनंद, तू कहीं और जाकर विहर। मैं आपकी छाया की तरह लगा रहूंगा। दिन हो कि रात, मैं आपके साथ ही रहूंगा। यह एक वचन आप दे दें। दूसरा वचन कि मैं किसी को आधी रात भी ले आऊंगा कि इसकी कोई जिज्ञासा है, तो आपको हल करनी पड़ेगी। आप ऐसा नहीं कह सकेंगे कि अभी मैं सो रहा हूं। ऐसी उसने शर्तें ले ली थीं।

तो वह बयालीस साल छाया की तरह बुद्ध के साथ रहा, लेकिन ज्ञान को उपलब्ध नहीं हुआ। तो बुद्ध ठीक ही कहते हैं कि दूसरे का दोष देखना आसान।

सुदस्सं वज्जमों ंसं अत्तनोपन दुदृशं।

पर अपना दोष देखना बड़ा कठिन, आनंद। तू यह तो देख रहा है कि ये कोई नहीं सुन रहे हैं, लेकिन तूने सुना?

और जब बुद्ध की मृत्यु हुई तो आनंद छाती पीट-पीटकर रोया। क्योंकि उसने सुना ही नहीं। उसने भी जिंदगी ऐसे ही बिता दी, कौन सुन रहा है कि नहीं सुन रहा है, इसकी फिकर में बिता दी।

"वह मनुष्य दूसरों के दोषों को भूसे की भांति उड़ाता फिरता है, लेकिन अपने दोषों को वैसे ही छिपाता है जैसे जुआरी हार के पासे को छिपाता है।"

बुद्ध ने कहा, मनुष्य ऐसा है। दूसरों के दोषों को तो उड़ाता है भूसे की भांति कि सबकी आंखों में पड़ जाए और सबको दिखायी पड़ जाए, और अपने दोषों को ऐसे छिपाता है जैसे जुआरी हार के पासे को छिपाता है।

"दूसरों का दोष देखने वाले तथा दूसरों की टीका-टिप्पणी करने वाले के आस्रव बढ़ते हैं, आनंद! उससे उसके बंधन बढ़ते हैं, कटते नहीं। वह आस्रवों के विनाश से दूर ही रहता है।"

उसके आस्रव विनष्ट नहीं होते। उसके बंधन के मूल कारण टूटते नहीं। उसका संसार चलता रहता है, आनंद। तो ठीक, ये नहीं सुन रहे हैं, यह तो ठीक, मगर तू मत इस फिकर में पड़। तू सुन!

यहां तुमसे भी मैं यह कहना चाहूंगा, जब मैं कह रहा था कि कोई यहां जम्हाई लेता कभी, कोई झपकी खा जाता, कोई इधर-उधर देखता, तो तुम जल्दी से सोचने मत लगना कि मैं किसके संबंध में बात कर रहा हूं। तुम जल्दी से दूसरों की तरफ मत देखने लगना कि पड़ोस में कोई जम्हाई ले रहा हो, तुम कहो कि देखो, यह बेचारा! दूसरों के दोष देखने बहुत आसान। उसको लेने दो जम्हाई, वह उसकी मर्जी! अगर उसने जम्हाई ही लेने का तय किया है तो हम कौन बाधा देने वाले! ले, चलो यही क्या कम है कि उसने ऐसी जगह आकर जम्हाई ली। वेश्याघर में बैठकर भी ले सकता था। यहां कुछ होने की संभावना तो है ही। कहीं न कहीं से चोट शायद कभी पड़ जाए, जम्हाई लेते-लेते ही शायद कोई चीज भीतर सरक जाए--शायद मुंह खुला हो जम्हाई में और कुछ गटक जाए। झपकी खा रहा हो, झपकी में ही कोई चीज सरक जाए। चलो, ठीक जगह आकर जम्हाई ली। ठीक जगह आकर झपकी खायी।

मुझसे कभी पूछता कोई--उसको नींद आ जाती है सदा--वह कहता है, बड़ी हैरानी की बात है, बस आपको सुना कि नींद आयी! ऐसे चाहे रातभर नींद न आए, बस आपको सुना कि नींद आयी। आप क्या मंत्र कर

देते हैं! तो मैं कहता हूं, चलो, कोई बात नहीं; यहां आकर सोओ, यह भी ठीक। शायद नींद में ही मेरी बात कभी उतर जाए, कोई सपना बन जाए। शायद नींद भी कभी द्वार बन जाए। चलो, कोई हर्ज नहीं। सत्संग अगर नींद में भी हो, तो भी ठीक। दुष्ट-संग तो जागकर हो, तो भी ठीक नहीं।

तीसरा दृश्यः

भगवान की इस पृथ्वी पर अंतिम घड़ी। भगवान कुसीनाला के शालवन उप्पवत्तन में अपने भिक्षुओं से अंतिम विदा लेकर लेट गए हैं। दो शालवृक्षों के नीचे उन्होंने अपनी मृत्यु का स्वागत करने का आयोजन किया है।

मौत आ रही है। तो बुद्ध ने अपने भिक्षुओं से कहा, तुम्हें कुछ पूछना हो तो पूछ लो। कुछ कहना हो तो कह लो, अब मैं चला। अब यह देह जाती है। मैं तो चला गया था बयालीस साल पहले ही, देह भर रह गयी थी, अब देह भी जाती है। तो बौद्ध दो शब्दों का उपयोग करते हैं--निर्वाण और महापरिनिर्वाण। निर्वाण तो उस दिन उपलब्ध हो गया जिस दिन बुद्ध को ज्ञान हुआ। फिर महापरिनिर्वाण उस दिन हुआ जिस दिन देह विसर्जित हो गयी। उस दिन वे महाशून्य में खो गए, महाकाश के साथ एक हो गए। आकाश हो गए।

तो भिक्षु क्या पूछते? बुद्ध ने इतना तो कहा, वही कहां सुना! कितना तो कहा, वही कहां सुना! पूछने को बचा क्या? जो पूछा था, वह कहा, जो नहीं पूछा, वह भी कह दिया है। बुद्ध ने तो खूब लुटाया है, बयालीस साल सुबह से सांझ तक लुटाते ही रहे। जो कहा है, वह भी समझ में नहीं आया है, अब और पूछने को क्या है! तो भिक्षु तो चुप रह गए। उन्होंने कहा, पूछने को भगवान क्या है? बस आपका आशीष! ऐसा बुद्ध ने तीन बार पूछा--ऐसी उनकी आदत थी कि शायद किसी को याद पड़ जाए, शायद किसी को ख्याल आ जाए, फिर ऐसा न हो कि मैं जा चुका होऊं और मन में एक खटक रह जाए कि पूछना था, नहीं पूछ पाया, अब किससे पूछे? अब कौन उत्तर देगा? तो बुद्ध ने तीन बार पूछा, तीनों बार भिक्षुओं ने स्वीकृति दी कि हमें कुछ पूछना नहीं। आपने हमें, जितना देना चाहिए, उससे ज्यादा दे दिया। हम उसका उपयोग कर लें, रत्तीभर भी उपयोग कर लें तो पर्याप्त है।

तो फिर बुद्ध दो शालवृक्षों के मध्य में, आनंद ने उनकी शय्या तैयार कर दी, उस पर लेट गए। और धीरे-धीरे वह अपनी देह से मुक्त होने लगे।

तभी सुभद्र नाम का एक व्यक्ति गांव से भागा हुआ आया।

उसे खबर मिली, वह एक दुकानदार था, उसे खबर मिली कि बुद्ध का आखिरी दिन। तो वह घबड़ा गया। तीस साल में बुद्ध अनेक बार उसके गांव से निकले, कहते हैं, करीब तीस बार उसके गांव से निकले--वह गांव उनके मार्ग में पड़ता था। और तीस साल में उसने अनेक बार सोचा कि बुद्ध को सुनने जाना है, लेकिन कभी कोई बाधा आ गयी, कभी कोई बाधा आ गयी।

तुम तो जानते हो कितनी बाधाएं आती हैं! कभी पत्नी बीमार हो गयी--अब पत्नियों का क्या भरोसा कब बीमार हो जाएं! और ऐसे मौके पर जरूर बीमार हो जाएं। कभी बेटी घर आ गयी। कभी बेटे से झगड़ा हो गया। कभी मेहमान आ गए, कभी दुकान पर ग्राहक ज्यादा। कभी काम का बोझ आ गया। कभी कुछ, कभी कुछ। हर बार टालता रहा कि अगली बार, अगली बार।

आज अचानक गांव में खबर आयी, एक सन्नाटे की तरह छा गया सारे गांव में कि बुद्ध शरीर छोड़ रहे हैं, गांव के बाहर ही दो शालवृक्षों के नीचे उन्होंने अपनी अंतिम घड़ी चुन ली है। अब वे जा रहे हैं।

तो उसने जल्दी-जल्दी दुकान बंद की--आज उसने फिकर न की कि पत्नी बीमार, कि बेटी घर आयी, कि मेहमान आए, कि दुकान पर ग्राहक, उसने कहा, हटो भी! अब जाने दो, बहुत हो गया, तीस साल मैं टालता रहा। अब अगर टालूंगा तो फिर, फिर कब? मुझे कुछ पूछना है। वह भागा।

जब तक वह पहुंचा तब तक बुद्ध ने आंखें बंद कर लीं। वह तो लेट भी गए हैं। सुभद्र जोर-जोर से रोने लगा, उसने कहा कि मुझे पूछने दो। मैं तीस साल से तड़फ रहा हूं। आनंद ने उसे बहुत समझाया कि पागल, तीस साल तूने स्थगित किया, हमने तो स्थगित नहीं किया! अब वे विश्राम में जा रहे हैं, अब वे अपनी देह छोड़ रहे हैं, अब उनको लौटाना ठीक नहीं, अशोभन है। हमने उन्हें काफी बयालीस साल में पीड़ा दी है, हमने बहुत पूछा, हमने न मालूम क्या-क्या पूछा, नहीं पूछना था वह भी पूछा, उसके भी उत्तर उनसे चाहे हैं; अब नहीं!

लेकिन कहते हैं, भगवान ने सुभद्र की और आनंद की बातें सुनकर आंख खोल दी और उन्होंने कहा कि नहीं-नहीं आनंद, रोको मत, उसे आने दो। अभी मैं जिंदा हूं। नहीं तो यह एक दोष रह जाएगा, यह सुभद्र सदा के लिए मुझे दोषी ठहराएगा कि मैं पूछने गया था और भगवान के द्वार से बिना पूछे आ गया। इसे पूछ लेने दो।

तो सुभद्र आकर उनके पास बैठ गया और उसने जो प्रश्न पूछे, वे भी बड़े अजीब हैं। व्यर्थ के प्रश्न पूछे। दार्शनिक प्रश्न पूछे, जिनसे कुछ व्यावहारिक उपयोग नहीं है।

उसने प्रश्न पूछा कि भंते, मुझे तीन प्रश्न पूछने हैं। पहला, क्या आकाश में पद हैं, क्या आकाश में पदचिह्न बनते हैं? दूसरा, क्या बाहर श्रमण हैं? और तीसरा, क्या संस्कार शाश्वत हैं?

अब इनका कोई मूल्य नहीं है। इनको जान लेने से भी क्या होगा? ये हवाई बातें पूछीं। तुम कभी बुद्धपुरुषों के पास भी जाते हो तो मूढ़तापूर्ण प्रश्न पूछते हो। जिनको तुम बड़ी आध्यात्मिक बातें कहते हो, वे अक्सर मूढ़तापूर्ण बातें हैं।

मेरे पास कोई आ जाता, वह कहता, भगवान ने संसार बनाया या नहीं? क्या मतलब है! क्या फर्क पड़ेगा! बनाया तो तुम ऐसे ही जीओगे, नहीं बनाया तो तुम ऐसे ही जीओगे। तुम्हारे जीने में कुछ फर्क पड़े, ऐसी बात पूछो। आदमी मरने के बाद बचता या नहीं? क्या फर्क पड़ेगा! अभी तुम जैसे हो, यहीं भीतर डुबकी लगाने की कोई बात पूछो। तो शायद तुम्हें पता चल जाए उसका भी जो बचेगा। पहचान हो जाए। मगर नहीं, इसमें उत्सुकता नहीं, ध्यान में उत्सुकता नहीं, योग में उत्सुकता नहीं, हवाई बातें! एब्स्ट्रेक्ट! जिनका कोई मूल्य नहीं है।

उस आदमी ने क्या प्रश्न पूछे! भंते, क्या आकाश में पद हैं? बाहर श्रमण हैं? क्या संस्कार शाश्वत हैं?

उसको भी उत्तर भगवान ने दिया। साधारणतः वह इस तरह की बातों के उत्तर नहीं देते थे, लेकिन यह अंतिम जिज्ञासु था और इसे इनकार करना ठीक नहीं था।

ये अंतिम दो सूत्र सुभद्र को उत्तर में दिए गए सूत्र हैं।

आकासे च पदं नत्थि समणो नत्थि बाहिरे।
पपंचाभिरता पजा निप्पपंचा तथागता।।
आकासे च पदं नत्थि समणो नत्थि बाहिरे।
संखारा सस्सता नत्थि नत्थि बुद्धानमिंजतं।।

"आकाश में पथ नहीं होता--कोई पदचिह्न नहीं बनते--बाहर में (बुद्ध-शासन से बाहर) श्रमण नहीं होता। लोग प्रपंच में लगे रहते हैं, लेकिन तथागत प्रपंच रहित हैं।"

"आकाश में पथ नहीं होता--पदचिह्न नहीं बनते--बाहर में श्रमण नहीं होता, संस्कार शाश्वत नहीं होते हैं और बुद्धों का इंगित, अता-पता नहीं होता है।"

बुद्ध ने कहा, आकाश में कोई पदचिह्न नहीं बनते। पूछने वाले ने तो व्यर्थ की बात पूछी थी, पूछने वाले को तो इससे कुछ सार न था, लेकिन बुद्ध ने जो उत्तर दिया, वह बड़ा सार्थक है।

तुम भी बहुत बार प्रश्न पूछते हो जो व्यर्थ होते हैं। जिनसे तुम्हें कोई लाभ नहीं होने वाला है। इसलिए कई बार तुम्हें ऐसा भी लगता होगा कि मैं जो उत्तर देता हूं, वह शायद ठीक-ठीक तुम्हारे प्रश्न का उत्तर नहीं है। क्योंकि मैं उत्तर तुम्हें वही देता हूं जिससे तुम्हें कुछ लाभ हो सके। तुम्हें तो क्षमा किया जा सकता है गलत प्रश्न पूछने के लिए, मुझे क्षमा नहीं किया जा सकता गलत उत्तर देने के लिए। तुम कुछ भी पूछो, मैं तुम्हें वही उत्तर देता हूं जिसका कोई परिणाम हो सके। जिससे तुम्हारे जीवन में कोई रूपांतरण हो सके। मैं तुम्हारे गलत प्रश्न से भी कुछ खोज लेता हूं जिसका ठीक उत्तर हो सके।

उसने जो पूछा था, वह व्यर्थ की बात थी। उसका कोई मूल्य नहीं था। लेकिन बुद्ध ने उसमें मूल्य डाल दिया। उन्होंने कहा, आकाश में पथ नहीं होता। और जीवन आकाश जैसा ही है। इसमें कोई पदचिह्न नहीं छूटते हैं। बुद्ध चलते हैं, उनके कोई पदचिह्न नहीं छूटते।

इसलिए तुम अगर चाहो कि हम बुद्ध के पदचिह्नों पर चलकर पहुंच जाएंगे, तो तुम गलती में हो। आकाश में पक्षी चलते हैं, उड़ते हैं, कोई पदचिह्न नहीं छूटते। इसलिए उनके पीछे कोई उनके पदचिह्नों पर चलकर कहीं जा नहीं सकता।

बुद्ध बार-बार कहते थे, अप्प दीपो भव, अपने दीए खुद बनो, किसी के पीछे चलकर कोई कभी नहीं पहुंचता, क्योंकि यहां चिह्न बनते ही नहीं। यहां चिह्न निर्मित ही नहीं होते। तुम अनुगमन कर ही नहीं सकते। तुम अनुकरण कर ही नहीं सकते। तुम किसी की छाया बनना चाहो तो भूल हो जाएगी। फिर तुम आत्मा न बन सकोगे।

"आकाश में पथ नहीं होता... ।"

आकासे च पदं नत्थि समणो नत्थि बाहिरे।

उसने पूछा कि बाहर में श्रमण होता है या नहीं? इसका बौद्धों ने जो अब तक अर्थ किया है, वह एकदम गलत है। बौद्ध इसका अर्थ करते हैं कि उसने पूछा कि भगवान के संघ के बाहर कोई आदमी समाधि को उपलब्ध होता है? श्रमण होता है? और बौद्ध--शायद उसने यह पूछा भी हो, हम उसको क्षमा कर सकते हैं, वह अज्ञानी आदमी, हो सकता है पूछा हो उसने कि आपके संघ के बाहर कोई ज्ञान को उपलब्ध होता है? आपके संघ के बाहर, आपके भिक्षुओं के बाहर कोई समाधि को उपलब्ध होता है? हो सकता है पूछने वाले ने यही पूछा हो। लेकिन बुद्ध तो इस तरह का उत्तर नहीं दे सकते हैं कि बाहर में (बुद्ध-शासन से बाहर) श्रमण नहीं होता। यह बात गलत है। यह तो बुद्ध कतई नहीं कह सकते।

फिर बुद्ध का क्या अर्थ होगा? सूत्र सीधा-साफ है, उसके अर्थ भी खूब बिगाड़े गए हैं।

आकासे च पदं नत्थि।

"आकाश में पदचिह्न नहीं बनते।"

समणो नत्थि बाहिरे।

"बाहर श्रमण नहीं होता।"

अब इसका अर्थ जो मैं करता हूं वह यह है कि जो बहिर्मुखी है, वह श्रमण नहीं होता। जो बाहर दौड़ रहा है, बाहर की तरफ जा रहा है, वह कभी ज्ञान को उपलब्ध नहीं होता। जिसकी यात्रा अंतर्मुखी है, वही ज्ञान को उपलब्ध होता है।

समणो नत्थि बाहिरे।

जो बहिर्मुखी है, एक्स्टॉवर्ट, वह कभी ज्ञान को उपल्बध नहीं होता। यह मेरा अर्थ है।

बौद्धों का तो अब तक का अर्थ यही रहा है कि बुद्ध-शासन के बाहर कोई ज्ञान को उपलब्ध नहीं होता। यह बात तो बड़ी ओछी है। फिर महावीर ज्ञान को उपलब्ध नहीं होते। फिर कृष्ण ज्ञान को उपलब्ध नहीं होते। फिर क्राइस्ट, मोहम्मद, जरथुस्त्र ज्ञान को उपलब्ध नहीं होते। फिर तो यह बड़ी संकीर्ण बात हो जाएगी। बुद्ध ऐसा वचन बोलेंगे, यह असंभव है।

इसलिए मैं इस अर्थ को इनकार करता हूं। मैं अर्थ करता हूं--

समणो नत्थि बाहिरे।

बाहर घूमती चेतना, बाहर-बाहर जाती चेतना, कभी ज्ञान को उपल्बध नहीं होती। अंतर्यात्रा पर जो जाता है, वही ज्ञान को उपलब्ध होता है, वही श्रमण, वही समाधि को पाता है।

"लोग प्रपंच में लगे रहते हैं और जो ज्ञान को उपलब्ध हो गया वह प्रपंचरहित हो जाता है।"

"आकाश में पथ नहीं... ।"

आकासे च पदं नत्थि समणो नत्थि बाहिरे।

संखारा सस्सता नत्थि...

संस्कार का अर्थ होता है, हमारे ऊपर जो-जो प्रभाव पड़े हैं, संस्कार, कंडीशनिंग। उस आदमी ने पूछा है, क्या संस्कार शाश्वत होते हैं? जो हम पर प्रभाव पड़े हैं, वे सदा रहने वाले हैं?

बुद्ध कहते हैं, नहीं, जो भी प्रभाव हैं, वे पानी पर खींचे गए प्रभाव हैं। जैसे पानी पर कोई लकीरें खींच दे। वे खींचते-खींचते मिट जाती हैं। या कोई रेत पर लकीरें खींचे; खींच देता है, थोड़ी देर टिकती हैं, फिर हवा आती है तब मिट जाती हैं।

तुम कहोगे, कोई पत्थर पर लकीरें खींच दे? वे भी समय आने पर मिट जाती हैं। कोई लोहे पर लकीरें खींच दे, वे भी एक दिन समय आने पर मिट जाती हैं। कोई हीरे पर लकीरें खींच दे, तो शायद करोड़ों वर्ष रहें, लेकिन वे भी समय आने पर मिट जाती हैं। कोई संस्कार शाश्वत नहीं है। यहां जो भी प्रभाव है, अशाश्वत है।

और इसलिए प्रभाव के बाहर हो जाना ही शाश्वत को पाना है। सब लकीरें मिट जाएं--सब खींची लकीरें, कि मैं हिंदू, कि मैं मुसलमान, कि मैं ब्राह्मण, कि मैं पुरुष, कि मैं स्त्री, कि मैं धनी, कि मैं त्यागी, सब लकीरें हैं--सब लकीरें जब मिट जाएं, जब कोरा कागज तुम्हारे भीतर हो जाए, प्रपंचरहित, कोई उपद्रव तुम्हारे भीतर न रह जाए, शून्य विराजमान हो जाए।

संखारा सस्सता नत्थि नत्थि बुद्धानमिंजतं।।

संस्कार शाश्वत नहीं हैं, सुभद्र, और बुद्धों का इंगित नहीं होता। यह बड़ी अदभुत बात कही बुद्ध ने--

नत्थि बुद्धानमिंजतं।

"बुद्धों का कुछ अता-पता नहीं होता।"

तुम अगर चाहो भी तो तुम बुद्धों को खोज नहीं सकते। उनको खोजना संभव नहीं है। उनका कोई अता-पता नहीं होता।

यह बुद्ध ने जो बात कही, अंतिम, कि अब देह के खो जाने के बाद तुम मुझे खोजना चाहोगे तो खोज न सकोगे। जब तक संस्कार थे, तब तक मेरा अता-पता था। देह थी मेरी, मन था मेरा, तब तक मेरा अता-पता था। तुम कह सकते थे, बुद्ध इस समय कहां हैं? क्या हैं? कौन हैं? किस रूप में, किस वय में, स्त्री कि पुरुष, आदमी कि देव? लेकिन अब मेरा सब अता-पता खो जाएगा। अब मैं महाशून्य के साथ एक होने जा रहा हूं।

"बुद्धों का कोई अता-पता नहीं होता।"

इसलिए कोई उनकी तरफ इंगित नहीं कर सकता कि वे यहां हैं। यह तो ठीक जो भगवान की परिभाषा होती है, वही बुद्ध की परिभाषा है। भगवान का कोई अता-पता नहीं। तुम यह नहीं कह सकते कि भगवान कहां है। तुम इतना ही कह सकते हो, भगवान कहां नहीं है! इंगित नहीं कर सकते। या तो सब कहीं है, या कहीं भी नहीं है। इशारा नहीं हो सकता।

संखारा सस्सता नत्थि नत्थि बुद्धानमिंजतं।

बुद्ध ने कहा, अब संस्कारों से छुटकारा हो गया, आखिरी संस्कार छूटा जा रहा है, आखिरी लकीर हाथ से छूटी जा रही है, अब इसके आगे मेरा कोई अता-पता न होगा। अब मैं महाशून्य में जा रहा हूं। मैं उस आकाश में जा रहा हूं जहां कोई पदचिह्न नहीं होते। मैं उस अंतर-आकाश में जा रहा हूं, जहां बुद्धत्व फलता है, केवल जहां बुद्धत्व फलता है। मैं उस अंतर्यात्रा का आखिरी कदम उठा रहा हूं। और अब तुम मुझे खोज न सकोगे, इसके बाद तुम मुझे खोज न सकोगे।

यही भगवत्ता की परिभाषा है। आदमी को खोज सकते हो, पशु-पक्षी को खोज सकते हो, सीमा है तो खोज सकते हो। जब असीम हो गया तो फिर कैसे खोजोगे?

फिर असीम की क्या खोज का कोई उपाय नहीं? नहीं, उपाय है। तुम भी असीम हो जाओ। बूंद अगर सागर को पाना चाहे तो एक ही उपाय है कि सागर में डूब जाए और एक हो जाए। फिर बुद्ध को बाहर नहीं खोजा जा सकता, फिर तो तुम जब बुद्धत्व को उपलब्ध होओगे तभी खोज पाओगे। तुम उसी क्षण खोज पाओगे जब तुम भी अपना अता-पता खो दोगे।

यह अता-पता खो देना ही आवागमन से मुक्त हो जाना है। फिर न कोई आना है, न कोई जाना है। फिर शाश्वत में निवास है। फिर तुम्हें अपना घर मिल गया। उसी घर की तलाश है।

आज इतना ही।